ISSN 2277-5587
Impact Factor 5.465
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

शोध श्री

Issue - 4 October-December 2022 RNI No. RAJHIN/2011/40531

CHIEF EDITOR
Dr. Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmai.com
www.shodhshree.in

Shodh Shree Issue - 4 Volume-45 October-December 2022

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Dr. Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma (Retd.)
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat (Retd.)
Dean of Commerce, M.D.S, University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Manorama Upadhayay
Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

Prof. Veenu Pant
Professor & Head, Department of History, Sikkim University, Gangtok **(Sikkim)**

Dr. Rajesh Kumar
Director (Journal, Publicaiton & Library), I.C.H.R., **New Delhi**

Dr. Pankaj Gupta
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Dr. Rajendra Singh
Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

Dr. Ram Chandra
Assistant Professor, (STRIDE),Indira Gandhi National Open University, **New Delhi**

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Kate Boehme
University of Leicester, **United Kingdom**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.), National Archives of India, **New Delhi**

ISSN 2277-5587
Impact Factor 5.465
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

शोध श्री

Volume-45 Issue-4 October-December 2022 RNI No. RAJHIN/2011/40531

Published by
DR. S. N. TAILOR FOUNDATION
(A Tribute to Late Shri Paras Hemendra G Tailor)

Prof. (Dr.) S. N. Tailor
Managing Director

Chief Editor
Dr. Virendra Sharma

Editor
Dr. Ravindra Tailor

ISSN 2277-5587
RNI No. RAJHIN/2011/40531

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Editors take no responsibility for inaccurate misleading data, opinion and statement appeared in the articles published in the journal. It is the sole responsibility of contributors.

©Editors also hold of the copyright of the Journal

Published By
Dr. S. N. Tailor Foundation
Munot Nagar, Beawar (Rajasthan)

To be had from
Dr. Virendra Sharma
54-A, Jawahar Nagar Colony
Tonk Road, Jaipur (Rajasthan)

Printed at
Ganesh Printers, Jaipur

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Contents

Volume-45 **Issue-4** **October-December 2022**

1. **भारतीय अवनद्ध वाद्य तकनीक का अध्ययन** 1–8
   डॉ. सुशीला शक्तावत, जोधपुर
2. **जनजातीय विकास एवं योजनायें (मध्यप्रदेश के विशेष संदर्भ में)** 9–17
   डॉ. सुषमा नेताम, शहडोल (मध्यप्रदेश)
3. **आयु रहित समाज का दर्शन** 18–21
   डॉ. दिनेश गुप्ता, बीकानेर
4. **मुगल राजनीति का हस्तक पुष्टिमार्ग** 22–27
   डॉ. सहदेवसिंह चौहान, सीतामऊ (मध्य प्रदेश)
5. **पारिस्थितिकी दर्शन में सतत विकास की अवधारणा** 28–32
   डॉ. नीलम, भीलवाड़ा
6. **कोटा में 1857 का विद्रोह और जन प्रतिरोध के स्वर** 33–38
   डॉ. (श्रीमती) सज्जन पोसवाल, झालावाड़
7. **झुंझुनू में पर्यावरणीय मुद्दों पर एक अनुभवमूलक अध्ययन** 39–41
   वरूण कुमार, जयपुर
8. **राजस्थानी काव्य के श्रेष्ठ नारी पात्र** 42–46
   डॉ. रणजीत सिंह चौहान, अजमेर
9. **नवलगढ़ तहसील में कृषि आधुनिकीकरण के पर्यावरण पर प्रभावों का भौगोलिक अध्ययन** 47–50
   नरेश कुमार, जयपुर
10. **भारतीय जनजातीय समाज में शिक्षित युवा पीढ़ी का रूपान्तरण : एक अध्ययन** 51–57
    डॉ. भवशेखर, उदयपुर
11. **प्रेमचंद की कालजयी रचनाः बूढ़ी काकी** 58–60
    डॉ. सविता सिंह, रायपुर (छत्तीसगढ़)
12. **मीरा के व्यक्तित्व और कृतित्व में नारी चेतना का स्वर** 61–65
    डॉ. प्रेम बाफना, सुजानगढ़
13. **नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल संवर्धन में '5Es निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल' की प्रभावोत्पादकता का अध्ययन** 66–71
    सूरज पाल सिंह भाटी एवं डॉ. सीमा सरूपरिया, खेरवाड़ा
14. **जोधपुर सैन्य रेजीमेन्ट सरदार रिसाले की द्वितीय विश्वयुद्ध में भूमिका** 72–76
    डॉ. सुरेश कुमार, जोधपुर
15. **हिन्दी की उपभाषा तथा बोलियों का अध्ययन** 77–81
    वीरेन्द्र कुमार यादव, उज्जैन (मध्यप्रदेश)

16. **स्वतंत्रता पूर्व महिला शिक्षा का विकास : शेखावाटी के विशेष संदर्भ में** 82–86
अन्जु, जोधपुर

17. **तबले के परिपेक्ष्य में अजराड़ा घराना** 87–90
अजय राठौर, उदयपुर

18. **आजाद हिन्द फौज में शेखावाटी क्षेत्र का योगदान** 91–95
देवेन्द्र कुल्हार, जोधपुर

19. **मानसिक स्वास्थ्य का समीक्षात्मक अध्ययन** 96–99
डॉ. दिनेश कुमार शर्मा, दरभंगा (बिहार)

20. **मारवाड़ के दीवान** 100–106
प्रेम स्वामी, जोधपुर

21. **महात्मा ज्योतिबा फुले, शिक्षा क्रान्तिकारी दूत** 107–111
पपेन्द्र सैनी, जयपुर

22. **राजस्थान के जनजीवन की समृद्ध लोक कला ''मांडणा कला'' का कलात्मक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन** 112–118
डॉ. प्रियंका वर्मा, कोटा

23. **जलविभाजन (वाटरशेड) के माध्यम से बंजर भूमि प्रबन्धन** 119–121
विष्णु कुमार सोनी, जयपुर

24. **झालावाड़ का शहरीकरण : कारण एवं चुनौतियाँ** 122–132
डॉ. शिवानी स्वर्णकार, उदयपुर एवं भरत कुमार सोनी, महेंद्रगढ़ (हरियाणा)

25. **महानरेगा में पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व के अभिकरण** 133–137
डॉ. शक्ति सिंह शेखावत, जयपुर

26. **भारत विभाजन की यथार्थ अभिव्यक्ति और 'तमस'** 138–140
रश्मि, ब्यावर

27. **भारत में ग्रामीण बेरोजगारी के संदर्भ में मनरेगा योजना के योगदान का अध्ययन** 141–144
डॉ. दुर्गेश कच्छवाह, जोधपुर

28. **वैश्वीकरण का भारत पर प्रभाव** 145–149
डॉ. पुष्पा चौधरी, सीकर

29. **भारत में महिलाओं के संवैधानिक एवं कानूनी अधिकार** 150–154
डॉ. वैशाली देवपुरा, उदयपुर

30. **संत कवि तुरसीदास निरंजनी और उनका समाज दर्शन** 155–159
डॉ. पूजा, जोधपुर

31. **संघर्ष बनाम समन्वय – अंबेडकर के समाज दर्शन का एक तथ्यपरक मूल्यांकन** 160–165
डॉ. मनोज अवस्थी, अजमेर

32. **भारतीय विदेश नीतिः ऐतिहासिक विश्लेषण** 166–174
डॉ. कन्हैया लाल मीना, थानागाजी (अलवर)

33. **दादूपंथ का सम्यक अनुशीलन** 175–177
डॉ. दीपाली शर्मा, ब्यावर

34. **भारत में प्लेग और मिशनरी समुदाय** 178–182
मिथलेश सोलंकी, कोटा

35. **वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण चेतना के चित्रण की परम्परा–एक साधना** 183–18
डॉ हिमा गुप्ता, कोटा

36. **जैन धर्म में पर्यावरण संरक्षण का संदेश** 187–188
डॉ. मंजु जैन, कोटा

37. **Diaspora and the Voice of the Lesbian in the Poems of Suniti Namjoshi** 189-196
Dr Jagriti Upadhyaya, Jodhpur

38. **Conceptualization of Good and Bad:** 197-202
A Critical Analysis of Works of Amish Tripathi
Sunayana Pandey, Bikaner

39. **Sai India International Cooperation** 203-209
Dr. Supriya Sharma, New Delhi

40. **NEP- 2020 and Youth Empowerment** 210-213
Prof. A. P. Singh, Rishikesh (Uttarakhand) & Dr. Ram Singh Samant, Pauri

41. **Spatial Pattern of Basic House hold Amenities in Rajasthan:** 214-222
A Geographical perspective
Dr. Shagufta Saify, Rajsamand

42. **Development of Calligraphy in Rajasthan from Epigraphical point of View** 223-231
Dr. Indrajeet Bhattacharya, Jaipur

43. **Geriatric Care In India: An Important Dimension** 232-237
Dr. Shruti Tandon, Udaipur

44. **Revenue System In The Ramayana** 238-240
Dr. Tofique Hussain, Chomu

45. **Gleanings in Corporate Life of Ancient Haryana from Seals** 241-242
Dr. Yasvir Singh, Ch.Dadri (Haryana)

46. **Social Exclusion and Affirmative Action: The Binaries of Social World** 243-246
Dr. Gunjeet Kaur, Jaipur

47. **Marxist Writing on Indian National Movement** 247-254
Virender Singh, Jodhpur

48. **Trajectory of The Roma & The Road Ahead Amidst Anti-gypsism** 255-261
Barkha Kirtida Singh, Udaipur

49. **Concubines – A comparative study between the Mughal Harem** 262-268
and the Zenani Dyodi of Rajasthan
Lakshyata Jakhar, Jodhpur

50. **A study on NEP 2020 and Role of a teacher in Qualitative Higher** 269-279
Education in India
Dr. Manisha Dave, Jodhpur

51. **Role of Indian Diaspora in Making Country' Identity** 280-286
Dr. Jyoti Gautam, Udaipur

52. **Dissemination of Wisdom through Kahlil Gibran's** 287-291
Literary Creations : A Critical Perspective
Kamala Ratnoo, Jodhpur

भारतीय अवनद्ध वाद्य तकनीक का अध्ययन

डॉ. सुशीला शक्तावत
प्रोफेसर, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्रस्तुत आलेख में अवनद्ध वाद्य (चर्म से मढ़े मुख वाले वाद्य) के बारे में लिखा गया है। प्राचीन युग में प्रचलित 100 अवनद्य वाद्य प्रचलित थे। आगे चलकर पखावज, तबला, मृदगम आदि अवनद्ध वाद्यों का निर्माण हुआ। अवनद्ध वाद्यों की सम्पूर्ण तकनीक का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

संकेताक्षर : *त्रिपुष्कर, मुखविलेपन, ध्वनिमार्जन, न्यास, वादन प्रक्रिया।*

मनुष्य द्वारा व्यवहार किया जाने वाला गीत ''गात्रज' और मानव निर्मित किसी उपकरण द्वारा उसकी नादाभिव्यक्ति व संगति यंत्रज है। स्वर ताल अभिव्यक्ति करने वाले उपकरण संगीत में वाद्य कहे जाते हैं।

पाँच प्रकार की ध्वनियों के आधार पर वाद्यों के तंत्री, सुषिर, चर्मनद्ध, धन तथा गान ये पाँच वर्ग माने गए हैं जिन्हें, पंचमहावाद्य' कहा गया है।[1] इनमें से एक, अर्थात् शरीरज, ईश्वर निर्मित तथा नैसर्गिक है तथा शेष नखज, वायुज, चर्मज व लौहज ध्वनि उत्पन्न करने वाले वाद्य मनुष्य निर्मित है।

तंत्री अर्थात् तार या तांत वाले 'तत', फूँक से बजने वाले छिद्रयुक्त वाद्य 'सुषिर', चर्म से मढ़े मुख वाले वाद्य 'अवनद्ध' तथा ठोस धातु के वाद्य 'धन' हैं।[2]

विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि आदिम युग में कभी मानव द्वारा किसी पशु की रोम रहित खाल को किसी खोखली वस्तु के मुख पर ढंकने व तान कर बांध देने तथा उस प्रहार करने से प्रारंभिक 'अवनद्ध' वाद्य की उत्पत्ति हुई होगी। भूमि में गड्ढा खोद कर उसे पशुचर्म से आच्छादित करके, बैल की पूँछ से प्रहार करते हुए बजाए जाने वाले 'भूमि दुंदुभि' नामक 'अवनद्ध' वाद्य का उल्लेख वेदों में मिलता है। इससे भी पूर्वाक्त तथ्य की पुष्टि होती है।[3]

'भूमि दुंदुभि' के अतिरिक्त 'दुंदुभि' नामक अवनद्ध वाद्य का भी उल्लेख हुआ है।[4] दुंदुभि का वादन विभिन्न अवसरों पर उत्सव, विपत्ति की आशंका तथा शत्रु को भयभीत करने के लिए किया जाता था। इससे ज्ञात होता है कि वैदिक युग में 'दुंदुभि' एक महत्त्वपूर्ण वाद्य था।

चर्मावनद्धवदनम वनद्धं तु वाद्यते।
(संगीत रत्नाकर, भाष्ठेवाद्याध्यायः श्लोक सं.–6)

अवनद्ध वाद्यों के मुँह खाल या झिल्ली से मढ़े हुए होते है और उस मढ़े हुए खाल या झिल्ली पर हाथ या डंडी के प्रहार से ध्वनि उत्पन्न करते हुए बजाया जाता है,[5] जैसे प्राचीन भूमि दुंदुभि, पुष्कर, मृदंग, पणव, दर्दुर, पटह, हुडुक्का इत्यादि। मध्यकालीन मृदंग, पखावज, खोल, दमामा, ढोल, नगाड़ा, ढफ, नक्कारा इत्यादि तथा वर्तमान पखावज, मृदंगम्, तबला, ढोलक, नगाड़ा, झील, नक्कारा, हुक्कड, ताशा, खंजरी, नाल, ढफ, इत्यादि।

भारतीय संगीत के प्राचीनतम आधार ग्रंथ नाट्यशास्त्र के रचयिता भरत मुनि के युग में 'त्रिपुष्कर' सर्वप्रमुख अवनद्ध वाद्य थे उस समय एक सौ अवनद्ध वाद्य प्रचलित थे।[6] अतएव यह कहना सर्वथा उचित होगा कि 'त्रिपुष्कर' वाद्यों का आविष्कार भारतीय अवनद्ध वाद्यों के इतिहास में एक ऐसी अभूतपूर्व घटना थी, जिससे कि आगे चलकर आज के

उत्तर भारतीय 'पखावज' व 'तबला' तथा दक्षिण भारतीय 'मृदंगम्' इत्यादि समुन्नत अवनद्ध वाद्यों के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ, जो कि स्वर, मार्जना, प्रहार, पाटाक्षरों (बोलों) व विविध लयकारियों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध होने के साथ-साथ अपनी कलात्मक श्रेष्ठता के कारण विश्व के अवनद्ध वाद्यों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।[7]

मोहनजोदड़ो की खुदाई में सिन्ध घाटी की हजारों वर्ष पुरानी संस्कृति का जो पता चलता है इसमें कुछ मूर्तियाँ ऐसी प्राप्त हुई है जिनके हाथ में वाद्य दिखाई देते है। एक मूर्ति के गले में लटकता हुआ ढोल जैसा वाद्य है और एक वाद्य आधुनिक मृदंग जैसा भी प्राप्त होता हैं।[8]

पौराणिक काल में वीणा, दुंदुभि, दर्दुर, मृदंग, पणव, पुष्कर जैसे वाद्यों का प्रचार था, ऐसा उल्लेख मार्कण्डेय पुराण में मिलता हैं।[9]

रामायण काल में संगीत का विकास हो चुका था। रावण स्वयं उच्च कोटि का संगीतज्ञ था। जीवन निर्वाह की चिन्ता न होने के कारण मनुष्य अपना अधिक समय संगीत साधना में देता था।[10] रामायण तथा महाभारत काल में वीणा और मृदंग का प्रचार था।[11]

भरत के नाट्य शास्त्र के आधार पर त्रिपुष्कर के तीन भाग थे, जिन्हे भरतमुनि ने क्रमशः हरीतकी, यवकृति और गोपुच्छ भी कहा है।[12]

प्राचीन काल से हमारे भारतीय तालवाद्यों पर स्वर की उत्पत्ति अर्थात् चमडे पर स्वर का निर्माण महत्त्वपूर्ण बात समझी जाती थी। भरत मूनि ने नाट्य शास्त्र में अवनद्ध वाद्यों पर स्वर की उत्पत्ति के लिये मिट्टी के लेप की विस्तृत चर्चा की है। नदी किनारे की श्यामा मिट्टी से किस प्रकार लेप तैयार किया जाता था इस विषय का विशद वर्णन उन्होंने नाट्यशास्त्र में किया है। इससे यह पुष्ट होता है कि भरत मूनि के पूर्व भी वहाँ मृदंग को स्वर में मिलाया जाता होगा। त्रिपुष्कर के तीनों मुखों पर स्वर निर्माण की चर्चा भरत मुनि ने की हैं।[13]

उन दिनों यद्यपि विज्ञान का आज जैसा प्रचार नहीं था, किन्तु हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों तथा संगीतज्ञों ने क्रियात्मक रुप देख लिया होगा कि मिट्टी के लेप से चमड़े पर स्वर की उत्पत्ति हो सकती है। तालवाद्य पर स्वर की उत्पत्ति संसार को भारत की ही देन हैं। स्वर निर्मिति की इस बात को प्राचीनकाल से इतना महत्त्वपूर्ण समझा गया होगा कि वह लेप जो कि उन दिनों श्यामा मिट्टी का हुआ करता था और जो इस तालवाद्य का एक महत्त्वपूर्ण अंश था। इसके ऊपर से इस वाद्य का नाम ही मृदंग पड़ गया हो, वह संभवित लगता है।[14]

भारतीय अवनद्ध वाद्यों के कई प्रकार है। संरचना, आकृति, निर्माण-पदार्थ मुखविलेपन, ध्वनिमार्जना, न्यास, वादन प्रक्रिया व व्यवहार के आधार पर इनके अनेक भेद व उपभेद किए जा सकते हैं। अवनद्ध वाद्यों के मूल ढाँचें, मुखचर्म और उसे खींच कर तानने वाली बद्धी या डोरी के लिये विभिन्न पदार्थ व्यवहार किए जाते है। अतएव निर्माण पदार्थ की दृष्टि से भी भारतीय अवनद्ध वाद्यों के अनेक भेद हो सकते हैं। अवनद्ध वाद्यों का मूल ढांचा प्रायः मिट्टी, काष्ठ, धातु और काँच से बना होता है। जिसके आधार पर उनके अनेक भेद किये जा सकते है।

संरचना

भारतीय अवनद्ध वाद्यों की संरचना के मुख्यतः तीन भाग होते हैः (1) ढाँचा, (2) चर्मावनद्ध मुख और (3) मुखचर्म को चारों ओर से खींचकर तानने वाली वस्तु।

(1) ढाँचा : अवनद्ध वाद्यों के ढाँचे पकी मिट्टी काष्ठ या धातु आदि किसी कठोर पदार्थ के बने होते हैं, जिनमें से कुछ तो लंबाई से ढलवाँ या सामान रुप से सीधे और चौड़ाई में चारों ओर से वृत्ताकार होते हैं तथा कुछ अवनद्ध वाद्यों के ढाँचे अर्धगोला-कार तो कुछ के पूर्ण गोलाकार होते हैं। ये सभी ढाँचे भीतर से पोले या खोखले होते हैं, जिनमें से, कुछ में एक ओर, कुछ में दो ओर खुले वृत्ताकार विधर होते हैं जिन्हें अवनद्ध वाद्य का 'मुख' कहा जाता है।[15]

(2) चर्मावनद्ध मुख : अवनद्ध वाद्यों के एक या दो गोल वृत्ताकार 'मुख' किसी पशु के पतले लचीले रोमहीन चिकने चर्म (खाल या झिली) से भली भाँति मढ़-कर उस पर समुचित प्रहार करते हुए बजाया जाता है।

अवनद्ध वाद्यों के 'मुख पर मढ़ने के लिए, उसके आकार के अनुसार, विशेष प्रक्रिया से शोधित, किसी पशु के पतले लचीले मजबूत रोमहीन चिकने चर्म के टुकड़े को काट कर बनाए गए गोल वृत्त को 'पुड़ी' कहा जाता है। यह 'पुड़ी' प्रायः तीन प्रकार की होती है : 1.वाद्य 'मुख' की बाहरी परिधि के किनारे किनारे

चारों ओर समान रुप से चिपक कर वाद्य 'मुख' को ढँकने वाली 'पुड़ी'। 2. पशुचर्म के गोल वृत्त की बाहरी परिधि में थोड़ी–थोड़ी दूर पर बने समानांतर छिद्रों वाली 'पुड़ी'। 3. मुखावनद्ध चर्मवृत्त की बाहरी परिधि की कोर से संलग्न (क) वलय या (ख) गजरा युक्त 'पुड़ी।[16]

अवनद्ध वाद्यों के 'मुख' की बाहरी परिधि पर चारों ओर से चिपका कर मढ़ी जाने वाली तथा बाहरी परिधि पर बने सूक्ष्म छिद्रों वाली 'पुड़िया' ध्वनि एवं विशिष्ट स्वरों में मिलाने की दृष्टि से उत्तम नहीं होती। अतएव सुव्यवस्थित रुप में एकसार तनाव, खिंचाव, उत्तम ध्वनि व इच्छानुकूल मार्जना के लिए 'पुड़ी' की बाहरी परिधि के वृत्ताकार कोर से बाँस या धातु से बने वलय के किनारों पर चारों ओर से दबाकर लपेट दिया जाता है। अथवा इससे भी अधिक समुन्नत 'पुड़ी' बनाने के लिए 'पुड़ी' की बाहरी परिधि के वृत्ताकार कोर के साथ पतले चर्म की एक अन्य वृत्ताकार पट्टी ऊपरी सतह पर और दूसरी भीतर की ओर से लगाकर, तीनों को चमड़े की पतली बद्धी से गूँथते हुये वलयाकार रुप में जोड़ दिया जाता है। 'पुड़ी' के किनारे से गुँथे व चारो ओर से संबद्ध इस वलय को 'गजरा' कहते है।

मुखावनद्ध 'पुड़ी' की दृष्टि से अवनद्ध वाद्यों के निम्नलिखित उपभेद होगे :[17]

1. वाद्यमुख की बाहरी परिधि पर चारों ओर से चिपकाई गई पुड़ी वाले अवनद्ध वाद्य, जैसे खंजरी, चंग, ढफ इत्यादि।

2. मुखचर्म की बाहरी परिधि पर बने समानांतर छिद्रों से युक्त पुड़ी वाले अवनद्ध वाद्य जैसे दुंदुभि, धौंसा, नगाड़ा इत्यादि।

3. (क) वलययुक्त पुड़ी वाले अवनद्ध वाद्य जैसे ताशा, नाल, ढोलक तथा बंग प्रदेशीय तबला व बायाँ विशेष इत्यादि।

(ख) गजरा युक्त पुड़ी वाले अवनद्ध वाद्य जैसे पखावज, तबला, खोल तथा दक्षिण भारतीय मृदंगम् इत्यादि।

(3) मुखचर्म को चतुर्दिक खींचकर तानने वाली वस्तु : मुखचर्म को वाद्य मुख की बाहरी परिधि पर चारों ओर चिपका कर मढ़े जाने वाले वाद्यों के अतिरिक्त अन्य अवनद्ध वाद्यों में वाद्यमुख पर मढ़ी हुई 'पुड़ी' के चर्म को समान रुप से तानने के लिए किसी पतली, लचीली, मजबूत एवं लंबी डोरी या चमड़े की बद्धी को मुखावृत्त चर्म के बाहर किनारे–किनारे अथवा 'पुड़ी' के 'वलय' या 'गजरे' की बाहरी परिधि पर चारों ओर बने समानांतर छिद्रो में पिरोकर अवनद्ध वाद्यों के मूल ढाँचे की बाहरी सतह पर चारों ओर अनेक पंक्तियों में विभाजित करते हुए सुसंबद्ध रुप में कसकर बाँध दिया जाता हैं, जिसे खींच देने पर अवनद्ध वाद्य के मुख पर मढ़ा हुआ चर्म भली भाँति तनकर ध्वनि उत्पादन के योग्य हो जाता है।

कुछ अवनद्ध वाद्यों की संरचना ऐसी होती है कि जिनके मुखचर्म में प्रायः ध्वनि–परिवर्तन नहीं किया जा सकता। किंतु कई ऐसे भी है जिनमें ध्वनि को यथावसर चढाने–उतारने की व्यवस्था होती है। अवनद्ध वाद्यों के मुख पर मढ़े चर्म को अभीष्ट ध्वनि में मिलाने के लिए तत्संबद्ध डोरी या बद्धी में समुचित खिंचाव आवश्यक होता है। अतः इसके लिए कई अवनद्ध वाद्यों के मूल ढाँचे की बाहरी सतह पर चारों ओर डोरी या बद्धी की पंक्तियों में धातु के छल्ले या लकड़ी के गट्टे (लंबे गोल टुकडे) फँसा दिए जाते हैं, जिन्हें आवश्यकतानुसार इधर–उधर सरकाने पर मुखावनद्ध चर्म की ध्वनि इच्छानुसार नीची या ऊँची की जा सकती है।[18]

मुखचर्म को चारों ओर से खींचकर तानने की दृष्टि से अवनद्ध वाद्यों के निम्नलिखित भेद किए जा सकते हैः[19]

1. रज्जुहीन अवनद्ध वाद्य : इन वाद्यों में 'मुख' को चर्म से मढ़ने के लिए, वाद्यमुख की बाहरी परिधि पर चर्म का वृत्ताकार बाहरी किनारा चारों ओर से चिपका दिया जाता है, जैसे खंजरी, चंग, ढफ इत्यादि।

इन वाद्यों में रज्जु तथा छल्ले व गट्टे इत्यादि न होने से, ये अपरिवर्तनीय प्रायः ध्वनि वाले अवनद्ध वाद्य हैं, जिन्हें इच्छानुसार किसी विशिष्ट स्वर में नहीं मिलाया जा सकता।

2. रज्जुयुक्त बवनद्ध वाद्य : इन वाद्यों में 'मुख' पर चढ़ी चर्म 'पुड़ियों' को खींचने व कसकर तानने के लिए उसे डोरी या बद्धी से निबद्ध किया जाता है। इनके चार भेद है :

1. रज्जुयुक्त अपरिवर्तनीय ध्वनि वाले अवनद्ध वाद्य। ये वाद्य रज्जु से बंधे होने पर भी अपने निर्माण के पश्चात् सदैव एक ही स्वर में मिले होते हैं जैसे नगाड़ा, ताशा, झील, खोल इत्यादि।

2. रज्जुयुक्त किंतु वादन में यथावसर किंचित ध्वनिपरिवर्तनीय अवनद्ध वाद्य। ये प्रायः द्विमुखी

अवनद्ध वाद्य होते हैं, जिनके ढाँचे दोनों मुखो पर अपेक्षाकृत बड़े व चौड़े और मध्य में पतले होते है। अतः मध्यभाग के ऊपर की रज्जु पंक्तियों को हाथ से क्रमशः दबा कर कसने व ढीला करने पर वाद्य ध्वनि किंचित ऊँची व नीची होती रहती है, जैसे हुड़कु या डमरु इत्यादि।

3. रज्जु व धातु के छल्लों से युक्त अवनद्ध वाद्य : इन वाद्यों में डोरी की पंक्तियों के बीच धातु के छल्ले फंसे रहते है, जिन्हें इधर-उधर सरकाने पर इच्छानुकूल स्थूल ध्वनि परिवर्तन कर सकने की व्यवस्था रहती है, जैस ढोलक, बनारसी बायाँ तबला विशेष इत्यादि।

4. रज्जु तथा गट्टों से युक्त अवनद्ध वाद्य : इन वाद्यों में ढाँचे की सतह पर चारों ओर डोरी या बद्धी की पंक्तियों के नीचे लकड़ी के गट्टे (टुकड़े) लगे रहने से उन्हें ठोंक कर खिसकाने से सूक्ष्म रुप से निश्चित ध्वनि में मिलाने की उत्तम व्यवस्था रहती है। अतः ये वाद्य इच्छानुकूल स्वर में मिलाने की दृष्टि से समुन्नत व अत्युत्तम होते हैं जैसे पखावज, तबला, नाल तथा दक्षिण भारतीय मृदंगम् इत्यादि।

आकृति

सभी अवनद्ध वाद्य भीतर से पीले, चर्म से मढ़े वृत्ताकार मुख वाले और स्थूल दृष्टि से आकार में सामान्यतः गोल होने पर भी उनकी विशिष्ट आकृतियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। अतएव आकृति के आधार पर भारतीय अवनद्ध वाद्यों के अनेक भेद किए जा सकते हैं।

प्राचीन युग में भरत मुनि ने अपने समय के प्रमुख अवनद्ध वाद्यों में मिट्टी से बने मृदंग अर्थात् त्रिपुष्कर के तीन रुपों में से आंकिक की आकृति हरीतकी, ऊर्ध्वक की आकृति यवमध्य और आलिंग्य की आकृति गोपुच्छ के समान बताई है:[20]

''हरीतक्याकृतिस्तवङ्को यवमध्यस्तथोर्ध्वगः।
आलिङ्गश्चैव गोपुच्छः आकृत्या सम्पकीर्तितः
।।255।।

वर्तमान समय में व्यवहार किए जाने जाने वाले अनेक अवनद्ध वाद्यों की आकृतियाँ भी इनसे मिलती जुलती हैं।

स्वर्गीय डॉ. लालमणि मिश्र ने गोपुच्छ को लंब, गोल व मध्य में उभरी आकृति का मानते हुये, उत्तर भारतीय मृदंग अर्थात् 'पखावज' को गोपुच्छाकृति वाद्य माना हैं।[21] किन्तु पखावज को देखने पर वह हरीतक्याकृति मानना अधिक उचित है।

निर्माण पदार्थ

अवनद्ध वाद्यों के मूल ढाँचे, मुखचर्म और उसे खींच कर तानने वाली बद्धी या डोरी के लिये विभिन्न पदार्थ व्यवहार किए जाते है। अतएव निर्माण पदार्थ की दृष्टि से भी भारतीय अवनद्ध वाद्यों के अनेक भेद हो सकते है, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

1. मूल ढाँचा : अवनद्ध वाद्यों का मूल ढाँचा प्रायः निम्नलिखित पदार्थो से बना होता हैः

(I) मिट्टी (ii) काष्ठ, (iii) धातु, (iv) काँच

(I) मिट्टी के ढाँचे वाले अवनद्ध वाद्यः मिट्टी से बने ढाँचे वाले अवनद्ध वाद्यों की परंपरा बहुत पुरानी है। वैदिक युग में 'भूमिदुदुभि' नामक अवनद्ध वाद्य का निर्माण भूमि में गड्ढा खोद कर उसके मुख को बैल के चर्म से अच्छादित करके किया जाता था। कालांतर में मिट्टी से निर्मित होने वाले अवनद्ध वाद्यों के ढाँचें आग से पकाकर बनाए जाने लगे। इस प्रकार मिट्टी से बने ढाँचे वाले अवनद्ध वाद्यों में त्रिपुष्कर (अंकिक, ऊर्ध्वक व आलिग्यक) प्राचीन काल के सर्वप्रमुख अवनद्ध वाद्य थे। मिट्टी से र्निमित होने के कारण ही पुष्करत्रय को मृद (मिट्टी) + अंग (ढाँचा) = 'मृदंग' अर्थात मिट्टी के ढाँचे वाला वाद्य अथवा 'मर्दल' या 'मुरज' अर्थात मृदु मिट्टी से बना वाद्य भी कहा गया है।[22]

वर्तमान युग में नगाड़ा, दुक्कड़, ताशा, झील, नक्कारा, डुग्गी या डग्गा (बायाँ तबला), खोल, मादल (enay>e|y>ekny) इत्यादि अवनद्ध वाद्यों के ढाँचें पकी हुई मिट्टी के बने होते है।

(ii) काष्ठ के ढाँचे वाले अवनद्ध वाद्यः कई अवनद्ध वाद्यों के ढाँचे काष्ठ (काठ) अर्थात लकड़ी से बनाए जाते है। वैदिक साहित्य में, वृक्ष की जड़ में गर्त बनाकर उसे पशुचर्म से अच्छादित करके बजाए जाने की वाले 'वनस्पति' नामक अवनद्ध वाद्य का उल्लेख मिलता है। इससे पता चलता है कि काष्ठनिर्मित अवनद्ध वाद्यों की परंपरा भी बहुत पुरानी है।[23]

अधिक मजबूत न होने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाने और ले जाने में मिट्टी के ढाँचे वाले अवनद्ध वाद्यों के टूटने फूटने की बहुत संभावना रहती है। जबकि काष्ठनिर्मित अवनद्ध वाद्यों के ढाँचे अत्यधिक मजबूत होने के कारण, इस दृष्टि से सुविधापूर्ण व

उत्तम होते है। इसके अतिरिक्त, मुखचर्म को तानने वाली डोरी या बद्धी को काठ के ढाँचे पर अधिक खींच कर अवनद्ध वाद्य की ध्वनि को अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा चढ़ाया जा सकता है। संभवतः इन्ही गुणों के कारण आगे चलकर अनेक अवनद्ध वाद्यों के ढाँचे काष्ठ से ही बनाए जाने लगे और इतना ही नहीं बल्कि मूलतः मिट्टी से बनाए जाने वाले अनेक अवनद्ध वाद्यों के ढाँचे भी कालांतर में काष्ठ से बनाए जाने लगे, जैसे मृदंग, हुडुक्का, डमरू इत्यादि।[24]

वैसे तो किसी भी वृक्ष का कठोर काष्ठ अवनद्ध वाद्यों के ढाँचे बनाने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। फिर भी परंपरागत रूप में विजयसाल, रक्तचंदन, व खैर (कत्था) इत्यादि वृक्षों के काष्ठ इसके लिए उत्तम माने गये है।[25] आजकल अवनद्ध वाद्यों के ढाँचे शीशम व नीम इत्यादि वृक्षों के काठ से भी बनाए जाते है। वर्तमान अवनद्ध वाद्यों में ढोलक, पखावज, दक्षिण भारतीय मृदंगम, घामा, दाहिना तबला, नाल, खंजड़ी ढफ, चंग डमरू, हुडुक इत्यादि के ढाँचे काठ से ही बनाए जाते है।

(iii) धातु के ढाँचे वाले अवनद्ध वाद्यः कुछ अवनद्ध वाद्यों के ढाँचे काँसा ताँबा, पीतल, लोहा इत्यादि कठोर धातुओं से बनाए जाते है। प्राचीन संगीत ग्रंथों से पता चलता है कि उस समय से ही कुछ विशिष्ट अवनद्ध वाद्यों के ढाँचे धातुओं से बनाए जाने लगे थे,[26] कडुवा, डक्का, मंडिडक्का, डक्कुली, दुदंभि, भेरी, निःसाण, तुंबकी इत्यादि।

प्रायः यह देखा गया है कि पकी मिट्टी अथवा काठ के ढाँचे को हाथ या किसी कठोर वस्तु से ठोंकने पर, उससे स्वयं की कोई अनुरणनात्मक ध्वनि नहीं निकलती किन्तु धातु से बने ढाँचें को ठोकने पर उससे एक विशिष्ट अनुरणनात्मक नाद निकलता है। इसलिए मिट्टी या काठ के ढाँचे वाले अवनद्ध वाद्यों को ऊँचे स्वर में बजाने पर जहाँ केवल मुखचर्म मात्र की ध्वनि के साथ-साथ ढाँचे की धात्विक ध्वनि भी संयुक्त हो जाती है, जोकि मुखचर्म से निकलने वाले नाद की एकरुपता में बाधा उत्पन्न करती है। अतः ध्वनि की दृष्टि से ऊँचे स्वरों में बजाए जाने योग्य अवनद्ध वाद्यों के लिये मिट्टी या काठ का ढाँचा धातु के ढाँचे से उत्तम होता है। संभवतः धातु में होने वाले ध्वनि दोष के कारण ही केवल मंद्र गंभीर ध्वनि में बजाए जाने वाले अवनद्ध वाद्यों के ढाँचे धातु से बनाए जाते हैं जैसे घौंसा, भेरी, डुग्गी (छोटा नगाड़ा विशेष) या बाएँ तबले की डुग्गी या डग्गा इत्यादि।

(iv) कुछ मध्ययुगीन राजदरबारों में विशेष उत्सवों पर नृत्यादि के साथ शोभा के लिये रंग बिरंगे मोटे काँच के ढाँचे वाली पखावजों को खड़े होकर बजाए जाने का प्रचलन भी रहा है। उदाहरण के लिए जयपुर के राजदरबार में पिछली शताब्दी तक सावन मास के झूलनोत्सव तथा फागुन के होलिकोत्सव के अवसर पर नृत्य के साथ सफेद, हरे, नीले, लाल इत्यादि अनेक रंगों के काँच के ढाँचे वाली पखावजें नृत्य के साथ बजाई जाती रही है। इनमें से अनेक पखावजें अभी भी जयपुर राजपरिवार के निजी संग्रह में हैं।

विज्ञान की दृष्टि से काँच ध्वनि का सुसंवाहक नहीं है। अतएव शोभा के लिये काँच के ढाँचे वाले अवनद्ध वाद्य भले ही ठीक हों, परन्तु वे ध्वनि और गुंजन की दृष्टि से भी उत्तम होंगे, इसमें संदेह है। इसीलिये प्रत्यक्ष व्यवहार में आने वाले भारतीय अवनद्ध वाद्यों के ढाँचे प्राचीन काल से परंपरागतरुप में मिट्टी, काठ व धातु से ही बनाए जाते रहे हैं और अब भी बनाए जाते हैं। अतः काँच के ढाँचे वाले अवनद्ध वाद्यों को अपवाद मात्र ही समझना चाहिये।[27]

2. मुखचर्म : अवनद्ध वाद्यों के मुख पर मढ़ा हुआ रोमहीन चर्म, जोकि हाथ या दंड की चोट से बजाया जाता है, अवनद्ध वाद्यों का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भाग होता है। अवनद्ध वाद्यों के मुख पर मढ़े जाने वाले चर्म गुण दोष संगीतरत्नाकर में इस प्रकार बताए गए है :[28]

"षाण्मासिकस्य वत्सस्य चर्म स्यात्पुटबन्धने।1164।
अन्ये द्विवत्सरस्यास्यहुस्तन्न लक्ष्येक्षु दृश्यते।
बद्धस्य वृषभस्यास्य चर्मणा बध्रकल्पना।1165।

अर्थात् अवनद्ध वाद्यों के मुख पर मढ़ने के लिए छः महीने के बछड़े की खाल ठीक होती है। कुछ लोगों ने दो वर्ष के बछड़े की खाल व्यवहार करने के लिए बताया है। किन्तु वैसा प्रचार में नहीं है। स्नायु, माँस, रोमविहीन चर्म जोकि हिम या कुद जैसा सफेद और नवीन आम्र-पल्लव जैसा चमकदार हो, उसे ठंडे पानी में रात भर भिगो कर दूसरे दिन खूब मसलने के बाद अवनद्ध वाद्य के मुख पर मढ़ना चाहिए और बैल के चमड़े की बद्धी से पिरोकर बाँधना व कसना चाहिए। चर्बी वाले, बूढ़े व बीमार जानवर के चर्म को या कटे फटे, कौवे के चोंच से आहत, आग व धुँए से खराब

तथा सड़े गले चर्म को अवनद्ध वाद्य के मुख पर नहीं मढ़ना चाहिए।

ध्वनि दृष्टि से, अवनद्ध वाद्यों के मुख पर मढ़े जाने वाले चर्म दो प्रकार के होते हैं।[29] 1.मंद्र, गंभीर नाद उत्पन्न करने योग्य मोटा चर्म, 2. मध्य तार ध्वनि उत्पन्न करने योग्य पतला चर्म।

1. मंद्र, गंभीर व बड़ा नाद उत्पन्न करने वाले बड़े आकार के अवनद्ध वाद्यों के मुख पर समुचित मोटा चर्म मढ़ने के लिए गाय, बैल, भैंसा, भैंस या ऊँट इत्यादि बड़े जानवरों की विशेष प्रक्रिया से कमाई हुई रोमहीन चिकनी खाल व्यवहार की जाती है, जिसे किसी चोब या कठोर दंड से पीटते हुए बजाया जाता है। मोटे चर्म से अवनद्ध किए जाने वाले वाद्यों में दुंदुभि, भेरी, धौंसा, बड़ा नगाड़ा इत्यादि हैं।

2. मध्य व तार ध्वनि उत्पन्न करने वाले मध्यम या छोटे आकार के अवनद्ध वाद्यों के मुख पर समुचित पतला चर्म या झिल्ली मढ़ने के लिए विशेष प्रक्रिया से कमाई हुई बकरी या बकरे की रोमरहित चिकनी खाल व्यवहार की जाती है, जिसे प्रायः हाथों, छोटे छल्लों या पतली डंडियों से बजाया जाता है। पतले चर्म या झिल्ली से मढ़े जाने वाने अवनद्ध वाद्यों में ढोलक, नाल, पखावज, कर्नाटक मृदंगम् खोल, तबला, ताशा, दुक्कड, झील, ढफ, छोटे नगाड़े इत्यादि।

   प्राकृतिक रुप से नारी जातीय जीवों की खाल अधिक पतली, चिकनी तथा मधुर स्वर उत्पन्न करने वाली होती है। अतः हाथों व उँगलियों से बजाए जाने वाले कलात्मक व उन्नत अवनद्ध वाद्यों के मुख पर मढ़ने के लिए बकरी की खाल सर्वोत्तम मानी जाती है। ऐसे वाद्यों में ढ़ोलक, नाल, पखावज, मृदंगम्, खोल व तबला इत्यादि है। संगीत रत्नाकर के टीकाकर सिंहभूपाल ने भी बकरी की खाल के प्रयोग का उल्लेख किया है।[30]

   पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाँवों में ऐसा प्रवाद प्रचलित है कि बकरी की खाल से मढ़े अवनद्ध वाद्य के सामने यदि भेड़िये की खाल से मढ़ा कोई अवनद्ध वाद्य बजाया जाए तो प्राकृतिक रुप में जातिगत भय के कारण, पहले वाने अवनद्ध वाद्य में मढ़ी बकरी खाल फट जाएगी। इससे ज्ञात होता है कि संभवतः अवनद्ध वाद्यों में कभी भेड़िये की खाल का उपयोग करने का प्रयत्न भी किया गया होगा। परन्तु प्रत्यक्ष व्यवहार में कभी ऐसा दिखाई न देने से प्रवाद की यह धारणा संदेहास्पद प्रतीत होती है। इस संबंध में प्रयोग करके देखा जा सकता है।

3. मुखचर्म को तानने वाली बद्धी : मुखचर्म को चारों ओर से तानकर समान ध्वनि में बजाये जाने लायक रखने के लिए डोरी, ताँत या जानवरों के मोटी खाल से बनी पतली, लंबी बद्धी इस्तेमाल की जाती है, जिसे अवनद्ध वाद्य के मुख–चर्म की बाहरी परिधि पर पिरोकर खींच दिया जाता है। बद्धी की दृष्टि से अवनद्ध वाद्यों के मुख्यतः तीन भेद हो सकते है :[31]

(I) सूत की डोरी इस्तेमाल किए जाने वाने अवनद्ध वाद्य, जैसे

   ढ़ोलक, नाल व बनारसी बायाँ तबला इत्यादि।

(ii) ताँत इस्तेमाल किए जाने वाले अवनद्ध वाद्य, जैसे झील,

   ताशा व छोटे नगाड़े इत्यादि।

(iii) बड़े जानवरों की खाल की बद्धी इस्तेमाल किए जाने वाले अवनद्ध वाद्य जैसे पखावज, मृदंगम, तबला, खोल इत्यादि।

इसके अतिरिक्त तबला, धामा जैसे एकमुखी वाद्यों में बद्धी को बाँध कर कसने के लिए आधार के रुप में चमड़े की बनी 'गेंडुरी' (वलय) का प्रयोग किया जाता है। बद्धी में अधिक खिंचाव व कसाव के लिये प्रायः सूत की डोरी वाले वाद्यों में धातु के छल्ले और चमड़े की बद्धी वाले वाद्यों में लकड़ी के 'गट्टे' इस्तेमाल किए जाते हैं।

मुखविलेपन

प्राचीन काल से ही उन्नत अवनद्ध वाद्यों में ध्वनि को गूँजदार और इच्छित स्वर की दृष्टि उन्नत बनाने के लिए उनके मुखचर्म के बीच, तालाब के किनारे की गीली मिट्टी, गेहूँ या जौ का गीला आटा या विशेष विधि से बनाए गए काले रंग के मसाले का विलेपन

किया किया जाता रहा है। 'मुखविलेपन' भारतीय अवनद्ध वाद्यों की अन्यतम् विशेषता है, जोकि विश्व के अन्य देशों के अवनद्ध वाद्यों में नहीं मिलती। मुखविलेपन की दृष्टि से अवनद्ध वाद्यों के 1. बिना मुखविलेपन वाले और 2. मुखविलेपन वाले, ये दो भेद हो जाते हैं। आधुनिक अवनद्ध वाद्यों में चंग, ताशा, ढफ, झील, खंजड़ी, हुडुक, डमरु इत्यादि बिना मुखविलेपन वाले अवनद्ध वाद्य हैं। मुख विलेपन किए जाने वाले अवनद्ध वाद्यों में से कुछ के एक मुखचर्म पर और कुछ दोनों मुखचर्मो पर विलेपन किया जाता है। नगाड़ा, दुक्कड़, ढोलक इत्यादि, एक मुख पर विलेपन किए जाने वाले मृदंग (पखावज), कर्नाटक मृंदगम्, तबला, खोल इत्यादि दोनों मुखों पर विलेपन किए जाने वाले अवनद्ध वाद्य हैं।[32]

मुखविलेपन किए जाने वाले पदार्थ की दृष्टि से भारतीय अवनद्ध वाद्यों के निम्नलिखित तीन भेद हो सकते हैः

(I) मिट्टी विलेपन किए जाने वाले अवनद्ध वाद्य : भरत नाट्यशास्त्र में कंकड़ रहित, वालू व तृण रहित तथा जो अधिक चिकनी, श्वेत, खारी, कड़वी, काली, पोली, खट्टी व तीखी न हो, ऐसे अवगुणों से रहित, नदी किनारे की मधुर, श्याम रंग वाली मिट्टी को पानी से गूँध कर वामक (आलिग्यक) और ऊर्ध्वक के मुखचर्म पर लेप करने को कहा गया है।[33] त्रिपुष्कर वाद्य के केवल वामक (आलिंग्यक) और ऊर्ध्वक इन दो भागों में ही मुतिकालेपन किए जाने के कारण इस प्रक्रिया को 'द्विलेपन' कहा जाता था।[34] आज भी कुछ आदिवासी जनजातियों के विशेष अवनद्ध लोकवाद्यों में मिट्टी का विलेप किया जाता है।

(ii) गेहूँ या जौ का आटा विलेपन किए जाने वाले अवनद्ध वाद्य : यद्यपि शास्त्रों में गेहूँ, जौ या दोनों के मिश्रित गीले आटे का प्रयोग मुखविलेपन के लिए अधिक श्रेष्ठ नहीं बताया गया है,[35] फिर भी वर्तमान पखावज के बाएँ मुख और लकड़ी के बने बाएँ तबले (धामा) के मुखचर्म के बीच गेहूँ का गीला आटा लगाने की प्रथा है और ध्वनि व वादन की दृष्टि से वह पूर्णतः संतोषप्रद होता है।

(iii) स्याही विलेपन किए जाने वाले अवनद्ध वाद्य : अवनद्ध वाद्यों में मुखविलेपन के लिए लकड़ी की राख, चावल का माँड और गुड़ के मिश्रण से बने मसाले के प्रयोग का उल्लेख लगभग तेरहवीं शताब्दी ईसवी वे मिलने लगता हैं।[36] बाद में इसी मसाले में लौहचूर्ण की जली हुई राख का प्रयोग भी किया जाने लगा। काला रंग होने के कारण इस मसाले को प्रचलित भाषा में 'स्याही' कहा जाता है।

मुखविलेपन में 'स्याही' के प्रयोग से सबसे बड़ा लाथ यह हुआ कि संगीत कार्यक्रम के बीच अवनद्ध वाद्यों में मिट्टी या आटे का विलेप थोड़ी–थोड़ी देर सूखकर कड़ा पड़ जाने पर उसे बदलना पड़ता था। अतः 'स्याही' के प्रयोग से यह असुविधा दूर हो गई।

कुछ अवनद्ध वाद्यों में गीली व मुलायम और कुछ में सूख कर कड़ी पड़ जाने वाली 'स्याही' का व्यवहार किया जाता है। 'मुलायम स्याही' मुखचर्म की भीतरी सतह में और 'कड़ी स्याही' मुखचर्म की बाहरी सतह पर लगाई जाती है। नगाड़ा, ढोलक आदि वाद्यों में मुखचर्म की भीतरी सतह में 'मुलायम स्याही' और तबला, पखावज, खोल, नाल, कर्नाटक मृदंगम् इत्यादि वाद्यों में मुखचर्म की बाहरी सतह पर 'कड़ी स्याही' लगाई जाती है। इनमें से तबले के दोनों भागों में तथा पखावज के एक ही मुख पर 'स्याही' का प्रयोग किया जाता है।

ध्वनि मार्जना

अवनद्ध वाद्य के मुखचर्म को किसी उपयुक्त ध्वनि में बजाए जाने योग्य करना ही ध्वनिमार्जना है। ध्वनिमार्जना की दृष्टि से अवनद्ध वाद्यों के निम्नलिखित तीन भेद हो सकते है :[38]

(I) ध्वनिमार्जना न किए जा सकने वाले अवनद्ध : इस प्रकार के अवनद्ध वाद्यों में ध्वनि मार्जना किया जाना संभव नही होता। अतः वे प्रायः एक ही ध्वनि में मिले रहते हैं जैसे ढफ, डमरु, नगाड़ा, झील, ताशा, खंतड़ी इत्यादि।

(ii) अर्धध्वनिमार्जना वाले अवनद्ध वाद्य : इस प्रकार के अवनद्ध वाद्यों में यद्यपि किसी सीमा तक ध्वनिमार्जना द्वारा मुखचर्म की ध्वनि को ऊँचा या नीचा किया जा सकता है, फिर भी उसे इच्छानुसार किसी निश्चित स्वर में नहीं मिलाया जा सकता जैसे हुडुक, ढोलक, छोटा नगाड़ा इत्यादि।

(iii) इच्छित ध्वनिमार्जना किए जा सकने वाने अवनद्ध वाद्य : इस प्रकार के वाद्यों को इच्छानुसार निश्चित स्वर में मिलाया जा सकता है। पखावज, नाल, कर्नाटक मृदंगम् तथा तबला (दाहिना) इच्छित ध्वनि मार्जना किए जा सकने वाले अवनद्ध वाद्य हैं।

अवनद्ध वाद्यों की वादन शैली का जितना विकास भारत मे हुआ उसका शतांश भी अन्य देशो में नहीं हुआ है। इनकी वादन विधि ने विश्व को चकित कर दिया है अब पाश्चात्य देश के लोग भी मृदंग और तबला सीखने लग गये है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *नारदीय क्षिक्षा– नारदमुनि, प्रकाशक श्री पीतांबरापीठ– संस्कृत परिषद, दतिया मध्यप्रदेश*
2. *संगीत रत्नाकर, (खण्ड 1–3) प. शार्ङगदेव, अनुवाद प. एस. सुब्रह्मण्म् शास्त्री, मद्रास भाष्ठोवाद्याध्याय श्लोक सं. 4*
3. *1. कृष्ण यजुर्वेद प्रकाशक दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली 7/5/9/30 भूमि दुन्दुभि वप्नौति*

   2. ऐतरेय ब्राह्मण 5/1/5
4. *शुक्ल यजुर्वेद दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली 2/17/5*
5. *संगीत रत्नाकर, भाष्ठोवाद्याध्याय श्लोक सं. 6*
6. *नाट्य शास्त्र – भरतमुनि प्रकाशक ओरियन्टल इंस्टीट्यूट बड़ौदा प्रथम संस्करण–1964*
7. *तबले का उदगम विकास और वादन शैलियाँ– योगमाया शुक्ल, हिन्दी कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, पृ. 30*
8. *ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन म्युजिक– स्वामी परमानन्द, प्रकाशन रामकृष्ण वेदान्त मठ, कलकत्ता पृ. 87*
9. *भारतीय संगीत वाद्य– डॉ. लालमणि मिश्रा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली,1923 पृ. 88*
10. *भारतीय संगीत का इतिहास– भगवत शरण शर्मा संगीत कार्यालय हाथरस, पृ.21–23*
11. *1. भारतीय संगीत का इतिहास– उमेश जोशी मानसरोवर प्रकाशन फिरोजाबाद, 1957 पृ. 105*

    2. भारतीय संगीत वाद्य– डॉ. लालमणि मिश्रा, पृ. 89
12. *वही, पृ. 89*
13. *पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराएँ– डॉ. आबान ए मिस्त्री, प्रकाशक पं. केकी.एस. जिजिना, स्वर साधना समिति बम्बई, 1984 ईस्वी, पृ. 23*
14. *वही पृ. 23*
15. *तबले का उद्गम, विकास और वादन शैलिया– योगमाया शुक्ल, पृ.30*
16. *संगीत रत्नाकर– भाष्ठोवाद्याध्याय श्लोक सं. 813*
17. *तबले का उद्गम विकास और वादन शैलियाँ– योगमाया शुक्ल, पृ. 32*
18. *वहीं, पृ. 33*
19. *वही, पृ. 34*
20. *नाट्यशास्त्र– भरतमुनि, चतुस्त्रिशोध्यायः*
21. *भारतीय संगीत वाद्य– लालमणि मिश्र, पृ. 17*
22. *संगीत शास्त्र– के. वासुदेव शास्त्री, प्रकाशक हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश लखनऊ 1968,पृ. 22*
23. *ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन म्यूजिक, स्वामी परमानन्द, पृ. 89*
24. *वही, पृ. 90*
25. *संगीत रत्नाकर, भाष्ठोवाद्याध्यायः, श्लोक सं. 1019,1078, 1098, 1132 तथा 1157*
26. *1. भरतनाट्य शास्त्र– चतुस्त्रिोशोध्याय, श्लोक सं. 12*

    2. संगीत रत्नाकर, भाष्ठोवाद्याध्याय, श्लोक सं. 1098 से 1156 तक।
27. *यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ म्यूजिक– राजा सोरिन्द्र मोहन टैगोर, सेन प्रेस, कलकत्ता, 1896, पृ. 25*
28. *संगीतरत्नाकर, भाष्ठोवाद्याध्यय, श्लोक सं. 1164 से 1168 तक*
29. *भारतीय संगीत का इतिहास– डॉ. शरतचन्द्र पंराजये, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, 1969 पृ. 51*
30. *सुधाकर, सं. र. अ. 6, श्लोक सं. 812 व 813 की टीका*
31. *तबले का उद्गम, विकास और वादन शैलिया–योगमाया शुक्ल, पृ. 41*
32. *वही, पृ. 42*
33. *भरतनाट्यशास्त्र, चतुस्त्रिशोध्यायः, श्लोक सं. 125 से 130*
34. *भरतनाट्यशास्त्र, चतुस्त्रिशोध्यायः, श्लोक सं. 40*
35. *भरतनाट्यशास्त्र, चतुस्त्रिशोध्यायः, श्लोक सं. 131*
36. *संगीत रत्नाकर, भाष्ठोवाद्याध्याय, श्लोक सं. 28 व 29*
37. *भारतीय संगीत वाद्य– लालमणि मिश्र, पृ. 95*

जनजातीय विकास एवं योजनायें (मध्यप्रदेश के विशेष संदर्भ में)

डॉ. सुषमा नेताम
सहायक प्राध्यापक, पं. एस. एन. शुक्ला विश्वविद्यालय, शहडोल (मध्यप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

जनजाति विकास का आशय है जनजातीय आबादी की अधिकारहीनता की प्रस्थिति को सुधारते हुए उनके जीवन में गुणात्मक उत्रति करना। मध्यप्रदेश के विशेष संदर्भ में जनजातिय विकास एवं योजनाऐं मध्यप्रदेश में जनजातिय हित में बहुत सी योजनाऐ चलाई जा रही है। इसके लिए अनेंक संस्थाये, एन. जी. ओ. सासकीय एवं अर्द्ध शासकीय गतिविधियॉ संचालित है। इसमें मुख्यतः शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक एवं सामाजिक विषयों पर कार्य किया जा रहा हैं। पायलेट प्रोजैक्ट के रुप में चलायी जाने वाली योजनाये स्थानिय निकाय, ग्राम पंचायत स्तर पर त्वरित लाभ दिया जाता है। जनजातीय समुदाय के संरक्षण हेतु सख्त कानून बनाये गये है। इसें पेशा एक्ट, शिक्षा के साथ भोजन व्यवस्था, छात्रवृतियॉ, खेलकूद एवं स्वास्थ परिक्षण नियामित रुप से शामिल किये गये है। स्वास्थ्य सेवा में आंगनवाडी, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, मुक्त इलाज एवं दवाईयॉ उपलब्ध करायी गई।

संकेताक्षर : *जनजातियाँ, विकास, योजनाऐं, मध्यप्रदेश, संवैधानिक सुरक्षा, प्रशासन, परियोजना।*

विकास का संबंध उर्ध्वमुखी परिवर्तन से है। जिसमें प्रगति या पूर्व से अच्छी स्थिति दृष्टिगोचर होती है। लोगों की सामाजिक स्थिति एवं जीवन स्तर में परिवर्तन लाने के लिए भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से विकास कार्यक्रम का क्रियान्वयन एवं मुल्यांकन किया जाता है। इसके फलस्वरूप जो परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, वही नियोजित विकास है। जनजातीय विकास का आशय है जनजातीय आबादी की अधिकारहीनता की प्रस्थिति को सुधारते हुए उनके जीवन में गुणात्मक उत्रति करना। भारत का संविधान अनुसूचित जनजीाय को वैधानिक संरक्षण एवं सुरक्षा प्रदान करता है ताकि उनकी सामाजिक निर्योग्यताए हटाई जा सके तथा उनके विविघ अधिकारों को बढावा मिल सके। विभिन्न विकास योजनाओं के माध्यम से सम्पादित विकास कार्यो के मुल्यांकन को स्पष्ट करता है। मुख्य रूप से इसमें कुछ योजनाएं एवं उनका संक्षिप्त परिचय (जिनके माध्यम से विकास कार्य सम्पन्न किए जाते है) योजनाओं के क्रियान्वयन की प्रक्रिया, ग्रामसभा की भूमिका, अध्ययन के लिए चयनित ग्राम पंचायतों में ग्राम सभाओं का क्रियान्वयन एवं मुल्यांकन, विकास योजनाओं की प्रशासनिक एवं वित्तीय विकास कार्यो का विवरण एवं वित्तीय स्वीकृति की शक्तियां एवं तकनीकी अधिकार, चयनित ग्राम पंचायतों में हुए विकास कार्यों का विवरण, गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों के चयन का आधार, चयनित ग्राम पंचायतों में योजनाओं के माध्यम से विभिन्न लाभान्वित एवं व्यक्तिगत लाभान्वित परिवारों की संख्या, ऋण एवं अनुदान की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। साथ-साथ ग्रामीण विकास से सम्बन्धित प्राप्त सुझावों को भी इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।[1]

संवैधानिक सुरक्षा एवं संरक्षाः- भारतीय संविधान में आदिवासियों को कुछ विशेष संरक्षी एवं भारतीय विकासी सुविधाएं दी है। इन्हें हम संवैधानिक प्रावधान कहते है। सामान्यतः इन प्रावधानों को दो भागों में बॉटते है।

1. संरक्षी प्रावधान और 2. विकासी प्रावधान। संरक्षी प्रावधानों का उद्देश्य जनजातियों के हितों की सुरक्षा करना है। विकास प्रावधानों में जनजातियो का विकास मात्र है। इन दोनों प्रावधानों का उल्लेख करने वाले संविधान के अंश निम्न प्रकार है।

1. संविधान के 275 अनुच्छेद के अनुसार केन्द्रीय सरकार राज्यों की आदिवासियों के विकास और प्रशासन के लिए धनराशि देती है। 2. अनुच्छेद 325 में यह कहा गया है कि किसी को धर्म, प्रजाति, जाति एवं लिंग के आधार पर मताधिकार से वंचित नहीं किया जायेगा। 3. अनुच्छेद 330 व 332 के अनुसार लोकसभा एवं राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए स्थान सुरक्षित किए जायेंगे। 4. अनुच्छेद 335 के अनुसार सरकारी नौकरियों में आदिवासियों के लिए स्थान सुरक्षित रखेगी। 5. अनुच्छेद 335 के महत्व, राष्ट्रपति अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए स्थान सुरक्षित किये जायेंगे। 6. संविधान की पांचवी अनुसूची यह प्रावधान करती है कि एक जनजातीय सलाहकार परिषद की नियुक्ति होगी। 7. संविधान में कुछ अनुच्छेद ये सभी है जो मध्यप्रदेश, असम, बिहार, उड़ीसा आदि के जनजातीय क्षेत्रों के लिए विशेष सुविधा है। संविधान ने आदिवासियों को जो सुविधाएं दी है उनका उद्देश्य इन वर्गों को मुख्य रूप से देश की प्रमुख धारा के साथ जोड़ना है।[2]

जनजातीय विकास की शुरूआत मौर्य कालीन राजा अशोक को दिया जाता है। जिसने जनजाति विकास के लिए मंत्री (अन्तमहामात्य) की नियुक्ति की थी। अन्तमहामात्य का मुख्य कार्य सामान्यजन का ध्यान रखना था। परन्तु जनजातीय समाजों के विकास में किसी विशिष्ट योगदान का उल्लेख अशोक के किसी शिलालेख में नहीं मिलता। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जनजातियों के संदर्भ मे संभवतः यह बताया गया है कि ये स्थानीय लोग अपने क्षेत्र के चप्पे-चप्पे से वाकिफ होते है तथा जासूसी सहित स्थानीय कार्यों के लिए इनका अस्थाई सहयोग लिया जा सकता है, परन्तु स्थाई रूप से इन पर भरोसा नहीं किया जा सकता। कौटिल्य की यह टिप्पणी अनजाने के भय के नियम की पुष्टि करती है। निश्चय ही उस समय के लोंगो को आदिवासियों का कोई विशेष ज्ञान नहीं हो। तब से मध्यकालीन भारत के अन्त तक किसी राजा महाराजा या बादशाह को ऐसे समाजों से कोई सरोकार रहा हो, ऐसा भी नहीं लगता।[3]

आधुनिक भारत में जनजाति विकास को एक व्यवहारिक रूप अंग्रेजों ने दिया परन्तु उनका लक्ष्य इन समाजों का विकास नहीं था। लक्ष्य एक नहीं दो थे- पहला यह कि उन्हें ईसाईयत का पाठ पढ़ा कर अंग्रेजी सत्ता का पक्षधर बनाना तथा दूसरा इसी प्रक्रिया द्वारा उन्हें सफलता भी मिली इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि सन् 1920 ई. तक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं को उसकी दशा की भनक तक भी न मिली थी।[4]

प्रदेश में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या 153. 16 लाख (जनगणना 2011 अनुसार) है जो कि राज्य की कुल जनसंख्या का 21.10 प्रतिशत है। इस प्रकार मध्यप्रदेश देश का ऐसा राज्य है जहां हर पांचवा व्यक्ति अनुसूचित जाति वर्ग का है। इन वर्गों के कल्याण एवं विकास को सुनिश्चित करने के जिए प्रदेश की आयोजना मद का 21.10 प्रतिशत हिस्सा अनुसूचित जनजाति उपयोजना की अवधारणा के तहत पृथक से प्रावधानित किया गया है। अनुसूचित जनजातियों के लिए विभिन्न विकास विभागों द्वारा तैयार की जाने वाली योजनाओं और निर्धारित बजट का नियंत्रण भी विभाग के पास है। इस प्रकार आदिवासी उपयोजना के लिए विभाग को नोडल विभाग बनाया गया है।

शैक्षणिक स्तर एवं आर्थिक सुदृढ़ता किसी भी वर्ग की सामाजिक स्थिति की पहचान होता है। विभाग का लक्ष्य अनुसूचित वर्गों का शैक्षणिक एवं आर्थिक उत्थान कर उन्हें समाज के अगले पायदान पर लाना है। मध्यप्रदेश के 89 आदिवासी विकास खण्डों में प्राथमिक शिक्षा से लेकर हायर सेकण्डरी तथा शिक्षा का दायित्व विभाग के पास है। विकास खण्डों में नवीन शैक्षणिक संस्था खोलना, पदों का चयन करना तथा नियंत्रण विभाग द्वारा किया जाता है। विभाग द्वारा जनजाति छात्र-छात्राओं को विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्तियां स्वीकृत, छात्रावास व आश्रमों तथा अन्य आवासीय संस्थाओं का संचालन किया जाता है।[5] संस्कार द्वारा छात्र-छात्राओं को शिक्षण के साथ निःशुल्क आवास, भोजन, स्वच्छ पेयजल, विद्युत आदि की सुविधा देने के उद्देश्य से आश्रम, शलाएं, जूनियर, सीनियर, उत्कृष्ट आवासीय संस्थाओं का संचालन किया जा रहा है। उच्च शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। विभाग द्वारा जनजातीय प्ररम्परागत संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु राज्य स्तरीय जनजातीय संग्रहालय का निर्माण भोपाल में कराया गया है। सामुदायिक रेडियों केन्द्रों की स्थापना कराई गई है जिससे प्रदेश के जनजातीय क्षेत्रों तक उसकी

तरक्की के लिए राज्य द्वारा संचालित प्रवर्तित योजनाओं की जानकारी पहूंचाई जा सके।[6]

उद्देश्यः– जनजातीय कार्य विभाग प्रदेश सरकार का एक प्रमुख विभाग है। जनजातीय वर्गों के विकास एवं हित संरक्षण का दायित्व सौंपा गया है। दायित्व के निर्वहन हेतु विभाग जहां एक ओर अपने स्तर पर शैक्षणिक एवं आर्थिक उत्थान के साथ अनुपूरक कल्याणकारी योजनाएं संचालित कर रहा है।

- जनजाति तथा विशेष पिछड़ी जनजातीय क्षेत्रों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ते हुए समाज के अन्य क्षेत्रों के समकक्ष लाना।
- विशेष पिछड़ी जनजातीय समूह का उत्थान कर उन्हें अन्य जनजातीय वर्गों के समकक्ष लानां
- जनजातीय वर्गों के शैक्षणिक उत्थान के लिए शिक्षा विषयक योजनाओं को सर्वोच्च प्राथमिकता से लागू करना।
- जनजाति की परम्परागत संस्कृति को पाठ्यक्रमों में स्थान देना, जनजातीय महिलाओं के जिए को–आपरेटिव्ह सोसायटियों का गठन।
- विभिन्न प्रशिक्षण योजनाओं के माध्यम से रोजगार के कौशल उन्नयन रोजगार एवं स्वरोजगार योजनाओं के माध्यम से आर्थिक विकास के साधन उपलब्ध कराना।
- जनजातीय वर्ग के बच्चों के शैक्षणिक विकास सुनिश्चित करने के उद्देश्य से आवासीय विद्यालयों की संख्या बढ़ाना।
- जनजातीय क्षेत्रों के मानव विकास सूचकांकों को गैर जनजातीय क्षेत्रों के मानव विकास सूचकांकों के समकक्ष लाना।
- विशेष पिछड़ी जनजातियों के मानव विकास सूचकांकों को गैर जनजातीय क्षेत्रों के मानव विकास सूचकांकों के समकक्ष लाना।
- विशेष पिछड़ी जनजाति के मानव विकास सूचकांक को कम से कम अन्य जनजातियों के मानव विकास सूचकांक के समकक्ष लाना।
- जनजातीय वर्ग की शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाना।[7]

प्रशासनिक संरचना

↓

मंत्रालय

↓

मंत्रालय स्तर पर विभागीय प्रशासनिक संरचना

↓

प्रमुख सचिव

↓

सचिव

↓

↓	↓
उप सचिव	उप सचिव
↓	↓
अवर सचिव	अवर सचिव

विभाग की प्रशासनिक संरचना

विभागाध्यक्ष एवं अधीनस्थ कार्यालय
आयुक्त जनजातीय कार्य विभाग
संचालक, आदिम जाति अनुसंधान एवं विकास संस्थान
संचालक, आदिम जाति, क्षेत्रीय विकास योजनाऐं
संचालक, विशेष पिछड़ी जनजाति समूह

विभाग से संबंधित जानकारी

मुख्यालय (राज्य) स्तर
आयुक्त जनजाति कार्य

- जनजाति एवं अनुसूचित जाति में पदस्थ विभागीय अमले से संबंधित समस्त प्रशासनिक नियंत्रण।

- मांग संख्या – 33, 53 एवं 64 के अंतर्गत आदिम जाति कल्याण की योजनाओं का क्रियान्वयन।
- जनजातीय कार्य विभाग द्वारा शैक्षणिक/आवासीय/रोजगार मूलक संस्थाओं की संरचना।
- अनुसूचित जनजातियों के शैक्षणिक तथा आर्थिक उत्थान हेतु योजनाओं का संचालन।

संचालक विशेष पिछड़ी जनजाति विकास

- विशेष पिछड़ी जनजातीय समूहों के विकास के निए योजना बनाना एवं उनका क्रियान्वयन तथा अनुश्रवण।
- संचालक आदिम जाति अनुसंधान एवं विकास संस्थान।
- अनुसूचित जाति तथा जनजाति से संबंधित सर्वेक्षण, अध्ययन तथा विकास कार्यक्रमों का मुल्यांकन।
- जनजाति के रीति रिवाजों एवं रहन सहन के तरीकों का अध्ययन एवं दस्तावेजीकरण।
- जनजातीय क्षेत्रों में पदस्थ विभिन्न विकास विभागों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों का प्रशिक्षण।
- जनजाति के जाति संबंधी मामलों का अध्ययन।[8]

संभाग स्तर

संभागीय कार्यालय

- भोपाल, इंदौर, उज्जैन, ग्वालियर, सागर, जबलपुर, रीवा, शहडोल, नर्मदापुरम (होंशंगाबाद) तथा चंबल (मुरैना)
- संभागीय उपयुक्तों के दायित्व।
- प्रशासनिक नियंत्रण एवं निरीक्षण तथा विभागीय योजनाओं के सफल क्रियान्वयन तथा अनुश्रवण का उत्तरदायित्व।
- सहायक आयुक्त/जिला संयोजक, विकास खण्ड शिक्षा अधिकारी के कार्यालयों तथा विशिष्ट शैक्षणिक संस्थाओं, स्कूलों, छात्रावासों एवं आश्रमों के निरीक्षण का दायित्व।
- क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र/नियोजन इकाई
- जबलपुर, रीवा एवं इंदौर संभागीय मुख्यालयों में संयोजित।

जिला स्तर

मुख्य कार्यपालन अधिकारी जिला पंचायत एवं पदेन अपर आयुक्तः–

त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था अंतर्गत आदिवासी जनसंख्या बाहुल्य जिलों में जनजातीय विकास कार्यक्रमों के संचालन हेतु मुख्य कार्यपालन अधिकारी जिला पंचायत को विभाग का पदेन अपर आयुक्त घोषित किया गया है तथा प्रशासनीय एवं वित्तीय अधिकारी भी प्रत्यायोजित किया गया है।

सहायक आयुक्त जनजातीय कार्य विभाग

मध्यप्रदेश के 26 जिलों में सहायक आयुक्त के कार्यालय तथा जबलपुर, मण्डला, डिंडौरी, छिंदवाड़ा, सिवनी, बालाघाट, सीधी, शहडोल, अनुपपुर, रतलाम, झाबुआ, धार, खण्डवा, खरगोन, बड़वानी, बुरहानपुर, होशंगाबाद, बैतूल, अलीराजपुर, सिंगरौली, श्योपुर, उमरिया, भोपाल, ग्वालियर, इंदौर तथा सागर में स्थापित है।

जिला संयोजक अनुसूचित जाति एवं जनजातीय कार्य विभागः

25 जिलों में जिला संयोजक के कार्यालय तथा नरसिंहपुर, कटनी, रीवा, सतना, दमोह, पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़, भिण्ड, मुरैना, दतिया, शिवपुरी, गुना, अशोकनगर, उज्जैन, मंदसौर, शाजापुर, देवास, नीमच, राजगढ़, विदिशा,, सिहोर, हरदा एवं आगर है।

परियोजना स्तर

परियोजना प्रशासके एकीकृत आदिवासी विकास परियोजना मध्यप्रदेश में आदिवासी उपयोजना अंतर्गत योजनाओं के निर्माण, बजट प्रबंधन पर्यवेक्षण, अनुश्रवण, तथा संबंधित विभिन्न विकास विकासों के बीच आवश्यक समन्वय स्थापित करने के लिए 26 वृहद परियोजनाएं, 05 मध्यम परियोजनाएं, 30 माड़ा पॉकेटस एवं 6 लघु अंचल अस्तित्व में है, जिसमें परियोजना प्रशासक/परियोजना अधिकारी पदस्थ हैं।

विकास खण्ड स्तर

मुख्य कार्यपालन अधिकारी (जनपद पंचायत)

राज्य के 89 जनजाति विकास खण्डों की जनपद पंयायतों में विभाग के मुख्य कार्यपालन अधिकारी जनपद पंचायत के पद स्वीकृत हैं। ये अधिकारी जनपद पंचायतों के मुख्य कार्यपालन अधिकारी के दायित्वों का निर्वहन करते हैं।

विकास खण्ड शिक्षा अधिकारी

89 जनजातीय विकास खण्डों में से 74 विकास खण्डों में जनजाति कार्य विभाग खण्ड शिक्षा अधिकारी पदस्थ हैं। विकास खण्ड शिक्षा अधिकारी अपने क्षेत्रांतर्गत संचालित विभागीय शालाओं के नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण कर कार्य सम्पन्न करते हैं।

विशेष पिछड़ी जनजाति समूह अधिकरण

भारत सरकार द्वारा मध्यप्रदेश की 03 विशेष पिछड़ी जनजातियों बैंगा, भारिया और सहरिया अधिसूचित की गई है।

विशेष पिछड़ी जनजातियों के विकास हेतु योजनाएं बनाने व क्रियान्वयन हेतु 11 अधिकरण कार्यरत है, जिनका कार्यक्षेत्र 15 जिलों में विस्तारित है।[9]

विशेष पिछड़ी जनजाति के विकास प्रयास

जनश्री बीमा योजनाः– जनश्री बीमा योजना के अंतर्गत कक्षा 9 वीं से 12 बी. तक के 804 विद्यार्थियों को विशेष छात्रवृत्ति के रूप में रूपये 5,32,200/– की राशि भुगतान की गई है। जनश्री बीमा योजना के अंतर्गत परिवारों के कमाने वाले व्यक्ति की दुर्घटना मृत्यु होने पर रूपये 75,000/– की राशि तथा सामान्य मृत्यु होने पर रू. 30,000/– की राशि दी जाती है। दुर्घटना में स्थायी रूप से अपंग होने पर रू. 75,000/– तथा अस्थायी रूप से अपंगता पर रू. 37,000/– की राशि दी जाती है। विशेष पिछड़ी जनजाति के बीमित परिवार के कक्षा 9 वीं से 12 वीं तक के पुत्र एवं पुत्रियों को रू. 100/– प्रतिमाह की छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है।

संरक्षण सह विकास योजना 2007–08 से प्रारंभ किए गए

केयरनेशन कम डेवलपमेंट में प्रारंभ की गई योजनाएंः

1. **स्थानीय बोली में पढ़ाने हेतु एक अतिरिक्त संविदा शिक्षकः(वर्ग–3 पी.टी.जी.)**

   उसी समुदाय तथा उन्हीं भाषा में शिक्षा देने हेतु वही ग्राम पंचायत को नियुक्त किया जाएगा। भारिया के लिए 9 पद स्वीकृत किया गया है तथा महिलाओं के चयन में प्राथमिकता दी गई है। जैस के अनुसार 12 वी. उत्तीर्ण नहीं मिलने पर योग्यता शिथिल कर10 वीं उत्तीर्ण लिया जाना है।

2. **अतिरिक्त आंगनबाड़ी शिक्षिका/नर्सरी शिक्षिका (पी.टी.जी.)**

   भारिया के लिए 09 पर स्वीकृत है। आंगनबाड़ी में 3 से 6 वर्ष तक के बालक/बालिकाओं को उन्हीं की बोली में शाला में 10 वीं उत्तीर्ण महिलाएं नहीं मिले तो 8वीं पास की योग्यता शिथिल कर दी गई है तथा नियुक्ति के पहले प्रशिक्षण दिया जाता है। उन्हें 1000/– प्रतिमाह की दर से वेतन दिया जाता है।

3. **विशेष पिछड़ी जनजातीय क्षेत्र में संचालित छात्रावासों में कोचिंग**

   छात्रावास में कोचिंग विषय हैः– गणित, विज्ञान, अंग्रेजी जैसे विषय की सुविधा है। प्रत्येक छात्रावास में भारिया छात्र के लिए 1 पद तय किया गया है। इस पद हेतु रू. 2000/– प्रतिमाह का मानदेय प्रत्येक छात्रावास को दिया जाता है।

4. **कराहल विकासखण्ड में शक्तिमान योजना**

   आंगनबाड़ी में कुपोषित बालक–बालिकाओं के लिए 4 रू. प्रतिदिन के मान से अतिरिक्त पोषण आहार हेतु व्यवस्था है।

5. **विशेष पिछड़ी जनजाति हेतु सामुदायिक रेडियो केन्द्र की स्थापना**

   सामुदायिक रेडियो केन्द्र की स्थापना हेतु वन्य प्रशासन 30 किलोमीटर के क्षेत्र में भारिया परिवारों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य एवं मनोंरंजन संबंधी कार्यक्रमों का प्रसारण हेतु भारिया विकास अभिकरण के लिए विकास खण्ड तामिया में सामुदायिक रेडियो केन्द्र की स्थापना की जाएगी। जिसके अनुसार कार्यक्रमों तथा रेडियो के लाइसेंस हेतु आवेदन कर दिया गया है।[10]

विशेष पिछड़े जनजाति से सम्बन्धी योजनाएं

1 जनश्री बीमा योजना।

2 विद्यार्थी कल्याण ।

3 कन्या साक्षरता प्रोत्साहन ।

4 अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं को निःशुल्क सायकिल प्रदान योजना ।

5 उत्कृष्ट छात्रावास योजना।

6 आवासीय विद्यालय ।

7 प्रतिष्ठित पब्लिक स्कूल में एवं सैनिक स्कूल में प्रवेश योजना ।

8 विदेश में अध्ययन हेतू छात्रवृति योजना ।

9 अनुसूचित जनजाति के अभ्यार्थियों को सिविल सेवा परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करने के लिऐ प्रोत्साहन राशि दिया जाना

10 विभागीय छात्रावास में रोजगारोंन्मुखी कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना ।

11 परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण केन्द्र ।

12 अनुसूचित जाति जनजाति राहत योजना नियम 1979।

13 विधि स्नातकों को आर्थिक सहायता।

14 अस्पृश्यता निवारण के लिए अंतर्जातीय विवाह प्रोत्साहन पुरस्कार ।

15 लघु एवं वित्त व्यवस्था (माइक्रो क्रेड़िट) ।

16 राष्ट्रीय विकलांग वित्त एवं विकास निगम फरीदाबाद द्वारा संचालित योजनाऍ ।

17 प्रतिष्ठा पुनर्वास योजना ।

18 स्वरोजगार योजना ।

19 मध्यप्रदेश राज्य सहकारी अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम द्वारा संचालित योजनाऍ।

21 राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी वित्त एवं विकास निगम नई दिल्ली द्वारा संचालित योजनाएं।[11]

राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी वित्त एवं विकास निगम नई दिल्ली द्वारा संचालित योजनाएं।

1. बालिका शिक्षा प्रोत्साहन
2. ''स्कूल चले हम अभियान''
3. मध्यान्ह भोजन योजना
4. कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय
5. मुख्यमंत्री बाल ह्रदय योजना
6. निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा योजना आरटीई
7. बालिका शिक्षा प्रोत्साहन
8. गांव की बेटी योजना
9. मुख्यमंत्री कन्यादान योजना
10. लाड़ली लक्ष्मी योजना
11. पितृहीन कन्याओं को छात्रवृति
12. प्रतिभा किरण योजना
13. मध्यप्रदेश सरकार की उच्च शिक्षा एकीकृत छात्रवृति

विक्रमादित्य निःशुल्क शिक्षा योजना (गरीबी रेखा से नीचे) –

1 राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन

2 राज्य स्तरीय योजनाएं

3 नगरीय समाज की स्वास्थ्य समस्याएं

4 राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम

5 पलायन और एच. आई.वी/एड़स की संभावनाएं

6 केन्द्र सरकार स्वास्थ्य योजना सीजीएचएस

7 मिशन इंद्रधनुष

8 प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना

9 गंभीर बीमारी पॉलिसी

10 राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजनाएं

11 जननी सुरक्षा योजना

12 जननी शिशु सुरक्षा कार्यक्रम[12]

प्रधानमंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान

1. राजीव गांधी जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन मिशन ।
2. सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम ।
3. एकीकृत पड़त भूमि विकास कार्यक्रम ।
4. सुनिश्चित रोजगार आश्वासन योजना ।
5. स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना ।
6. सम्पर्ण ग्रामीण रोजगार योजना ।
7. इंदिरा गांधी गरीबी हटाओ योजना ।
8. प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना ।
9. ग्रामीण आवास एवं बसाहट विकास की अभिनव धारा ।
10. प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना ।[13]

मध्यप्रदेश शासन द्वारा कार्य आबंटन नियम में जनजाति कल्याण विभाग को निम्नानुसार दायित्व सौंपे गए हैं:–

- जनजातीय क्षेखें में समाज सेवाओं का समन्वय।
- एकीकृत जनजाति विकास कार्यक्रम तथा जनजाति परियोजनाएं।
- जनजाति उप आयोजना का अवधरण तथा अनुमान।
- जनजाति विकास योजना एवं अनुसंधान।
- जनजातियों के समग्र विकास हेतु योजनाएं, नीति निर्धारण एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन।
- ऐसे सेवाओं से सम्बद्ध सभी विषय जिनका विभाग से संबंध हो (वित्त और सामान्य विभा को आबंटित किए गए विषयों को छोड़कर) उदाहरणार्थ पदस्थापना, स्थानांतरण, वेतन, छुट्टी, सेवानिवृत्ति वेतन, पदोन्नतियां, भविष्यनिधि, प्रतिनियुक्तियां, दण्ड तथा अभ्यावेदन।
- संविधान की पांचवीं अनुसूची के अधिकारों और जनजातीय क्षेत्र के हितों के संरक्षण व संवर्धन के लिए प्रहरी के रूप में कार्य करना। अनूसूचित क्षेत्र – जनजाति मंत्रणा परिषद।
- जनजाति बाहुल्य क्षेत्रों के विकस हेतु प्राथमिकताओं का निर्धारण कराने हेतु आदिवासी उपयोजना कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु विभिन्न विकास विभागों को बजट उपलब्ध कराने हेतु नोडल एजेंन्सी के रूप में कार्य करना एवं अनुश्रवण करना।
- जनजाति के शैक्षणिक, सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान हेतु विभिन्न कार्यक्रमों का क्रियान्वयन।
- संदेहात्मक जनजाति प्रमाण पत्र की जांच करना।
- विशेष पिछड़ी जनजाति समूह के विकास हेतु नीति निर्धारण एवं योजनाओं का क्रियान्वयन।
- विशेष केन्द्रीय सहायता से संचालित योजनाओं का नियोजन एवं अनुश्रवण।
- संविधान के अनुच्छेद 275 (1) के अंतर्गत प्राप्त केन्द्रीय सहायता अंतर्गत योजनाओं की स्वीकृति एवं अनुश्रवण।
- जनजातियों की सामाजिक सुरक्षा एवं शोषण से बचाव।
- आदिवासी उपयोजना की राशि के संबंध में नोडल विभाग के रूप में अन्य विकास विभागों से समन्वय।
- आदिवासी उपयोजना क्षे में विभिन्न विभागों के द्वितीय एवं तृतीय क्षेणी कार्यपालिक अधिकारी का प्रशिक्षण।
- जनजातियों का हित संरक्षण।[14]

6.2 स्वयं सेवी संस्थाओं के योगदान

भारत में स्वयं सहायता समूह की उत्पत्ति

अनौपचारिक ऋण प्रणाली के लचीलेपन, सुग्रहिता, अनुक्रियाशीलता जैसे गुणों को औपचारिक ऋण संस्थाओं की तकनीकी क्षमताओं और वित्तीय संसाधनों के साथ संयोजित करने और ऋण वितरण प्रणाली में सकारात्मक नवीनताएं लाने की दृष्टि से राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) ने फरवरी 1992 में स्वयं सहायता समूहों को वाणिज्य बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को भी शामिल कर लिया था। यह जुड़ाव इस विचार से भी था कि औपचारिक और अनौपचारिक ऋण प्रणाली के अच्छे गुणों को समायोजित कर सकें।[15]

स्वयंसेवी संस्थाओं के योगदान– स्वयंसेवी संस्थाओं ने अक्सर आपदाग्रस्त क्षेत्रों में लोगों को मदद पहूंचाने में अभूतपूर्व भूमिका अदा की है। बहुत सी ऐसी संस्थाओं ने जरूरत के समय लोगों के साथ खड़े रहकर अपने सामाजिक दायित्व का प्रशंसनीय निर्वाह किया है। सवयंसेवी संस्थाओं की पृष्ठभूमि अलग अलग रही है। इनमें से बहुत सी संस्थाएं गांधी विचारधारा से प्रभावित होकर रचना और संघर्ष दोनों ही क्षेत्रों में काम कर रहें है। स्वयंसेवी संस्थाओं का जो मौजूदा जानकारी अब उभरकर सामने आ रहा है वही आर्थिक विकास और सेवा क्षेत्र की दिशा में काम कर रहा है।[15] संघर्ष का माध्यम अब धीरे–धीरे गौण होता जा रहा है। ऐसी स्वयंसेवी संस्थाएं देश के अन्दर से या विदेशों से भी संसाधनों की व्यवस्था करके विकास कार्यक्रम चलते हैं।

स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका

ग्रामीणों को उत्प्रेरित और संगठित करके स्वयं सहायता समूह में लाना।

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक द्वितीय संशोधित एवं परिवर्तित संस्करण अप्रेल– 2014

1. बचत की भावना को प्रोत्साहित करते हुए

संस्थागत और व्यक्ति विकास की ओर ले जाना।

2. समूह के सदस्यों को खाता–बही के रख–रखाव, बैठक संचालन और कोष प्रबंधन पर शिक्षण प्रशिक्षण का आयोजन करना।
3. आवश्यक पूंजी की सहायता देते हर समूह के प्रारंभिक स्तर की संसाधन उपलब्धता को प्रगति प्रदान करना।
4. बैंक के तहत सहबद्ध एनजीओ एक फेसिलिटेटर के रूप में कार्य करें।
5. संसाधन का अधिकतम उपयोग करते हुए समूह सदस्यों को तकनीकी और बौद्धिक क्षमता का विकास करें।
6. समूह एक मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक के रूप में कार्य करें।[16]

उपरोक्त बिन्दुओं पर गौर करने पर पाते हैं कि प्रमुख स्वयंसेवी संस्थाओं ने अपने कार्यों के द्वारा सरकारी नीति को प्रभावित किया है और विकास के आयामों को जमीनी स्तर पर बड़ा करने का प्रयास किया है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि समस्या की व्यापकता को देखते हुए सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं की कंधे से कंधा मिलाकर चलना होगा, परन्तु प्रश्न यह है कि अच्छी तरह से पनपी इन स्वयंसेवी और सरकारी संस्थाओं के नेटवर्क को क्या कार्यान्वयन के स्तर पर आज तक व्यावहारिक स्वरूप दिया जा सका है ? उद्यम संबंधी आवश्यक कौशल प्रशिक्षण प्रदान करने की जरूरत को ध्यान में रखते हुए 31 मार्च 2018 की स्थिति के अनुसार रू. 121.42 करोड़ की अनुदान सहायता के साथ नाबार्ड ने 32520 ग्रामीण उद्यमिता विकास कार्यक्रमों/कौशल विकास कार्यक्रमों के माध्यम से 8.37 लाख से अधिक बेरोजगार ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण सहायता प्रदान की गई है।[17]

सरकार प्रायोजित योजनाएं

भारत सरकार कुल परियोजना लागत के एक हिस्से के लिए सब्सिडी देकर चुनिंदा क्षेत्रों में परियोजनाओं को शुरू करने के लिए किसानों को प्रात्साहित करती है। इन सभ्झी परियोजनाओं का उद्देश्य पूंजी निवेश, निरंतर आप प्रवाह और राष्ट्रीय महत्व के क्षेत्रों में रोजगार के लिए सरकार का चैनल भागीदारी होने का गर्व है। कृषि और ग्रामीण विकास के क्षेत्र में शीर्ष विकास बैंक होने के कारण नाबार्ड का ध्यान देश के ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास करना है।[18]

महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त करने उन्हें आत्मनिर्भर तथा स्वावलम्बी बनाने के उद्देश्य से 31 अक्टूबर 1988 को मध्यप्रदेश महिला आर्थिक विकास निगम की स्थापना के अंतर्गत की गई है। स्वयं सेवी संथा के द्धारा महिला सशक्तिकरण कार्यक्रम का उद्देश्य गरीब महिलाओं को अपनी बेहतरी के लिए विभिन्न आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अवसरों का भरपूर उपयोग करने के लिए सशक्त करना है। यह कार्यक्रम मध्यप्रदेश सरकार की महिला नीति तथा स्वसहायता समूहों के माध्यमों से सशक्तिकरण के अनुभवों पर आधारित है। यह कार्यक्रम प्रदेश में अंतर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष के सहयोग से क्रियान्वित किया जा रहा है। जिसक माध्यम से इन समूहों को छोट छोटे वित्तीय सुविधाओं से जोड़ना है।, समूहों को सामाजिक न्याय और विकास की गतिविधियों के लिए सशक्त करना जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, कड़ी मजदूरी की कमी, पंचायत में पूर्ण भागीदारी, महिलाओं की विरूद्ध हिंसा व अपराध की समाप्ति।[19]

चित्र संख्या 1.स्व. सहायता समूह का साक्षात्कार लेते हुए शोधार्थी

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *द्ववेदी, परेश, जनजातिय क्षेत्र और नियोजित विकास, पृष्ठ, 87*
2. *उपरोक्त पृष्ठ 88*
3. *उपरोक्त*
4. *वैद्य, नरेश, प्रधान, अशोक, सामाजिक मानव शास्त्र छत्तीसगढ़, पृष्ठ 1*
5. *कार्यालय, परियोजना प्रशासक/सचिव भारिया विकास अभिकरण तामिया जिला–छिदवाड़ा।*
6. *उपरोक्त*

7. www.mp.gov.in 20-10-2016
8. Government-of-mp-india MP.Gov.in 25.10.2016
9. उपरोक्त
10. www.god.mp.gov.in 25.10.2016
11. Hindi.indiawaterportal.org 14.09.2012
12. https://www.nabard.org> hindi> content
13. उपरोक्त
14. https://www.jagran.com>mahar, 10.03.2017
15. उपरोक्त
16. उपरोक्त
17. उपरोक्त
18. स्थल अवलोकन, ग्राम घटलिंगा, दिनॉक 27.05.017

आयु रहित समाज का दर्शन

डॉ. दिनेश गुप्ता
सहायक आचार्य, राजकीय महारानी सुदर्शन कन्या महाविद्यालय, बीकानेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सारः वर्तमान भारतीय समाज में आयुरहित समाज की समस्याओं सामने आ रहीं है ग्लोबल ऐज वाच इन्डेक्स जो कि 96 देशों के आधार पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है भारत को 71 वें स्थान पर रखता है भारत जैसे सामाजिक आधार वाले देश में इस तरह का अध्ययन समाजशास्त्रीयों में गंभीर चिन्तन एवं मनन का विषय है। आयु रहित समाज की समस्याओं को समझने के लिए आर्थिक प्रयासो की आवश्यकता नहीं है अपितु सामाजिक सास्कृतिक कारकों के माध्यम से ही इसे दूर किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र आयु रहित समाज की अवधारणा के दर्शन की विवेचना का परिणाम है।

संकेताक्षर : *आयुरहित समाज, ग्लोबल ऐज वॉच इन्डेक्स, आश्रम व्यवस्था, सयुक्त परिवार व्यवस्था, उत्तर औपनिवशवाद आदि।*

समाज में सामाजिक ईकाई, व्यक्ति की अपनी जैवीकीय यात्रा उद्विकासीय प्रक्रिया से होकर गुजरती है तथा यह उद्विकासीय प्रक्रिया प्राकृतिक नियमों के अधीन ही कार्य करती है। जिसकी एक अवस्था लगभग सामाजिक ईकाई के 60 वर्ष की आयुसीमा पूर्ण करने के पश्चात आती है जिसे भारतीय समाज के अन्तर्गत तो नहीं लेकिन पश्चिमी समाजों के अन्तर्गत आयु रहित समाज की अवधारणा से सम्बोधित किया गया है। इसे आयु रहित समाज की संज्ञा इसलिए दी जाती है क्योंकि इसमें सामाजिक ईकाई के जीवन जीने के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की निश्चितता नहीं रहती है अर्थात आयु के सम्बन्ध में अनिश्चितता रहती है। भारतीय समाज के वर्तमान परिदृश्य में आयु रहित समाज की अवधारणा पर शोध किये जाने की आवश्यकता समाजशास्त्र विषय के लिए महत्त्वपूर्ण है। ग्लोबल ऐज वांच इन्डेक्स, का प्रतिवेदन आयु रहित समाजो के सम्बन्ध में जिसमें 96 देशों के अध्ययन के आधार पर भारत को 71 वे स्थान पर रखा गया है जिसका आशय भारत में आयु रहित समाज का जीवन संकट की स्थिति में माना गया है।

भारतीय समाज का सामाजिक प्रारूप जिसका अपना एक ऐतिहासिक पक्ष और वैश्वीक उपयोगिता रही है। भारतीय समाज के संगठन में अद्वितीय सामाजिक संस्थाऐं रही है जिसमें जाति, संयुक्त परिवार प्रणाली, वर्ण, आश्रम आदि सामाजिक संस्थाऐं एवं मूलतत्त्व सम्मिलित है। पी.एन.प्रभू के अनुसार "आश्रम और वर्ण की दोनों व्यवस्थाएं,जिनका सम्बन्ध संक्षेप में क्रमशः मानव के विकास और उसकी मूल प्रकृति से है, हिन्दू सामाजिक संगठन की सिद्धान्त रचना की मूलभूत इकाइयां है और इस स्थल पर यह बात उल्लेखनीय है कि आश्रमों की व्यवस्था के जिस स्वरूप का विचार और आविश्कार हिन्दू के द्वारा किया गया है, वह विश्व भर के सामाजिक चिन्तन के सम्पूर्ण इतिहास में अद्वितीय है''1। आश्रम व्यवस्था के सन्दर्भ में आयु रहित समाज की संकल्पना के साथ तुलना करने से ही हम अधिक गहराई से समझ सकेगें।

आज का समाज एक आहत समाज है जिसमें आनन्द के तत्त्व किसी भी सामाजिक ईकाई से दूर नहीं अपितु बहुत दूर हो गये है। प्रस्तुत शोध पत्र में 120 उन सामाजिक इकाइयों का अध्ययन किया गया है जिनका जीवन 60 वर्ष पूर्ण कर चुका है। यह सभी इकाइयां आयुरहित समाज के दर्शन को समझने का प्रयास हैं

भारतीय समाज व्यवस्था के प्राचीन स्वरूप में आयु रहित समाज की संकल्पना को सन्यास आश्रम के माध्यम से

नकारा गया था। "वर्णाश्रम व्यवस्था का जीवन दर्शन मानव अस्तित्व और उसके प्रयोजन के विषय में अनेक तरह की कल्पनाएं हिन्दुओं ने की है और उक्त समस्या के समाधान के निमित्त एक आधार खोजने की दिशा में उसने कैसे–कैसे प्रयत्न किये है''2।

पश्चिमी देशो के प्रभाव (पश्चिमीकरण) ने भारतीय समाज के परम्परागत स्वरूप को परिवर्तित किया है तथा यह परिवर्तन विकास के नाम से उचित माना गया है, इस उचित परिवर्तन के परिणाम भारत में लोकतन्त्र की स्थापना भी रहीं जिसे चिन्तन केवल औपनिवेशिक शासन का परिवर्तित स्वरूप मानकर उत्तर औपनिवेशिक भारत कहते है स्वतन्त्रत भारत जिसे उत्तर औपनिवेशिक भारत भी कहा गया, के सकारात्मक परिणाम आज भी भारत में देखने को नहीं मिले है औधोगिक विकास, स्वास्थ सेवाओं का विकास, शिक्षा का विकास, न्यायपालिका और राजनीतिक स्वरूप सभी ने भारतीय समाज के परम्परागत स्वरूप को नकारा है जिसका परिणाम यह हुआ कि आज भारत में सभी क्षैत्रों में अराजकता की स्थिति बनी हुई है तथा सभी एक दैवीय चमत्कार की बात करते है भारतीय जाति व्यवस्था के खिलाफ है लेकिन इसके विकल्प को लेकर चुप है, ऐसा ही संयुक्त परिवार प्रणाली के स्वरूप के साथ होता है। पश्चिमी वर्ग व्यवस्था को स्वीकार करते है लेकिन वर्ग व्यवस्था का दर्शन जाति व्यवस्था के दर्शन की तुलना में कमजोर है इसे स्वीकार किये जाने की आवश्यकता किसी को महसूस नहीं होती है। वहीं एकल परिवार व्यवस्था का स्वरूप, सयुक्त परिवार व्यवस्था से कमजोर है,इस दर्शन को समझना कोई नहीं चाहता क्योंकि विकास की अवधारणा को समझे बिना विकास को अपना लिया गया है। वैश्वीकरण जिसे सहीं अर्थो में समझा जाएं तो इसके लिए उत्तर उपनिवेशवाद शब्द को समानार्थक के साथ लिखे जाने की आवश्यकता होती है क्योकि "वैश्वीकरण का एक अप्रत्याशित परिणाम गरीबों की उपेक्षा के रूप में सामने आया है''3। अर्थात औपनिवेशिक शासन व्यवस्था, आर्थिक शोषण के तत्त्वों को अपने में समाहित रखता है।

इन सभी तथ्यों पर विचार करने की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि आज सम्पूर्ण विश्व के सामने आयु रहित समाज की चुनौतियां है पश्चिमी देशों में तो इस आयु रहित समाज की बढती संख्या ने आर्थिक विकास को ही कमजोर किया है देशों के अधिकतर संसाधन इनके जीवन के लिए ही काम पर लिये जाते है और इस आयु रहित समाज का योगदान भी आर्थिक विकास में नहीं होता है साथ ही सामाजिक समस्याओं का एक स्तर इनका अपना भी है जिसे सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा के आधार पर विश्लेशित किया जाता है। आयु रहित समाज के कारण पश्चिमी देशों को विकासशील देशों के नागरिकों के लिए अपने दरवाजे खोलने न चाहते हुए भी पड़ रहे है क्योंकि विकासशील देशों के नागरिक विकसित देशों में जाकर विकसित लोग के लिए काम जरूर करें लेकिन विकसित देशों के संसाधनों का उपयोग भी करता है, संसाधनों का यह उपयोग दूसरे देश के नागरिक करें तो निश्चित ही मूल नागरिकों के लिए दूर हो जाते है।

पश्चिमी राष्ट्रों ने सम्पूर्ण विश्व को विकास के नाम पर समस्याएं ही दी है। आयु रहित समाज की संकल्पना के जन्मदाता भी यही है। आयु रहित समाज की समस्याओं के सन्दर्भ में

1. भरण पोषण की समस्याएं
2. अधिक समय (अकेलापन दूर करना) की आवश्यकता
3. स्वास्थ्य सम्बधित समस्याएं
4. मानसिक समस्याएं

आयु रहित समाजो के इन 120 सामाजिक ईकाईयों से जब चर्चा की गई तो इन सभी दर्शन आधारित तथ्यों को रखकर ही की गई कि विकास क्या है? जाति क्या है?, संयुक्त परिणाम प्रणाली एवं एकल परिवार प्रणाली में किसकी उपादेयता आपके लिए है, आश्रम व्यवस्था को आप किस नजरिये से देखते है, भारत का लोकतान्त्रिक स्वरूप से आपको क्या आशा है इत्यादि... सभी का मूल भाव विकास के इन प्रारूपों को किसी भी स्तर पर स्वीकार करने का नहीं था सभी ने इन प्रारूपों को अपनी इस दयनीय हालत के जिम्मेदार माना था। विकास के प्रतिमान की अवधारणा को केवल आर्थिक विकास के साथ जोड़कर देखने को सहीं नहीं माना विकास की अवधारणा को आनन्द के साथ जोड़कर देखने की बात स्वीकार करते है। आर्थिक विकास का कोई पैमाना नहीं है। जाति व्यवस्था के शोषणकारी स्वरूप की राजनीतिक व्याख्या को भी सहीं पैमानों से समझा जाना चाहिए क्योंकि जाति व्यवस्था का लाभ व्यवसाय की गोपनीयता और उसमे गुणात्मक वृद्धि के साथ भी रहा है जो वास्तव में समाज के लिए हितकारी

है तथा आयु रहित समाज की सुरक्षा की संकल्पना में भी समाहित होता है, नयी पीढ़ी के लिए रोजगार का परम्परागत आधार भी है जिसमें उस्ताद उसके परिवार का ही मुखिया है अतः संरक्षण का भाव भी उसमें समाहित है।

"आज बुजूर्गो की स्थिति दिन प्रतिदिन दयनीय होती जा रही है लेकिन इसके लिए जिम्मेदार कौन है ? देखा जाए तो इसमें दोश हमारा कतई नहीं है बल्कि पश्चिमी संस्कृति का है, जिसका अंधानुसरण करने की होड़ मे हम लगें है''4।

के कथन की वास्तविकता के सम्बन्ध में जब इन 120 सामाजिक इकाईयों से मत चाहा गया तो सबने इस तथ्य को पूर्ण रूप से स्वीकार किया कि भारतीय समाज के सामाजिक प्रतिमान बुजुर्गो के प्रति दयनीय नहीं है आज दयनीय है तो इसके पीछे पश्चिमी संस्कृति अर्थात व्यक्तिवादीता एवं भौतिकतावाद के प्रतिमान ही है।

इस तथ्य की पुष्टि अलवर जिले के भिवाड़ी कस्बे में बने रंगोली सोसायटी से भी होती है उक्त सोसायटी में वे बुजुर्ग दम्पति रह रहे है जिनकी सन्ताने विदेशों में विशेशकर पश्चिमी देशों में रोजगार के कारण गई है तमाम सुविधाएं रंगोली सोसायटी में उनके द्वारा उपलब्ध करवा दी गई है फिर भी सोसायटी में रहने वाले बुजुर्ग नीरसता की जिन्दगी को स्वीकार करते है। अतः पश्चिमी संस्कृति के प्रतिमान भारतीय समाज में आने से आयुरहित समाज की अवधारणा भी आ गई है।

द्वितीय तथ्य इस तथ्य से परिचित होना था कि संयुक्त परिवार प्रणाली एवं एकल परिवार प्रणाली में आयु रहित समाज के अनुसार उपर्युक्त है "एकल परिवार के बढ़ते चलन के कारण ही परिवारों में बुजुर्गो की उपेक्षा होने लगी है, न चाहते हुए भी बुजुर्ग अकेले रहने को मजबूर है जिसका एक परिणाम यह भी देखने को मिला है बुजुर्गो के प्रति अपराध भी तेजी से बढ़े है''5।

सभी बुजुर्गो ने इस तथ्य को भी स्वीकार किया कि संयुक्त परिवार प्रणाली की उपेक्षा पूर्ण रूप से हमारी उपेक्षा है हमारे दयनीय हालत के लिए एकल परिवार प्रणाली की भूमिका भी है एकल परिवार प्रणाली उपयोगितावाद पर आधारित है उपयोगितावाद केवल उपयोग को स्वीकार करता है जो उपयोगी नहीं है,को अस्वीकार कर देता है, एकल परिवार प्रणाली मे हमारा कोई उपयोग नहीं है एकल परिवार प्रणाली के समाज ने हमें समाज से अलग कर दिया है। जो समय हमें मिलना चाहिए उसे समय का उपयोग एकल परिवार प्रणाली अपने हित मे व्यतीत कर रहीं है।

पश्चिमी संस्कृति एवं एकल परिवार प्रणाली के बाद आयु रहित समाज की समस्याओं के सन्दर्भ में आश्रम व्यवस्था की बात करना बहुत जरूरी हो जाता है यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें आयु रहित समाज की संकल्पना को ही अस्वीकार किया गया है जीवन को समाज को समर्पित करने के पश्चात जीवन को अपने लिए संरक्षित रखने के लिए हिन्दू समाज व्यवस्था में इस संकल्पना को जन्म दिया गया प्रतीत होता है विगत कई शताब्दियों में इस व्यवस्था के तहत सामाजिक जीवन किसी ने भी नहीं अपनाया परन्तु इसके दर्शन में आयुरहित समाज की समस्याओं को उत्पन्न हीं नहीं होने देने का दर्शन छिपा है सभी से जब इस सम्बन्ध में जानकारी चाही गई तो लगभग सब ने स्वीकार किया कि कब युवावस्था से इस अवस्थ में आ गये पता ही नहीं चला यदि जीवन इस व्यवस्था के तहत व्यतीत होता तो आज केवल भाारारिक समस्या होती मानसिक नहीं होती, अतः जीवन दर्शन की आश्रम अवधारणा व्यक्ति को मानसिक रूप से सशक्त करती हैं मन के जीते जीत है और मन के हारे हार,। अतः आश्रम व्यवस्था की उपयोगिता आयुरहित अवस्था में आकर महसूस होती है। प्रस्तुत आयुरहित समाज के दर्शन की विवेचना के माध्यम से सार यहीं निकल कर आता है कि जीवन के दर्शन का संयमित और भविश्य को ध्यान में रखकर जीने से ही आने वाली व्यक्तिगत सामाजिक समस्याओं (वृद्धावस्था से सम्बधित) का निदान हो सकता है। भरतण पोषण की समस्या के अन्तर्गत सभी बुजुर्गो न स्वीकार किया गया है सरकार द्वारा संचालित पेंशन योजना की आवश्यकता अधिक नहीं है क्योंकि इसकी राशि एक तो कम है दूसरा अपनी सन्तान ही इस पेंशन के कारण हमसे दूरी बना लेती है। माता पिता और वरिष्ठ नागरिक भरण पोषण अधिनियम 2007 की उपयोगिता ज्यादा नहीं है हम अपनी ही संतानों को दण्डित नहीं करवा सकते है साथ ही हमें आर्थिक सहायता की अपेक्षा सामाजिक सहयोग चाहिए।

अकेलेपन को वास्तविक समस्या बुजुर्गो ने माना है सभी एक मत के साथ यह कहते है कि युवा पीढ़ी ने हमें अकेला छोड़ दिया है जबकि हमें उनके साथ रहना

है उनके साथ जीवन व्यतीत करना है वद्धाश्रम का विकल्प बिलकुल बेईमानी है राज्य सरकारो का चाहिए की कार्यालयों में तनवा व निजी क्षैत्र में कार्य की अवधि को कम करे यथा सम्भव कार्य को पेपर लेस वर्क टू होम के माध्यम से करवाया जाये। इसी सन्दर्भ में विद्यालयों का समय भी सीमित करवाया जाना चाहिए जिससे हम बच्चों के साथ अपना अकेलापन दूर कर सके।

स्वास्थ्य सम्बधित समस्याओं के सम्बन्ध में इन सभी ने माना है कि यह तो समय के साथ सभी के साथ आयेगीं उचित खान–पान एवं जीवनशैली के प्रतिमानों को परिवर्तित कर इससे काफी हद तक कम किया जा सकता है, सरकारों को बाजार पर नियंत्रण रखने की आवश्यकता है जिससे सहीं उत्पाद ही नागरिकों को प्राप्त हो सके। मानसिक समस्याओं को बुजुर्गो द्वारा यह कहते हुए स्वीकार कर दिया गया है जब भरण पोषण, अकेलेनन एवं स्वास्थ्य सम्बधित समस्याओं का उचित निदान हो जाऐगा तो मानसिक समस्याओ का स्तर भी काफी सीमा तक कम हो जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *पीएन प्रभुः ''हिन्दू सामाजिक की व्यवस्था'' जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्युटर्स, नई दिल्ली ,1971.पेज न.86*
2. *वही– पेज न.87.*
3. *सुमित कुलकर्णी, ''वृद्धजनो का सहारा'' योजना जुलाई पेजन.10, (2017).*
4. *देवेन्द्रराज सुथारः ''परिवार की नींव होते है बुजुर्ग'' सम्पादकीय पंजाब केसरी , 01 अक्टूबर 2021.*
5. *योगेश कुमार गोयल.: ''बुजुर्ग आबादी का गहराता संकट'' संपादकीय जनसत्ता , 01 अक्टूबर 2021.*

मुगल राजनीति का हस्तक पुष्टिमार्ग

डॉ. सहदेवसिंह चौहान
शोध अधिकारी, श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ (मध्य प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भाषा एवं धार्मिक राजनीति के क्षेत्र में 16 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जो परिवर्तन हो रहे थे, उनमें पुष्टिमार्ग का इतिहास बड़ा उल्लेखनीय है। भाषा के क्षेत्र में सर्वप्रथम वल्लभाचार्यजी ने नाम परिवर्तन प्रारम्भ किया। वे हिन्दी में उपदेश देते थे और उस भाषा को ग्वालियरी न कहकर पुरुषोत्तम भाषा कहा गया। क्योंकि उनके समय में ग्वालियर दिल्ली शासकों का प्रबल विरोधी था, लोदियों का भी और फिर मुगलों का भी। वे नहीं चाहते थे कि उन्हें दिल्ली का कोपभाजन बनना पड़े। दूसरा मुगलों का पुष्टिमार्ग के आचार्यों के प्रति उनके धार्मिक सिद्धांतों के कारण आकर्षण नहीं था, बल्कि गुसाईंजी की सभा का संगीत और आमोद पूर्ण वातावरण था। साथ ही इसका एक राजनीतिक कारण भी था, अकबर को हिन्दुओं की स्वातन्त्रय भावना तथा इसी कारण श्री राम की भक्ति से सदा भय रहता था। पुष्टिमार्ग में श्री कृष्ण का जो रूप अपनाया गया वह था उनका रसिक शिरोमणि का। ऐसे अनेकानेक प्रश्नात्मक विवरणों के साथ वल्लभाचार्य के समय का भक्ति मार्ग सम्प्रदाय विट्ठलनाथजी के समय तक कैसे मुगल राजनीति का हस्तक बन गया था।

संकेताक्षर : *मुगल, पुष्टिमार्ग, हस्तक, कृष्ण, राजनीति, भारत।*

मुसलमान भारत में आये, उनकी सैनिक विजय भी हुई, परन्तु मुगलों के पूर्व वे कभी स्थायी रूप से जम नहीं सके। देश के किसी न किसी कोने में अवसर पाते ही हिन्दुओं का विद्रोह भड़क उठता और नये राज्य स्थापित हो जाते थे। मुसलमानों ने अपने आप को मुगलों के पूर्व सदा विदेशी अनुभव किया। राणा संग्रामसिंह ने राजनैतिक अदूरदर्शिता के कारण शक्तिमान बाबर को अपने से निर्बल शत्रु इब्राहीम लोदी के विरुद्ध इस कारण निमंत्रण दिया था,[1] कि लोहे से लोहा काट दिया जाए। उनका अनुमान था कि मुगल इन अफगानों को परास्त कर लौट जायंगे और भारत में फिर हिन्दू राज्य के संस्थापन का अवसर मिल सकेगा। राणा ने सोची तो दूर की थी, पर होनी कुछ और ही करने वाली थी।

हुमायूं को शाह तहमास्प (ईरान का बादशाह) ने राजपूतों से निकट संबंध स्थापित करने का उपदेश दिया[2] और उसका पूर्ण पालन करने का अवसर मिला अकबर को। मुगलों के पहले सूफी संत हिन्दुओं से जन सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करते रहे थे, परन्तु वह प्रयास अधिक सफल न हो सका। अकबर ने यह नीति बहुत कुछ बदल दी। उसने जहां कुछ युद्धों से थके हुए एवं सुलभ वैभव प्रिय राजपूत राजाओं से विवाह सम्बंध स्थापित किये, वहां उसने वल्लभ सम्प्रदाय का उपयोग भी हिन्दुओं के मुगल साम्राज्य के विरोध को कम करने के लिए किया। अकबर अच्छी तरह समझ गया था कि गोकुल के इन मोहन मंत्र दाताओं द्वारा हिन्दुओं के प्रतिरोध की शक्ति का ह्रास अवश्यंभावी है। उसकी नीति धार्मिक उदारता पर आधारित नहीं थी, अन्यथा न तो तुलसीदास का नाम मुगल इतिहासकारों द्वारा उनके इतिहास ग्रन्थों में वर्ज्य समझा जाता और न अयोध्या के राम मन्दिर का बाबरी मस्जिद से रूप परिवर्तन असम्भव हो सकता और न मथुरा–वृन्दावन में अनेक कृष्ण मन्दिरों का निर्माण करने की आज्ञा देकर अयोध्या और काशी के मन्दिरों के प्रति वह अनुदार हो जाता। जैसे–जैसे अकबर का साम्राज्य जमता और बढ़ता गया, पुष्टिमार्ग भी वैसे ही वैसे विस्तार पाता गया।

धार्मिक राजनीति के क्षेत्र में सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से जो परिवर्तन प्रारम्भ हुआ, उसे समझने के लिए पुष्टिमार्ग

के इतिहास की कुछ घटनाएँ एवं तिथियाँ स्मरण रखने योग्य हैं। सन् 1493 ई. में गोदावरी तटवर्ती कांकरवाड़ निवासी द्वादश वर्षीय तैलंग ब्राह्मणकुमार वल्लभ ने उत्तर भारत की यात्रा प्रारम्भ की। काशी, उज्जैन होते हुए वे सन् 1493 ई. में गोकुल पहुँचे। सन् 1501 ई. में गोवर्धन में उनके द्वारा श्रीनाथजी के मन्दिर की स्थापना की गई और वे स्वयं वल्लभाचार्य के रूप में प्रख्यात हुए।[3] यह वह समय था जब समस्त भारत में कृष्ण भक्ति की एक लहर फैल चुकी थी। बंगाल, उड़ीसा, असम और बिहार में कृष्ण की मधुर लीलाओं का गान प्रारम्भ हो गया था। पूरब में ब्रजराज, ब्रजभूमि और ब्रजबोली लोकमानस को आकृष्ट कर रहे थे। दक्षिण में तो यह भक्ति की धारा प्रवाहित ही हुई। मालवा, राजपूताना और गुजरात में भी कृष्ण चरित्र की ओर आकर्षण प्रारम्भ हो गया था। कृष्ण का लीलास्वरूप जैन ग्रन्थकारों को भी आकर्षित कर चुका था। उसी समय पुष्टिमार्ग की मधुर भक्ति का स्रोत प्रभाहित होना प्रारंभ हुआ। प्रारंभ में यह कृष्ण के बालगोपाल रूप को प्राधान्य देकर चला, परन्तु धीरे-धीरे सख्य एवं सखी भाव की ओर अग्रसर होता गया।

वल्लभाचार्य के समय तक पुष्टिमार्ग मुगल राजनीति से संबंध स्थापित नहीं कर सका था। वल्लभाचार्य का तिरोधान सन् 1530 ई. में हो गया। तब तक मुगल अपनी जड़ें भारत में नहीं जमा सके थे। सन् 1526 ई. में पानीपत के युद्ध में बाबर विजयी अवश्य हुआ था पर उसकी नीति भारत से सम्पर्क स्थापित करने की नहीं थी ।

वल्लभ सम्प्रदाय को अत्यन्त विषद रूप गोस्वामी विट्ठलनाथ के समय में प्राप्त हुआ। पुष्टिमार्गी आचार्यो में ये अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति हो गये हैं। सन् 1550 ई. में ये विधिवत पुष्टि सम्प्रदाय के आचार्य बना दिये गये।[4] इस घटना के 6 वर्ष पश्चात सन् 1556 ई. में मुगल सिंहासन पर अकबर आसीन हुआ। गोस्वामी ने सम्प्रदाय के वैभव और प्रभाव को बहुत अधिक बढ़ाया और अकबर ने लगभग समस्त उत्तर भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया, और कुछ राजपूत राजाओं से विवाह सम्बंध भी स्थापित कर लिए थे। सर्वप्रथम कछवाहा राजा भारमल की राजपुत्री से सन् 1562 ई. में विवाह सम्बंध स्थापित कर अकबर ने हुमायूं को शाह तहमास्प द्वारा दी गई शिक्षा का श्रीगणेश किया था। सैन्यबल से उत्तर भारत के कुछ राजपूतों के राज्य जीत तो लिए, परन्तु जब तक उनके मन को न जीता जाता तब तक मुगल साम्राज्य ज्वालामुखी के मुहाने पर ही स्थित रहता। मेवाड़ के महाराणा और बुन्देलखण्ड के बुन्देले तथा कुछ अन्य राजपूत कभी भी मुगल साम्राज्य को समाप्त करने का प्रयास कर सकते थे। आमेर के कछवाहों से विवाह सम्बंध यद्यपि उस वैमनस्य को दूर करने का प्रबल प्रयास था, परन्तु उसके कारण आमेर के कछवाहों को ही नीचा देखना पड़ रहा था। भारत से वास्तविक तादात्म्य स्थापित करने के लिए कुछ और करने की आवश्यकता थी।

सन् 1577 ई. में विट्ठलनाथ से अकबर की प्रथम भेंट आगरा में हुई। उस समय तक मुगल दरबार में जितने हिन्दू राजा, सामन्त, कलावन्त कृपापात्र हो चुके थे, वे सब धीरे-धीरे विट्ठलनाथ के शिष्य होने लगे। राजा टोडरमल, बीरबल, आसकरण कछवाहा[5], बीकानेर के पृथ्वीसिंह, तानसेन[6] आदि गुसाईंजी महाराज की कृपाकोर का आश्रित होना पड़ा। इनके अतिरिक्त अब्दुल रहीम खानखाना का झुकाव भी इनकी ओर हो गया। अकबर की माता हमीदाबानू तथा अकबर के हरम की अनेक राजमहिषियाँ गुसाईं जी की चेली बनी। सच हो या झूट वार्ता की वार्ता[7] है कि रूपमंजरी जो अकबर की परिणीता थी, नित्य रात को आकाश मार्ग (?) से उड़कर गोसाईं जी के सेवक नन्ददास जी के पास आती थी।[8]

गोस्वामी विट्ठलनाथजी को मुगलों की ओर से न्यायाधीश के अधिकार भी प्राप्त हुए। उन्हें निर्भय रहने के फरमान निकाले गये। गोकुल और महावन की भूमि जागीर में दी गई। विट्ठलनाथजी को 'गुसाईं जी' की पदवी भी अकबर की दी हुई है।[9] ऐसे अनेक प्रसंग आये जब गोसाई जी के पत्र ने मुगल दरबार में बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव दिखाये।

अकबर का पुष्टिमार्ग के आचार्यो के प्रति उनके धार्मिक सिद्धान्तों के कारण आकर्षण नहीं था। अनेक कारणों में से इसका एक कारण गुसाईं जी की सभा का संगीत और आमोद पूर्ण वातावरण भी था। साथ ही इसका एक राजनीतिक कारण भी था। अकबर को हिन्दुओं की स्वातन्त्रय भावना तथा इसी कारण राम की भक्ति से सदा भय रहता था। पुष्टिमार्ग में श्रीकृष्ण का जो रूप अपनाया गया था, वह उनका रसिक शिरोमणि का था तथा उनके अनुग्रह की प्राप्ति के लिए प्रेमलक्षणा भक्ति का विशेषतः गोपांगनाओं के परकीया प्रेम का सरस मार्ग निर्धारित किया गया था। किन्तु अब कृष्ण का

पुरुषोत्तम रूप भी ओझल होने लगा और श्रीमदभागवत के वे रास महारास सामने आये जिनमें गोपियाँ ही गोपियाँ थीं, पुरुष केवल एक था। चैतन्य महाप्रभु की परकीया राधा अधिक उन्मुक्त रूप में पुष्टिमार्ग में आ विराजी। श्रीनाथ जी के मनोरंजन के लिए विभिन्न साधनों के साथ-साथ आगरा की एक रूपवती वेश्या तक को बुलाकर मन्दिर में स्थान दे दिया गया।[10] रसधारा बह उठी। जहां रस, माधुर्य, मादनता होती है वहां मधुमक्खियाँ भी इकट्ठी होती हैं और मक्खियाँ भी। अकबरी दरबार के अनेक छोटे बड़े मिर्जा भी इस रस सिक्त साधना की ओर आकर्षित हुए जिस प्रकार का वातावरण उस समय वृन्दावन और गोकुल में उत्पन्न हो गया था, वह उसकी सृष्टि था। अधिकारी कृष्णदास ने जिस प्रकार का राजसी ठाठ बाट श्रीनाथजी मन्दिर के चारों ओर निर्मित कर दिया था उसमें इस प्रकार की अनेक सृष्टियाँ हुई थीं।

भागवत में वर्णित कृष्ण की ब्रजलीला को ही लेकर चले क्यों कि उन्होंने अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति के लिए कृष्ण का मधुर रूप ही पर्याप्त समझा। महत्व की भावना से उत्पन्न श्रद्धा या पूज्य बुद्धि का अवयव छोड़ देने के कारण कृष्ण के लोक रक्षक और धर्म संस्थापक स्वरूप को सामने रखने की आवश्यक्ता उन्होंने न समझी। भगवान के धर्म स्वरूप को इस प्रकार किनारे रख देने से उसकी ओर आकर्षित करने की प्रवृत्ति का विकास कृष्ण भक्तों में न हो पाया। फल यह हुआ कि कृष्ण भक्त कवि अधिकतर फुटकल श्रंगारी पदों की रचना में लगे रहे। उनकी रचनाओं में न तो जीवन के अनेक गंभीर पक्षों के मार्मिक रूप स्फुरित हुए न अनेक रूपता आई। श्री कृष्ण का इतना चरित ही उन्होंने न लिया जो खंडकाव्य, महाकाव्य आदि के पर्याप्त होता। राधा कृष्ण की प्रेमलीला ही सबने गाई। इससे गोपियों के ढंग के प्रेम का माधुर्य भाव का रास्ता खुला। इसके प्रचार में दक्षिण के मन्दिरों की देवदासी प्रथा विशेष रूप से सहायक हुई। हिन्दुओं के नैतिक स्खलन की जो संभावना इसमें थी, उसमें मेवाड़ के महाराणा प्रताप जैसे मुगल सल्तनत के शूल अधिक उत्पन्न नहीं हो सकते थे।

अकबर को मेवाड़ के महाराणा और बुन्देलखण्ड के बुन्देला दो सदा दुखद कंटक रहे। अकबर ने चित्तौड़ को तहस नहस कर दिया। परन्तु महाराणाओं की स्वातन्त्रय भावना का दमन न हो सका। विट्ठलनाथजी ने वहाँ अपना प्रभाव जमाने का प्रयास किया। वार्ता का कथन है कि मीराबाई ने कृष्ण की परम भक्त होते हुए भी गुसाईं जी का शिष्यत्व ग्रहण नहीं किया। इसका कारण उनका मेवाड़ के तेजस्वी कुल से सम्बंध ही हो सकता है। वार्ताओं में मीरा बाई के विषय में जो अपमानजनक शब्द लिखें हैं, वे इसी धार्मिक राजनीति के परिणाम हैं।[11] बुन्देला महाराज मधुकरशाह के शिष्यत्व के विषय में वार्ता में मधुकरशाह को गुसाईंजी का कृपापात्र कहा गया है। मधुकरशाह नृसिंह के भक्त थे। अकबर ने उन्हें अधीन करने का पूर्ण प्रयास किया। वे उसके दरबार में गये भी। परन्तु उनके रामानन्दी तिलक[12] के कारण अकबर उनसे रुष्ट हो गया। इस घटना का वर्णन किसी कवि ने किया है-

हुकुम दियो है बादशाह ने महीपन कों, राजा, राव, राना, सो प्रमानु लेखियतु है।

चन्दन चढ़ायौ कहूँ देवपद बन्दन कों, दै हौं सिर दाग जहां रेखा रेखियतु है।

सूनो कर गये भाल, छोर छोर कण्ठमाल, दूसरो दिनेस और कौन देखियतु है।

सोहत टिकैत मधुसाह अनियारे इमि, नागन के बीच मनियारे पेखियतु है।[13]

स्पष्ट है कि जब मधुकरशाह दरबार में गये, तब वे गोस्वामी विट्ठलनाथजी के शरणागत नहीं हुए थे। क्योंकि जब अकबर ने उनसे जानबूझकर सिंह के शिकार पर चलने के लिए कहा, तब नृसिंह के उपासक होने के कारण मधुकरशाह ने मना कर दिया। बात बिगड़ गई और मधुकरशाह ओरछा चले आये।[14] न्यामतकुलीखां, अलीकुलीखां, जामकुलीखां आदि अनेक खान बुन्देलखण्ड पर टूट पड़े और अपने मुंह की खाकर लौटे भी। सन् 1577 ई. में मुहम्मद सादिक खां के आक्रमण के साथ गुसाईंजी के परम सेवक नरवर के आसकरण कछवाहा[15] भी थे। इस युद्ध में मधुकरशाह का एक पुत्र होरलदेव वीरगति को प्राप्त हुआ और दूसरा रामसिंह घायल हो गया। मधुकरशाह को अकबर से सन्धि करनी पड़ी । इस परम प्रतापी बुन्देले को सदा के लिए अपने मोहनमंत्र से वश में करने के लिए ही संभवतः इसी समय गोस्वामी विट्ठलनाथ ओरछा गये क्योंकि वार्ताकार ने लिखा है, 'सो वह मधुकरशाह ओरछा को राजा हतो सो श्री गुसाईं जी कोई एक समय ओरछा पधारे हते सो वह राजा सेवक भयो और श्रीठाकुरजी की सेवा करने लगे।'[16]

यह समय सन् 1577 और 1591 ई. के बीच का हो सकता है। मधुकरशाह कृष्ण भक्त तो हो गए,पहले से

ही थे, परन्तु वे विट्ठलनाथ जी अथवा गोकुल–वृन्दावन का यश न गा सके। उन्होंने लिखा–

ओडछो वृन्दावन सौ गांव। गोवरधन सुखसील पहरिया जहां चरत तृन गाए।

जिनकी पदरज उड़त सीस पर मुक्त हो जायं।। सप्तधार मिल बहत बैत्रवे जमना जल उनमान।

नारी नर सब होत पवित्र कर–कर के स्नान।। सो थल तुंगारण्य बखानौ ब्रह्मा वेदन गायौ ।

सो थल दियो नृपति मधुकर कौ श्री स्वामी हरदास बतायौ ।।[17]

उनके स्वामी हरिदास तथा हरिराम व्यास की व्यवस्था तो यही थी कि तुंगारण्य ही उनका वृन्दावन है। श्रीगुसाईंजी का रंग उन पर न जम सका। परिणाम जो होना था वही हुआ। सन् 1591 ई. में मुराद ने मधुकरशाह की स्वतंत्रता समाप्त कर दी और वे अगले वर्ष स्वर्गवासी हुए।[18]

मधुकरशाह बुन्देला की रानी गणेशकुंवरि अयोध्या से रामराजा की मूर्ति लाकर ओरछा में उसकी स्थापना करे[19] और जो श्रीगुसाईंजी का साम्प्रदायिक एवं तद्नुगामी राजनीतिक उपदेश न माने, उसे यह दण्ड मिलना ही चाहिए था। वार्ता में कुछ भी लिखा हो, मधुकरशाह कभी पुष्टिमार्गी नहीं बने यह निश्चित है, हां श्रीगुसाईं जी ने प्रयास पूरा किया। वल्लभाचार्य के समय का विशुद्ध भक्तिमार्गी सम्प्रदाय विट्ठलनाथ जी के समय तक मुगल राजनीति का हस्तक बन गया था।

पुष्टिमार्ग द्वारा प्रचलित माधुर्य भक्ति केशवदास को लोककल्याण के विरुद्ध दिखाई दे रही थी। सखी–नारी वेश में कृष्ण की उपासना को केशवदास मिश्र (ओरछा राज्य के महाकवि एवं मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के अग्रणी महाकवि) ने अवैदिक और पाखण्डपूर्ण माना। वे इसी तैश में मथुरा को पाखण्डपुरी कह गये तथा वल्लभ सम्प्रदाय के प्रति उन्होनें लिखा–

उनको कबहूं न विलोकनि कीजै, अरु जो धरिये तो निरै पगु दीजै।

विपदा मह आनि भजौ दुख कीजै, बूढ़ि नदी मरिये विश पीजै।।

बुन्देला वीरसिंह द्वारा मथुरा में कृष्ण के स्थान पर चारभुजानाथ केशवराय का मन्दिर बनवाने में बुन्देलखण्ड की यह विद्रोह भावना ही परिलक्षित होती है। बुन्देला अपने साथ काशी के गहरवारों की परम्परा लेकर आये थे।

हम यहां समस्त वार्ता साहित्य के कथनों की प्रामाणिकता के विचार में नहीं पड़ना चाहते, केवल यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वार्ताकारों की दृष्टि अपने सम्प्रदाय की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने की ओर अधिक रही है और इस हेतु उनके द्वारा अनेक अनर्गल कथन भी किये गये हैं। तुलसीदास के विषय में जहां–जहां वार्ताओं में उल्लेख किया गया है। वह कितना भ्रामक है, इसके लिए हम यहां पर चन्द्रबली पाण्डे के कथन को लिखते हैं– ' जी, इसी तुलसी को नीचा दिखाने के लिए वार्ता खड़ी हुई है। उसके नन्ददास काव्य के नन्ददास नहीं कहे जा सकते। सच तो यह है कि 'वार्ता' को न तो तुलसी की मान–मर्यादा का ध्यान है और न 'नन्ददास' की प्रतिष्ठा की चिन्ता,[20] उसे तो ले दे के बस 'पुष्टि' को पुष्ट करना और श्रीगुसाईंजी को आसमान पर चढ़ाना है।[21] वार्ता का एक और कारनामा पृथ्वीराज चौहान की राजसभा में कोई चन्द भाट था[22] उसका वंश कभी कुरुक्षेत्र में अग्रोहा में रहा, फिर ग्वालियर आ गया। वहां खूब फला फूला। उनमें से एक सूरजचन्द मन्द निकाम[23] पुष्टिमार्ग के निरोध में आ गया और अपनी जाति–जन्म स्थान सब खो बैठा। हिन्दी के ब्राह्मण अन्वेशकों ने अतिशय उदारता दिखाकर उसे अपनी जाति में मिला लिया और ब्रजभूमि उपासकों ने उसका जन्मस्थान कहीं सीही या रुनकता, झुनकता में बना दिया, वह चिल्लाता चीखता रहा, श्रीमान मेरा जन्म गोपाचल में हुआ था, मैं भाट हूँ, पर कहा यह गया कि तेरी यह वाणी ही नकली है, असली है हमारा ज्ञान जो 'प्रबल दच्छिनविप्र कुल' को तैलंग ब्राह्मण वल्लभाचार्य का उल्लेख न मान कर ठेठ पुणेचे पेशवा यानि मस्तानी वाले पेशवा का उल्लेख समझता है।[24] यही अनाचार उसकी काव्य भाषा के साथ किया गया। उससे कहा गया तेरी काव्य भाषा तो गुसांई महाप्रभु महाराज के चरणों से निकली ब्रज (ब्रज शब्द का प्रदेश के अर्थ में सर्वप्रथम 17 वीं शताब्दी में प्रादुर्भाव हुआ) की बोली है। उसकी काव्य भाषा इसके विपरीत उद्घोष करती है कि उसने कुरुक्षेत्र तथा ग्वालियर के अनेक घाटों का पानी पिया है। कहने का मतलब यह है कि पुष्टिमार्ग द्वारा हिन्दी को दिये गये एक मात्र महाकवि सूरदास भी ग्वालियर के थे। उनका मूल उद्देश्य सांप्रदायिक और राजनीतिक था। इस उद्देश्य के लिये सत्य को विद्रूप करने में वार्ताकार जरा भी नहीं हिचके।

आधे दर्जन से अधिक उस काल के सर्वश्रेष्ठ कृष्णलीला गायक ग्वालियर के आसपास के ही थे और स्वयं महाप्रभु डंडोतियाघार में पधारकर राजा रामसिंह तोमर

से मिले थे, परन्तु उसे महाप्रभु द्वारा प्रतिपादित आडम्बरपूर्ण भक्ति के लिए अवकाश नहीं था। वार्ताओं में ग्वालियर के विषय में धारण किये गये इस मौन का यह भी एक प्रबल कारण है। जिन मुगलों की छत्रछाया में पुष्टिमार्ग पला था, उस मुगल साम्राज्य के भारत में संस्थापक बाबर के विरुद्ध विक्रमादित्य तोमर पानीपत में लड़ा था और हुमायूं ने उसके परिवार की रत्नराशि छीनकर प्रसिद्ध कोहनूर हीरा प्राप्त किया था।[25] तथा उसका पुत्र राजा रामसिंह तोमर पहले तो मुगलों से ग्वालियर लेने का प्रयास करता रहा और विफल प्रयास होने पर मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह की सेवा में चला गया और अन्त में 1576 ई. में महाराणा प्रतापसिंह की ओर से हल्दी घाटी युद्ध में अपने पुत्रों शालिवाहन, भवानीसिंह और प्रतापसिंह के साथ खेत रहा।[26] एक और कारण जिससे पुष्टिमार्गी महाप्रभु तोमरों से रुष्ट थे, वह था नरवर के कछवाहों से उनका घनिष्ट संबंध और कछवाहों और तोमरों का वंशानुगत वैमनस्य।

हम यहाँ इस इतिहास को विस्तार से नहीं लिखना चाहते, केवल यही संकेत कर देना चाहते हैं कि सन् 1508 ई. में तोमरों के विरुद्ध सिकन्दर लोदी को नरवर पर कछवाहों ने ही निमंत्रित किया था। भयंकर युद्ध के पश्चात नरवर का पतन हुआ। इसके पश्चात नरवर और सीपरी (शिवपुरी) पर कछवाहे जम गये।[27] जब लुटे पिटे तोमर मुगलों से लड़ाई लड़ रहे थे, तब नरवर और राजस्थान के कछवाहे मुगलों से किस प्रकार का संबंध स्थापित किये हुए थे, यह भी इतिहास प्रसिद्ध है। मुगलों के जागीर भोगी ये पुष्टिमार्गी संत उस अपराध को भूल न सके, तथा सूरदास का जन्मस्थान सही रूप में दक्षिण दिशा में लिखने के स्थान पर उत्तर की ओर ले गये। सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखने में भी इसी प्रकार की वृत्ति कार्य कर रही थी। वल्लभाचार्य के श्रेष्टतम अनुयायी को हरिरायजी महाराज निम्न जाति लिखने में संकोच करते थे, अतएव वे ब्रह्मभट्ट से सारस्वत ब्राह्मण बना दिये गये। सूरदास को जन्मान्ध न लिखने में भी हरिरायजी ने गोस्वामी वल्लभाचार्य की महिमा घटती देखी। उनके मन से यह महाप्रभु का प्रसाद था कि जन्मान्ध सूरदास भी रूप, रंग और प्रकृति छटा का इतना विषद वर्णन कर सके, जितना कोई दृष्टि रखने वाला भी नहीं कर सकता। सूर का यह पद देखिये –

तजि सेवा वैकुण्ठनाथ की, नीच नरनि क संग रहे।
जिनको मुख देखत दुख उपजत, तिनकौ राजा राय कहै।

यह संकेत निश्चय ही वल्लभ सभा के लिए नहीं है। वे पुष्टिमार्गी बनने के पश्चात के सूरदास के लिये नीचनर नहीं थे, न राजा राय थे। श्रीनाथ जी की सेवा पूजा में जाने के पश्चात सूरदास को किसी लम्बे समय तक किसी राजा राय के पास रहने का अवसर नहीं मिला, उस समय वे वैकुंठनाथ की नहीं गोकुलनाथ की सेवा करते थे।[28]

अतः अकबर और उसके दरबारियों का लगाव वल्लभकुल के उपदेशों से उतना नहीं था, जितना उनकी धर्मसभा को प्राप्त हुए संगीत तथा पद साहित्य से और उसकी आडम्बर पूर्ण माधुर्य भक्ति में प्राप्त मनोविनोद के साधनों से। वल्लभकुल का अनुयायी होने का अर्थ उस समय मुगल साम्राज्य की सत्ता को तन और मन से स्वीकार करना हो गया था। इस राजनीतिक कारण से भी मुगल दरबार उन पर कृपावन्त था।

फिर भी इस सम्प्रदाय में जो उपासना पद्धति या सेवा पद्धति ग्रहण की गई उसमें भोग,राग तथा विलास की प्रभूत सामग्री के प्रदर्शन की प्राधानता रही। मंदिरों की प्रशंसा 'केसर की चक्कियाँ चलैं हैं' कहकर होने लगी। भोग विलास के इस आकर्षण का प्रभाव सेवक सेविकाओं पर कहां तक अच्छा पड़ सकता था। जनता पर चाहे जो प्रभाव पड़ा हो पर उक्त गद्दी के भक्त शिष्यों ने सुन्दर-सुन्दर पदों द्वारा जो मनोहर प्रेम संगीत धारा बहाई उसने मुरझाते हुए हिन्दू जीवन को सरल और प्रफुल्ल किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, 1928,उदयपुर राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, भाग1, पृ.365; रघुवीरसिंह, 1951 पूर्व आधुनिक राजस्थान, राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, पृ. 16*

2 *ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, वि.स.1993, राजपूताने का इतिहास, अजमेर, भाग1 पृ. 311*

3 *हसूरकरोपाछः श्रीपादशास्त्री, श्री मद्वल्लभाचार्यचरितम्, निर्णयसागर मुद्रणयंत्रालय, मुंबापुर्या, पृ. 14-15, 42-43, 75, 88-89, 99*

4 *श्री मद्वल्लभाचार्यचरितम्, पृ. 138*

5 *आसकरण गोस्वामीजी के धार्मिक सिद्धांतों के कारण नहीं बल्कि आकर्षण का कारण था मुगलों की कृपा बनाये रखने के लिए, जिसका एक सरल साधन उस समय पुष्टिमार्ग था।*

6 *तानसेन ने गोविन्द स्वामी से संगीत प्राप्त करने के*

लिए वल्लभ मत ग्रहण कर कण्ठीमाला धारण कर ली। मुहम्मद गोस से जिस संगीत को सीखने के लिए त्रिलोचन पाण्डे से तानसेन बनने में न हिचके, उसका परिमार्जन और परिष्कार करने के लिए उन्हें दो सौ बावन वैष्णवों में सम्मिलित होने में क्या झिझक हो सकती थी ? किन्तु ऐसे व्यक्ति से तानसेन संगीत की शिक्षा ले यह कल्पनातीत है–252 वैष्णव की वार्ता, सम्पा. रामदास, गंगा विष्णु श्री कृष्णदास लक्ष्मीवेंक्टेश्वर स्टीम प्रेस कल्याण बंबई संवत 1988, पृ.475–477; द्विवेदी हरिहर निवास, 1986, तानसेन, विद्या मंदिर प्रकाशन, ग्वालियर, पृ. 110–112.

7 वार्ता साहित्य की प्रामाणिकता को मानने वाले श्रद्धालू, विद्वान उन्हें गोकुलनाथ कृत मानते हैं जबकि ऐसा नहीं है मूल वचन स्वयं उनके मुख से जरूर निकले थे। उन वचनामृतों को लिखित रूप में प्रचार होने के बहुत दिनों बाद हरिराय ने उनका संकलन किया और गोकुलनाथ (1647 ई. तक जीवित रहे) के तत्वावधान में उनका वार्ताओं के रूप में संकलन किया – मित्तल प्रभुदयाल, अष्टछाप परिचय, अग्रवाल प्रेस मथुरा, पृ.78

8 252 वैष्णव की वार्ता, पृ.461–63, इस पर टिप्पणी करना व्यर्थ है।

9 इम्पीरियल फरमान्स (1577–1805 ई.) अनु. कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी, द न्यूज प्रिंटिंग प्रेस, बेक हाउस लेन फोर्ट, बाम्बे, 1928, फरमान संख्या 1 से 16, जिसमें अकबर, हमीदाबानू बेगम, शाहजहां, दारा शिकोह और शाह आलम के फरमान विशेष उल्लेखनीय हैं।

10 गुप्त, डा. गणपतिचन्द, 1965, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ.285, डा. गुप्त के अनुसार यह पुण्य कार्य अधिकारी कृष्णदास ने किया था। गुंसाई विट्ठलनाथ इसके विरोधी थे। संभव है यह इतिहास हो, संभव है कोरी वार्ता। अष्टछाप का गठन तो गुंसाईंजी महाराज ने ही किया था; महाकवि विष्णुदास कृत, महाभारत (पाण्डव चरित) सम्पा. हरिहरनिवास द्विवेदी, 1973, विद्या मंदिर प्रकाशन, मुरार, ग्वालियर, पृ.113

11 शुक्ल, रामचंद्र, वि. 2025 सं., हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ.157; 252 वैष्णव की वार्ता, पृ.519–20

12 इसे बुन्देलखण्ड में 'मधुकर शाही टीका' कहा जाता था, तिवारी, गोरेलाल, सं. 1990, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ. 126

13 गुप्त, डा. भगवानदास, 2001, मुगलों के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड के इतिहास, संस्कृति के हिन्दी साहित्यिक स्रोतों का मूल्यांकन, भावना प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, झांसी, पृ.18

14 बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ.127

15 मिश्र व माहेश्वरी द्वय, डा. आनन्द व डा. मनोज. मध्यकालीन नरवर, हरिहरनिवास द्विवेदी अनुसंधान प्रतिष्ठान विद्या मंदिर मुरार, ग्वालियर, पृ.92–93; 252 वैष्णव की वार्ता, पृ.191–214.

16 252, वैष्णव की वार्ता, पृ.492

17 महाकवि केशवदास, विज्ञान गीता, 8–43, रचनाकाल सं. 1667 वि.

18 अबुल फज़ल, अकबरनामा, अंग्रेजी अनु. एच. बैवरीज, रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता 1939, भाग 3, पृ.294–95, 324–26, 379, 803, 923–24.

19 यह उस समय बहुत बड़ी घटना मानी गई थी –'राजा मधुकर शाह की रानी कुंवरि गनेस, अवधपुरी ते औड़छै लाई अवध नरेश ।।' तानसेन, पृ.73

20 252 वैष्णव की वार्ता, पृ.34–44; हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.168–69.

21 पाण्डे, चन्द्रवली, तुलसी की जीवन भूमि, नागरी प्रचारिणी सभा काशी सं. 2011 वि., पृ 50.

22 कुछ विद्वानों को उसके अस्तित्व में भी सन्देह है।

23 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 49–50

24 रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 157, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस भ्रम को 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' में डा. गणपतिचन्द्र गुप्त ने सन् 1965 ई. में भी दुहराया है, पृ. 290

25 इलियट एण्ड डॉसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, एज टोल्ड वाई इट्स ऑन हिस्टोरियंस, लंदन, 1872, भाग 4, पृ.257.

26 ओझा, गौरीशंकर हीराचंद, 1996–97, उदयपुर राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर, भाग 1, पृ.420–21, फुटनोट 4, पृ.436.

27 मध्यकालीन नरवर, पृ.69–79.

28 सूरसागर, काशी नगरी प्रचारिणी सभा, सं. 2005 वि., पहला खण्ड, पद क्रमांक 53.

पारिस्थितिकी दर्शन में सतत विकास की अवधारणा

डॉ. नीलम
सहायक आचार्य, से.मु.मा. राज. कन्या महाविद्यालय, भीलवाड़ा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पारिस्थितिकी दर्शन 1970 के दशक में विकसित एक आधुनिक अवधारणा है। पारिस्थितिकी दर्शन मानवीय जीवन के विविध क्षेत्रों में होने वाले विकास के परिणामस्वरूप उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं का अध्ययन कर इनका समुचित समाधान प्रस्तुत करता है। विकास मानवीय सभ्यता की प्रगतिशीलता का परिचायक है, किन्तु विकास का मापदण्ड केवल भौतिक एवं आर्थिक लाभ नहीं होना चाहिए। विकास की प्रचलित प्रक्रिया एक अत्यन्त विचारणीय विषय हैं। इसमें आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग करते हुए भविष्य की अपेक्षा की जा रही है। विकास की यह एकांगी प्रक्रिया पर्यावरणीय हितों की दृष्टि से अनुचित एवं विपरीतगामी है। प्रचलित विकास की प्रक्रिया से उत्पन्न गम्भीर पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु पारिस्थितिकी दर्शन सतत विकास को प्राथमिकता देता है। सतत विकास की प्रक्रिया में वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति का भावी पीढ़ी के हितों के साथ उचित सामंजस्य किया गया है। पारिस्थितिकी दर्शन द्वारा समर्थित सतत विकास की प्रक्रिया में पर्यावरणीय हितों के साथ-साथ सम्पूर्ण प्राणी जगत के सवार्गींण कल्याण की भावना अन्तर्निहित है। इसमें मनुष्य अपने सामाजिक परिवेश से आगे बढ़कर प्राणिमात्र के सर्वार्गींण कल्याण की कामना करता है। सतत विकास एक समन्वित दृष्टिकोण है। इसमें पर्यावरण के प्रति कृतज्ञता एवं अनुग्रहशीलता का भाव है। इसके प्रति भोग्यता एवं विजेता का भाव नहीं है।

संकेताक्षर : *ईकोलॉजी, पारिस्थितिकी दर्शन, आदर्शमूलक विज्ञान, पारिस्थितिकी विज्ञान, सतत विकास, पुरा (PURA) अपरिग्रह, स्वार्थवाद-परार्थवाद।*

पारिस्थितिकी दर्शन एक आधुनिक संकल्पना है, जिसका विकास 1970 के दशक में पाश्चात्य जगत में हुआ। वर्तमान समय में इस संकल्पना ने एक विश्वव्यापी आन्दोलन का रूप धारण कर लिया है। इसे पर्यावरण दर्शन (Philosophy of Environment) के रूप में भी जाना जाता है। पारिस्थितिकी दर्शन, दर्शनशास्त्र की एक शाखा है। यह एक आदर्शमूलक विज्ञान है। यह मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले विकास का मानवीय-हित को दृष्टिगत रखते हुए अध्ययन करता है। विकास एवं पर्यावरण के मध्य घनिष्ट सम्बन्ध है। पारिस्थितिकी दर्शन मानव जीवन के विविध क्षेत्रों में होने वाले विकास का मानवीय-हित और पर्यावरण के सम्बन्ध में अध्ययन करता है। डॉ. हृदय नारायण मिश्र के अनुसार -पारिस्थितिकी दर्शन, दर्शन की वह शाखा है, जो मानव जीवन और उससे सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले विकास का मानव-हित के परिपक्ष्य में अध्ययन करती है। दर्शन की यह शाखा इसका अध्ययन करती है कि जो विकास चारों ओर हो रहा है, क्या उससे प्राकृतिक धरोहर का क्षरण तो नहीं हो रहा है ? या सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास क्या मानव-हित की दृष्टि से उपयुक्त है ? यदि नहीं है तो विकास की सही दिशा क्या हो, जिससे मानव जीवन या जीव जगत का विनाश न हो। विकास ऐसा हो जो संपोष्य, सुस्थिर या रक्षणकारी हो।[1] स्पष्ट है कि सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र एवं विकास प्रक्रिया के प्रति मानवीय नैतिक कर्तव्यों का बोध एवं इनका सफल क्रियान्वयन ही पारिस्थितिकी दर्शन का मुख्य उद्देश्य है।

पारिस्थितिकी विज्ञान तथा पारिस्थितिकी दर्शन :- पारिस्थितिकी विज्ञान में पर्यावरण और जीवों के अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में पारिस्थितिकी के अन्तर्गत वनस्पति एवं जीव-जन्तुओं का ही अध्ययन

किया जाता था, किन्तु आधुनिक युग में इसकी शाखाओं का विस्तार हुआ है। अब यह व्यावहारिक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है। प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों के मध्य एक समन्वयक की भूमिका एवं मानवीय क्रियाओं का पर्यावरण पर प्रभाव इसके अध्ययन का केन्द्रीय विषय है। यह कारण है कि इसकी नवीन शाखाएँ एवं उपशाखाएँ विकसित हो रही हैं। उदाहरणार्थ मानवीय या सामाजिक पारिस्थितिकी, सामुदायिक पारिस्थितिकी, भौगोलिक पारिस्थितिकी इत्यादि। ''पारिस्थितिकी को जर्मन भाषा में 'Oecology' एवं ग्रीक भाषा में 'Oekologie' कहते हैं। इसका प्रयोग सर्वप्रथम अन्सर्ट हैकल ने किया था। 'Oekologie' शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से दो ग्रीक शब्दों 'Oikos' और 'Logos' से बना है, जिनका अर्थ क्रमशः घर (Habitat) और अध्ययन (Study) है। इस प्रकार शाब्दिक व्युत्पति की दृष्टि से इसका अर्थ घर का अध्ययन (The Study of Habitat) है। पर्यावरण प्रत्येक जीवधारी का घर है, अतः जीवधारी का उसके पर्यावरण के सम्बन्ध में अध्ययन पारिस्थितिकी विज्ञान है।[2] Oecologyds लिए अंग्रेजी भाषा में 'Ecology' शब्द प्रयोग किया जाता है। पारिस्थितिकी विज्ञान एक वर्णनमूलक विज्ञान (Descriptive Science) है, जो पर्यावरण के विषय में विभिन्न प्रकार के तथ्यों की सूचना देती है। इसके विपरीत पारिस्थितिकी दर्शन आदर्शमूलक विज्ञान (Normative Science) है। यह मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले विकास एवं पर्यावरण का मानव-हित के आधार पर मूल्यांकन करता है। इसके लिये यह पारिस्थितिकी विज्ञान द्वारा प्राप्त तथ्यों का उपयोग करता है। इससे स्पष्ट है कि पारिस्थितिकी विज्ञान प्रथम श्रेणी की खोज (First Order enquiry) है, जबकि पारिस्थितिकी दर्शन द्वितीय श्रेणी की खोज (Second Order enquiry) है। प्रथम श्रेणी की खोज होने के कारण पारिस्थितिकी विज्ञान तथ्यात्मक विज्ञान है, इसका सम्बन्ध क्या (What) से है। इसके विपरीत पारिस्थितिकी दर्शन आदर्शमूलक होने के कारण इसका सम्बन्ध चाहिए (Should) से है। पर्यावरण प्राणीजगत एवं वनस्पति जगत का घर है। पर्यावरण कैसा है? इसका ज्ञान पारिस्थितिकी विज्ञान से होता है। किन्तु प्राणियों एवं वनस्पतियों के हित में पर्यावरण को कैसा होना चाहिए। इसका ज्ञान पारिस्थितिकी दर्शन कराता है। पारिस्थितिकी विज्ञान की पद्धति वैज्ञानिक है, जबकि पारिस्थितिकी दर्शन की पद्धति दार्शनिक है। पारिस्थितिकी विज्ञान विश्लेषणात्मक दृष्टि से पर्यावरण का अध्ययन करता है, जबकि पारिस्थितिकी दर्शन इसका अध्ययन संश्लेषणात्मक दृष्टि से करता है। इसके अतिरिक्त पारिस्थितिकी विज्ञान पर्यावरण का एकांगी अध्ययन है, जबकि पारिस्थितिकी दर्शन उसका समग्र अध्ययन है। इन विभिन्नताओं के बावजूद इन दोनों में घनिष्ट सम्बन्ध है पारिस्थितिकी विज्ञान पर्यावरण के विषय में तथ्यात्मक जानकारी प्रदान करता है। पारिस्थितिकी दर्शन इस सामग्री का संश्लेषणात्मक अध्ययन करके मानव एवं पर्यावरण के विषय में कुछ मूल्यात्मक निष्कर्ष निकलता है। इस प्रकार पारिस्थितिकी दर्शन एक समन्वयात्मक, संश्लेषणात्मक और आदर्शमूलक विज्ञान है, जो जीवधारियों तथा पर्यावरण के अर्न्तसम्बन्धों के विषय में मूल्यांकनपरक अध्ययन करता है।

विकास की प्रचलित अवधारणा एक चुनौती :– निरन्तर नवीन विकास के प्रतिमान मानवीय सभ्यता की प्रगतिशीलता के परिचायक हैं। अपनी इस प्रवृति के परिणामस्वरूप मानवीय सभ्यता विकास के वर्तमान स्तर तक पहुँच गयी है। मानवीय सभ्यता के विकास के विभिन्न चरणों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ पर्यावरण ने विकास की इन विभिन्न गतिविधियों में सहायता प्रदान की है, वहीं दूसरी ओर पर्यावरणीय गुणवत्ता एवं अस्तित्व भी इन गतिविधियों से अनेक प्रकार से प्रभावित हुआ है। जब तक यह प्रभाव सीमित अथवा सामान्य होता है, उससे पारिस्थितिकी तन्त्र पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है, किन्तु जब यह अधिक सघन एवं विस्तृत होने लगता है, तो पर्यावरण में विकृतियाँ उत्पन्न होने लगती है। आधुनिक युग में वैज्ञानिक एवं तकनीकी के अभूतपूर्व विकास ने मानवीय प्रगति को नवीन आयाम प्रदान किये हैं। किन्तु विकास की इस मानव केन्द्रित अवधारणा से सन्तुलित पर्यावरण पर विभिन्न प्रतिकूल प्रभाव डालें हैं। यह प्रतिकूल प्रभाव पर्यावरणीय असन्तुलन एवं प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों का निरन्तर ह्रास, हरितगृह-गैसों के प्रभाव में वृद्धि के कारण पृथ्वी के तापमान में निरन्तर वृद्धि, ओजोन प्रभाव में न्यूनता, ओजोन-छिद्र की समस्या, अतिवृष्टि के कारण बाढ़ और अनावृष्टि के कारण सूखा एवं अकाल के रूप में दिखाई दे रहा है।

विकास के कारण पारिस्थितिकी तन्त्र पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव और पर्यावरण में आने वाली विकृतियाँ आज

सम्पूर्ण विश्व के समक्ष एक गम्भीर चुनौती है। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या विकास को रोक दिया जाये ? यदि नहीं तो विकास की सही दिशा क्या हो, जिससे पर्यावरण और पारिस्थितिकी तन्त्र पर कोई विपरीत प्रभाव न हो ? इस प्रश्न के समाधान में पारिस्थितिकी दर्शन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मानव जीवन और जगत के विषय में बौद्धिक, नैतिक या मूल्यात्मक विवेचन प्रस्तुत करना दर्शन का प्रमुख उद्देश्य है। इस दृष्टि से वर्तमान शताब्दी में मानव जीवन जिस गम्भीर संकट से गुजर रहा है, उस पर विचार करना दर्शन का प्रमुख लक्ष्य हो गया है। यह सत्य है विकास का पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि विकास को रोक दिया जाये। आवश्यकता इस बात की है कि विकास को सही दिशा दी जाये, उसे मानवोपयोगी बनाया जाये तथा उसका पर्यावरण पर कुप्रभाव न हो। यह कार्य सम्पूर्ण विश्व को सामूहिक रूप से करना है, इसमें वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं के साथ–साथ प्रशासकों एवं सामान्य जनता को भी योगदान देना है। यह कार्य क्षेत्रीय अथवा राष्ट्रीय सीमाओं से हटकर रह कर वैश्विक स्तर पर करना आवश्यक है, तभी विकास की सार्थकता है।[3] मानवोपयोगी विकास की सही दिशा 'जीवन धारण करने योग्य विकास' पर आधारित है। विकास की इस अवधारणा को ही सुस्थिर विकास या सतत विकास (Sustainable Development) कहते हैं। चिन्तकों एवं दार्शनिकों का मानना है कि ऐसा विकास पारिस्थितिकी तन्त्र को दृष्टिगत रखते हुए होगा। यह ऐसा विकास होगा जो मानव जीवन की उत्तमता को, पर्यावरण को बिना हानि पहुँचाये होगा। यह विकास पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करके होगा या ऐसी तकनीकों का विकास करके होगा, जिससे पर्यावरण की क्षति को रोका जा सके। इस जीवनदायी विकास में पारिस्थितिकी के साथ–साथ मानव जीवन के विभिन्न आयामों का भी ध्यान रखना होगा। उदाहरण के लिये जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्षों का भी ध्यान रखना होगा। सारांश में पारिस्थितिकी के दर्शन का मूल बिन्दु मानव–हित के लिये ऐसा विकास होगा, जिससे पारिस्थितिकी की रक्षा हो क्योंकि पारिस्थितिकी और पर्यावरण के विनाश से मानव या जीव–जगत की रक्षा सम्भव नहीं है।[4]

सतत् विकास की अवधारणा :– सतत विकास शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1987 में पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग की अध्यक्षता करते हुए इवा बालफोर और वेस जेकसन ने किया था। इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट में सतत विकास (Sustainable Development) को इस प्रकार परिभाषित किया है–सतत विकास वह है, जो वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति, भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के बिना समझौता किये करता है। इस परिभाषा में दो अवधारणाएँ निहित है– प्रथम आवश्यकताओं की अवधारणा है, विशेष रूप से विश्व के गरीबों की अनिवार्य आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कहा गया है, और जिन्हे ही प्रमुखता देना है। द्वितीय सीमाओं का विचार है, इसमें यह कहा गया है कि राज्य प्रौद्योगिकी और सामाजिक संगठनों पर सीमा के विचार को लागू करें, जिससे वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये पर्यावरण की क्षमता या योग्यता बनी रहे।[5] इस परिभाषा से स्पष्ट है कि सतत विकास का प्रमुख उद्देश्य मानव समाज के भविष्य की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। पारिस्थितिकी तन्त्र समस्त प्राणियों के लिए धरोहर स्वरूप है। 'धरोहर' शब्द में पारिस्थितिकी तन्त्र के प्रति संरक्षण का भाव निहित है। यह धरोहर पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित की जानी चाहिए। सतत विकासवादी विकास के विषय में समन्वित एवं समग्र दृष्टिकोण अपनाते हैं। ये वर्तमान विकास को भविष्य की सुरक्षा के साथ जोड़ना चाहते हैं। इनके मतानुसार विकास की वर्तमान अवधारणा त्रुटिपूर्ण है, जो मनुष्य की आर्थिक समस्या का तो समाधान करती है, किन्तु यह पर्यावरण को प्रदूषित कर अनेक समस्याओं को जन्म देती है। सतत विकासवाद इस मत का समर्थक है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करे, किन्तु उसका यह कर्तव्य भी है कि वह ऐसा करके भविष्य के अस्तित्व को संकटग्रस्त न बनाये।

विकास की वर्तमान प्रक्रिया एक अत्यन्त विचारणीय विषय है। इसमें विज्ञान और तकनीकी के माध्यम से भविष्य की उपेक्षा करते हुए विकास पर बल दिया जा रहा है। यह विकास की एकांगी और विपरीतगामी प्रक्रिया है। आज मनुष्य प्रकृति पर अपना नियन्त्रण कायम करने का प्रयास करते हुए प्राकृतिक संसाधनों का अनियन्त्रित, अविवेकपूर्ण अदूरदर्शी एवं विनाशकारी दोहन कर रहा है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति जहाँ एक ओर

मनुष्य को उपभोक्तावादी, सुखवादी एवं भोगवादी बना रही है, वहीं दूसरी ओर इसके कारण प्राकृतिक संसाधनों के निरन्तर क्षतिग्रस्त होने से पारिस्थितिकी तन्त्र में असन्तुलन उत्पन्न हो गया है। परिणामतः जलवायु परिवर्तन जैसी अत्यन्त गम्भीर समस्या सम्पूर्ण मानव जाति के अस्तित्व के लिए गम्भीर संकट के रूप में हमारे समक्ष है। पारिस्थितिकी दर्शन विकास के विषय में समन्वित एवं समग्र दृष्किोण अपनाते हुए वर्तमान विकास की प्रक्रिया को भविष्य की सुरक्षा से जोड़ना चाहता है। सतत विकास एक संयमित प्रक्रिया है। इसमें भारतीय संस्कृति में स्वीकृत त्याग, संयम एवं अपरिग्रह को समन्वित करने की आवश्यकता है। हमें प्रकृति के प्रति अनुग्रही होना चाहिए। प्रकृति से उतना ही ग्रहण करना चाहिए जितना हम उसे पुनः वापस कर सकें । यदि हम विकास की प्रक्रिया हेतु वनों का दोहन करते है, तो यह हमारा परम कर्तव्य है कि हम वृक्षारोपण की प्रवृत्ति को भी स्वयं में विकसित करें। भारतीय चिन्तन परम्परा में प्राप्त शान्तिपाठ ओम द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पर्यावरण एवं मनुष्य के मध्य तादात्म्य का सूचक है। पुनः 'पृथ्वी का पुत्र हूँ' (माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः) यह वैदिक दृष्टिकोण मानव को पर्यावरण के साथ समन्वय स्थापित करने की प्रेरणा देता है। अतः पारिस्थितिकी दर्शन पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु सतत विकास का जो समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, उसमें पर्यावरण के प्रति अनुग्रहशीलता, कृतज्ञता, विनम्रता एवं एकरूपता का भाव है। सतत विकास की प्रक्रिया के सफल क्रियान्वयन हेतु कुछ प्रमुख सुझाव इस प्रकार हैं :-

- पर्यावरणीय संकट एक वैश्विक समस्या है। सतत विकास की प्रक्रिया हेतु सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र को एक इकाई के रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता है। हमें यह स्वीकार करना होगा कि जलवायु परिवर्तन किसी विशेष देश की समस्या न होकर एक वैश्विक समस्या है। जैसे कुछ विकसित राष्ट्र हरितगृह प्रभाव वाली गैसों का उत्सर्जन कर रहें हैं, किन्तु तापमान सम्पूर्ण विश्व का बढ़ रहा है। पुनः ओजोन परत को क्षतिग्रस्त करने वाली गैसों का उत्सर्जन अधिकांश विकसित राष्ट्र कर रहें है, किन्तु इसका दुष्परिणाम सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित कर रहा है। अतः पर्यावरण के प्रति एक समग्र दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता है ।
- वर्तमान पारिस्थितियों में विकास की प्रक्रिया में उर्जा का महत्वपूर्ण स्थान है। परम्परागत उर्जा के सीमित साधनों में देखते हुए, उर्जा के नवीन वैकल्पिक स्त्रोतों के विकास हेतु शोध एवं अनुसंधान पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस हेतु नवीन पर्यावरण संरक्षण तकनीक के अन्वेषण एवं इसका सम्पूर्ण विश्व में सफल क्रियान्वयन आवश्यक है, क्योंकि पर्यावरण संकट मानवीय अस्तित्व से जुडा है।
- नगरीकरण एवं ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर तीव्रगति से हो रहा पलायन पर्यावरणीय समस्याओं का प्रमुख कारण हैं अतः विकास की प्रक्रिया को ग्रामीणोन्मुख बनाना होगा, जिससे नगरीय सुविधाओं का विस्तार गांवों में सम्भव हो सके। इस हेतु महान वैज्ञानिक एवं भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम द्वारा प्रस्तावित (PURA) (पीयूआरए :- प्रोविजन ऑफ अर्बन एमीनिटीज इन रूरल एरिया) मॉडल अपनाने की आवश्यकता है।
- विकास की प्रक्रिया हेतु संचालित विभिन्न परियोजनाओं के क्रियान्वयन का निर्णय लेने से पूर्व इस विषय पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि इनके पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तन्त्र पर क्या प्रभाव होंगे। किसी भी परियोजना के सैद्धान्तिक पक्ष की अपेक्षा उसके व्यावहारिक पक्ष पर विचार करने की आवश्यकता अधिक है। इस हेतु यह आवश्यक है कि त्वरित लाभ के स्थान पर दूरगामी दुष्परिणामों को भी दृष्टिगत रखा जाना चाहिए।
- प्रगतिशील सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख लक्ष्य मानवीय जीवन में गुणवत्ता का निरन्तर समावेश करने से है। यह गुणवत्ता सामाजिक मानदण्ड पर निर्भर करती है। जिस समाज के आदर्श उच्च होते हैं। उस समाज का जीवन गुणात्मक

रूप से श्रेष्ठ होता है। सामाजिक मूल्यों की दृष्टि से उपभोक्तावाद से अपरिग्रह की प्रवृति और स्वार्थवाद से परार्थवाद की ओर अग्रसर होने की आवश्यकता है। स्वार्थ एवं परार्थ में उचित समन्वय के द्वारा ही सामाजिक मूल्यों की सुरक्षा सम्भव हैं ।

- पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु इसके प्रति जनचेतना का निरन्तर प्रचार-प्रसार आवश्यक है। पर्यावरणीय चेतना जितनी अधिक होगी, उतना ही विकास सुस्थिर और सतत होगा। पर्यावरण संरक्षण के प्रति जनचेतना औद्योगिक, राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर होनी चाहिए। इस हेतु राज्य के प्रशासकीय-तन्त्र को स्वयं संगठनों के साथ मिलकर कार्य करना चाहिए। अन्य सामाजिक संस्थाओं जैसे- परिवार, विद्यालय और धार्मिक संगठनों का यह पुनीत कर्तव्य है कि वे हमारी युवा पीढी में पर्यावरण के प्रति समादर की भावना विकसित करने हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहें।

निष्कर्ष :- पारिस्थितिकी दर्शन प्रचलित विकास से उत्पन्न गम्भीर पर्यावरणीय संकट के समाधान हेतु सतत विकास की प्रक्रिया को प्राथमिकता देता है। सतत विकास की प्रक्रिया प्रचलित विकास की भांति एकांगी एवं पर्यावरण के प्रति विपरीत गामी नहीं है। केवल अर्थ ही विकास का मानदण्ड नहीं है। सतत विकास में सर्वांगीण विकास के अनतर्गत प्रकृति से लेकर जीव-जगत, पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों एवं पेड़-पौधों की सुरक्षा, संवर्धन एवं इनके अस्तित्व को कायम रखने का प्रयास किया जाता है। इसमें मनुष्य अपने सामाजिक परिवेश से आगे बढ़कर सम्पूर्ण प्राणी जगत के सर्वांगीण कल्याण की कामना करता है। भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही चिन्तन परम्पराओं में सतत विकास की महत्ता को स्वीकार किया गया है। पाश्चात्य चिन्तन परम्परा में जहाँ पर्यावरण के प्रति मैत्रीभाव विद्यमान है, वहीं भारतीय चिन्तन परम्परा में इससे अधिक प्रकृति के प्रति श्रद्धा, आस्था, विश्वास एवं उपासना का भाव निहित है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को दैवीय स्वरूप प्राप्त है। पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु हमें प्राचीन भारतीय चिन्तन परम्परा में प्रचलित त्याग, संयम एवं अपरिग्रह जैसे उच्च आदर्शों को सतत विकास की अवधारणा में समाहित करने की आवश्यकता है। पारिस्थितिकी दर्शन विकास का समन्वित दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इस दृष्टिकोण में पर्यावरण के प्रति अनुग्रहशीलता, कृतज्ञता, विनयशीलता एवं उपासना का भाव है, पर्यावरण के प्रति भोग्यता एवं विजेता का भाव नहीं ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. हृदयनारायण मिश्र, सामाजिक-राजनीतिक दर्शन के नये आयाम, पारिस्थितिकी का दर्शन, पृष्ठ संख्या -301 नवीन संस्करण 2005 शेखर प्रकाशन इलाहाबाद।*
2. *डॉ. राममूर्ती पाठक, सामाजिक राजनीतिक दर्शन की रूपरेखा, पारिस्थितिकी दर्शन, पृष्ठ संख्या -279, अभिमन्यु प्रकाशन इलाहाबाद।*
3. *डॉ. हरिमोहन सक्सेना - पर्यावरण एवं प्रदूषण पृष्ठ संख्या -183, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।*
4. *डॉ. हृदयनारायण मिश्र, सामाजिक-राजनीतिक दर्शन के नये आयाम, पारिस्थितिकी का दर्शन, पृष्ठ संख्या -301 नवीन संस्करण 2005 शेखर प्रकाशन इलाहाबाद।*
5. *(The World Commission for Environment and Development 1987:43)*

कोटा में 1857 का विद्रोह और जन प्रतिरोध के स्वर

डॉ. (श्रीमती) सज्जन पोसवाल
सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, राजकीय पी.जी. महाविद्यालय, झालावाड़

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

लम्बे समय तक यह अवधारणा बनी रही कि 1857 की क्रांति भारतीय जनता का प्रतिरोध न होकर देश के कतिपय सैनिकों अथवा अन्य स्वार्थी तत्वों का विरोध था लेकिन निरन्तर क्षेत्रीय स्तर पर जारी शोध से यह प्रमाणित हो रहा है कि इस क्रांति में भारत के विभिन्न भागों में जनप्रतिरोध व्यापक रूप से अभिव्यक्त हुआ। पी. सी. जोशी, एरिक स्टोक्स, रूद्रांशु मुखर्जी तथा ताप्ती रॉय जैसे विद्वानों के अधुनातन अध्ययनों ने इसे प्रमाणित किया है। प्रस्तुत शोधपत्र में कोटा में 1857 में हुए सैनिक विद्रोह में विद्यमान जनप्रतिरोध के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संकेतों को ढूंढने का प्रयास किया गया है। जनसमर्थन के कारण ही कोटा के सैनिक विद्रोही लगभग पाँच छः माह तक कोटा पर शासन कायम करने में सफल रहे थे और ब्रिटिश सैनिक शक्ति के सहयोग से ही वहाँ का शासक पुनः अपना वर्चस्व कायम करने में सफल रहा था। प्रस्तुत शोधपत्र में सैनिक विद्रोह कहे जाने वाले कोटा के इस संग्राम में प्रतिरोध के जनवादी स्वरों के उजागर करने का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर : *मेजर बर्टन, लाला जयदयाल, मेहराब खॉ, आर्थिक नीति, वेतन, जनवादी स्वर, लाशें, नेस्तनाबूद, लूट, गाँवों में आतंक।*

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के सौ साल बाद पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने का पहला सशस्त्र राष्ट्रव्यापी प्रयास 1857 में हुआ जिसकी पहल सिपाहियों ने की थी। इस पहले संघर्ष ने ब्रिटिश हुकुमत की जड़ों को हिला कर रख दिया और ऐसा लगने लगा था कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का सूर्य शीघ्र ही अस्त हो जायेगा। इस देश व्यापी संघर्ष में राजपूताना के दो स्थलों ने अपनी उल्लेखनीय आहुतियाँ दीं। पहला जोधपुर का आउवा ठिकाना और दूसरा कोटा। जहाँ आउवा में मॉक मेसन का सिर दरवाजे पर लटकाया गया था वहीं कोटा के पॉलिटीकल एजेन्ट मेज़र बर्टन और उसके दो पुत्रों सहित पाँच लोगों की हत्यायें की गई थीं। मई से लेकर सितम्बर 1857 के मध्य नसीराबाद, नीमच एवं आउवा का विद्रोह हुआ जिसे दबा दिया गया था। नीमच विद्रोह के दमन के लिए कोटा के पॉलिटीकल एजेन्ट मेज़र बर्टन को भी वहीं भेजा गया था। यहाँ संक्षेप्त में हम कोटा क्रांति की घटनाओं का वर्णन करेंगे जिससे उसमें विद्यमान जन प्रतिरोध के स्वरों को समझने में मदद मिलेगी।

नीमच में विद्रोह की शान्ति के बाद बर्टन कोटा आना चाहता था, किन्तु कोटा में ब्रिटिश विरोधी भावनाओं को देखते हुए कोटा महाराव श्री रामसिंह ने बर्टन से अनुरोध किया कि अभी लगभग 20 दिन वह नीमच रूका रहे क्योंकि उसे अपनी सेना पर पूरा भरोसा नहीं है[1] किन्तु 12 अक्टूबर, 1857 को मेज़र बर्टन अपने दो पुत्रों के साथ कोटा आया। महाराव से उसकी मुलाकातें हुईं। 14 अक्टूबर को महाराव ने तोपें दाग कर दिल्ली पर पुनः अंग्रेजी आधिपत्य की स्थापना के प्रति सम्मान प्रकट किया[2] जिसकी विद्रोहियों को अवश्य जानकारी होगी किन्तु इसके उपरान्त भी उन्होनें विद्रोह किया, यह उल्लेखनीय है। बर्टन ने राज्य के प्रमुख असंतुष्ट अधिकारियों पर कार्यवाही करने की सलाह राज्य के वकील नन्दकिशोर के सामने महाराव को दी थी। इन पर ब्रिटिश विरोधी भावनायें फैलाने एवं कोटा के वातावरण को अशांत करने का दायित्व भी डाला गया[3] किन्तु महाराव ने इसमें अपनी असमर्थता प्रकट की।[4] संभवतः नन्दकिशोर ने वार्ता की जानकारी राज्य के मंत्री मदनलाल को दी जिसने यह सूचना राज्य के असंतुष्ट अधिकारियों

को दी और उन्होंने विद्रोह कर दिया[5] किन्तु विद्रोह का कारण एक मात्र यही नहीं था। इसने बारूद के ढेर पर केवल चिंगारी का काम किया था। विद्रोह की जड़ें पहले ही कोटा में गहरी जमी हुई थी।

ऐसे वातावरण में बर्टन के कोटा आने से पहले ही विद्रोहियों के नेता लाला जयदयाल और मेहराब खाँ ने गुप्त घोषणा पत्र जारी किया।[6] इसमें सिपाहियों के आटे में हड्डियों का चूरा और कारतूसों में गाय और सुअर की चर्बी प्रयुक्त करने का उल्लेख था तथा इसमें इसाई धर्म के खिलाफ़ एकजुट होने की अपील भी की गई थी। इन्हीं आक्रोश और आकांक्षाओं की पृष्ठभूमि में 15 अक्टूबर 1857 (कार्तिक कृष्ण, धनतेरस, संवत् 1914) को असैन्य अधिकारी लाला जयदयाल, पायगा पलटन के रिसालदार मेहराब खाँ, उज्जबुद्दीन खाँ, इसरार अली, सलावत खाँ आदि लगभग 3000 सैनिकों ने रेजीडेन्सी पर आक्रमण कर मेज़र बर्टन, उसके दो पुत्रों सहित पाँच लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। बर्टन के सिर को सारे शहर में घुमाने के बाद उसे तोप से उड़ा दिया गया।[7]

इसके साथ ही क्रांतिकारियों ने प्रशासन पर नियंत्रण बना लिया। उन्हें कोटा राज्य के अधिकारियों का बड़ी संख्या में समर्थन और सहानुभूति प्राप्त थी जिनमें अलग-अलग स्थानों पर नियुक्त बिल्लेदार और किलेदार शामिल थे।[8] अन्ता, कैथून, सकतपुरा आवां, जालौदा, कोटड़ा, खातौली आदि स्थानों पर नियुक्त जिलाधिकारियों ने क्रांतिकारियों का साथ दिया और वे सरकारी सम्पति लूट कर ले गये जिसका ब्यौरा कोटा राज्य अभिलेखागार के दस्तावेजों में प्राप्त होता है।[9] बागियों ने महाराव रामसिंह को गढ़ में नज़रबन्द कर दिया। मुंशी ज्वाला सहाय और जॉर्ज लॉरेन्स ने बागियों द्वारा महाराव को 9 शर्तों की संधि (जिसमें एक शर्त बर्टन को राजा के आदेश से मारने संबंधी थी) पर हस्ताक्षर के लिए बाध्य करने का जिक्र किया है[10] किन्तु प्रत्यक्ष दर्शी लक्ष्मण दान तथा मथुरा लाल शर्मा ने लिखा है कि मथुराधीश मंदिर के गुसांई कन्हैया लाल की मध्यस्थता में हुई इस संधि में कोई शर्त नहीं रखी गई। दोनों पक्षों ने 15 दिन के लिए लड़ाई बंद कर दी।[11] इस अवधि का उपयोग करते हुए महाराव करौली की सेना तथा कोटा रियासत के हाड़ा सरदारों की सहायता पाने में सफल हो गए।

इससे महाराव की शक्ति सुदृढ़ हो गई थी। दूसरी ओर अंग्रेजी सेना द्वारा मंदसौर से खदेड़े गये विद्रोहियों के कोटा क्रांतिकारियों से आकर मिल जाने से यहाँ उनकी संख्या में भी वृद्धि हो गई थी।[12] ऐसी स्थिति में दो दिन के लिए गढ़ में बुलाई गई करौली सेना को वादे के अनुरूप बाहर नहीं भेज कर संधि का उल्लंघन करने का आरोप लगाते हुए क्रांतिकारियों ने होली के बाद लड़ाई शुरू कर दी। राजपक्ष की ओर से राजपूतों और करौली की सेना ने क्रांतिकारियों को कड़ी टक्कर दी। 'राजपूतों ने गढ़ में रखी 27 तोपों का मुँह विद्रोहियों की दिशा में कर दिया तथा किले में स्थित मुस्लिम तोपचियों का कत्ल कर दिया गया।'[13] ठाकुर लक्ष्मण दान के अनुसार राजपक्ष ने गढ़ की 17 तोपें निकालकर कैथूनी पोल एवं पाटन पोल ले जाकर भयंकर जंग शुरू कर दी। रात दिन चलने वाला यह युद्ध अविराम 25 दिन तक लड़ा गया।[14] महाराव की संगठित सेना के प्रतिरोध के परिणाम स्वरूप अब गढ़ के अलावा कैथूनी पोल ओर पाटन पोल के अंदर का हिस्सा (शहर परकोटे के अंदर का भाग) महाराव के अधिकार में आ गया।

महाराव को पड़ौसी राज्यों से कोई सहायता नहीं मिली, अन्ततः मार्च 1958 में मेज़र जनरल एच.जी. रोबर्ट्स के नेतृत्व में 5500 सैनिकों का दल कोटा महाराव की मदद करने तथा मेज़र बर्टन की हत्या का बदला लेने कोटा पहुँचा। 'इनमें 1600 गोरे और लगभग 4000 काले सिपाही थे।'[15] छोटी बड़ी तोपों, गोलों, बन्दूकों, घुड़ सवारों, इंजिनियरों, आदि से लेस ब्रिटिश लश्कर ने कोटा के भूगोल और क्रांतिकारियों की उपस्थिति का रणनीतिक एवं तकनीकी अध्ययन करने के बाद सकतपुरा एवं कुन्हाड़ी पर तोपें जमा कर गोला बारी शुरू कर दी। जयदयाल का भाई हरदयाल सहित हजारों लोग मारे गये अन्ततः 30 मार्च 1958 को कोटा पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। क्रांतिकारी नेता भागने में सफल हुए[16], यद्यपि उन्हें बाद में एक एक कर फाँसी पर लटका दिया गया और कोटा राज्य पर महाराव का अधिकार स्थापित कर 20 अप्रैल, 1958 को रोबर्ट्स की सेना लौट गई।

इस प्रकार देशी के अन्य भागों के समान ही कोटा में भी ब्रिटिश सत्ता को यहाँ की सेना ने एक बड़ी चुनौती दी थी इसलिए इसके स्वरूप को लेकर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यह विद्रोह मुठ्ठी भर सैनिकों का अपने स्वार्थ के लिए लड़ा गया युद्ध था अथवा यह राजपूताना और विशेष रूप से कोटा की जनता की अंग्रेजों के प्रति आक्रोश और असंतोष की पहली

ससैन्य अभिव्यक्ति थी। यहाँ हम 1857 की क्रांति के स्वरूप को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर अभी तक व्यक्त किये गये विचारों के संदर्भ में उसके विभिन्न पक्षों का विवेचन करेगें जिससे अंत में एक तर्क सम्मत निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके। मई 1857 में मेरठ के सैनिकों द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ़ संघर्ष की शुरूआत करने के कारण साम्राज्यवादी इतिहासकारों– सर जॉन सीले, पी. ई. रोबर्ट्स तथा जॉन लॉरेन्स आदि ने इस क्रांति का सरलीकरण करते हुए इसे मात्र सैनिकों का विद्रोह कहा था। ठाकुर लक्ष्मण दान ने भी कोटा की क्रांति को देश के सैनिक विद्रोह से जोड़ते हुए लिखा है कि मुल्क–मुल्क (विभिन्न क्षेत्रों में) के नमक हराम फिरंट विद्रोही एक साथ हो गए।[17] निश्चय ही कोटा की सेना ने देश के अन्य भागों में आरम्भ हुए विद्रोह के प्रभाव में यहाँ भी विद्रोह किया था किन्तु केवल इस आधार पर उसे सैनिक विद्रोह नहीं कहा जा सकता। सुरेन्द्रनाथ सेन ने भारत में 1857 के विषय में जो वक्तव्य कहा है वह कोटा की क्रांति के विषय में भी उचित जान पड़ता है कि 'आन्दोलन एक सैनिक विद्रोह की भाँति आरम्भ हुआ किन्तु वह केवल सेना तक सीमित न रहा।'

सर जेम्स आउटराम और स्मिथ जैसे अन्य साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने 1857 के संग्राम को मुस्लिम शासन की पुनर्स्थापना का प्रयास बताते हुए उसे साम्प्रदायिक रूप देने की कोशिश की थी। बाद में विलियम डेलरिम्पल ने भी इस मान्यता का समर्थन किया।[18] ठाकुर लक्ष्मणदान ने भी कोटा की फौज में राजपूतों को निकाल कर मुसलमानों की भर्ती करने का आरोप लगाया था तथा बर्टन के बचाव के लिए महाराव को जाने से रोकने का आरोप पठान नबी शेर खाँ पर लगाया था।[19] क्रांति के दौरान भी कोटा के मुस्लिम तोपचियों और सैनिकों को कत्ल के लिए निशाना बनाया गया था जबकि कोटा की क्रांति की घटनाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि देश के अन्य भागों के समान यहाँ भी हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर साम्राज्यवाद के खिलाफ़ यह लड़ाई लड़ी थी जिसका नेतृत्व जयदयाल और मेहराब खान ने बराबरी से किया था तथा द्वारकाधीश मंदिर के गुसांई कन्हैया लाल ने क्रांतिकारियों और कोटा शासक के मध्य वार्ता में मध्यस्थ की भूमिका निभाई थी।

देश के अन्य भागों सहित राजधानी दिल्ली पर अंग्रेजी सत्ता का पुनः अधिकार हो जाने की जानकारी के बावजूद कोटा के सैनिकों और अधिकारियों ने बर्टन की हत्या की, गाय और सुअर की चर्बी के प्रयोग से धर्म पर आये संकट का परिपत्र निकाला, अंग्रेजों के पक्ष की बात करने वाले नन्द किशोर और अंग्रेजों को खरीता लिखने वालों को भी मौत के घाट उतार दिया। लगभग 6 माह तक कोटा पर क्रांतिकारियों का नियंत्रण उस दौर में एक विशिष्ट राष्ट्रवादी घटना थी जबकि आउवा के अलावा अन्य राजपूत राज्यों में सन्नाटा पसरा हुआ था। यह क्रांति कोटा शासक के खिलाफ़ न होकर ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ़ थी और इसकी सुगबुगाहट कोटा महाराव तक पहले ही पहुँच चुकी थी। संभवतः सैनिकों के आक्रोश की तीव्रता को भाँप जाने के कारण ही महाराव ने बर्टन द्वारा असंतुष्ट अधिकारियों पर कार्यवाही करने के आग्रह को स्वीकार करने में अपनी असमर्थता प्रकट की थी।

दरअसल, कोटा राज्य में ब्रिटिश हस्तक्षेप एवं उसकी आर्थिक नीतियों के कारण असंतोष व्याप्त था। कोटा राज्य के विभाजन द्वारा 1838 में बनाए गए झालावाड़ राज्य के कारण कोटा का एक तिहाई भूभाग और 15 लाख वार्षिक आय के स्रोत झालावाड़ को दे दिए गए। झालावाड़ छोड़कर कोटा आये जागीरदारों को नवीन जागीरें दी गईं जिससे 3 लाख रू. वार्षिक आय के गाँव इन जागीरों में विभक्त हो गए, अफीम के व्यापार पर कम्पनी के एकाधिकार के दुष्परिणाम किसानों, व्यापारियों और राज्य को भुगतने पड़ रहे थे। पहले से कर्जे में डूबे कोटा राज्य को कोटा कन्टिन्जेन्ट का आर्थिक भार वहन करना पड़ रहा था। इस प्रकार राज्य की आर्थिक अवनति के लिए अंग्रेजी सत्ता को जिम्मेदार माना जा रहा था। समाज सुधार हेतु ब्रिटिश सत्ता के दबाव में बनाए गए विभिन्न कानूनों को परम्परावादी समाज अनुचित हस्तक्षेप मानकर नाराज था। सूर्यमल मिश्रण के एक पत्र में अंग्रेजों द्वारा सती प्रथा पर रोक को राजाओं द्वारा स्वीकार कर लेने पर इसे धर्म और इज्जत के विरूद्ध बताते हुए राजाओं की गुलामी की निशानी बताया गया था।[20] उनके ये विचार कम्पनी राज के प्रति हाड़ौती के समाज के दृष्टिकोण को दर्शाते हैं।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में हुआ कोटा का सैनिक संघर्ष उस महासंग्राम का हिस्सा था जिसे 1909 में वी.डी. सावरकर ने पहला स्वतंत्रता संग्राम कहा था और बाद में पट्टाभि सीतारमैया, अशोक मेहता, बैंजामिन डिज़रैली तथा सुरेन्द्रनाथ सेन ने भी इसका समर्थन

किया था किन्तु लक्ष्मणदान तथा मथुरा लाल शर्मा जैसे राजपक्षीय इतिहासकारों ने कोटा के क्रांतिकारियों को लुटेरा एवं स्वार्थी बताकर क्रांति को उनके द्वारा सत्ता प्राप्ति का प्रयास बताया और आजाद भारत में भी कोटा के जगतनारायण श्रीवास्तव जैसे राजतंत्र समर्थकों ने बर्टन के वध को गौरवशाली किन्तु क्रांति के प्रसार को कोटा के इतिहास का काला एवं कलंकित अध्याय बताया[21] जो उनकी राजभक्ति तथा विद्रोह की प्रकृति संबंधी तथ्यों की उपेक्षा करने का परिणाम दिखाई देता है।

राष्ट्रीय स्तर पर सन् 1857 पर निरन्तर जारी शोध से इसका जनवादी स्वरूप उजागर करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई है। सर्व प्रथम सन् 1957 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की शताब्दी के अवसर पर पी. सी. जोशी द्वारा संपादित 'रिबेलियन 1857' में उन्होंने 1857 संबंधी लोकगीतों के माध्यम से इसके जनवादी स्वरूप को प्रमाणित किया।[22] जोशी ने इसके विविध तथा विशिष्ट रूपों पर प्रकाश डालते हुए इसे इन गीतों के माध्यम से लोक संस्कृति से जोड़ा। इसके बाद एरिक स्टोक्स ने इसके अन्तरक्षेत्रीय एवं क्षेत्रीय स्वरूप का मूल्यांकन करते हुए इसमें जन प्रतिरोध को देखा।[23] इसके बाद रूद्रांशु मुखर्जी ने अवध के किसानों एवं तालुकेदारों संबंधी शोध और ताप्ती रॉय ने बुन्देलखण्ड संबंधी शोध में[24] इन क्षेत्रों में 1857 में जन प्रतिरोध के स्वरूप को प्रतिपादित किया। रूद्रांशु ने तो 'सिपाहियों को वर्दीधारी किसानों' की संज्ञा[25] देकर 1857 को जनक्रांति कहने में संकोच नहीं किया। उपर्युक्त शोध कार्यों की श्रृंखला में निरन्तर जारी अधुनातन अध्ययनों के प्रकाश में कोटा की क्रांति में जन प्रतिरोध के स्वरों को पहचानने की आवश्यकता है।

हम पीछे उल्लेख कर आये हैं कि कोटा के क्रांतिकारियों को विभिन्न जिलों के ताल्लुकेदारों और राज्य कर्मचारियों का साथ मिला था। लगभग 6 माह तक कोटा पर नियंत्रण कायम रखने वाले इन क्रांतिकारियों ने शोषण एवं निरंकुशता के केन्द्रों को ही अपना निशाना बनाया। इनमें राज्य के भंडार, बंगले, शस्त्रागार, राजकीय कार्यालय, कोतवाली आदि शामिल थे। जिन निजी दुकानों या हवेलियों को निशाना बनाया गया उनमें सेठ साहूकारों एवं राजपूत सरदारों की हवेलियाँ थीं जो शोषण का केन्द्र और प्रतीक मानी जाती थी। इनमें कोयला सरदार तथा सेठ दानमल की हवेली प्रमुख थी।[26] उनकी यह गतिविधियाँ क्रांति को जनवादी प्रकृति के करीब ले जाती है। इतने लम्बे समय तक राज्य पर नियंत्रण नागरिक समुदाय के सहयोग से ही सफल हुआ होगा क्योंकि बिना नागरिक समुदाय के सक्रिय सहयोग के मुठ्ठी पर सैनिकों के लिए इतनी बड़ी उपलब्धि हासिल करना संभव न था।[27]

ब्रिटिश सेना द्वारा विद्रोही सैनिकों पर गोले और गोलियों की बोछारें की गईं थी किन्तु उसने राज्य की निर्दोष आम प्रजा का जिस ढंग से दमन और शोषण किया, वह भी इसे सिपाही नहीं, बल्कि जन विद्रोह साबित करता है। ताप्ती राय के अनुसार, विद्रोह के बाद जितनी गहनता से अपराधियों को सजायें दी गईं ओर दमन किया गया उससे विद्रोह में जन सहभागिता के उतने ही व्यापक स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है।[28] इस आधार पर कोटा की घटनाओं का मूल्यांकन किया जा सकता है। नाथूराम खड्गावत द्वारा अभिलेखागारीय स्रोतों के आधार पर की गई ब्रिटिश दमन की पड़ताल से ज्ञात होता है कि 'यूरोपीय सैनिक टुकड़ियों ने नान्ता में खुले घरों को तहस नहस करते हुए जहाँ जो कुछ मिला उसे लूटा, यहाँ तक कि गणेश जी की मूर्ति के आभूषण भी नहीं छोड़े गये, विद्रोहियों को शराब बेचने के लिए गुमानपुरा के कलाल पर 150 रू. जुर्माना लगाया गया, जयदयाल को खाना खिलाने के अपराध में गंगाधर सोनी पर 450 रू. का जुर्माना तथा क्रांति में भाग लेने के लिए नन्दगाँव (कोटा) के छोटूराम पर 200 रू. का जुर्माना लगाया गया था। बड़ी कचेरी क्षेत्र के आस पास के गाँवों में ब्रिटिश सेना के भय के आतंक से निर्दोश गाँववासी घरों को छोड़कर भाग गये। ब्रिटिश सैनिक टुकड़ियों ने जहाँ जो कुछ मिला उसे लूटा, खेतों में कटी पड़ी मक्का लूट ले गए तथा खड़ी फ़सलों को नष्ट कर दिया गया।'[29] जयदयाल के समर्थकों के घरों को लूटा गया और फिर आग लगा दी गई। उनकी सम्पत्ति को नीलाम किया गया और उसके परिजनों पर क्रूर अत्याचार किये गए। उस समय भागने में सफल हुए बर्टन की हत्या के मुख्य क्रांतिकारियों को बाद में पकड़-पकड़ कर उसी जगह फाँसी पर लटकाया जाता रहा, जहाँ बर्टन की हत्या हुई थी।

बम्बई से आये एक सैन्य अधिकारी की पत्नी डुबर्ली ने अपनी डायरी में जो आँखों देखा हाल लिखा उससे ब्रिटिश दमन तथा क्रांति को मिलने वाले जन समर्थन अथवा जन सहभागिता का पता चलता है। उसने लिखा– 'सारे शहर की गलियों में माल असबाव टूटा

फूटा बिखरा पड़ा था। गलियों में बिखरे पड़े लूट के सामान के कारण हमारे घोड़े गद्दों चादरों, सोफो और फारसी ग्रंथों को रौंदते हुए मुश्किल से चल पा रहे थे। शहर की बर्बादी पर विलाप करने के लिए कुछ बूढ़े स्त्री-पुरूष बचे थे। भूख से व्याकुल कुत्ते तथा साँड इधर उधर भटक रहे थे··· फिर हम शहर की पूर्व दिशा की ओर घूमने गये जिधर से विद्रोही भागे थे। वहाँ हमने मौत के काम के घिनौने साक्ष्य देखे। कुत्ते और सुअरों द्वारा लाशों के विभिन्न अंगों को फाड़ते देखना भयावह था। एक स्थान पर दो आदमियों और तीन घोड़ों की लाशें पड़ी हुई थीं और मैं यह देखे बिना न बच पाई कि कुत्ते घोड़ों को छुए बिना आदमी का भक्षण कर रहे थे।[30] डुबर्ली ने ब्रिटिश सेना के बलूच सिपाहियों द्वारा लाये गये लूट के माल का भी वर्णन किया है।

कोटा को नेस्तनाबूद करने के बाद ब्रिटिश सेना वापसी में मुकन्दरा पास से झालावाड़, असनावर, छबड़ा होते हुए ग्वालियर राज्य की ओर गई थी। इस यात्रा के वृत्तान्त से ब्रिटिश सत्ता, सेना और लोगों के प्रति हाड़ौती के आमजन की विरोधी और तिरस्कारपूर्ण भावना की जानकारी मिलती है। डुबर्ली ने लिखा है कि कोटा से लगभग 19 मील दूर हनौबड़ा (Hanoubra) नामक गाँव के पास रोबर्ट्स के सैनिकों द्वारा अपने ऊँटो के लिए कुछ आम के पेड़ों की टहनियाँ तोड़ लेने पर गाँव वालों ने दो ऊँट सवारों को पकड़ कर मारा और बिना ऊँट दिये भेज दिया। बाद में यूरोपीय सैनिकों को गाँव में भेजकर ही ऊँट वापस लिये जा सके। गाँव वालों ने मार्ग निरीक्षण के लिए कार्यरत हवलदार का बंगला भी ढहा दिया था तथा पिछले दिनों यूरोपीय सेना के दो ऊँट सवारों की गला काट कर हत्या कर दी थी।[31] यही नहीं, मुकन्दरा दर्रे के आसपास अहमदपुरा नामक गाँव से गुजरते हुए डुबर्ली ने देखा कि गाँव वाले उन्हें त्यौरी चढ़ाकर देख रहे थे।[32]

इसी प्रकार संवत् 1915 (सन् 1958) में भँवरगढ़ के नागरिकों द्वारा पॉलिटीकल एजेन्ट की आवभगत करने से इंकार करने पर हर दुकान पर 51 रू. का जुर्माना लगाया गया था और जब गाँव वालों ने जुर्माना देने के बजाय गाँव छोड़कर जाना शुरू किया तो राज्य को जुर्माना वसूली निरस्त करनी पड़ी थी।[33] भले ही विद्रोह आउवा और कोटा में हुआ हो किन्तु अंग्रेजी विरोधी भावनायें राजपूताना के आमजन में विद्यमान थी तथा कोटा की क्रांति ने इन्हें और भड़काया था। नीमच से लेकर सिंध तक के भारतीय विद्रोह संबंधी अपने अनुभवों को लिखने वाले नसीराबाद में कार्यरत ब्रिटिश सैन्य अधिकारी आई.टी. प्रिचार्ड ने कहा है कि देवली में विद्यमान महिलायें जिन गाँवों से होकर सुरक्षित अजमेर पहुँची थीं उन ग्रामीणों की संभारित उद्दडंता से बच पाना बहुत बड़ी उपलब्धि थी।[34] जोधपुर में उसने यह भी अनुभव किया था कि कोटा में पॉलिटीकल एजेन्ट के खिलाफ़ विद्रोह का असर जोधपुर की जनता के धृष्ट व्यवहार में स्पष्ट झलक रहा था।[35]

इस प्रकार कोटा में सैनिकों के विद्रोह से पूर्व की स्थितियों के अवलोकन, बर्टन की हत्या के बाद उसके नरमुंड का प्रदर्शन, राजा द्वारा अंग्रेजों से सम्पर्क के बाद आगामी 6 माह तक कोटा पर सैनिकों अधिकारियों के नियंत्रण, उन्हें प्राप्त विभिन्न वर्गों के समर्थन तथा उनके द्वारा दमन के प्रतीक भवनों पर आक्रमण, ब्रिटिश सेना का क्रूर और नृशंस दमन, गाँवों में आतंक और निगाहों में अंग्रेजों के प्रति तिरस्कार और धिक्कार के भावों संबंधी विभिन्न प्रमाण स्पष्ट करते हैं कि 1857 की कोटा की क्रांति सिपाहियों के संघर्ष से आरंभ हुई और आगामी 6 माह तक कायम रही और इन सिपाहियों के संघर्ष को कोटा की जनता का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष समर्थन प्राप्त था। वहाँ की जनता अंग्रेजी हुकुमत के खिलाफ़ थी। इस क्रांति में जन सहभागिता के और पुष्ट प्रमाण खोजे जा सकते हैं जो राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर तथा उसकी विभिन्न शाखाओं में सुव्यवस्थित रख रखाव एवं वर्गीकरण के अभाव में आम शोधार्थी की पहुँच से बाहर हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *जॉर्ज लॉरेन्स, रेमनेन्सेस ऑफ़ फ़ोर्टी थ्री ईयर्स इन इंडिया, जॉन मुरे अलबेम्बरले स्ट्रीट, लंदन, 1874, पृ. 295*
2. *जी. एच. ट्रेवर, ए चेप्टर ऑफ़ इंडियन म्यूटिनी इन राजस्थान 1857-58, स्पोटीवुड, लन्दन, 1905, पृष्ठ 12, ओ.एस. क्रॉफ्टन, द लिस्ट ऑफ इंस्क्रिप्शंस ऑन टॉम्ब्स ऑर मोन्यूमेन्ट्स इन राजपूताना एंड सेन्ट्रल इंडिया, 1934, पृ. 74*
3. *हरिशंकर शर्मा, द लास्ट डेज़ ऑफ़ लाला जयदयाल, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस, मार्च 1978, खण्ड 11, पृष्ठ 96, वी.के वशिष्ट, राजपूताना एजेन्सी 1832-1858, आलेख पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1978, पृ. 276*
4. *सूर्यमल मिश्रण का नामली ठाकुर बख्तावर सिंह के नाम पत्र, पौश सुदी ग्यारस, संवत् 1914,*

कन्हैयालाल सहल (सम्पादक), वीर सतसई, बंगाल हिन्दी मंडल, कलकत्ता, 1948, पृ. 81

5. जॉर्ज लॉरेन्स, पूर्वोक्त, पृ. 295–296, ओ.एस. क्राफ्टन, पूर्वोक्त, 74
6. फॉरेन कंस्लटेशन (सीक्रेट) 3 सितम्बर 1858, नं. 1–2, भा.रा.अ. नई दिल्ली
7. एस.एन.सेन. एटीन फ़िफ्टी सेवन, सूचना एवं प्रसारण विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1958, पृ. 321
8. नाथूराम खड्गावत, राजस्थान्स रोल इन द स्ट्रगल ऑफ़ 1857, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 2008, पृ. 59
9. हरिशंकर शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 96
10. जॉर्ज लॉरेन्स, पूर्वोक्त, पृ. 296–297, मुंशी ज्वाला सहाय, द लॉयल राजपूताना, इंडियन प्रेस, अलाहाबाद, 1902, पृ. 323
11. मथुरालाल शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, भाग द्वितीय, कोटा प्रिंटिंग प्रेस, कोटा, 1939, पृ. 616
12. उपर्युक्त, पृ. 617
13. उपर्युक्त, पृ. 617–18
14. ठाकुर लक्ष्मण दान, कोटा राज्य का इतिहास (हस्तलिखित), ठिकाना कोटड़ी, कोटा, पृ. 100
15. सूर्यमल मिश्रण का नामली ठाकुर बख्तावर सिंह के नाम पत्र, चैत्र शुक्ल नवमी, संवत 1915, वीर सतसई, पूर्वोक्त, पृ. 78
16. जॉर्ज लॉरेन्स पूर्वोक्त, पृ. 299
17. ठाकुर लक्ष्मण दान, पूर्वोक्त, पृ. 90
18. विलियम डेलरिम्पल, द ज़ेहाद ऑफ़ 1857, संडे टाइम्स ऑफ़ इंडिया, दिल्ली, 5 नवम्बर 2005
19. ठाकुर लक्ष्मण दान, पूर्वोक्त, पृ. 92
20. सूर्यमल मिश्रण का पत्र भिनाय के शासक बलवन्त सिंह के नाम, भाद्र पद शुक्ल 3, संवत् 1909, सतसई, पूर्वोक्त, पृ. 83–84
21. जगत नारायण श्रीवास्तव, कोटा में महासंग्राम, राजस्थान पत्रिका, 15 अगस्त, 2007
22. पी.सी. जोशी, (एडीटर), फ़ॉक सॉंग्स ऑन 1857, रिबेलियन 1857,
23. एरिक स्टोक्स, द पीजेन्ट आर्म्ड, ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस, 1986
24. रूद्रांशु मुखर्जी, अवध इन रिवोल्ट, अ स्टडी ऑफ़ पॉपुलर रिवोल्ट रेसिसटेन्स, ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस, दिल्ली, 1984, ताप्ती रॉय, द पॉलिटिक्स ऑफ पॉपुलर राइजिंग, बुंदेलखंड इन 1857, ऑक्सफोर्ड, दिल्ली, 1994
25. विस्वमोय पति, हिस्टोरियन्स एंड हिस्टिरियोग्राफ़ी, सिच्चेटिंग 1857, इ कॉनोमिक एंड पॉलिटीकल वीकली, मई 12–18, 2007, वॉल्यूम XLII No. 19. पृ. 1687
26. मथुरालाल शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 610–611
27. नाथूराम खड्गावत, पूर्वोक्त, पृ. 59
28. ताप्ती रॉय, उद्धृत विस्वमॉय पति, पूर्वोक्त 1688
29. नाथूराम खड्गावत, पूर्वोक्त, 63–64
30. श्रीमती हेनरी डुबर्ली, कैम्पेनिंग एक्सपियरेन्सेस इन राजपूताना एंड सेन्ट्रल इंडिया, स्मिथ एल्डर एंड कम्पनी, लंदन, 1859, पृ. 82–85
31. उपर्युक्त, पृ. 94
32. उपर्युक्त, पृ. 95
33. नाथूराम खड्गावत, पूर्वोक्त, पृ. 62–63
34. आई.टी. प्रिचार्ड, म्यूटीनीज़ इन राजपूताना, जॉन डब्ल्यू पार्कर एंड सन्स, लंदन, 1860, पृ. 150
35. उपर्युक्त, पृ. 252

झुंझुनू में पर्यावरणीय मुद्दों पर एक अनुभवमूलक अध्ययन

वरूण कुमार
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पर्यावरण में सभी तत्व, कारक और स्थितियां शामिल हैं जो जीव के विकास पर प्रभाव डालता है। भारत में पर्यावरण के मुद्दे हर दिन गंभीर होते जा रहे हैं पर्यावरण की रक्षा करने वाले सरकारी कानून बने है किन्तु दुर्भाग्य से सत्ता के खुले दुरुपयोग, भ्रष्टाचार और संसाधनों की कमी के कारण इसे कभी लागू नहीं किया जाता है। महत्वपूर्ण पारिस्थितिक समस्याओं में से एक ग्लोबल वार्मिंग है जो पूरे विश्व में कारों, हवाई जहाजों व उधोगों क़ों द्वारा वातावरण में कार्बन डाइअ०क्साइड के बड़े उत्सर्जन के कारण होता है।भूमिगत जल के अत्यधिक दोहन के कारणसम्पूर्ण झुन्झुनू जिले में खेती के लिए जल की उपलब्धता उत्रोकत्तर कम होती जा रही है। जल के अभाव में वृक्ष भी सूखते जा रहे है तथा भूमि का क्षरण हो रहा है। सरकार द्वारा जिले में सीमेन्ट प्लान्टों को भूमि का आवंटन इस मुद्धे को ओर अधिक बढ़ा सकता है। इस शोध पत्र का उद्धेश्य झुन्झुनू जिले में पर्यावरण के कारण होने वाले विभिन्न प्रभावों का अध्ययन कर उनसे सम्बन्धित सुझाव प्रस्तुत करना है।

संकेताक्षर : *झुन्झुनू, जनसंख्या, गरीबी, उद्योग, वनों की कटाई, सरकारी कानून, भ्रष्टाचार, ग्लोबल वार्मिंग, प्रदूषण, सीमेन्ट प्लान्ट, पर्यावरणीय क्षरण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, जैव विविधता।*

तेजी से बढ़ती जनसंख्या और आर्थिक विकास झुन्झुनू में कई पर्यावरणीय मुद्दों को जन्म दे रहा है। भूमिगत जल के अत्यधिक दोहन के कारण प्रमुख पर्यावरणीय मुद्दे वन और कृषि भूमि क्षरण हैं। संसाधनों की कमी जैसे पानी, खनिज, जंगल, रेत, चट्टानें आदि के करण पर्यावरणीय क्षरण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, जैव विविधता के नुकसान तथा गरीबों के लिए आजीविका सुरक्षा आदि भी अछूते नहीं है।

जन्म, मृत्यु, प्रवासन और आप्रवासन के चार बुनियादी जनसांख्यिकीय कारक जनसंख्या के आकार, संरचना, वितरण में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं और ये परिवर्तन कारण और प्रभाव के कई महत्वपूर्ण प्रश्न उठाते हैं। जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास जिले में कई गंभीर पर्यावरणीय आपदाओं में योगदान दे रहे हैं। इनमें भूमि भूमि क्षरण, वनों, आवास विनाश और जैव विविधता के नुकसान पर भारी दबाव शामिल है। खपत के पैटर्न में बदलाव से ऊर्जा की मांग में बढ़ोतरी हुई है। इसके अंतिम परिणाम वायु प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन, जल की कमी और जल प्रदूषण हैं।

ज़िले का अधिकांश भाग बालू के झोंके और टीलों से आच्छादित है जो रेगिस्तान की रेत को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित कर देता है, और ये सक्रिय टिब्बे, खेती के लिए मुख्य खतरे हैं। मृदा अपरदन निरंतर वनों की कटाई और खनन गतिविधि का परिणाम है। जिसके परिणामस्वरूप ढलानों को बंद कर दिया गया है।

जिले में कोई बारहमासी नदी नहीं है।कट्टी और दोहान केवल मौसमी नदियाँ हैं। कट्टी नदी का उद्गम श्रीमाधोपुर तहसील की खडेला पहाड़ियों से हुआ है। सीकर और उदयपुरवाटी तहसील के दक्षिण–पश्चिम के निकट उत्तर–पश्चिम दिशा की ओर से प्रवेश करती है और अंततः चूरू जिले के रेतीले टीलों में गायब हो जाती है। हालाँकि, यह नदी जिले को लगभग दो भागों में विभाजित करती है। इसी प्रकार दोहान नदी भी श्रीमाधोपुर की पहाड़ियों से निकलती है और कुछ पूर्वी भाग से होते हुए उत्तर–पूर्वी दिशा में बहती है और अंत में हरियाणा के महेंद्रगढ़ जिले के रेतीले पथ में लुप्त हो जाती है। जिले में कोई झील नहीं है। हालांकि, कुछ इलाकों में छोटे टांके मौजूद हैं।

2000 से 2018 तक के डेटा के आधार पर जिले की औसत वार्षिक वर्षा 485.6 मिमी है। कि हाल के वर्षों में जिले में वर्षा में काफी वृद्धि हुई है। जिले की जलवायु को अर्ध–शुष्क के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। यह दक्षिण–पश्चिम मानसून अवधि के दौरान कम वर्षा के साथ बहुत गर्म ग्रीष्मकाल और बहुत ठंडी सर्दियों की विशेषता है। मई और जून में अधिकतम तापमान कभी–कभी 48^{0}C तक जाता है।

जिले वन संसाधनों की कमी है, और पहाड़ियों सहित कुल वन क्षेत्र 40535 हेक्टेयर है, जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का केवल 6.83 प्रतिशत है। क्षेत्र के विशिष्ट वनस्पतियों में जायरोफाइटिक पेड़ और ढोकरा, करली, किकर, केजरी, हिंगोटिया आदि झाड़ियाँ शामिल हैं। नीम, पीपल, सीसम आदि के अलावा क्षेत्र में अलग–अलग प्रकार के लकड़ी के पेड़ उगाए जाते हैं। जो जिले के प्रमुख वन उत्पाद हैं। चूंकि जिले में वन प्रजातियों के गहन विकास के लिए स्थिति अनुकूल नहीं है, इसलिए यह स्पष्ट है कि जिले में वन क्षेत्र ने अब तक व्यावसायिक व्यवहार्यता प्राप्त नहीं की है।

झुंझुनू जिले में भूजल का अत्यधिक दोहन एक समस्या है। दीर्घकालिक जल स्तर डेटा ने जल स्तर में 0. 0222 से 0.2010उ/वर्ष तक गिरावट का संकेत दिया है। जिसके परिणामस्वरूप अलसीसर प्रखंड को छोड़कर सभी खंड अतिदोहित की श्रेणी में आ गये हैं

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने अनुमान लगाया है कि तापमान में 3 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से वार्षिक गेहूं की पैदावार में 15 से 20ः की कमी आएगी। प्राथमिक संसाधनों की उत्पादकता पर निर्भर इतनी बड़ी आबादी वाले जिले के लिए ये पर्याप्त समस्याएं हैं और जिसका आर्थिक विकास औद्योगिक विकास पर बहुत अधिक निर्भर करता है।जलाऊ लकड़ी के लिए कटाई और कृषि भूमि के विस्तार के कारण वन आवरण घट रहा है।

पूर्व में आस–पास के क्षेत्रों में कुछ छोटे–मोटे निर्माण होते थे। बाकी के लिए, स्थानीय मांग को पूरा करने के लिए बढ़ई, सुनार, लोहार आदि जैसे वंशानुगत कारीगर थे। स्वतंत्रता के बाद भी झुंझुनू जिला प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की कमी और विकसित बुनियादी सुविधाओं की कमी के कारण औद्योगिक रूप से पिछड़ा रहा है। अब औद्योगिक वातावरण बदल गया है और उद्यमियों को कई प्रोत्साहन और रियायतें दी गई हैं और वे जिले में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना के लिए तत्पर हैं। सरकार के प्रोत्साहन से प्रेरित होकर जिले में लघु उद्योगों का तेजी से विकास हुआ हैं।

बढ़ते औद्योगिक और मोटर वाहन प्रदूषण उत्पादन के साथ मिलकर इन प्रवृत्तियों ने वायुमंडलीय तापमान में वृद्धि की है, वर्षा के पैटर्न को बदल दिया है।जिला का अधिकतर क्षेत्र वाहनों और उद्योग उत्सर्जन से प्रदूषित है। वाहनों के कारण सड़क की धूल भी वायु प्रदूषण में 33 प्रतिशत तक योगदान करती है।यह पाया गया है कि झुंझुनू जिले में वायु प्रदूषण के प्रमुख स्रोत छोटे पैमाने की इकाइयाँ विशेष रूप से स्टोन क्रशर और ईंट भट्ठों के साथ खनन गतिविधियाँ हैं।

अनुसंधान सामग्री एवं विधि

झुंझुनू में पर्यावरणीय मुद्दों पर अनुभवमूलक अध्ययन करने के लिए जिले की 4 तहसीलों झुन्झुनू, उदयपुरवाटी, नवलगढ एवं सूरजगढ़ का चयन किया गया। चयन का आधारवहां के ईट भट्टे, भू स्थिति, परिवहन की स्थिति, वन क्षेत्र एवं व्यवसायिक गतिविधियों को बनाया गया था। इनमें बीमारियों, वातावरण एवं रोजगार को मुख्य आधार बनाया गया था।

प्रत्येक क्षेत्र से 30–30 लोगों का चयन किया गया जो पर्यावरण जनित बीमारियों जैसे अस्थमा, गले में खराश, खांसी, छींक आने आदि से पीड़ित थे। इस प्रकार कुल 125 लोगों का चयन किया गया।

अनुसंधान से प्राप्त आंकड़ों के विवेचन से ज्ञात होता है कि 31.2 (39/125) प्रतिशत लोग अस्थमा से पीड़ित थे। इनमें से 61.1 प्रतिशत (25/39) वे लोग थे जो किसी ना किसी ईट भट्टें के आस पास निवास करते

थे। इनमें से सर्वाधिक प्रतिशत झुंझुनू के निवासियों का था।

वहीं परिवहन की रेलमपेल के कारण गले में खराश एवं खांसी से प्रभावित पीडितों की संख्या 72रही जो कि कुल का 57.6 प्रतिशत रहा। इनमे सें अधिकतर वे लोग है जिनका व्यवसाय शहरी क्षेत्र के मुख्य बाजार में है।

दूसरी ओर अन्य व्यवसायिक गतिविधियों के कारण ग्रसित लोगों की संख्या 11.2 प्रतिशतरही। ये वे है जो किसी फैक्टरी या निर्माण इकाई के आस पास निवास कर रहे है।

इसी प्रकार 87.2 प्रतिशत(109/125) लोग वातावरण में परिवर्तन,वनों/पेड़ों की कटाईके कारणगर्मी में वृद्धि,घरों धरों में ।ब्का प्रयोग एवं गर्मी में चलने वालीधूल भरी आंधियां के कारण पर्यावरण में परिवर्तन का कारक है।

पानी की कमी के चलते लोग खेती से विमुख हो रहे है और उनकी आगामी पीढी इस व्यवसाय को कतई नही करना चाहते। रोजगार की तलाश में लोग बड़े नगरो की ओर पलायन कर रहे है। जिससे क्षेत्र का सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे में परिवर्तन आ रहा है।

निष्कर्ष

झुंझुनू में पर्यावरणीय कारकों के कारण वहां के निवासियों के सामाजिक आर्थिक एवं दैनिक जीवन पर प्रभाव पड़ा है। पलायन की मात्रा में वृद्धि हुई है तथा लोगो के रोजगार के तरीको में भी परिवर्तन आया है। आज आवश्यकता इस बात की है कि इन कारकों को नियंत्रित किया जाकर क्षेत्रिय असंतुलन को रोका जाये। इसके लिए जल के संग्रहण एवं वन क्षेत्र में वृद्धि किया जाना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *गर्वेन्मेंट ऑफइण्डिया (2006), नेशनल एनवारमेंट पॉलिसी, मिनिस्ट्री ऑफ एनवारमेंट एण्ड फारेस्ट, नई दिल्ली*
2. *Centre for Science and Environment (CSE) (2001), Down to Earth: Survival Primer, Society forEnvironmental Communications, New Delhi.*
3. *Dasgupta, Partha (1982), The Control of Resources, Harvard University Press, Cambridge, Massachusetts.*
4. *इकॉनोमिक रिव्यू (2011), गर्वेन्मेंट ऑफ राजस्थान, जयपुरण*
5. *शाह एस.ए. (1996) फारेस्ट्री फॉर पीपुल, आई.सी. एस आर, नई दिल्ली*
6. *Dr. Manoj Kumar, Geographical Landuse Pattern in Jhunjhunu Region, Rajasthan, International Journal of Geology, Agriculture and Environmental Sciences, Volume – 1 Issue – 1 December 2013*
7. *Singh, Katar and Anil Shishodia (2007), Environmental Economics: Theory and Applications, SagePublications India Private Limited, New Delhi.*
8. *World Bank (1996), India Ecodevelopment Project, Report No. 14914-N, South Asia Department II,Agriculture and Water Division, The World Bank, Washington, D. C., U.S.A.*
9. *Agarwal, P.K. and Kalra, N., 1994; Analyzing the limitations set by climatic factors,genotype, water and nitrogen availability on productivity of wheat. II. Climaticallypotential yields and optimal management strategies, Field Crops Research, p. 93-I03.*

राजस्थानी काव्य के श्रेष्ठ नारी पात्र

डॉ. रणजीत सिंह चौहान
अतिथि प्राध्यापक, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

SHODH SHREE
ISSN 2277-5587 RNI-RAJHIN02011/40531
shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

राजस्थान की वीर-वसुंधरा भूमि में जहां वीरों का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा हैं, वही दूसरी ओर यहां की वीरांगनाएं, प्रेमिकाएं एवं आदर्श पतिव्रता नारी-पात्र भी श्रेष्ठ रहे हैं। राजस्थानी काव्य में चित्रित नारी-पात्रों का चरित्र अधिकतर आदर्शात्मक दृष्टिकोण लिए हुए है। इनमें राजमती, मारवणी, रुक्मिणी, सीता, पद्मनी, द्रौपदी, हाडी राणी व राधा प्रमुख रही हैं। ये नायिकाएं अपने जीवन का आदर्श निश्चित किये हुए हमारे सामने आती हैं। इन नायिकाओं में प्रेम की एकनिष्ठता, दृढ़ता, लोक मर्यादा एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में लोहा लेने वाली शक्ति रही है। इन नारी-पात्रों ने भारतीय इतिहास में अपना नाम रोशन किया हैं।

संकेताक्षर : *संइभरि, जीविजइ, जळहर, सज्जण, रुषमणि, गंभीर, पदमिणि, कृष्ण, धरमराज, जनम, सांवरा, संसारि, बांटीयो, सीया, सरदार, सैनाणी, अचपळां, घमसांण।*

राजस्थानी काव्य में वीर, भक्ति, श्रृंगार व नीति आदि का समन्वय देखा जा सकता हैं। राजस्थानी काव्य में नारी का उच्च स्थान रहा है। राजस्थानी के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल के काव्य में नारी के विविध रूप उभरकर आते है, जिनमें नारी का प्रेमिका रूप, आदर्श पत्नी, माता एवं वीरांगना रूप भी सामने आता है। राजस्थानी काव्य में जिन श्रेष्ठ नारी पात्रों का चित्रण मैंने इस शोध आलेख में किया है, उनमें राजमती (बीसलदेव रासो), मारवणी (ढोला मारू रा दूहा), रुक्मिणी (वेलि क्रिसन रुक्मिणी री), सीता (सीताराम चौपाई एवं रघुनाथ रूपक), पद्मनी (गोरा बादल पदमिणी चौपाई व पदमिनी चरित्र चौपाई), द्रौपदी (द्रौपदी एवं द्रौपदी विनय), हाडी रानी (सैनाणी) एवं राधा (राधा) आदि प्रमुख रही हैं। अब हम इनके चारित्रिक गुणों एवं काव्य में उनकी विविध छवियों पर प्रकाश डालते हैं।

राजमती– 'बीसलदेव रासो' की राजमती मालवा की धार नगरी के शासक भोजराज की पुत्री थी। उसका विवाह अजमेर के बीसलदेव चौहान से हुआ था। एक दिन बीसलदेव ने राजमती से गर्वपूर्वक कहा कि मेरे समान दूसरा राजा नहीं है। इस पर राजमती ने उत्तर दिया कि घमंड नहीं करना चाहिए, उसके समान तो अनेक राजा है जिनमें से एक तो उड़ीसा का ही राजा है जिसके राज्य में खानों से हीरे उसी तरह निकलते है। जिस तरह अजमेर के सांभर से नमक निकलता है। बीसलदेव को यह बात लग गई। वहाँ उड़ीसापति के यहाँ जाकर सेवक बन गया। नवपरिणीता राजमती विरह में तड़पने लगी। अन्त में उसने ब्राह्मण को दूत बनाकर भेजा। इस समय उड़ीसा के दरबार में यह रहस्य खुला कि बीसलदेव अजमेर-नरेश है। अतः उसने बहुत से हीरे, रत्न आदि देकर बीसलदेव को विदा किया। बीसलदेव और राजमती का पुनर्मिलन हुआ। इस तरह इसमें नायिका राजमती की ही प्रधानता है। राजमती नारी-सुलभ गुणों से युक्त स्वभाव की खरी और जबान की तेज नारी है। इसका प्रमाण उसने अनेक अवसरों पर दिया है। राजा ने जब मिथ्याभिमान में कहा कि मेरे समान दूसरा भूपाल नहीं है तो राजमती अपने खरे स्वभाव वश इसका प्रतिवाद किये बिना न रह सकी। उसने तो कह ही दिया कि जिस तरह तुम्हारे राज्य में नमक निकलता है। उस तरह उड़ीसापति के राज्य में हीरा निकलता है–

गरब म करि हो संइभरि वाल। तो सारिय अवर घणा के भूआल।
एक उड़ीसा कउ घणी। वचन हुइ म्हांका माणि म मणि।
जिउं थारह संइभरि उग्रहइ। तिउं आं घरि उग्रहइ हीराकइ षांणि।।[1]

राजमती जब बीसलदेव को रोकने का सारा प्रयत्न कर हार जाती है तो वह सखियों से कहती है कि बीसलदेव महिपाल नहीं, महिषपाल (भैंस चराने वाला) है। राजमती द्वारा पति के लिए ऐसा कथन अमर्यादित माना जाता है किन्तु जिस पृष्ठभूमि में और जैसे हीन व्यक्तित्व नायक के लिए ऐसी बात कही गई है कि यह तनिक भी नहीं खटकता। अतः इसमें लोकजीवन की स्वाभाविकता समझनी चाहिए। 'बीसलदेव रासो' में राजमती बीसलदेव के विरह में फागुन एवं सावन मास में किस प्रकार व्याकुल है–

फागुण फरहरया कंपिया रूष।
चितइ चमकियउ निसि नींद न भूष।
सावण बरसइ छइ छोटीय थार।
प्रीय विण जीविजइ किसइ अधारि।[2]

इस काव्य में नायिका का प्रेम अधिक प्रखर है। एक कुटनी आकर राजमती को सतीत्व से डिगाना चाहती है, पर राजमती अटल रहती है। राजमती का प्रेम एकनिष्ठ व सतीत्व पर केन्द्रित रहा है।

मारवणी– 'ढोला मारू रा दूहा' राजस्थान का प्रसिद्ध लोक काव्य है। ये श्रृंगार के वियोग और संयोग की सुंदर कृति है। काव्य कथा में नायिका मारवणी पूंगलगढ़ के राजा पिंगल की पुत्री है। जिसका विवाह बचपन में नरवरगढ के राजा नल के पुत्र राजकुंवर साल्हकुंवर 'ढोला' के साथ हो जाता है। ढोला द्वारा मारवणी को प्राप्त करना ही कथा का फलागम है। प्रेम का उदय नायिका के हृदय में जागृत होता है और वह प्रेम अपने पति के प्रति है। मारवणी के प्रेम में भी एकनिष्ठता है, मार्मिकता है। प्रेम की तीव्रता होने के कारण विरह की भी तीव्रता है। बिजलियों की अठखेलियां को सावन के बादलों को उमड़तां–घूमड़तां देखकर प्रिय वियोग से दुःखी मारवणी बादलों से धीमें स्वर में सुख–आनंद को प्रकट करने का निवेदन करती है–

बिजुळियां निलज्जियां, जळहर तू ही लज्जि।
सूनी सेज विदेस प्रिय, मधुरइ–मधुरइ गज्जि।।[3]

मारवणी ने ढाढ़ियों को जो संदेश कहा है उसमें विरह का क्रंदन तथा नारी हृदय की करुण पुकार सुनाई देती है। एक स्थान पर वह अपने को प्रिय के पैरों की पगही कहती है।

हूं बलिहारी सज्जणां, सज्जण मो बलिहार।
हूं सज्जण पग पानही, सज्जण मो गलहार।।[4]

मारवणी की विरह–जनित उक्तियों में ढोला के प्रति उसकी प्रेम की एकनिष्ठता का परिचय प्राप्त होता है। वह विदुषी और चतुर नारी है। संपूर्ण काव्य में मारवणी का विरहिणी रूप ही उभरकर आता है। विरह में उसके प्रेम को अतिशय गहराई का पता चल जाता है।

रुक्मिणी– रुक्मिणी संबंधी काव्य–ग्रंथों का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत महापुराण है। नायिका रुक्मिणी कुंदनपुर के राजा भीष्मक की पुत्री है। रूक्मिणी काव्य–शास्त्रों की उस नायिका के समान सर्वांग सुंदरी है जिसे अष्टांगवती नायिका कहा जाता है, जिसके दर्शन मात्र से रति स्थायी भाव जागृत होता है अर्थात् श्रृंगार रस का संचार होता है। कवि पृथ्वीराज राठौड़ ने उसके वर्णन के प्रारंभ में ही परिचय देते हुए उसे मानसरोवर में क्रीड़ा करते हुए हंस–शावक या सुमेरु–गिरि पर दो पत्तों वाली स्वर्ण–लता के समान बताया है–

रामा अवतार नाम ताइ रुषमणि,
मान सरोवरि मेरुगिरी।[5]

रुक्मिणी बत्तीस लक्षण–युक्ता कुमारी जब अपनी समवयस्कों में खेलती तो ऐसी लगती है जैसे आकाशगण में नक्षत्रों के मध्य कलाधर सुशोभित हो रही हो। रुक्मिणी चौसठ कलाओं में निपुण होती है। कवि उसके बारे में कहता हैं–

व्याकरण पुरान समृति सासत्र विधि,
वेद चारि खट अंग विचारि।[6]

रुक्मिणी का प्रेम कायिक न होकर सात्विक व अलौकिक है, जो जन्म–जन्मान्तर से उसमें तथा कृष्ण में चला आ रहा है।

पद्मनी– चित्तौड़ की प्रसिद्ध रानी पद्मनी की ऐतिहासिक कथा को लेकर जैन कवि हेमरतन सूरि द्वारा 'गोरा बादल पदमिणी चौपाई' लिखी गई राजस्थानी की प्रथम उपलब्ध रचना है। इस कृति में भारतीय नारी के सतीत्व और कुल मर्यादा की रक्षा के लिए प्राण देने वाले गोरा व बादल जैसे लोक–प्रसिद्ध चरित्रों का अंकन किया गया है। पद्मनी सिंघलद्वीप की राजकुमारी है। जिसे प्राप्त करने के लिए चित्तौड़ का राजा रतनसेन सिंघलद्वीप जाकर उसे चौपड़ में खेल कर प्राप्त करता है और शादी करके उसे चित्तौड़ लाता है। उस समय कवि उसके रूप का वर्णन करते हुए, उसे इंद्राणी के समान बताता है–

पदमिणि रूप कही कुण सकइ,
इंद्राणीथी अधिकी जकइ।[7]
पदमिणि नारि इसी पातली,
अति सुकुमाल सकोमल वली।[8]

पद्मनी का चरित्र भावनात्मक बनकर उभरा है जो न केवल अपने अनुपम सौन्दर्य का ही, बल्कि धैर्य, असीम साहस और पतिव्रत्य का भी प्रतीक है। यह एक ऐसा चरित्र है जो लोक–कथाकर की मानसिक सृष्टि होते हुए भी लोक–कथाओं के द्वारा लोक–मानस में रमता हुआ ऐतिहासिक–सत्य बन गया है। पद्मनी दूरदर्शिका नारी है। जब राजा रतनेसन ने आवेश वश राघव चेतन को देश निकालना दे दिया, जब थोड़ा चिंतित होती है। पति का यह कार्य विपत्ति का कारण बनता है। आगे चलकर धोखे से राजा रतनसेन को अलाउद्दीन खिलजी उसे बंदी बना लेता है, बदले में पद्मनी की शर्त रखता है। तब वह अपने सामंतों में गोरा–बादल से मंत्रणा करती है। राजा को छोड़ने के लिए निवेदन करती है–

अवर सुहड सत्त हीण हूअ,
जस लीजइ तइं एकलइ।
अल्लावदीन सुं खग्ग बलि,
रतनसेन छोडावि लइ।।[9]

पद्मनी के चरित्र में पतिव्रता, स्नेहशील, दूरदर्शिता, चतुर गृहिणी, सतीत्व पर अडिग रहने वाली आदि गुण देखने को मिलते है।

द्रौपदी– महाभारत में द्रौपदी द्रुपद की अयोनिजा पुत्री है। इसकी उत्पत्ति यज्ञ वेदी से हुई। जन्म के समय आकाशवाणी ने कहा कि देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए क्षत्रियों के संहार के उद्देश्य से इस रमणी का रत्न का जन्म हुआ है। इसके कारण कौरवों को बड़ा भय होगा।[10] इस कारण महाभारत की द्रौपदी का चरित्र–चित्रण अलौकिकता लिए है और आधुनिक रचनाकारों ने उसे अधिक मानवीय और यथार्थवादी बनाने का प्रयास किया है। राजस्थानी में दो रचनाएं द्रौपदी पर मिलती है, जिसमें श्रीमंत कुमार व्यास द्वारा रचित 'द्रौपदी' और रामनाथ कविया की 'द्रौपदी विनय' प्रमुख रही है। द्रौपदी एक सती नारी है, जिसका चीरहरण अनीति के आधार पर हुआ है। द्रौपदी के चरित्र में हमें अलौकिकता, अटल पातिव्रत, बौद्धिकता, सहनशीलता, सतीत्व पर आस्था, स्वाभिमानी आदि गुण देखने को मिलते हैं। रामनाथ कविया ने 'द्रौपदी विनय' जिसे 'करुण बहत्तरी' भी कहा गया है। ये भी एक खंडकाव्य रचना के साथ ही करुण रस री प्रमुख रचना है। जिसे कवि ने सोरठा छंद में लिखी गई है और ये बहुत प्रसिद्ध रचना है। इसमें 72 सोरठे है। इन दोनों काव्यों में चित्रित द्रौपदी की कुछ चारित्रिक विशेषता उभरकर आयी है। द्रौपदी के चरित्र की प्रधान विशेषता है उसका–अलौकित्व। वह महा–शक्तिशाली द्वापर की कृत्या है। श्रीमंत कुमार व्यास की 'द्रौपदी' के प्रथम सर्ग में कवि ने द्रौपदी को अजोणीनारी के रूप में प्रकट कर उसकी दिव्य लीला का संकेत किया गया है–

जोनी में सूं जनमी कोनी, द्वापर री आ नारी।
ऐड़ी रचना रची क आया, बंधिया कृष्ण मुरारी।।[11]

द्रौपदी के चरित्र का मूलाधार उसका पातिव्रत है। वह एक आदर्श पत्नी के रूप में चित्रित की गई है। वह केवल साधारण पत्नी नहीं, अपितु गुणशीला और चिंतक भी है। द्रौपदी का व्यक्तित्व असाधारण है। उसने नियति बनकर पांडवों को पुरुषार्थ हेतु ललकारा था। जब पांडव चौपड़ खेलते हुए उसे दांव पर लगा देते है तो वह उन्हें धिक्कारने से नहीं चूकती। रामनाथ कविया की 'द्रौपदी विनय' में कवि लिखता है–

रामत चौपड़ राज री, है धिक बार हजार।
धण सूंपी लूठां धकै, धरमराज धिक्कार।।[12]

'द्रौपदी विनय' में भी वह कृष्ण की भक्ति करके उसे याद करती है, जब कृष्ण नहीं आते, तब वह सोरठा कहती है–

मो मन पड़ियौ मोच, आव कह्यायां आयौ नहीं।
साड़ी रौ नहं सोच, सोच विरद रौ सांवरा।।[13]

द्रौपदी का चरित्र पौराणिक होते हुए भी, आधुनिक परिप्रेक्ष्य के प्रभाव से अछूता नहीं रह सका है। उसके चरित्र में हमें सहनशीलता, स्वाभिमानी नारी, सतीत्व पर अडिंग रहने वाली आदि विशेषताएं देखने को मिलती हैं।

सीता– भारतीय देवियों में सती शिरोमणि सीता का स्थान सबसे ऊंचा है। सीता और राम–ये दो ही भारतीय जनता के प्राण हैं। सीता का चरित्र अगाध रहा है। वे ऐसी स्वाभिमानी संघर्षमयी साहसी नारी है जिन्होंने कटुतम जीवन की चुनौती को स्वीकार करते हुए नारीतत्व का ऐसा आदर्श रखा जो युग–युग तक उत्पीड़ित नारी को संबल देता रहेगा। सीता मिथिला प्रान्त के जनकपुर के राजा जनक की पुत्री थी। जो की यज्ञ से प्रकट हुई थी। भारतीय साहित्य में सीता का चरित्र महान रहा है। श्रीराम उन्हें स्वयंवर में भगवान शिव का धनुष तोड़कर प्राप्त करते है। सीता के जीवन में कैकयी के वेश मे असत्य उनके सत्य की परीक्षा लेने आता है। बिना अपराध ही राज्याभिषेक के समय कैकयी के दिए हुए वचनों की पूर्ति हेतु राम को वनगमन की आज्ञा मिलती है। सीता के चरित्र को लेकर राजस्थानी में सीतपुराण (सरवण भूकर),

रामायण (मेहाजी गोदारा), सीताराम चौपाई (समयसुंदर), राम रासो (माधोदास दधवाड़िया), रुघरास (रघुनाथ मेहता), रघुनाथ रूपक (मंछाराम सेवक), रघुवरजसप्रकास (किशना आढ़ा) इत्यादि ग्रंथ मिलते हैं।

'सीताराम चौपाई' जैन कवि समयसुंदर की रचना है। संपूर्ण कथा नौ खंडों में प्रस्तुत की गयी है। प्रत्येक खंड के अंत में उस खंड का नामकरण किया गया है। काव्य के अंत में कवि ने सीता जैसी स्त्री के शीलवंत का चित्रण करते हुए सीता जैसी स्त्री को सती सावित्री बताया है–

सतीयां मांहे सलहीयइं, सीता नामइ नारि।
सीता सरिषी को नहीं, सहु जोता संसारि।।[14]

'रघुनाथ रूपक' में जब राम को वनवास मिलता है तो सीता भी संग चलने लगती है और वह राम से कहती है आपके बिना मेरा जीवन व्यर्थ है। मैं मार्ग में आपकी सेवा करूंगी। पातिव्रत की पालना करूंगी। यदि आप छोड़कर चले जायेंगे तो मैं देह जला दूंगी–

पंथ करसूं ग्रहण वंदगी प्रेम सूं,
प्रेम सूं वळै, व्रत नेम पाळूं।
जांणजै भरोसो छोड़ नह जावस्यो,
जावस्यो छोड़ तो देह जाळूं।[15]

आगे जब रावण सीता का हरण करके उसे अशोक वाटिका में ले जाता है। अशोक वाटिका में सत्यमयी सीता की शक्ति अपरोजय है, राम के प्रति उनकी श्रद्धा अटूट है। जब रावण अपनी अनंत माया से उसे प्रभावित करता है परन्तु सीता अपना शील या सतीत्व नहीं छोड़ती–

पुहंतो लंक बीसधरपांणी,
बाग असोक सीया बहसांणी।
माया असुर अनंती मांडै,
छांडे रे तन सील न छोडे।[16]

सीता का चरित्र पतिव्रत से परिपूर्ण है। उसमें शील एवं सतीत्व गुण मौजूद है। भारतीय नारियों में सीताजी का चरित्र महान रहा है।

हाडी रानी– राजस्थान की छत्राणियों में हाडी रानी का नाम अमर रहा है। हाडी रानी के चरित्र को लेकर मेघराज मुकुल ने 'सैनाणी' कविता लिखी थी। इसमें सलूम्बर के रावत चूढ़ावत का चित्रण मिलता है। जो कि हाडी रानी से विवाह करके आते है। बादशाह औरगजेब रूपनगढ़ की राजकुमारी चारूमति को प्राप्त करने के लिए हमला करते तभी मेवाड़ के स्वामी राजसिंह से सहायता मांगती है। इस विपत्ति में रानी हाडी अपने पति चूढ़ावत रावतजी को युद्ध के लिए प्रेरित करती है। जब रावतजी अपनी नवोढ़ा पत्नी हाडी से सैनाणी मांगते है, तब हाडी रानी अपना सिर काट कर देती है और वीर रावतजी युद्ध क्षेत्र में अपनी रानी के सिर को गले में पहनकर घमासान युद्ध करते हुए औरंगजेब से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त होते है।

फिर कह्यो, 'ठहर ! लै सैनाणी',
कह झपट खड्ग–खींच्यो भारी।
सिर कट्यो हाथ में उछळ पड़यो
सेवक भाज्यो लै सैनाणी।
सरदार ऊछळ्यो घोड़ी पर, बोल्यो,
'ल्या–ल्या–ल्या सैनाणी।'
फिर देख्यो कट्यो सीस हंसतो,
बोल्यो, 'राणी मेरी राणी।'
तू भली सैनाणी दी राणी !
है धन्य धन्य तू छत्राणी।
हूं भल चुक्यो हो रण–पथ नै,
तू भलो पाठ दीन्यो राणी।
फिर कट्यो सीस गळ मैं धार्‌यो,
बेणी री दो लट बांट बळी।
रण–देवी हाड़ी राणी री,
मां भारत री जय हो ! जय हो।[17]

इस कविता में कवि मेघराज मुकुल ने वीर छत्राणी का मातृभूमि की रक्षा के लिए बलिदान का उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किया है। हाडी रानी का यह आत्म बलिदान सर्वथा स्तुत्य है।

राधा– राधा के व्यक्तित्व की रमणीयसता ने शताब्दियों से आचार्यों को भक्ति, कवियों की वाणी को रस, गायकों के स्वरों का मधुरता, कलाकारों और शिल्पियों को सौन्दर्य दृष्टि दी है। एक ओर राधा के अतुलीय प्रेम का वर्णन कर, भगवान के साथ उनकी लीलाओं का चित्रण कर भक्त कवियों ने उनकी महिमा को अनुभव किया तो दूसरी ओर साहित्य के क्षेत्र में रूप, गुण, शील और औदार्य की ऐसी पूर्ण नारी मूर्ति साहित्य–जगत् में प्रतिष्ठित की गई है। पंडित बलदेव उपाध्याय ने इसके लिए कहा है–'भारतीय साधना और आराधना की परिणति का नाम है राधा।'[18] राधा को बचपन से ही नंद के घर में स्नेह मिला है, कृष्ण के साथ खेलते क्रीड़ा करते वे वयस्क होती है तो यही बाल स्नेह क्रमशः गंभीर प्रेम मे परिवर्तित होने लगता और वे सब समय कृष्ण के ध्यान में तन्मय रहने लगती है। वह ब्रज की एक गूजरी है। राजस्थानी में सत्यप्रकाश जोशी की रचना 'राधा' एक युगान्तरी रचना है। ये

गीतात्मक रूप में मिलती है। इसमें राधा के प्रेम और विरह को एक नयी दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। कवि इस काव्य में बीस कवितावां के मार्फत इसको विभाजित करते है, जिसमें मुरली, पैला'पैल, पूजा, दरसण, पिणघट, माखण, बदनामी, तिरस, ब्या'व अर जुद्ध कविताएं प्रमुख है।

कृति में प्रेमानुभूति भी बहुत प्रखर रूप में सामने आती है, श्रृंगार की अलौकिक ढ़ंग से वर्णित प्रेम और विरह को नई दृष्टि से प्रस्तुत करती है। राधा का प्रेम सौन्दर्यमय व्यक्तित्त्व अब भी नये जीवन मूल्यों के साथ कवियों की अन्तचेतना में सजीव है। राजस्थानी रंग में रंगी राधा का प्रेम विशुद्ध भाव का प्रतीक है। राधा में नारी मन की कोमलता का अभिलेख मिलता है और छेड़छांड़ की अनूठी छड़ां देखने को मिलती है। 'पिणघट' कविता में राधा की छवि ही अलग ही दिखती है–

अचपळां कान्ह !/जदै म्हारी मटकी फूटै
तो जाणै नेह रा बादळ बूठै/जाणै–प्रीत रो पांणी बरसै।।[19]

युद्ध विषयक राधा के युगान्तरी स्वर राजस्थानी कविता की समृद्धता का द्योतक है। राधा अपने मन मीत कान्हां को बताती है कि युद्ध हुआ तो ''भाई पर भाई करसी वार, आपस में मानखौ लड़ मरसी'' कहकर कान्हां को युद्ध से रोकने को कहती है। ये सभी बातें कवि जोशी जी ने राधा से कहलवायी है, जो बहुत मार्मिक है–

मन रा मीत कान्हां रे/जग
में जे मंडग्यो घमसांण, तौ
भाई पर भाई करसी वार/आपस
में लड़सी मरसी मानखो।[20]

जोशी जी का ये युद्ध विरोधी स्वर जहां एक ओर मानवतावाद से प्रेरित है। 'राधा' में ज्ञान पर प्रेम की विजय बतायी है। इस पूरी रचना में तीन स्थल है–द्वारका, मथुरा और युद्ध। इस काव्य में माधुर्य गुण की प्रधानता है। 'राधा' काव्य कृति में जोशी जी बहुत ही सीधे और सटीक शब्दों में भाईचारे और प्रेम के साथ रहने का अमर संदेश देते है। कवि ने राधा को प्रेम की एक समर्पित मूर्ति के रूप में चित्रित किया गया है।

इस प्रकार राजस्थानी काव्य की ये महान् नारी विभूतियां है, जिन्होंने राष्ट्र और साहित्य का गौरव बढ़ाया है। इन नारी पात्रों में प्रेम, सात्विकता, सतीत्व, एकनिष्ठता, स्वाभिमान, धैर्यता, पातिव्रत आदि गुण मिलते है। इन्होंने अपने आदर्श रूप से साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है। इनका चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल रहा हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *बीसलदेव रास : सं. डॉ. माताप्रसाद गुप्त, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1927, पृ. 110*
2. *वही, पृ. 157*
3. *ढोला मारू रा दूहा : सं. नरोत्तमदास स्वामी–सूर्यकरण पारीक–रामसिंह, राज. ग्रंथा., जोधपुर, दूहा 1*
4. *वही, दूहा 177*
5. *वेलि क्रिसन रुक्मिणी री : सं. नरोत्तमदास स्वामी, श्रीराम मेहरा एंड कंपनी, आगरा, पद 117*
6. *वही, पद 8*
7. *गोरा बादल पदमिणी चौपाई : सं. डॉ. उदयसिंह भटनागर, छंद 88, रा.प्रा.वि.प्रति.,जोधपुर, 1966, पृ. 12*
8. *वही, छंद 159, पृ. 21*
9. *वही, छंद 397, पृ. 61*
10. *महाभारत, आदि. 166/48–49*
11. *द्रौपदी : श्रीमंत कुमार व्यास, प्रथम सर्ग*
12. *द्रौपदी विनय : सं. डॉ. कन्हैयालाल सहल, सोरठा 2, राज. ग्रंथा., जोधपुर, 2012, पृ. 11*
13. *द्रौपदी विनय : सं. डॉ. कन्हैयालाल सहल, सोरठा 43, राज. ग्रंथा., जोधपुर, 2012, पृ. 24*
14. *सीताराम चौपाई : सं. अगरचंद–भंवरलाल नाहटा, खंड 9, दूहा 8, पृ. 276*
15. *रघुनाथ रूपक : सं. महताबचंद्र खारेड़, चतुर्थ विलास–अयोध्याकांड, नई दिल्ली, 1999, पृ. 116*
16. *वही, पंचम् विलास–वनकांड, पृ. 140*
17. *आधुनिक राजस्थानी काव्य : सं. रामेश्वरदयाल श्रीमाली, सा. अका., नई दिल्ली, 1991, पृ. 104–105*
18. *भारतीय वाड्मय में श्री राधा : पं. बलदेव उपाध्याय, पृ. 3*
19. *राधा : सत्यप्रकाश जोशी, पिणघट, राज. ग्रंथा, जोधपुर, 2013, पृ. 11*
20. *वही, जुद्ध, पृ. 51*

नवलगढ़ तहसील में कृषि आधुनिकीकरण के पर्यावरण पर प्रभावों का भौगोलिक अध्ययन

नरेश कुमार
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत कृषि प्रधान देश है। यहां की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है। इसमें राजस्थान राज्य की 60 से 70 प्रतिशत आबादी कृषि और कृषि आधारित उद्योगों पर निर्भर है। राज्य के क्षेत्र के संदर्भ में पहला स्थान होने के बावजूद, भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कृषि उत्पादन में पिछड़ी है। झुन्झुनू जिले की नवलगढ़ तहसील भी कृषि के सभी उपर्युक्त नवीन कारकों का अनुसरण करती हैं राज्य राजमार्ग पर स्थित होने के कारण कृषि ने भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से तहसील के आधुनिकीरण को प्रभावित किया हैं यद्यपि आधुनिक कृषि प्रथाओं के कारण उत्पादन में वृद्धि हुई है, लेकिन इसके कारण होने वाला नुकसान इस उत्पादन द्वारा प्राप्त लाभ से बहुत अधिक है। क्योंकि यह आधुनिक कृषि पर्यावरण और पारिस्थितिकी के लिए घातक साबित हो रही है, जिसके कारण भूमि प्रदूषण, जल प्रदूषण और वायु प्रदूषण जैसी समस्याएं पैदा होती हैं, हमारा पूरा पारिस्थितिकी तंत्र भी अव्यवस्थित हो रहा है, जो हमारे लिए विशेष रूप से खतरनाक साबित होगा कि प्रस्तुत शोध कार्य में विभिन्न पारिस्थितिक अध्ययन और पर्यावरण पर प्रभाव नवलगढ़ तहसील में रबी, खरीफ और जायद में उत्पादित कृषि फसलों के निरंतर संतुलित विकास के लिए किया गया है।

संकेताक्षर : *नवलगढ़ तहसील में कृषि पर पर्यावरण का अध्ययन, कृषि पारिस्थितिकी पर पर्यावरण का प्रभाव, कृषि की प्रकृति में परिवर्तन, रासायनिक उर्वरकों का उपयोग, कीटनाशकों का प्रभाव, कृषि में सिंचाई का उपयोग और आधुनिक कृषि।*

भारत जैसे विकासशील और प्रगतिशील देश में कृषि के हर क्षेत्र में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया 20वीं शताब्दी के पाचवें दशक से शुरू हुई। ज्यादतियों की समस्या के लिए नवीनतम कृषि प्रौद्योगिकी को अपनाने से कृषि के क्षेत्र में अपेक्षित सफलता मिली, जिसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है। इससे खाद्य आपूर्ति समस्या का निदान हुआ। कृषि मशीनीकरण, रासायनिक उर्वरकों, बीजों की उन्नत किस्मों, कीटनाशकों, भंडारण के नए तरीकों, परिवहन और संरक्षण ने सभी संभव बना दिए है। इस क्षेत्र में हरित क्रान्ति और कृषि आधुनिकीकरण एक ही सिक्के के दो पहलू है। नई तकनीक को अपनाकर, किसानों ने पुरातन कृषि से गहन और विस्तारित कृषि में स्थानांतरित कर दिया है, जिसके कारण कृषि के वाणिज्यिक स्वरूप का उदय हुआ है। प्रति हेक्टेयर उत्पादन बढ़ा। कृषि का कुल उत्पादन भी बढ़ा हैं यह हरित क्रान्ति के कारण संभव हुआ है जो सभी जैविक, रासायनिक और यांत्रिक तरीकों के परिणामस्वरूप आया हैं कुछ अर्थशास्त्रियों और कृषि वैज्ञानिकों ने हरित क्रान्ति को कृषि का आधुनिकीकरण कहा हैं परिणामस्वरूप हरित क्रान्ति के कारण कृषि उत्पादों का मात्रात्मक विकास हुआ है। लेकिन इसके परिणामस्वरूप भूमि पर रसायनों के दुष्प्रभाव ने कृषि क्षेत्र में गुणात्मक धारणा को जन्म दिया जिसका अध्ययन करना भी बहुत महत्वपूर्ण है। अत्यधिक सिंचाई के कारण मिट्टी खारा और क्षारीय हो गई। भूजल स्तर की गहराई बढ़ी है। ट्रैक्टर, बुलडोजर, जे.सी.वी. और अन्य यांत्रिक साधनों ने पर्यावरण असंतुलित बना दिया है और कई पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हुई जिनका मानव और कृषि दोनों पर प्रभाव पड़ा।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय

नवलगढ़ शहर झुन्झुनू जिले का उपखण्ड मुख्यालय है। 2011 की जनगणनानुसार झुन्झुनू जिले की नवलगढ़ तहसील की कुल आबादी 326663 है इनमें से 166750 पुरूष जबकि 159913 महिलाएं है। 2011 में नवलगढ़ तहसील में कुल 56430 परिवार निवास कर रहे थे। नवलगढ़ तहसील का औषत लिंगानुपात 959 है। नवलगढ़ तहसील में कुल जनसंख्या में से 135635 कार्य गतिविधियों में लगे हुए थे। 67.91 प्रतिशत श्रमिक अपने कार्य को मुख्य कार्य (रोजगार या 6 महीने से कम समय के लिए आजीविका प्रदान करने वाली सीमान्त गतिविधि में शामिल थे। में लगे 135635 श्रमिकों में से 41109 कृषक थे जबकि 5165 खेतिहर मजदूर थे। नवलगढ़ तहसील में कुल राजस्व गांव 109 है। कुल क्षेत्रफल 696.80 वर्ग किमी है। तहसील में कामकाजी आबादी 70 प्रतिशत से अधिक है इसके कारण नवलगढ़ तहसील में 70 प्रतिशत आबादी कृषि पर आधारित है और मुख्य व्यवसाय कृषि है।

नवलगढ़ तहसील में कृषि पर पर्यावरण का अध्ययन

पूंजीवादी औद्योगीकरण के साथ शहरी विकास, सड़क निर्माण और अन्य कार्यों के लिए कृषि भूमि का उपयोग नवलगढ़ में एक कठिन समस्या बन गई है। विकसित देशों में हर साल 3000 वर्ग किलोमीटर कृषि भूमि का उपयोग शहरी विकास के लिए किया जाता है। मनुष्यों की आर्थिक गतिविधियों के तहत गैर-कृषि उद्देश्यों के लिए 2 बिलियन हेक्टेयर भूमि का उपयोग किया जा रहा है। इस तरह हमारे गृह के भौगोलिक मानचित्र से उपजाऊ भूमि का एक पूरा महाद्वीप गायब होयगा है। हाल के वर्षों में यह उपजाऊ भूमि के गहन उपयोग के कारण अधिक तीव्र गति से बढ़ी है।

कृषि पारिस्थितिकी पर पर्यावरण का प्रभाव

नवलगढ़ तहसील में जनसंख्या की भारी वृद्धि के साथ-साथ खाद्यान्न की समस्या भी पैदा होने लगी है, क्योंकि कृषि में अधिक उत्पादन के लिए नए-नए प्रयोग किए जा रहे है जो हमारे पर्यावरण और पारिस्थितिकी और पर्यावरण प्रदूषण और पारिस्थितिकी असंतुलन को भी प्रभावित कर रहे हैं। समस्या यह है कि कृषि एक मौलिक परम्परा रही है, जिसके तहत किसान अपने खेत के जैविक और अजैविक घटकों (पर्यावरण) को संतुलित करके कृषि कार्य करता है। खेत अपने आप में एक पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र है। खेत में पौधे, जीवाणु, कवक, जीव (जैसे केंचुए) जैव-कारक और खनिज लवण, उर्वरक (प्राकृतिक और कृत्रिम) और अन्य रसायन अकार्बनिक घटक हैं। ये दोनों घटक (जैविक और अजैविक) प्रतिक्रिया करते हैं और जब इसकी मात्रा अधिक हो जाती है, तो कृषि भूमि प्रदूषित होने लगती है। वर्तमान समय में यह कृषि में नए प्रयोगों के साथ और बढ़ गया है।

कृषि का स्वरूप बदलना

पहले कृषि पारंपरिक साधनों से की जाती थी जिसमें अधिक समय लगता था लेकिन इससे पर्यावरणीय या पारिस्थितिक समस्याएं नहीं होती थी। लेकिन अच्छे उत्पादन के लिए कृषि में व्यापक मशीनीकरण था। जिन क्षेत्रों में कृषि में मशीनीकरण हुआ है, उन क्षेत्रों में पशुपालन का स्वरूप बदल गया है। कारण यह है कि पशु शक्ति के बजाय मशीनों का उपयोग किया जा रहा है। जिसके कारण पशुओं की संख्या कम हो रही है। परिणामस्वरूप कृषि में पांरपरिक उर्वरकों का उपयोग भी कम हो रहा है। जबकि गोबर की खाद से भूमि की गुणवत्ता में स्थायी वृद्धि होती है जिससे स्थायी उर्वरता होती है। यही नहीं, साधनों के उपयोग से खेत में जैविक घटकों का तेजी से विनाश होता है और खेत के जैविक घटक असंतुलित हो जाते है और उत्पादकता कम हो जाती है। इस प्रकार के प्रभाव चिराना, पररसरामपुरा, डूण्डलोद एवं मुकन्दगढ़ में देखे गए है एवं नवलगढ़ में गिरदावर सर्किल चिराना, पररसरामपुरा, डूण्डलोद एवं मुकन्दगढ़ गिरदावल सर्किलों में कृषि परिस्थितिकी पर्यावरण के प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहे है।

रासायनिक उर्वरकों का उपयोग

अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध उपयोग शुरू किया गया जिसके कारण पैदावार में काफी वृद्धि हुई लेकिन कृषि भूमि पर इसका दूरगामी प्रभाव पड़ा। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग के कारण भूमि की उर्वरता और कम हो जाती है। नवलगढ़ तहसील में मिट्टी में फास्फोरस की उपलब्धता के सर्वेक्षण से पता चला है कि 40 प्रतिशत भूमि में फास्फोरस कम है और 48 प्रतिशत गांवों में मध्यम है। इसी तरह जब नवलगढ़ तहसील में पोटेशियम का अध्ययन किया गया तो पाया गया कि हमारी भूमि के 22 प्रतिशत हिस्से में पोटेशियम कम

है और इसकी मात्रा 46 प्रतिशत में औसत है। 1980–81 में, हमारे देश में 5.5 मिलियन टन नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम का उपयोग किया गया था और 130 मिलियन टन भोजन का उत्पादन किया गया था। परिणामस्वरूप 10 मिलियन टन पोषक तत्व मिट्टी से बाहर निकल गए और केवल 50 लाख टन पोषक तत्व ही केन्द्रीय सामग्री के माध्यम से भूमि पर वापस जा पाए। रासायनिक उर्वरक के रूप में केवल 55 लाख टन तत्व ही पृथ्वी तक पहुंच सके जबकि 5 लाख टन तत्व पहूँच रहे और इस तरह से देश में हर साल 55 लाख टन पोषक तत्वों की कमी हो रही है ओर इस प्रकार उपजाऊ भूमि धीरे–धीरे बंजर भूमि में बदल रही है। इस प्रकार के प्रभाव चिराना, परसरामपुरा, डूण्डलोद एवं मुकन्दगढ़ में देखे गए है एवं नवलगढ़ में गिरदावर सर्किल चिराना, परसरामपुरा, डूण्डलोद एवं मुकन्दगढ़ गिरदावल सर्किलों में कृषि परिस्थितिकी पर्यावरण के प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहे है।

कीटनाशकों का प्रभाव

कृषि में उच्च पैदावार और खरपतवार और कीटों के लिए कीटनाशकों का उपयोग भी तेज गति से बढ़ा है। एक और जहां खरपतवार और कीट नष्ट हो गए है, कृषि उपज में वृद्धि हुई है वहीं दूसरी और इसके भयानक परिणाम भी परिलक्षित हो रहे है। खरपतवार और कीट एक कार्बनिक घटक हैं, जो अन्य कार्बनिक घटकों (फसलों) और अजैविक घटकां (खनिज लवण, खाद) के साथ काम करते है, और उपज नुकसान का कारण बनते हैं। इसे नष्ट करने के लिए किसान कीटनाशक रसायनों और खरपतवारनाशकों का उपयोग करता है। नतीजतन, खेत का अकार्बनिक घटक असंतुलित हो जाता हैं साथ ही वे मानव स्वास्थ्य को भी प्रभावित करते हैं कारण यह है कि कीटनाशक दवाएं पौधों के माध्यम से जीवों के शरीर में प्रवेश करती हैं और कई बीमारियों को जन्म दे रही हैं। एक अनुमान के अनुसार विकसित देशों में कीटनाशकों के उपयोग के कारण लगभग 4 लाख लोग जहर से प्रभावित हो रहे हैं जिनमें से लगभग 30 प्रतिशत भारतीय है।

भारत में पिछले 30 वर्षों के दौरान कीटनाशकों के उपयोग में 11 गुना वृद्धि हुई है। लकिन कीड़ों द्वारा इन कीटनाशकों के प्रतिरोध के विकास के कारण, कृषि उपज का नुकसान दो बार से अधिक बढ़ गया हैं लगभग यही स्थिति पूरी दुनिया के लिए है। F.A.O. के अनुसार, कीटनाशकों के प्रसार के कारण दुनिया में हर साल लगभग 10,000 लोग मर रहे है। इन रसायनों ने कृषि भूमि में इतनी मात्रा में प्रवेश किया है कि भूमि की मूल प्रकृति (जैविक और अजैविक घटकों पर आधारित) बदल गई है। कारण यह है कि जहां ये कीटनाशक फसल को पूरी तरह से कीटों से बचाने में सक्षम नहीं है, वहीं दूसरी और वे उन कीटाणुओं को भी मार देते हैं जिनमें उन कीड़ों को मारने की क्षमता थी। इसके साथ ही वे नए कीटाणुओं को भी जन्म दे रहे हैं जिनमें दवाओं को बेअसर करने की अपार क्षमता है। इस प्रकार के प्रभाव चिराना, परसरामपुरा, डूण्डलोद एवं मुकन्दगढ़ में देखे गए है एवं नवलगढ़ में गिरदावर सर्किल चिराना, परसरामपुरा, डूण्डलोद एवं मुकन्दगढ़ गिरदावल सर्किलों में कृषि परिस्थितिकी पर्यावरण के प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहे है।

कृषि में सिंचाई का उपयोग

कृषि में सिंचाई का उपयोग भी तेज गति से बढ़ा हैं जिसके लिए नवलगढ़ तहसील में ट्यूबवेल और ट्यूबवेल का निर्माण किया गया, जिसके कारण कृषि उत्पादन में विविधता के साथ–साथ उत्पादन भी बढ़ा है। लेकिन उनके दूरगामी भयानक परिणाम भी हो रहे है। अनियोजित सिंचाई के कारण कृषि क्षेत्र को भारी नुकसान हो रहा है। एक तरफ खेतों में पानी भर जाने के कारण एक तरफ कई बीमारियां हो रही है, दूसरी तरफ पड़ोसी इलाकों का भूजल स्तर भी ऊपर जा रहा है। कुओं के निर्माण के कारण मिट्टी का कटाव और भूस्खलन भी बढ़ रहा है और वन विनाश के कारण जानवरों का जीवन भी खतरे में है और कृषि भूमि भी नष्ट हो रही है। कुओं के घटते जल स्तर के कारण लोगों को विस्थापित होना पड़ता है जिसके कारण उनकी पूरी आजीविका बदल जाती है और ऐसे परिवारों में बेरोजगारी भी बढ़ जाती है। इस तरह पूरा पारिस्थितिकी तंत्र अस्त–व्यस्त हो रहा है।

आधुनिक कृषि का प्रभाव

नवलगढ़ तहसील में सघन कृषि करके एक ओर जहां कई तरह की फसलें उगाई जा रही हैं, वहीं दूसरी और वहां की जमीन में एन.पी.के., कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर और मैंगनीज, लोहा, तांबा, जस्ता, बोरान आदि जैसे अन्य पोषक तत्वों की कमी हो रही है, जिसके भयानक दीर्घकालिक परिणाम होंगे। नवलगढ़ तहसील में आमतौर पर 45 प्रतिशत भूमि में जिंक की कमी है 5 प्रतिशत भूमि मैंगनीज और 11 प्रतिशत भूमि में

लोहे की कमी है। इन सूक्ष्म तत्वों की कमी उन राज्यों में अधिक है जहां सिंचित भूमि अधिक है सघन खेती की जाती है और पैदावार अधिक ली जाती है। कृषि विकास में एक नया प्रयोग जैव प्रौद्योगिकी में किया जा रहा है जिसे यदि प्राप्त किया जा सकता है तो असीमित लाभ हो सकते है लेकिन अनजाने में इसके गंभीर परिणाम भूगतने पड़ सकते है। कारण यह है कि थोड़ी सी भी चूक पूरी जैव विविधता को खत्म कर सकती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि हम इस आधुनिक कृषि को पूरी तरह से अस्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि हमें बढ़ती आबादी के लिए भोजन की आवश्यकता हैं जरूरत इस बात की है कि हम आधुनिक कृषि और पारंपरिक कृषि के बीच समन्वय स्थापित करके कृषि करें। अंधे उर्वरकों, कीटनाशकों और अनियाजित सिंचाई के बजाय उनके उचित उपयोग पर ध्यान दें और स्वदेशी खाद और बीज का उपयोग करना न भूले। कीड़ों के उन्मूलन के लिए कीटनाशकों का उपयोग न करें और जैविक आधार पर उन्हें प्राकृतिक रूप में नष्ट न करने का एक समाधान ढूंढें। इस तरह, आधुनिक कृषि और पारंपरिक कृषि के बीच समन्वय स्थापित करके हम पर्यावरण और पारिस्थितिकी की रक्षा करते हुए विकास की दिशा सुनिश्चित कर सकते है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *कमलेश, एस.आर (1996): कृषि भूगोल, बिलासपुर संभाग में कृषि विकास का स्तर, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर।*
2. *कोली हरिनारायण (1996): पर्यावरण और मानव संसाधन, सूचक प्रकाशक, जयपुर (राज.)*
3. *कुमार, प्रमिला और श्री कमल शर्मा (1985): कृषि भूगोल, एम.पी. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।*
4. *पांडे, जेएन और एस.आर., कमलेश (1999): कृषि भूगोल, बसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर (उ.प्र.)*
5. *पांडे, जगल नारायण (1969): पूर्वी उत्तर प्रदेश, उत्तर भारत भूगोल जर्नल, गोरखपुर का संयोजन क्षेत्र।*
6. *शर्मा, बी.एल. (1979): क्रॉपिग लैंड यूज इंटेंसिटी एण्ड प्रोडक्टिविटी इन राजस्थान, भूदर्शन।*
7. *शर्मा, सुरेश चन्द्र (1971): जिला इटावा, उत्तर भारत भूगोल जर्नल में भूमि उपयोग।*

भारतीय जनजातीय समाज में शिक्षित युवा पीढ़ी का रूपान्तरण : एक अध्ययन

डॉ. भवशेखर
सहायक आचार्य, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय समाज जमीनी स्तर पर कई जटिलताओं के साथ जुड़ा हुआ है। एक बहुलतावादी देश में अनेक प्रकार की विशेषताएँ होती है। पृथक संस्कृति, पृथक भाषा, विशिष्ट परम्परा एवं रीति-रिवाज और भिन्न जीवन शैली यह सब मिलकर जनजातीय समाज के विशिष्ट स्वरूप को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। समाज के मूल विकास के केन्द्र में जनजातियाँ विद्यमान है। जनजातियों की कार्य संस्कृति श्रम-विभाजन का आधार हैं। जनजातीय व्यवस्था एवं प्रबन्धन प्रत्यक्ष रूप में प्रकृति से सम्बद्ध है। जनजातीय समाज में स्त्री की स्थिति मिश्रित प्रतीत होती है, जहाँ वह अर्थोपार्जन में विशिष्ट भूमिका में दिखती है वहीं समाजिक दृष्टिकोण से उसकी सीमाओं का ज्ञान होता है। किन्तु वर्तमान में जनजातीय युवाओं में शिक्षा के माध्यम से उनके सामाजिक परिवेश और परिवार विवाह जैसी सामाजिक संस्थाओं में हो रहे रूपान्तरण का प्रभाव है। जो कि जनजातीय मूल्यों, मानकों, तथ्यों एवं विश्वासों में हो रहे परिवर्तन को दर्शाता है। इन नवीन रूपान्तरणों ने युवाओं में आधुनिक तत्वों का समावेश कर दिया है, जो कि उनके विश्वासों एवं मूल्यों में पहले स्थित नहीं था।

संकेताक्षर : *जनजातीय युवा, मूल्य परिवर्तन, रूपान्तरण, सामाजिक संरचना, सामाजीकरण, आधुनिक तत्व।*

भारत एक बहुलतावादी राष्ट्र है, जहाँ पृथक-पृथक भाषा, संस्कृति, परम्परा, रीति-रिवाज एवं जीवनशैली विद्यमान है। भारतीय समाज के विकास के केन्द्र में जनजातियाँ स्थित है। जनजातीय जीवन स्वतः ही सबका ध्यान आकर्षित करता है। उनकी विशिष्ट जीवन शैली में समय के सापेक्ष परिवर्तन हो रहे हैं, जिसमें शिक्षित युवाओं की प्रमुख भूमिका है। अतः सर्वप्रथम जनजाति का अभिप्राय समझना आवश्यक प्रतीत होता है।

जनजाति की सर्वमान्य कोई परिभाषा नहीं है। इसके बावजूद भी यह कहा जा सकता है कि जनजाति व्यक्तियों का एक समूह है जो सामुदायिक जीवन में विश्वास रखते हैं। एक भूखण्ड पर निवास करते हैं, जिनकी एक भाषा होती है। सामान्य परम्परा और रीति-रिवाज होते हैं। लेकिन प्रत्येक जनजाति समूह का अपना स्वायत्त शासन होता है जिसकी बागडोर जनजाति के मुखिया या सरदार के हाथों में होती है। संकट के समय बाह्य शत्रुओं से एकजुट होकर सामना करते हैं। उदाहरण के लिए जाने कितनी बार जनजातियों के लोगों ने अंग्रेजों के दांत खट्टे किए हैं। छापामार आक्रमणों से अंग्रेजों को खदेड़ा है।

विशेषताएँ – उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर जनजातियों की अग्रलिखित सामान्य विशेषताएँ हो सकती हैं –

1. जनजाति अनेक परिवारों का एक समूह है।
2. इसकी अपनी एक संस्कृति है।
3. इनकी एक विशिष्ट भाषा है।
4. प्रत्येक जनजाति समूह का अपना एक नाम है।
5. यह एक भूखण्ड पर समूह के रूप में रहते हैं। इससे इनमें सामूहिक भावना होती है।

6. एक जनजाति प्रायः एक अन्तर्विवाही समूह होता है।

7. इसका अपना संगठन है। जिसमें कठोर अनुशासन होता है।

8. संगठन/संस्था का एक मुखिया सरदार होता है जिसके आदेशों का सभी पालन करते हैं।

9. जनजाति के सदस्यों में आदान-प्रदान के कुछ सामान्य नियम होते हैं और कुछ कार्यों को करने की मनाही भी, जिसे सभी सदस्यों को मानना पड़ता है।

10. इनका अपना एक राजनीतिक संगठन भी होता है।

जनजातियों का आर्थिक एवं सामाजिक ढाँचा

उपर्युक्त विवेचना जनजातियों के एक विशेष बुनियादी ढांचे की ओर संकेत करती है। यह उनका आर्थिक, सामाजिक ढांचा ही है जो स्त्री और पुरूष की भूमिका और स्थिति को रेखांकित करता है। कार्य संस्कृति श्रम विभाजन का आधार है, भले ही वह समाज जनजातियों का हो या महानगरीय औद्योगिक समाज। घर और श्रम विभाजन के दो मोटे-मोटे आधार हैं जिके आधार पर हम आकलन करते हैं कि अमुक समाज में स्त्री और पुरूष की आर्थिक-सामाजिक स्थिति क्या है ? यह इस बात पर निर्भर करता है कि कोई भी समाज आर्थिक रूप से कितना सुदृढ़ है और उसने किनी प्रगति की है। निश्चय ही सम्पन्न और प्रगतिशील समाज में नारी की स्थिति उन समाजों से बेहतर होगी जो निर्धन और पिछड़े हुए हैं। इस दृष्टि से जनजातीय समाज की महिलाओं की आर्थिक-सामाजिक स्थिति 62 वर्ष आजादी के बीत जाने पर दयनीय है। इसका मुख्य कारण है विकास की गति का धीमा होना। इसके साथ ही जनजातीय जीवन की यह विशेषता है कि वह अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में ही अपनी समस्त ऊर्जा लगा देते हैं। सीमित जीवन की आवश्यकताएँ होती है। उनकी महत्वाकांक्षा पास फटकती नहीं। डॉ. हरिशचन्द्र उत्प्रेती ने लिखा है कि ''वह अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति एक व्यवस्था के भीतर करता आया है। वह अपनी आवश्यकताओं के साथ-साथ अपने परिवार तथा कबीले के प्रति भी उत्तरदायी रहा ह। एक निश्चित व्यवस्था के तहत वह अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहा है। इसी प्रकार अर्थव्यवस्था उसकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। वास्तव में जनजातीय जीवन में संतुलन का अभाव स्पष्ट रूप से देखने में आता है। भविष्य के प्रति आश्वस्त होना तथा संघर्षमय जीवन व्यतीत करना ही उनका एक लक्ष्य बन जाता है। उनके औजारों, निवास स्थानों व अन्य भौतिक सामग्री से यह स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी वस्तुओं एवं आवश्यकताएँ उनकी स्वयं की उपलब्धि के साधनों तक ही सीमित हैं।''

वास्तव में जनजातियों की आर्थिक प्रकार्यात्मक व्यवस्था एवं प्रबंधन प्रत्यक्ष रूप में प्रकृति से जुड़ी हुई हैं। उनके सम्पूर्ण जीवन के चारों ओर प्रकृति, जंगल, पहाड़, नदी, शिकार, पशुपालन है। इसके अलावा जंगल के टुकड़ों पर अथवा पहाड़ की ढाल पर खेती करना है। नदियों से मछली पकड़ना है। जंगलों में जंगली जानवरों का शिकार करना है। इस तरह जनजातियाँ निर्वाह अथवा जीने के लिए उन प्राकृतिक साधनों का निरंतर दोहन करती रही हैं जिनसे उनके समूह की आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके। जनजातीय अर्थव्यवस्था की विशेषाताओं का उल्लेख करते हुए डी. एन. मजूमरदार और टी.एन. मदन ने निम्नलिखित बिंदुओं की चर्चा की है -

1. ''आदिम अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक साधनों के दोहन में तकनीकी उपकरणों के उपयोग का अभाव रहता है। परिणामतः निर्वाह की न्यूनतम आवश्यकताएँ भी काफी कठिनाई से पूरी हो पाती है।''

2. जनजाति के आंतरिक आर्थिक सम्बन्ध सदैव वस्तु विनिमय के रूप में प्रचलित होते हैं। मुद्रा का उपयोग न के समान ही होता है।

3. इसमें मुनाफा वृत्ति का प्रायः अभाव है। ऐसा पारस्परिक दायित्व, सहभागिता एवं समूहिक सुदृढ़ता की भावना से प्रेरित होकर किया जाता है।

4. सहकारी एवं सामूहिक उद्यम के लक्ष्य सशक्त रूप से विकसित होते हैं।

5. अर्थ-क्षेत्र में जोखिम कम उठाते हैं इसलिए स्थिरता अधिक और गतिशीलता कम होती है।

6. इनका कोई नियमित बाजार नहीं होता बल्कि साप्ताहिक हाट एवं सामयिक बाजार पाए जाते हैं।

7. आर्थिक क्रियाएँ उपभोक्ता वस्तुओं पर केन्द्रित

होती है। उत्पादक वस्तुओं को न बचाकर रखा जाता है न संग्रहण किया जाता है और न विनिमय ही।

8. लिंगीय आधार पर श्रम विभाजन का व्यापक प्रचलन पाया जाता है।

9. संपत्ति पर स्वामित्व व्यक्तिगत अथवा संयुक्त होता है।

मजूमदार और मदन की उपर्युक्त जनजातीय अर्थव्यवस्था का कदापि यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि वे सम्पूर्ण समाज में अलग-थलग रहते हैं। बाह्य समाज से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता है। वे भी सामाजिक प्राणी हैं। उन पर भी बाह्यजगत के क्रियाकलापों का प्रभाव पड़ा है। हीरालाल शुक्ल लिखते है, ''इसका अर्थ यह नहीं है कि आदिवासी पूरी तरह अलग अस्तित्व रखते थे और उनकी सत्ता विलगाव की थी। जातियों के साथ उनके मेलजोल से अनेक महत्वपूर्ण विकास हुए। आदिवासी गाँव के साप्ताहिक बाजारों के आर्थिक 'नेटवर्क' में दीर्घकाल से जुड़े रहे हैं जहाँ उनका सम्पर्क जाति-संरचना से जुड़े हुए हिन्दु कारीगरों से था। सांस्कृतिक धरातल पर यह शिल्पी जातियाँ गाँव के स्तर पर बहुत अधिक सक्रिय थी। आदिवासियों के साथ उनका आर्थिक गठबंधन, उनके धार्मिक क्रियाकलापों, उत्सवों तथा कलाओं में प्रतिबिम्बित होता है। इसलिए आज आदिवासी धर्म और हिन्दू धर्म के बीच भेदभाव की कोई सुस्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती है।''

परिवार, श्रम विभाजन और महिला की स्थिति

श्रम विभाजन का मूल स्त्रोत परिवार को ही कहा जा सकता है क्योंकि इसके स्थायिव के साथ परिवार के सदस्यों में विभिन्न प्रकार के कार्यों का विभाजन किया गया। परिवार के प्रत्येक सदस्य को उसकी योग्यता और क्षमता के आधार पर उत्तरदायित्व दिये जाते हैं। विश्व का कोई ऐसा देश नहीं होगा जहाँ परिवार के सदस्यों को अलग-अलग तरह के कार्य करने पड़ते हों। ठीक उसी तरह जनजातीय परिवार के सदस्यों को भी अपनी जिम्मेदारी पूरी करनी होती है चाहे वह पुरूष हो अथवा स्त्री। वास्तव में मनुष्य के समाजीकरण की प्रथम पाठशाला परिवार है। समाज की विभिन्न चीजों को वह परिवार से ही सीखता है। साजिक सम्बन्धों के ताने-बाने से जहाँ वह परिचित नहीं होता है वहीं तीज-त्यौहार, परम्परा, रीति-रिवाज, जनजातीय धर्म आदि से अवगत होता जाता है। इससे सम्बन्धित उत्तरदायित्वों को भी निभाने का प्रयास करता है।

परिवार यदि समाज की रीढ़ है तो नारी उसकी जीवन शक्ति। भले ही जनजातीय समाज का परिवार हो या महानगरीय समाज का। महिला की माँ के रूप में एक केन्द्रित स्थिति है। भले ही परिवार का कर्ता पुरूष हो पर बगैर स्त्री के परिवार के कार्य पूर्ण होते नहीं हैं। जनजातीय परिवार में स्त्री की स्थिति संयुक्त परिवार से भिन्न है। जनजातीय परिवारों के दो रूप मोटे रूप में देखने को मिलते हैं - मातृसत्तात्मक परिवार एवं पितृसत्तात्मक परिवार।

मातृसत्तात्मक परिवार के केन्द्र में स्त्री होती है। उसका परिवार पर एकाधिकार होता है। विवाह के पश्चात् पति पत्नी के घर में ही रहता है जो कुछ वह अर्जित करता है वह पत्नी को देता है। वह ही घर की समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण करती है। मातृसत्तात्मक परिवार में क्योंकि स्त्री की स्थिति काफी अच्छी होती है। जनतातीय परिवारों में बहुपति का भी प्रचलन है। इसलिए स्त्री को पूर्ण स्वतंत्रता है कि वह अपनी पसंद से अपने जीवन साथी को चुने। पतियों का चुनाव स्वयं करती है। प्रत्येक पति को बारी-बारी से अपने पास रहने की अनुमति देती है। इस परिवार में संपत्ति का अधिकार पुत्र न होकर पुत्री का होता है। मातृसत्तात्मक परिवारों में स्त्रियों की आर्थिक-सामाजिक व धार्मिक स्थिति काफी ऊंची होती है। जनजातीय समाज में देवियों की पूजा होती है, देवताओं की नहीं।

जनजातीय समाज में स्त्री श्रम-विभाजन

किसी भी देश व समाज का आकलन स्त्री की आर्थिक-सामाजिक स्थिति से किया जाता है। भारत एक तथाकथित ऐसा देश है जिसे आधुनिक और प्रगतिशील की संज्ञा दी जाती रही है। बल्कि हम इससे आगे निकल कर यह कहने लगे हैं कि हम उत्तर-आधुनिकवाद और भूमंडलीकरण की ओर तीव्रता से अग्रसर हो रहे हैं। जबकि आधी जनसंख्या हाशिये पर खड़ी है। जनजातियों में स्त्री की स्थिति काम के बोझ से लदी है। वह घर का भी काम करती है और बाहर का भी। ग्रामीण संयुक्त परिवार की तरह नहीं है कि परिवार के कार्यों तक ही सीमित है। पुरूष बाहर का काम करता है।

मातृसत्तात्मक परिवारों को यदि छोड़ दिया जाए जिनकी संख्या बहुत कम है। इनमें स्त्री की स्थिति बहुत अच्छी

है। वही परिवार के सदस्यों को विभिन्न प्रकार के कार्यों को करने की जिम्मेदारी सौंपती है। पितृसत्तात्मक परिवारों में जनजातीय महिलाएँ घर और बाहर दोनों प्रकार के कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए वह घर में रहकर रस्सी बनाती है। डलिया बनाती है। घर का सारा काम करती है। जो समान बनाया जाता है उसे हाट या बाजार ले जाती है। वह खेतों में बुआई और कटाई का भी काम करती है। मछलियों का शिकार करती है। संथाली जनजाति में स्त्री पुरूष दोनों कृषि कार्य में सहभागी बनते हैं। ''झारखण्ड के आदिवासी क्षेत्र में खेती के लिए मदिति प्रथा का प्रचलन है। इस प्रथा के तहत किसान आपसी समझ से खेतीहर मजदूरों की अदला–बदली करते हैं। इन खेतीहर मजदूरों के पुरूषों की तुलना में औरतों की तादाद ज्यादा है और कृषि उत्पादन में भी उनका योगदान अधिक है।''

आदिवासी संस्थाओं की अपनी विशेषताएँ एवं दशाएँ रही हैं। आदिवासी समाजों में परिवर्तन पर हुए अध्ययन यह बताते हैं कि परिवर्तन की कई शक्तियों ने उनकी संस्थाओं पर प्रभाव डाला है। समाजिक परिवर्तन एक व्यापक तथा अवश्यंभावी प्रक्रिया है। परिवर्तन प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान पर होता रहता है। आधुनिक जीवन सामाजिक परिवर्तनों से पूर्ण है। परिवर्तन मनुष्य जीवन का एक भाग ही बन गया है। विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ भी इन परिवर्तनों से प्रभावित हुई हैं और उनके स्वरूप भी बदले हैं, जिसे संस्थागत रूपान्तरण के रूप में देखा जा सकता है। संस्थागत रूपान्तरण से अभिप्राय है कि संस्थाओं के कुछ मूल्यों एवं मानकों में बदलाव है, किन्तु साथ ही आधारभूत विशेषताएँ भी मौजूद हैं। इस लेख के उद्देश्य के अनुसार रूपान्तरण का अर्थ सामाजिक परिवर्तन की वह दिशा जो संस्थाओं के पारस्परिक एवं प्रचलित अर्थों को बदलती है। संस्थागत उद्देश्यों एवं प्रघटनाओं को देखने का यह नया तरीका है। इसका यह भी अर्थ है कि संस्थागत व्यवहारों एवं स्वरूपों में परिवर्तन आया है।

रूपान्तरण की प्रक्रिया

भारतीय समाज में भी विभिन्न परम्पराओं के अपने–अपने रूपान्तरण हैं। यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो ऐसे रूपान्तरण अलग–अलग दिखाई दे सकते हैं। (स्पाहन, 1966)। रूपानतरण की सारी प्रक्रिया को समझने के लिए चार स्पष्टीकरण आवश्यक हैं। पहला, सूक्ष्म (Micro) स्तर पर होने वाले परिवर्तनों के सूत्र वृहद् (Macro) आधारों में निहित होते हैं अर्थात् निम्न स्तर प जो परिवर्तन हमें दिखाई देते हैं उनके सूत्र वृहद् स्तर पर हो रहे आधारों के साथ जोड़े जा सकते हैं। दूसरे, अब जो सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं, वे आधुनिकीकरण के रूप में अधिक हैं और अब आधुनिकीकरण विश्वव्यापी है। सारे रूपान्तरण इस प्रकार आधुनिकीकरण और विश्वव्यापी परिवर्तनों के साथ जुड़े हुए हैं। तीसरे, रूपान्तरण की यह प्रक्रिया विश्वव्यापी होने के नाते नई सामाजिक आकृतियों के निर्माण में लगी हुई है। हर जगह की अपनी परम्पराएँ है और यह आवश्यक नहीं कि ये परम्पराएँ सभी जगह एक सी हों। इसीलिए एक ही समाज में रूपान्तरण के अलग–अलग रूप दिखाई पड़ सकते हैं। चौथे, इसलिए इन निर्मित आकृतियों की तुलनात्मक विवेचना की जा सकती है।

आधुनिक भारत में शिक्षा परिवर्तन एवं रूपान्तरणों के लिए एक बड़ी शक्ति है। भारत की स्वतंत्रता से पहले ही इस बात पर जोर दिया जाने लगा था कि स्वतंत्रता के बाद देश की शिक्षा की स्थिति सुधारी जाएगी। गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा की नींव डाली थी। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा प्रसार के लिये बड़ी योजनाएँ लागू की गई। अभी हाल में स्थपित 'शिक्षा का अधिकार' संविधान द्वारा भारत के नागरिकों को दिया गया एक ऐसा ही अधिकार है जिससे यह आशा की जाती है कि वंचित तथा गरीब लोग भी शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। किसी भी देश के विकास के लिये शिक्षा इसलिए भी आवश्यक है, जिससे गुणात्मक जनशक्ति विकसित हो सके और उसे राष्ट्र कल्याण के साथ जोड़ा जा सके।

शिक्षा के द्वारा रूपान्तरण

आदिवासियों के लिए शिक्षा के अपने दृष्टिकोण हैं। यह विश्वास किया जाता है कि आदिवासियों को आर्थिक दृष्टिसे बढ़ाना चाहिए और उनकी अपनी सम्पन्नता तथा प्रगति के लिए उन्हें शिक्षित करना आवश्यक है। प्रायः यह कहा गया है कि आदिवासियों को अपने ही परिवेश में रहने देना चाहिए ताकि वे अपने जीवन को अपने ढंग से जी सकें। यही उनके लिये उचित व्यवस्था होगी (एल्विन, 1944)। लेकिन दूसरी ओर एक मत यह रहा है कि आदिवासियों को समाज के दूसरे हिस्सों के साथ पूर्ण आत्मसात कर देना चाहिए (घुर्ये, 1959)।

आदिवासी समाज में शिक्षा का उनके जीवन से सीधा सम्बन्ध है। इसी सम्बन्ध के कारण वे शिक्षा और

औद्योगिकी शिक्षा का आदिवासियों के लिए महत्व है। मानसिकता या वैचारिक परिवर्तनों की एक श्रृंखला इससे तैयार हो सकती है लेकिन इससे लिये आदिवासी जीवन को शिक्षा के साथ जोड़ना पडेगा (भट्टाचार्य, 1959)।

वैसे भी आदिवासियों को साधारण समाज से संबोधित किया गया है। सभ्य जटिल समाजों के विपरीत आदिवासी समाज में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध हैं, एकाकार सम्बन्ध हैं तथा पुरातन आर्थिक आधार है। मानवशास्त्रियों ने आदिवासी समाजों के कई पक्षों की चर्चा की है। यह बात जरूर है कि साधारण से साधारण आदिवासी समाज असमानता से छूटा हुआ नहीं है। यह बात दूसरी है कि हम उन्हें अपने हिसाब से आंकना शुरू करते हैं। और उनकी समीक्षा करते हैं (सिंह, 1995) लेकन इसका यह अभिप्राय नहीं कि आदिवासी समाज में परिवर्तन नहीं हो रहा। धीरे–धीरे आदिवासी समाजों में अभिजन वर्ग तैयार हो रहा है। (दोषी, 1986)। विकास प्रक्रियाओं के कारण एक किसानी और मध्यम वर्ग पैदा हुआ है (शाह, 1984)। ऐसे ही बहुत से परिवर्तन मानवशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने अंकित किये हैं।

आदिवासी समाजों में शिक्षा का प्रसार हुआ है। विशेष रूप से लड़कियों ने उच्च शिक्षा में प्रवेश किया है। पूर्व उद्धृत दोषी के तथ्यों को यदि स्वीकार करें तो उच्च शिक्षा के माध्यम से अभिजन वर्ग या वर्ग जैसी परिस्थितियाँ पैदा हुई हैं। यह संभावित है कि लड़कियों की उच्च शिक्षा ने उनकी अपनी मान्यताओं को प्रभावित किया हो, विशेष रूप से उन संस्थाओं के सम्बन्ध में तथा उनके अपने जीवन के भविष्य के संदर्भ में, जिसके बारे में उनकी कल्पनाएँ हैं। यह पहले कहा जा चुका है कि वृहद् स्तर पर हो रहे उद्देश्यों के प्रभाव निम्न स्तर के साथ जुड़े रहते हैं। निश्चित ही इनका असर मूल्यों और मान्यताओं पर पड़ता है।

राजस्थान में बहुत से आदिवासी युवा उच्च शिक्षा के लिये महाविद्यालयों के छात्रावासों में रहते हैं। महाविद्यालय और छात्रावास उन्हें शेष समाज के साथ सम्पर्क भी स्थापित कराते हैं।

पारिवारिक व्यवस्था में रूपान्तरण

परिवार सभी समाजों की प्राथमिक इकाई है। मनुष्य का जन्म और समाजीकरण परिवार में ही होता है। दक्षिण राजस्थान का आदिवासी परिवार सामान्यतः सभ्य समाजों के संयुक्त परिवार जैसा नहीं है। जैसे ही वयस्कता प्राप्त होती है, विवाहित दम्पति को अलग कर दिया जाता है और वह अलग घर में रहता है। यहीं पर सम्पत्ति का विभाजन हो जाता है। परिवार के विवादों का फैसला गाँव के लोग करते हैं। पति और पत्नी के बीच विवाद की स्थिति में भी हस्तक्षेप गाँव के पारम्परिक नेतृत्व से ही आता है। भील, गरासिया और डामोर सभी आदिवासी व्यवस्थाओं में यह क्रम प्रचलित है (दोषी, 1992)। परिवार में उपलब्ध नये मूल्यों में लिंग सम्बन्धी नैतिकता रूपान्तरित हो रही है। भौतिकवादी एवं व्यक्तिवादी दर्शन पर प्रभाव बढ़ रहा है। प्रेम में स्वतंत्रता, व्यक्तिगत आनन्द एवं प्रयोगात्मक विवाह आदि नये दर्शन परिवार को अनेक प्रकार से प्रभावित कर रहे हैं।

युवा आदिवासी मानते है कि वर्तमान में परिवार संस्था में संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक दोनों ही प्रकार के रूपान्तरण हो रहे हैं। पूर्व में परिवार की स्थापना कुछ प्रकार्यों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये हुई थी लेकिन वर्तमान में इसकी संरचना भी रूपान्तरित हो रही है और प्रकार्य भी। असल में आदिवासी समाज के अन्य समाजों के साथ संपर्कों ने सोच को बदला है। पहले परिवार एक ही व्यवसाय में संलग्न था पर शिक्षा के प्रसार के साथ परिवार का प्रत्येक व्यक्ति अलग–अलग व्यवसाय चुनना चाहता है और व्यवसाय करता है। उच्च शिक्षा के बाद लड़कियाँ शिक्षिका बनना चाहती है। बच्चों की शिक्षा, लालन–पालन तथा उनके समाजीकरण की प्रक्रिया भी बदली है।

आज विशेषीकरण का युग है। युवा इस परिवर्तन के लिये शिक्षा, टेलीविजन, पश्चिमीकरण एवं व्यक्ति की आकांक्षाओं में वृद्धि आदि अनेक कारणों को जिम्मेदार मानती है। शिक्षित युवा वर्ग सामाजिक एवं पारिवारिक बन्धनों में परिवर्तन चाहता है। इस कारण से पीढ़ीगत भेद बढ़ रहा है। यह तनाव का भी कारण बन रहा है। प्रौढ़ एवं वृद्ध पीढ़ी मूल्यों में परिवर्तन नहीं करना चाहती तथा शिक्षित युवा तार्किक दृष्टिकोण से मूल्यों को बदलना चाहता है।

आदिवासी परिवारों की अपनी संरचनाएँ हैं, जिनकी अन्य समाजों से तुलना नहीं की जा सकती। राजस्थान के जिन क्षेत्रों से छात्र–छात्राएँ अध्ययन करने आते हैं उनका सामाजिक परिवेश उस क्षेत्र के जाति परिवेश से अलग है। आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा का विस्तार हुआ है और धीरे–धीरे इन क्षेत्रों में भी शिक्षित युवा

छात्र–छात्राओं की संख्या बढ़ने लगी है। परिवार जैसी संस्था में मूल्य, भूमिका एवं उनकी प्रस्थिति का परिवर्तन एक नया परिवर्तन है। आधुनिक मूल्यों का रूपान्तरण इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसी सम्पर्क ने परिवार में नये मूल्यों को भी प्रवेश करा दिया है। आदिवासी परिवारों में सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को अवश्य प्रभावित करेंगें।

विवाह के मूल्यों में रूपान्तरण

आदिवासी विवाह सम्बन्ध जवानी और वयस्कता प्राप्त करने से सम्बन्धित है। राजस्थान के आदिवासियों में विवाह का दर्शन अन्य समाजों जैसा नहीं है। हिन्दू विवाह एक पवित्र बन्धन है जिसे तोड़ना अच्छा नहीं समझा जाता। मुस्लिम विवाह एक समझौता है। आदिवासी विवाह में ऐसे किसी दर्शन का समावेश नहीं है। कृषि परिवारों की तरह आदिवासी परिवारों को श्रमिक चाहिए और इसकी पूर्ति विवाह से होती है। विवाह या तो नियमित विवाह है या भाग कर किया हुआ विवाह है। प्रत्येक आदिवासी के लिये विवाह करना अनिवार्य है। यदि विवाह नही होता है तो उसकी बदनामी है। विवाह तोड़ना आसान है। नाता, वधू–मूल्य की प्रथा है जो परिवार की प्रस्थिति के अनुसार तय होती है। गैर आदिवासी के साथ विवाह सम्बन्धों की कोई प्रथा नहीं है (दोषी, 1992)।

वर्तमान में प्रजातंत्र और आधुनिकता के संदर्भ में विवाह की बुंनियादी संरचना में भी रूपान्तरण हुआ है। स्वतंत्र भारत में शिक्षा के प्रसार, रोजगार के नये अवसर, नगरीकरण, विवाह उत्तरदायित्व एवं कुप्रथा विरोधी कानूनों के प्रभाव के कारण भारतीय समाज में महिलाओं की परम्परागत स्थिति में व्यापक बदलाव आया है। यद्यपि आदिवासी विवाह की मूल संरचना नहीं बदली है पर पढ़ी–लिखी युवतियों की प्राथमिकता पढ़े–लिखे युवकों की हो गई है। वैसे भी भावी जीवन साथी शिक्षित हो, ऐसी भावना बलवती हुई है। दापा विवाह का प्रचलन भी है। यह आदिवासियों में होने वाला प्रेम विवाह ही है। इस विवाह में लड़की, लड़के के घर पर भागकर आ जाती है और लड़के के घर वाले उसका विवाह खेत में जाकर करते है। इस विवाह में लड़के द्वारा लड़की के घरवालों को कुछ धन भी देना पड़ता है जिसे दण्ड कहा जाता है। आदिवासी में पति–पत्नी के बीच बार–बार मतभेद होने पर पंचो द्वारा मामले को सुलझाया जाता है। उनसे शर्तो के पालन करने की अपेक्षा की जाती है। यदि वे इन शर्तो का पालन नहीं करते हैं तो तीन बार ऐसा न करने पर उनके बीच सम्बन्ध विच्छेद माना जाता है। वर्तमान में इन आदिवासियों में भी तलाक की दर बढ़ी है। आदिवासियों में पुनर्विवाह का भी प्रचलन है। लड़के एवं लड़की दोनों का ही पुनर्विवाह करने की स्वतंत्रता है।

विवाह के मूल्यों में परिवर्तन का एक परिणाम लड़कियों के लिये उपयुक्त साथी के अभाव के रूप में देखने में आया है। खासतौर से लड़कियों में शिक्षा का बढ़ना और लड़कों में शिक्षा का न होना एक विसंगति पैदा कर रहा है। लड़कियों की आकांक्षा शिक्षित लड़कों की आकांक्षा और शिक्षित लड़कों की शिक्षित लड़कियों की बन रही है। आज से कुछ वर्षो पूर्व यह विसंगति नहीं थी पर अब प्रचलन में देखा जा रहा है।

आजीविका के साधनों का रूपान्तरण

आज का युग आर्थिक प्रतिस्पर्धा का युग है। वह व्यक्ति सफल माना जाता है जो आर्थिक रूप से सुदृढ़ है। आज आदिवासी समुदाय भी शिक्षा के क्षेत्र में जागरूक हो गया है। विभिन्न सरकारी योजनाओं का लाभ लेकर यह समुदाय भी अपने बच्चों को शिक्षित करने में रूि लेने लगा है। जिससे इस समुदाय में भी शिक्षा दर बढ़ी है। तकनीकी विकास एवं प्रतिस्पर्धा ने युवाओं के समक्ष करियर को बहुत बड़ी चुनौती बना दिया है। आज युवा शीघ्रताशीघ्र सफलता चाहता है तथा ऐसा करियर चुनना चाहता है, जिससे उसे पैसा बहुत प्राप्त हो।

शिक्षा के बाद युवा एक करियर चाहते हैं, जो पहले की अवस्था से भिन्न है। आरक्षण का लाभ उन्हें मिला है और जो लाभ सरकार ने उन्हें दिये हैं, उन्हीं के अन्तर्गत वे शिक्षा के इस स्तर तक पहुँचे हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि शिक्षा का एक अर्थ वे दरवाजे खोलना है, जो अशिक्षा के कारण उनके लिये अब तक बन्द थे। आरक्षण ने पहले की व्यवस्था में एक बड़ा रूपान्तरण किया है। यह एक संवैधानिक व्यवस्था है जिसका प्रयोग व्यापक है। छात्राएँ करियर निर्माण में इसे बड़ी सहायता मानती हैं। राजनीति, संसद, विधान सभा एवं पंचायतों में भी नेतृत्व करने के विशेष अवसर इन्हें प्राप्त हुए हैं। विभिन्न सरकारी योजनाओं ने भी उनमें जागरूकता लाने में महत्ती भूमिका निभायी है। आदिवासी समाज में परम्परागत व्यवसायों के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों के दरवाजे इससे खुले हैं, जो कि एक महत्वपूर्ण रूपान्तरण है। इस रूपान्तरण में भी शिक्षा का बहुत बड़ा हाथ है।

निष्कर्ष

बाह्य सम्पर्क किसी भी समाज में रूपान्तरण की प्रक्रिया स्थापित कर सकता है। आदिवासियों के परिवर्तन की सारी योजनाएँ वृहद् स्तर पर तैयार की गई योजनाओं से सम्बन्धित हैं। आदिवासी समाज के लिये यह सब कुछ नई प्रवृत्तियों का जन्म है। उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे इन युवाओं में परिवर्तन की ओर झुकाव, विशेष रूप से, शिक्षित लोगों का झुकाव एक नई परिस्थिति है। इसके कई परिणाम सम्भव है। जैसे संस्थाएँ आधुनिक मूल्यों के अनुसार रूपान्तरित होने लगें। दूसरा, यह वर्ग आधुनिक व्यावसायों का वर्ग होगा। आधुनिक व्यवसायों के वर्गों की तरह उन्हें अपनी जीवन की नई शैलियों को अपनाना होगा। नये आधुनिक मूल्यों को भी उन्हें स्वीकारना होगा जो कि अपने आप में एक बड़ा रूपान्तरण होगा। यह भी संभव हो सकता है कि उभरता यह नया वर्ग आदिवासी समाज में नये तनाव पैदा करे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *भट्टाचार्य, के.पी. एजूकेशन इन आदिवासी (सम्पादित डी.के. बोस), भारत सरकार प्रकाशन, नई दिल्ली, 1959*
2. *घुर्ये, जी एस, दी शिडयूल्ड ट्राइब्स, पापुलर प्रकाशन, मुम्बई, 1959*
3. *दोषी, एस एल एवं व्यास, एन एन दी, ट्राइबल्स ऑफ राजस्थान, सनशाइन ऑन दी अरावली, हिमांशु पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1992*
4. *दोषी, एस एल, एथनिसिटी एण्ड दी भील्स इन राजस्थान, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1986*
5. *कुमावत, ललित, पंचायती राज. एवं वंचित महिला समूह का उभरता नेतृत्व, क्लासिक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004*
6. *मजूमदार, डी.एन. इन्ट्रोडक्शन टू सोशल एन्थ्रोपोलॉजी, एशिया पब्लिकेशंस, मुंबई, 1963*
7. *शाह, घनश्याम, इकानोमिक डिफर्नशिएशन एण्ड ट्राइबल आईडिन्टिटी, अजन्ता प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984*
8. *सिंह, के.एस., इन इक्वालिटी इन ट्राइबल सोसायटी ऐमरजिंग ट्रेन्डस इन महाराणा सवयूर एण्ड इंदिरा मुंशी (सम्पादित) कोनट्रडिक्शन्स इन इंडिया सोसाइटी, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1993*
9. *वेरियर, एल्विन, दी ऐबरओरिजनल, मिमफोर्ड-आक्सफोर्ड, 1994*
10. *विल्फ्रेड, स्पोहन, सोशयल ट्रान्सफोर्मेशन इन ग्लोबल, हिस्टोरियकल, कम्पेरेटिव पर्सपेक्टिव्स एण्ड सोशल ट्रोन्सफोर्मेशन, इन्टरनेशनल सोसियोलोजी ऐसोसिएशन रिसर्च कमेटी, 09 न्यूज लेटर, 1996*

प्रेमचंद की कालजयी रचनाः बूढ़ी काकी

डॉ. सविता सिंह
सहायक प्राध्यापक, पं. हरिशंकर शुक्ल महाविद्यालय, कचना, रायपुर (छत्तीसगढ़)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

'बूढ़ी काकी' कहानी को प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानी माना जा सकता है। इस कहानी में मुख्य चार पात्र बूढ़ी काकी, पंड़ित बुद्धिराम, उनकी पत्नी रूपा तथा उनकी बेटी लाडली है। प्रेमचंद ने बुढ़ापें को बचपन का पुनरागमन माना है। बूढ़ी काकी में जीभ स्वाद के सिवा कोई इच्छा न थी। परन्तु उसकी यह इच्छा बुद्धिराम और उसकी पत्नी रूपा पूरी नही करते थे। बुद्धिराम के बड़े बेटे के तिलक में सभी मेहमानों को भोजन दिया जाता है परन्तु घर की वयोवृद्धा को भोजन नहीं दिया जाता। बूढ़ी काकी के द्वारा मेहमानों के जूठे पत्तल से जूठन को उठाकर खाना ऐसा कारूणिक दृश्य पैदा करता है जो हमारे मानस पटल में अंकित हो जाता है। यह कहानी हमें वृद्धों के प्रति सम्मान, करूणा, संवेदनशीलता का व्यवहार करने की प्रेरणा देती है।

संकेताक्षर : *बूढ़ी काकी, प्रेमचंद, कहानी, बुद्धिराम, रूपा, वृद्धा, पूड़ियाँ, बुढ़ापा, मार्मिक दृश्य, स्वाद, भोजन, क्रोध।*

कहानी तथा मनुष्य का संबंध पुरातन काल से है। वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत सभी में हमें कहानियाँ मिलती है। ये कहानियाँ हमें गौरवपूर्ण अतीत से परिचय कराती है साथ ही आदर्श जीवन जीने का ढ़ंग भी बताती है। दादी–नानी के किस्से भी कहानी का एक अंग है जिसे हम बड़ें चाव से बचपन में सुना करते थे। हिन्दी कहानी आधुनिक युग की देन है। हिन्दी कहानी की शुरूआत 20वीं सदी से माना जाता है। बहुत से साहित्यकार हिन्दी की प्रथम कहानी इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' को मानते है वहीं कुछ साहित्यकार किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' को मानते है। 'इंदु', 'सरस्वती' तथा 'हंस' पत्रिका ने हिन्दी कहानी के विकास में प्रमुख योगदान दिया।

प्रेमचंद पूर्व की कहानियों में आदर्शवाद, भावुकता, अलौकिकता व चमत्कारिकता की भरमार थी। प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी को एक नयी दिशा दी। जब भी कहानी की बात होती है तो प्रेमचंद का नाम सबसे ऊपर आता है। प्रेमचंद की कहानियों व उपन्यासों ने मानव समाज व जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है। प्रेमचंद ने जो देखा उसे अपनी कहानियों व उपन्यासों में लिखा। प्रेमचंद की रचनाओं में ग्रामीण जीवन की झलक मिलती है। प्रेमचंद ने आम आदमी के दुःख–दर्द को अपनी रचनाओं में अंकित किया है। जमींदार, महाजन व पुरोहित वर्गो को शोषक के पर्याय के रूप में अपनी रचनाओं में उन्होनें दर्शाया है। पुरातन काल से ये शोषक वर्ग अस्तित्व में हैं। ये कृषक व कमजोर वर्ग का शोषण करते है। प्रेमचंद की कहानी संघर्ष की कहानी है। उनकी रचनाओं में जहाँ शोषण के विरुद्ध विद्रोह की भावना मिलती है वहीं निंबल वर्ग की असहाय दीनता, नारी की गिरती स्थिति का भी वर्णन है। कफ़न, पूस की रात, ईदगाह, पंच परमेश्वर, बूढ़ी काकी तथा दो बैलों की कथा इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ है। प्रेमचंद की कुछ कहानियाँ हमारे मन मस्तिष्क पर गहरा छाप छोड़ती है। 'बूढ़ी काकी' एक ऐसी ही मर्मस्पर्शी कहानी है। कहानी के मार्मिक दृश्य हमारी चेतना को जितना प्रभावित करती है उतना अन्य दृश्य नहीं कर पातें। 'बूढ़ी काकी' कहानी को उनकी मर्मस्पर्शी कहानी की पराकाष्ठा कहना अतिश्योक्ति न होगी। प्रेमचंद ने 'बूढ़ी काकी' कहानी के जरिये वृद्ध व असक्त महिला के दयनीय स्थिति का वर्णन किया है। प्रेमचंद ने बुढ़ापें को बचपन का पुनरागमन माना है। जिस प्रकार बच्चों को केवल स्वाद से मतलब होता है। उसी प्रकार बुढ़ापें में वृद्ध लोगों को जिह्वा–स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा शेष न रहती है।

बूढ़ी काकी के पति का स्वर्गवास हो चुका था। उसके बेटे भी चल बसे थे। अब एक भतीजे बुद्धिराम के सिवा उसका कोई सहारा न था। उन्होनें अपनी पूरी जायदाद उसके नाम लिख दी थी। बुद्धिराम ने भी लम्बे–चौड़े वायदे किये पर सम्पति मिलते ही वह अपने वादों से मुकर गया। अब बूढ़ी काकी को भरपेट भोजन नहीं मिलता था। मनोवांछित पूरा न होते ही वह रोने लगती। बुद्धिराम के बेटे बूढ़ी काकी को सताने का कोई मौका नहीं छोड़ते थे। काकी को कोई चुटकी काटकर भागता तो काई उस पर कुल्ली कर देता। इस पर काकी रोने लगती और गालियाँ भी देने लगती। बुद्धिराम की पत्नी रूपा स्वभाव से कठोर तो थी पर वह ईश्वर से डरती थी। इसलिए जब भी काकी बच्चों को गालियाँ देती तो काकी को समझाने रूपा आ जाती थी। बुद्धिराम की छोटी लड़की लाडली को काकी से विशेष स्नेह था। वृद्धों से घर के छोटे जितना प्रेम करते है उतना अन्य कोई नहीं करता बाकी तो वृद्धों को बोझ समझते है।

बुद्धिराम के बड़े लड़कें का तिलक हो रहा था। उनके घर में तरह–तरह के पकवान बन रहे थे। बुढ़ी काकी केवल पकवान की खुशबू सूँघ रही थी। काकी को आभास हो रहा था कि उसे अब पूड़ियाँ नहीं मिलेगी। भोजन सब समाप्त हो गया होगा। यह सोचकर उसे रोना आ रहा था पर अपशकुन के कारण वह रो न सकीं। वह भोजन के बारे में सोचने लगी।

"बूढ़ी काकी की कल्पना में पूड़ियों की तस्वीर नाचने लगी। खूब लाल–लाल, फूली–फूली, नरम–नरम होंगीं। रूपा ने भली–भांति भोजन दिया होगा। कचौड़ियों मे अजवाइन और इलायची की महक आ रही होगी। एक पूडी मिलती तो जरा हाथ में लेकर देखती।"[1]

इस कथन में प्रेमचंद ने काकी के कल्पना को पाठकों के समक्ष रखा है। वह खाने की किस प्रकार कल्पना करती है तथा खाने की तस्वीर अपने मन–मस्तिष्क में बनाती है। और जब स्वप्न साकार नहीं हो पाता है तो वह अधीर हो जाती है। हाथों के बल सरकते हुए काफी प्रयत्न के बाद वह मन को बहलाने के लिए कडाह के पास जाकर बैठ जाती है जिससे उसे पूड़ी–सब्जी की खूशबू मिलते रहें।

रूपा पर काम का बोझ इतना था कि उसे पानी पीने की भी सूँध न रही। ऐसे समय में कड़ाही के पास काकी को देखती है तो उसके क्रोध का ढ़िकाना नहीं रहता और उसे बहुत बुरा–भला कहती है।

''ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़? कोठरी में बैठते हुए क्या दम घुटता था? ..... नाक कटवा कर दम लेगी। इतना ठूंसती है, न जाने कहां भस्म हो जाता है।''[2]

यह कथन वृद्धों के प्रति अपमानजनक व्यवहार को बताता है। समाज क्या कहेगा इसकी परवाह करते है पर अपने बड़ों का अपमान करने से नहीं चूकते।

"बुढ़ी काकी ने सिर उठाया, न रोई न बोली। चुपचाप रेंगती हुई अपनी कोठरी में चली गयी।"[3] इस वाक्य के द्वारा प्रेमचंद ने बुढ़ी काकी की बेबसी को पाठकों के समक्ष रखा है।

भोजन तैयार हो गया, मेहमानों ने भोजन करना आरंभ कर दिया। बुढ़ी काकी स्वंय पश्चाताप कर रही थी। उसे अपनी जल्दबाजी पर क्रोध आ रहा था। उसके लिए एक–एक पल एक–एक सदी के समान बीत रहा था। उसने मन को बहलाने के लिए एक गीत गाना शुरू कर दिया। कुछ देर बाद वह सोचने लगी पहले तरकारी से पूड़ियाँ खाऊँगी, फिर दही और शक्कर से, कचोरियाँ रायते के साथ मजेदार मालूम होगें। हाथों से सरकती हुई वह आँगन में आ गयी। बुढ़ी काकी को देखकर मेहमान बोल उठे, अरे यह बुढ़िया कौन है? पंड़ित बुद्धिराम काकी को देखकर क्रोध से तिलमिला उठें और उसके दोनों हाथों का पकड़कर घसीटते हुए उसे उसके कमरे में पटक दिया। प्रेमचंद ने वृद्धा की उस मानसिक स्थिति का वर्णन किया है जहाँ उसे केवल खाने की चिंता होती है। एक बार फटकारने के बाद भी वह दूसरी बार खाने के लिए चली जाती है। परन्तु दूसरी बार भी उसे खाना नहीं मिलता। इस बार उसे घसीटकर उसके कमरें में पटक दिया जाता है। जब हम किसी चीज का बेसब्री से इंतजार करते है और समय नहीं कटता तो हम समय गुजारने के लिए गाना गाना शुरू कर देते है। बुढ़ी काकी द्वारा मन को बहलाने तथा समय काटने के लिए गाना गाना उसकी बेसब्री का द्योतक है। जब बुढ़ी काकी सचेत हुई तो उसे फिर पेट की अग्नि का ख्याल आया जो अब तक धधक रही थी पर इस बार उसकी रसोईघर में जाने की हिम्मत न हुई।

"इन लोगों को इतनी भी दया नहीं आती कि न जाने बुढ़िया कब मर जाए? उसका जी क्यों दुखावें?..... .... उन्हीं पूड़ियों के लिए रूपा ने सबके सामने गालियाँ दी। ..... सबको खिलाया, मेरी बात तक न पूछी। जब तक ही न दीं, तब अब क्या देंगे?" [4]

इस कथन में प्रेमचंद ने बुढ़ी काकी की निराशा को प्रकट किया है। अब काकी को खाना मिलने की आशा न रही और हिम्मत भी न रही कि फिर जाकर खाना माँग सकें। स्वाद की लालसा व्यक्ति को उचित–अनुचित का भान नहीं रहने देती उस वक्त केवल एक ही ध्येय रहता है कि अमुक चीज मुझे खाने को मिल जायें। प्रेमचंद ने बुढ़ी काकी कहानी के माध्यम से इसी बात को कहने की चेष्टा की है। 'बुढ़ी काकी' कहानी का सम्पूर्ण करूणा इस वाक्य में सिमट गया। "दीन, क्षुधातुर, हत ज्ञान बुढ़िया पत्तलों से पूड़ियों के टुकड़े चुन चुनकर भक्षण करने लगी। ..... मैं दूसरों की जूठी पत्तल चाट रही हूं। परन्तु बुढ़ापा तृष्णा रोग का अंतिम समय है, जब सम्पूर्ण इच्छाएं एक ही केन्द्र पर आ लगती है। बूढ़ी काकी में यह केन्द्र उनकी स्वादेन्द्रिय थी।"[5]

बूढ़ी काकी स्वाद की लालसा में यह भूल गयी कि वह लोगों की जूठन खा रही है। आज वह अपने पेट को तृप्त करना चाह रही थी जिसके लिए उसने उचित–अनुचित का त्याग कर दिया था। जब रूपा ने काकी को इस तरह लोगों का जूठन खाते देखा तो उसे अपनी गलती का अहसास हुआ। वह सोचती है कि जिसके कारण हमें वार्षिक आय हो रही है उसी की ऐसी हालत है आज वह दाने–दाने को मोहताज है। उसे लोगों का जूठन खाना पड़ रहा है। सैकड़ों लोगों ने भोजन किया पर उसे भोजन न मिला जिसके कारण हमें हजारों रूपये मिलें। इस कहानी का सुखद अंत रूपा द्वारा एक थाली में सम्पूर्ण सामग्रियाँ सजाकर काकी को खिलाना था। काकी दिन–भर के अपमान को भूलकर बच्चों के समान खाना खाने लगी तथा वह रूपा को सच्चे दिल से आशिर्वाद दे रही थी।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रेमचंद ने 'बूढ़ी काकी' कहानी के माध्यम से असक्त तथा वृद्ध जनों के खाने की इच्छा को पाठकों के समक्ष रखा है। वृद्धों के प्रति अपनायें जाने वाली लापरवाही लेखक के लिए चिंता का विषय है। त्यौहारों व घर के कार्यक्रमों जैसे जन्मदिवस तथा शादी पर वृद्धों की उपेक्षा की जाती है। हम यह भूल जाते है कि हम जो आज है ये उनकी ही बदौलत है। स्वार्थ में हम इतने अंधे हो जाते है कि हम वृद्धों को बोझ समझने लगते है। उनके प्रति लापरवाह हो जाते है। अपना जीवन पत्नी बच्चों तक ही सीमित कर लेते हैं। वृद्ध केवल खाने को मांगते है पर हम उन्हें वह भी समय पर नहीं देते। लोग आधुनिकता की दौड़ में इतने आगे निकल जाते है कि उन्हें पीछे देखने का समय ही नहीं रहता। ये लोग यह भूल जाते है कि घर में कोई वृद्ध है जो उनके ऊपर निर्भर है। यह कहानी अपने उद्देश्य में बहुत हद तक सफल भी हुई है। कहानी पढ़नें के बाद वृद्धों के प्रति सहानुभूति तथा करुणा जागृत होती है। हमारे समाज में जहाँ बूढ़ी काकी जैसे किरदार देखने को मिल जाएगें वही बुद्धिराम जैसे मतलबी भी मिलेगें। 'बूढ़ी काकी' कहानी में करुण रस की प्रधानता है। प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी' कहानी वास्तव में उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *प्रेमचंद, बूढ़ी काकी तथा अन्य कहानियां, हिन्द पॉकेट बुक्स, प्रथम संस्करण–1986, पृष्ठ क्रमांक– 149*
2. *प्रेमचंद, बूढ़ी काकी तथा अन्य कहानियां, हिन्द पॉकेट बुक्स, प्रथम संस्करण–1986, पृष्ठ क्रमांक– 150*
3. *प्रेमचंद, बूढ़ी काकी तथा अन्य कहानियां, हिन्द पॉकेट बुक्स, प्रथम संस्करण–1986, पृष्ठ क्रमांक– 150*
4. *प्रेमचंद, बूढ़ी काकी तथा अन्य कहानियां, हिन्द पॉकेट बुक्स, प्रथम संस्करण–1986, पृष्ठ क्रमांक– 153*
5. *प्रेमचंद, बूढ़ी काकी तथा अन्य कहानियां, हिन्द पॉकेट बुक्स, प्रथम संस्करण–1986, पृष्ठ क्रमांक– 154*

मीरा के व्यक्तित्व और कृतित्व में नारी चेतना का स्वर

डॉ. प्रेम बाफना
सह–आचार्य, जी.एच.एस. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुजानगढ़

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भक्तिकालीन साहित्य में ईश्वरीय–अनुराग की सरस राग का आलाप करने वाली श्याम की दीवानी मीरा का नाम एवं काम आज किसी परिचय का मोहताज नहीं है। मीरा का संपूर्ण साहित्य आत्माभिव्यक्ति का साहित्य है। मीरा का अडिग विश्वास था कि भक्ति ही मुक्ति का सुगम मार्ग है। सांसारिक भोग–विलास एवं राजसी वैभव में उनकी कोई रुचि नहीं थीं। राजसत्ता की मदांध जिंदगी को वो नर्क धाम का इंतजाम मानतीं थीं क्योंकि सत्ता के मद में अंधा होकर व्यक्ति पहले भ्रष्ट होता है और बाद में नष्ट। भोग को रोग का कारण मानते हुए उन्होंने योगमय जीवन जीना स्वीकार किया। सामंती समाज व्यवस्था में स्त्री को जिस रूप में देखा जाता था, मीरा ने उस परम्परागत रूप को स्वीकार नहीं किया। तत्कालीन समाज व्यवस्था की जकड़ और अकड़ के कारण नारी मन में जो अन्तर्द्वंद्व, क्षुब्धता, आक्रोश एवं पीड़ा व्याप्त थी, उससे मुक्ति का स्वर मीरा के काव्य में सहज रूप से प्रस्फुटित हुआ है। कृष्ण भक्ति के संयोग एवं वियोग पक्षों से बाहर निकल कर यदि मीरा के काव्य का विश्लेषण किया जाए तो उसमें नारी मुक्ति का गरिमामयी रूप दृष्टिगोचर होता है, जिसमें नारी के स्वतंत्र चिंतन एवं अस्तित्व को पहचान मिली है। प्रस्तुत शोध आलेख में मीरा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को आधार बनाकर इसी संबंध में विचार किया गया है।

संकेताक्षर : *भक्तिमती, राव दूदा, मेड़ता, कौस्तुभमणि, स्पन्दन, क्रांतदर्शी, पर–घर–गमण–निवारि, बीज मंत्र, सर्वभूतहितेरता, निगूढ़ वेदना, बालम–बिछोह।*

जोधपुर के संस्थापक राव जोधा की प्रपौत्री, मेड़तिया राठौड़ों के मूल पुरुष राव दूदा की पौत्री, रतन सिंह की पुत्री, वीरमदेव मेड़ता की भतीजी, वीर शिरोमणि जयमल की चचेरी बहिन, मेवाड़ के सुप्रसिद्ध महाराणा सांगा की पुत्रवधू और राजकुमार भोजराज की अर्द्धांगिनी भक्त शिरोमणि मीराबाई[1] का नाम न केवल राजस्थान एवं भारत वरन विश्वस्तर पर ख्यात हो चुका है। भक्तिकालीन साहित्य में ईश्वरीय–अनुराग की सरस राग का आलाप करने वाली श्याम की दीवानी मीरा का नाम एवं काम आज किसी परिचय का मोहताज नहीं है। हाँ! एक समय था, जब तथाकथित बुद्धिजीवियों द्वारा मीरा को शोध का हिस्सा बनाने से नकारने की धृष्टता की थी मगर जिस तरह से मीरा ने अपने जीवन में आने वाली सारी बाधाओं को स्वयं की अंतर्निहित शक्तियों के बल पर पार किया, उसी प्रकार मीरा विषयक शोधकार्यो के मार्ग की बाधाएं भी स्वतः दूर होती गईं। आज विद्वान एक राय से यह मानते हैं कि वैयक्तिक जीवन में सतत संघर्षरत रहते हुए अपने आराध्य में अटूट विश्वास के बल पर जीवटता की जीवंत मिसाल बनने वाली मीरा ने अधिक सहा और कम कहा किंतु जो कहा, उसमें विश्व की आधी मानवता के दुख–दर्द, आशा–अपेक्षा एवं विद्रोह को सशक्त स्वर देने में सफलता प्राप्त की। मीरा का संपूर्ण साहित्य आत्माभिव्यक्ति का साहित्य है। मीरा का अडिग विश्वास था कि भक्ति ही मुक्ति का सुगम मार्ग है। सांसारिक भोग–विलास एवं राजसी वैभव में उनकी कोई रुचि नहीं थीं। राजसत्ता की मदांध जिंदगी को वो नर्क धाम का इंतजाम मानतीं थीं क्योंकि सत्ता के मद में अंधा होकर व्यक्ति पहले भ्रष्ट होता है और बाद में नष्ट। भोग को रोग का कारण मानते हुए उन्होंने योगमय जीवन जीना स्वीकार किया।

राज करंता नरक पड़ंता, भोगीड़ा जम लीया।
भगती करता मुगत पहूंता, जोग करंता जीया।।

मीरा ने जो कुछ सहा, वही कहा अर्थात मीरा के काव्य का एक-एक अक्षर अनुभूत सत्य है, जिसमें तत्कालीन परिवेश परिलक्षित होता है। पूर्ण विनम्रता, मर्यादा, संयम एवं शालीनता के साथ अन्याय एवं रूढ़ियों का प्रबल प्रतिकार करने का अडिग साहस मीराबाई के पास था, यही कारण है कि उनके विद्रोह में भी मर्यादा एवं संयमशील दृढ़ता सर्वत्र विद्यमान दिखाई देती है। गिरधर गोपाल की एकनिष्ठ एवं अनन्य उपासना के बल पर भक्ति के क्षेत्र में उत्कृष्टता के शिखर को छूने वाली मीरा मेड़तणी का सांगितिक क्षेत्र में भी योगदान कम नहीं है तो काव्यजगत के लिए भी उनका अवदान अभिनन्दनीय है। भले ही उनकी सीमित आत्माभिव्यक्ति में शास्त्रपूजित, परम्परामान्य, कलात्मक उपलब्धियों के शिखरों का अभाव है; युगबोध को नई दिशाएं भी वह कदाचित नहीं दे सकीं पर मानवता के प्राणों को जिस चिरमधुर स्पन्दन से वे परिचित करा गई हैं, वह किसी भी भाषा के लिए वंदनीय संकेत है।[2]

सामंती अत्याचारों की भारी श्रृंखला ने मीरा के अंतर्विद्रोह को अहर्निश जागृत किया। उसे तत्कालीन सभी राजसी अनुशासन पुरातन सड़ी-गली रूढ़ियों से ग्रसित लगने लगे। तब उसे समझ में आया-थोथी सामंती रूढ़ियों का मायाजाल। नारी की उपेक्षा, निरादर और निरीहता ने उसे अन्तर्बाह्य झकझोर डाला और उपेक्षित एवं इस तरह त्रस्त नारी समाज के लिए उसके मन में भारी सहानुभूति का कारण बना और मीरा में निर्मित हुआ-एक विद्रोहिणी क्रांतदर्शी नारी का व्यक्तित्व। एक ओर कृष्ण-भक्ति में विराट तल्लीनता और दूसरी ओर पारिवारिक अत्याचारों को जड़ता एवं तत्कालीन समाज में नारी की निरीह-अवस्था सभी ने मिल कर मीरा के कवि को संचेतन बनाया।[3] इसी संचेतना का प्रभाव रहा कि 'गिरधर गास्यां सती न होस्यां, म्हैं वर पायो घणनामी' (अर्थात मैं अपने पति की मृत देह के साथ जलकर स्वयं को संसार से मुक्त नहीं करूंगी वरन गिरधर के गुणयश गाते हुए अपना जन्म सुधारूंगी। मैंने स्वयं सच्चिदानंद को वर रूप में पाया है।) कहते हुए मीरा अपने युग में सामाजिक क्रांति को जन्म देती है। वस्तुतः मीरा ऐसी शक्ति थी, जो किसी सामान्य आग में जल कर नष्ट होने को नहीं वरन अपने आराध्य के अनुराग की आग में निरंतर जलते हुए जाज्वल्यमान होने को पैदा हुई थी। वह पाखंड खंडन एवं मर्यादा मंडन की प्रबल पक्षधर थीं। यही कारण है कि मीरा की क्रांतिकारी सोच में भी उग्रता एवं आवेश की बजाय विवेक एवं मर्यादा की तार्किक उपस्थिति सदैव बनी रहती है। नारीमुक्ति की युक्ति में भी मीरा ने कभी अत्युक्ति को स्थान नहीं दिया वरन युक्तियुक्त जीवनदर्शन को ही अपनाया है। गार्हस्थ जीवन में चारित्रिक पवित्रता की प्रबल पक्षधर एवं पैरोकार के रूप में मीरा अपनी सखियों को जीवन का आनंद लूटने हेतु प्रेरित करती है किंतु 'पर-घर-गमन-निवारि' की शर्त के साथ। मन को रुचे वो मौज करो किंतु मर्यादाहीन मनमानी मीरा को पसंद नहीं थी। बहुत ही सहज एवं सरल भाषा में अपने निपट परिचित उपमानों के माध्यम से लोकव्यवहार की सीख देती मीरा की जीवनदृष्टि का जायजा ले पाना बहुत कठिन है। भक्त प्रहलाद एवं द्रोपदी की तरह परिजनों एवं प्रियजनों से प्रताड़ित तथा गजराज की तरह सांसारिक दुखों के सागर में थपेड़े खाने को विवश मीरा अपने वैयक्तिक दुख को इतना हावी नहीं होने देती कि वह उसकी रचनाधर्मिता की समष्टिगत हितैषणा का रूप बदल दे।

मीरा ने कृष्ण भक्ति की धारा में गत चार-पांच शताब्दियों से राजस्थानी संस्कृति में एक ऐसी अंतरधारा बहाई है, जिसमें ब्रज की कृष्ण भक्ति की परम्पराओं ने ठाकुर सेवा, मधुर भक्ति, प्रेम लक्षण भावना से कृष्ण में अनुरक्ति आदि की परम्पराओं को राजस्थानी जीवन का भी अविभाज्य अंग बना दिया।[4] मीरा के जीवन एवं सृजन का मूल स्वर प्रेम ही है। गिरधर को अपना प्रियतम मानकर 'मैं तो अपने नारायण री हो गई खुद ही दासी रे'' की सच्चाई को स्वीकार करने वाली मीरा अपने आराध्य कृष्ण को पति मानती है अतः उनकी भक्ति में दाम्पत्य-जीवन के पवित्र संस्कारों का सहज समावेश देखने को मिलता है। यही दाम्पत्य माधुर्य है तो यही कांता भाव। इन्हीं सुभग संस्कारों से अनुप्राणित होकर वह 'पर-घर-गमण-निवारि' की शिक्षा देते हुए पराये घरों के माणिक-मोती एवं आभूषणों की जगमग करती ज्योति को प्रियतम से प्राप्त श्यामल रेशमी धागे के सामने; पाट-पटंबरों एवं दिखणी चीर को प्रियतम की गूदड़ी के सामने और छप्पन भोगों को प्रियतम के नमक-विहीन 'साग' के सामने तुच्छ एवं त्याज्या बतलाती है। स्वयं मीरा के शब्दों में देखिए-

झूठा माणिक मोतियां री, झूठी जगमग जोति।
झूठा सब आभूषणां री, साची पिय री पोति।।
झूठा पाट-पटंबरा री, झूठा दिखणी चीर।
साची पिय री गूदड़ी, (जा में) निरमळ रहै सरीर।।
छप्पन भोग बुहाय दे ऐ, इन भोगन में दाग।
लूण अलूणो ही सही, अपणै पिय को साग।।

कष्ट को जीवन की कसौटी मानने वाली मीरा ने दूसरों की चमक-दमक के सामने स्वयं की सामर्थ्य को कमजोर समझना स्वीकार नहीं किया वरन अपनी 'कालर' को दूसरों की 'निवाण' के सामने श्रेष्ठ साबित करते हुए कहा कि –

देखि विराणे निवाण कूं ऐ, क्यूं उपजावै खीज।
कालर अपणो ही भलो, जा में निपजै चीज।।

मीरा के पद भक्तिकाव्य की अमूल्य निधि हैं, जिनमें हृदय बोलता है। सगुण और निर्गुण तथा राम और कृष्ण की भक्ति को समन्वित रूप में अभिव्यक्त करती हुई मीरा की काव्यसृष्टि में सर्वभूतहितेरता की दृष्टि एवं पवित्र प्रेम की पुष्प-वृष्टि है। नारी-स्वातंत्र्य एवं सामाजिक क्रांति का बीजमंत्र मीरा के पदों में सन्निहित हैं। उनकी भक्ति में एक नव्य एवं भव्य रूप का निदर्शन है। प्रेम, पवित्रता और परम पद की त्रिवेणी प्रवाहमान होने के कारण उनके जीवनवृत्त में आस्था का अमृत और पदों में नाद का आह्लाद अपनी पृथक पहचान रखते हैं।[5] यद्यपि मीरा भारतवर्ष ही नहीं अपितु अखिल विश्व की धरोहर है, तथापि मरुधरा को अपनी इस लाडली पर जो गर्व है, वह गौरवमय है। ''राजस्थान में मीरा का वही स्थान है जो गंगाघाटी में भक्त शिरोमणि सूरदास तथा गोस्वामी तुलसीदास का है। उनका व्यक्तित्व त्याग, तपस्या तथा ईश समर्पण की त्रिवेणी था।[6]'' यहां के सुकवियों ने तो यहां तक लिखा है कि जिस तरह संपूर्ण जलराशि में प्रयागराज; शूरवीरों की श्रृंखला में जयमल्ल मेड़तिया तथा नायाब हीरों में कोहिनूर श्रेष्ठ हैं, उसी तरह संपूर्ण नारी-संसार में मीरा की श्रेष्ठता स्वयंसिद्ध है –

नीरां सिरै प्रयाग जल, वीरां सिरै जैमल्ल।
कोहिनूर हीरां सिरै, मीरा सिरै महिल्ल।।

राजस्थानी साहित्य में भक्तिकालीन काव्य का अनुशीलन करने वाले विद्वानों ने मीरा को भक्त कवियों में सरस एवं श्रेष्ठ कह कर अपनी श्रद्धा व्यक्त की है–

हुवो धन्नैं सूं दादू वधतो, दादू सूं करमां दुरस।
करमां सिरै कबीर नामदे, सारां सूं मीरा सरस।।

मीरा की किसी से तुलना करना मीरा के दिव्य प्रेम का अनादर करना है। मीरा का काव्य हृदय की निगूढ़ वेदना से प्रसूत है। मीरा विरह की गायिका है और उसमें रंचमात्र भी शंका के लिए स्थान नहीं है कि अपने क्षेत्र में, उस क्षेत्र को आज के समालोचक बहुत ही सीमित या संकुचित क्यों न कहें, मीरा सर्वश्रेष्ठ है। (श्री भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र) डिंगल कवयित्री प्रभावती देवी खिड़ियाणी ने तो मीराबाई को भक्तों की मुकुटमणि के रूप में चित्रित करते हुए अपने श्रद्धासुमन अर्पित किए हैं–

महाराणी मेवाड़ री, भगतां मुगट मणीह।
अमर हुई इळ ऊपरै, मीरा मेइतणीह।।

''जग-सुहाग मिथ्या री सजणी, होया है मिट ज्यासी'' कहते हुए मीरा ने सांसारिक-सौभाग्य को मिथ्या कहा है क्योंकि वह नश्वर होने के कारण चिर नहीं है, तभी तो मीरा अविनाशी गिरधर को बालम के रूप में स्वीकार करते हुए गर्व से कहती है ''वरण कर्‌या हरि अविनासी म्हैं, काळ-ब्याळ ना खासी''। वैधव्य की पीड़ा को भोगने वाली मीरा जानती है कि बालम-बिछोह का दर्द क्या होता है। उसने तत्कालीन समाज की विधवा के प्रति संकीर्ण सोच को भी सहन किया है। सूर के पदों में राधा, जायसी के पदमावत में नागमती, मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में उर्मिला भी विरहाग्नि से व्याकुल होकर आँसू बहाती हैं किंतु मीरा का रोना इनसे अलग प्रकार का है। मीरा अपने पदों में विरह वेदना को स्वर देती हैं किंतु बिल्कुल सीधे-सादे शब्दों में। वहां ना पांडित्य-प्रदर्शन की चाहत है, ना अतिरंजना का अवकाश। दूसरा अंतर स्वानुभूति एवं सहानुभूति पक्ष का भी है। सूर, जायसी एवं गुप्तजी के काव्य में सहानुभूति पक्ष की प्रबलता है जबकि मीरा तो स्वानुभूत सत्य को ही शब्दों के सांचे में ढाल कर करुण-स्वर में प्रस्तुत करती है अतः मीरा के यहां कोई शिल्पगत चमत्कार देखने को नहीं मिलता। वह तो आत्म को अभिव्यक्त कर रही है और अपने आत्मीय के सामने, तो फिर कैसी वाग्विदग्धता और कैसा शिल्प चातुर्य। प्रेम की पराकाष्ठा में अपने अनन्य से अपने अंतकरण की बात करते समय शब्दों एवं सौष्ठवों का नहीं वरन भावों का महत्त्व होता है और मीरा के यहां यही मिलता है। समालोचकों ने माना है कि मीरा के पदों में प्रेम की निर्धूम ज्वाला में जलते प्राणों के सिसकते उच्छवास हैं।

मीरा का सांवरिया तो चिर–प्रवासी है अतः वह चिर–वियोगिनी बनकर अपने प्रवासी प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा में दिन गिनते गिनते अपनी अंगुलियों की रेखाओं को घिस लेती है, रो–रोकर अपने आँसुओं के खजाने को खत्म कर देती है, प्रिय मिलन की उत्कंठा में चिर व्याकुल रहती है। मीरा के पदों में आकुल आकांक्षा, विरह विदग्ध वेदना एवं विवशता के चित्र सर्वत्र देखने को मिलते हैं। इसी आकुलता के कारण वह बार–बार कह उठती है–''जोगी मत जा, मत जा, मत जा, पांय परूं तेरी चेरी हूं''। दरस बिनु दूखण लागे नैंण, पिया बिनु सूनो सारो देस एवं मैं तो दरद दीवानी मेरो दरद न जाणै कोय आदि पद मीरा की विरहानुभूति के प्रबल प्रमाण हैं किंतु मीरा की विरहानुभूति में विरह के ऊपरी नाप–जोख की बजाय आत्मिक–वेदना का प्राबल्य है क्योंकि मीरा का विरह भक्तिपरक है, जो कि ईश्वरीय प्रेम का परिणाम है।

मीरा ने अपनी माधुर्य भक्ति के बल पर माधव को अपना बना लिया था, जिसके कई सारे प्रमाण यथा विषपान एवं सर्प–पिटारा आदि तत्कालीन लोकमानस में उनके प्रति श्रद्धा के आयाम बने। इतिहास की आंख से जब हम समसामयिक साक्ष्यों का अनुशीलन करते हैं तो यह सिद्ध होता है कि मीरा के चमत्कारी जीवन से न केवल जन सामान्य वरन तत्कालीन राजे–महाराजे भी परिचित एवं प्रभावित थे। मारवाड़ अधिपति मालदेव जैसा अपने समय का प्रबल पराक्रमी एवं खूंखार शासक भी मेड़ता विजय के बाद द्वेषवश राव जयमल्ल के राजप्रासादों को धूलिधुसरित करवा देता है किंतु मीराबाई की भजनशाला को तोड़ने से कतराता है। तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं के अनुशीलन के बाद स्वाभाविक रूप से कहा जा सकता है कि राव मालदेव का ऐसा करना मीरा के प्रति श्रद्धा या आदर का नहीं वरन मीरा की चमत्कारी साधना–शक्ति से स्वयं के अनिष्ट की आशंका का परिणाम था। मीरा के विषपान की घटना को मिथ्या या मुहावरा मानने वाले लोगों को अपने दुराग्रहों एवं पूर्वाग्रहों को पृथक रखकर इस विषयक अन्तः एवं बाह्य साक्ष्यों का सम्यक अध्ययन करना चाहिए। स्वयं मीरा के अनेक पद इस बात के साक्षी हैं तो तत्कालीन संतों एवं भक्त कवियों की बहुत सी रचनाएं भी इस घटना की साख भरती हैं। इस विषय पर अलग से पूरा आलेख लिखा जा सकता है। बहरहाल!

मीरा के जीवन का संघर्ष भी ऐसा था, जिसमें अपने जीवन में पारिवारिक रूढ़िवाद का विरोध, पर्दाप्रथा की अवहेलना करते हुए सामंतशाही मगरूर की मिथ्या धारणा को धराशाही कर दिया–

लोक लाज सोभा कुल तज के
तन–मन की सुधि बिसराती

xxxxxxxxxxxx

संतन ढिग बैठि–बैठि, लोक लाज खोई
भगति देखि राजी हुई, जगति देख रोई।

xxxxxxxxxxxx

स्याम प्रीत की बांधि घुंघरू,
सूरत की काछनी काछूंगी।
लोक लाज कुल की मरजादा,
या म्हैं एक न राखूंगी।

मीरा भक्तिकाव्य में एक विशिष्ट आदर की अधिकारिणी है, अपनी सीमाओं के बावजूद। उनमें व्यक्ति–समाज के द्वंद्व की रेखाएं देखी जा सकती है, विशेषतया मध्यकालीन सामंती परिवेश में नारी मुक्ति की छटपटाहट। भक्ति इसी का एक संकल्प है, सर्जनात्मक–सार्थक। मीरा को अपने संकल्प और स्वानुभूति के प्रति ऐसा आत्मविश्वास न होता तो कदाचित वे सर्जन की यात्रा तय न कर पातीं। उनके माध्यम से हम नारी सम्मान की प्रतिष्ठा का प्रयत्न देखते हैं और मध्यकालीन परिवेश को देखते हुए, यह पक्ष सराहनीय है। वे अपनी सीमाओं से परिचित थीं, इसलिए उन्होंने वाचिक परम्परा से स्वयं को जोड़ा, कीर्तन–भजन–गायन के माध्यम अपनाए।[7] सामंती समाज व्यवस्था में स्त्री को जिस रूप में देखा जाता था, मीरा ने उस परम्परागत रूप को स्वीकार नहीं किया। तत्कालीन समाज व्यवस्था की जकड़ और अकड़ के कारण नारी मन में जो अन्तर्द्वंद्व, क्षुब्धता, आक्रोश एवं पीड़ा व्याप्त थी, उससे मुक्ति का स्वर मीरा के काव्य में सहज रूप से प्रस्फुटित हुआ है। कृष्ण भक्ति के संयोग एवं वियोग पक्षों से बाहर निकल कर यदि मीरा के काव्य का विश्लेषण किया जाए तो उसमें नारी मुक्ति का गरिमामयी रूप दृष्टिगोचर होता है, जिसमें नारी के स्वतंत्र चिंतन एवं अस्तित्व को पहचान मिली है।

निष्कर्षतः मीरा भारतीय जनमानस के लिए एक जाज्वल्यमान नक्षत्र है, जो विकट से विकट परिस्थिति में भी जीवट को बनाए रखने का साहस देती है। भक्ति

की शक्ति का साक्षात प्रमाण प्रस्तुत करती है। अपने काम को पूर्ण निष्ठा एवं दृढ़ता से करने की प्रेरणा देती है। विद्रोह में भी मर्यादित विनम्रता बनाए रखने का सुभग संदेश देती है। अपने जीवनमूल्यों, आदर्शों, ईश-अनुराग तथा संघर्ष के बल पर मीरा ने मानव-समाज रूपी पोथी में एक ऐसा अनुपम अध्याय लिखा है, जिसका एक-एक पन्ना उस तपस्विनी के पावन तप से कुंदन की मानिंद उज्ज्वल दिखाई पड़ता है। भारतीय संतों की कांतिमय मणिमाल की देदीप्यमान मणि भक्तिमती मीरा मणियों के संसार में नायब कौस्तुभमणि सदृश है। कौस्तुभ मणि की तरह मीरा का जीवन एवं सृजन बहुमूल्य है। जैसे कौस्तुभमणि मणियों की मुकुट है, वैसे मीरा भी अपनी पावन भक्ति-भावना के बल पर भक्तों की मुकुटमणि बनी है। कौस्तुभमणि को स्वयं विष्णु ने अपने वक्षस्थल पर धारण किया तो मीरा को उसके गिरधरगोपाल ने अपनी मूर्ति में समाहित कर हृदय में स्थान दिया। माना जाता है कि कौस्तुभमणि संकटों का सामना करने का अविचलित साहस देती है तो मीरा का काव्य भी दैहिक, दैविक एवं भौतिक तीनों प्रकार के ताप-संकटों का सामना करने की प्रेरणाशक्ति है। वस्तुतः मीरा को भक्तिकाव्य की कौस्तुभमणि कहना समीचीन प्रतीत होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मीराबाई की ऐतिहासिकता-डॉ. हुकुमसिंह भाटी, मीरा का व्यक्तित्व और कृतित्व, सं. संजय मल्होत्रा, पृ. 21*
2. *मीरा : जीवन एवं काव्य-डॉ. सी.एल. प्रभात, पृष्ठ टप*
3. *जनमानस पर मीरा का प्रभाव : डॉ. हरीश, मीरा का व्यक्तित्व और कृतित्व, सं. संजय मल्होत्रा, पृ. 244-45*
4. *राजस्थान की सांस्कृतिक परम्पराएं : डॉ. जयसिंह नीरज एवं डॉ. बी.एल. शर्मा, पृ. 28*
5. *राजस्थानी काव्य में सांस्कृतिक गौरव : डॉ. शक्तिदान कविया, पृष्ठ 205*
6. *राजस्थान की भक्ति परम्परा तथा संस्कृति : दिनेशचंद्र शुक्ल एवं ओंकार नारायण सिंह, पृ. 54*
7. *मीरा : नारी का मुक्त स्वर - डॉ. प्रेमशंकर, मीरा का व्यक्तित्व और कृतित्व, सं. संजय मल्होत्रा, पृ. 192*

नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल संवर्धन में '5Es निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल' की प्रभावोत्पादकता का अध्ययन

सूरज पाल सिंह भाटी
शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
डॉ. सीमा सरूपरिया
सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, खेरवाड़ा

SHODH SHREE
ISSN 2277-5587
RNI-RAJHIN02117A0531
shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

निर्मितवाद में अधिगमकर्ता अपने अनुभव के आधार पर ज्ञान का निर्माण करता है। निर्मितवाद बालक की रचनात्मक क्रियाओं को प्रोत्साहित करते हुए सीखने पर बल देता है। निर्मितवाद पर आधारित '5Es अनुदेशन मॉडल' में पाँच चरणों– संलग्न, अन्वेषण, संक्षिप्तीकरण, विस्तार एवं मूल्यांकन का अनुसरण करके समूह–चर्चा, विचार–विमर्श, प्रस्तुतीकरण इत्यादि के उपयोग द्वारा विद्यार्थियों को सिखाया जाता है। इस शोध द्वारा माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल संवर्धन में 5Es निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल की प्रभावोत्पादकता की जाँच की गई है। प्रस्तुत शोध के उद्देश्य– माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के संवर्धन हेतु 5Es निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल आधारित पैकेज का निर्माण करना एवं माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल संवर्द्धन में 5Es निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल की प्रभावोत्पादकता का अध्ययन करना हैं। शोधविधि के रूप में प्रायोगिक विधि का प्रयोग कर, पूर्व एवं पश्च परीक्षण प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह अभिकल्प के रूप में 40–40 विद्यार्थियों को चयनित कर प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों पर पैकेज को प्रशासित किया गया। शोध उपकरण के रूप में '5Es निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल' आधारित नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल 'पैकेज' का निर्माण किया गया। शोध के निष्कर्ष दर्शाते है कि '5Es निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल' विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल संवर्धन में सकारात्मक रूप से प्रभावी भूमिका अदा करता हैं।

संकेताक्षर : *निर्मितवाद, रचनावाद, 5Es, नोट्स निर्माण कौशल, सम्प्रेषण कौशल, लिखित सम्प्रेषण कौशल, अनुदेशन मॉडल, शिक्षण मॉडल, संरचनावाद।*

विद्यालय प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व अत्यन्त प्रभावशाली तत्व सम्प्रेषण कौशल है। सम्प्रेषण कौशल कक्षा शिक्षण गतिविधियों का प्रमुख आधार हैं। शिक्षा के क्षेत्र में प्रभावशाली सम्प्रेषण कौशल द्वारा ही अन्तःक्रिया सम्भव है। अन्तःक्रिया द्वारा ही शिक्षार्थियों का व्यवहार परिवर्तन किया जाता है। प्रभावी सम्प्रेषण कौशल बिना शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति कर पाना असंभव है। अस्पष्ट सम्प्रेषण अर्थ का अनर्थ कर देता है। सम्प्रेषण कौशल के माध्यम से प्रभावी रूप से विचारों का स्थानान्तरण किया जाता है। किसी भी विचार को अच्छे से संचरित करना, उसे ग्रहण करना, सूचनाओं का सही, स्पष्ट एवं उद्देश्यपूर्ण तरीके से सम्प्रेषित करने की क्षमता एक महत्वपूर्ण सम्प्रेषण कौशल है। शिक्षण प्रक्रिया में प्रभावी सम्प्रेषण कौशल सफलता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

प्रभावशाली शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को गत्यात्मक, सक्रिय तथा जीवन्त बनाने के लिए सम्प्रेषण कौशल की अनवरता या निरन्तरता आवश्यक होती है। सामान्यतः सम्प्रेषण कौशल को दो भागों में विभाजित किया गया है– (i) मौखिक सम्प्रेषण कौशल (वार्ता, व्याख्या, परिचर्चा, सामूहिक चर्चा, प्रश्नोत्तर आदि) तथा (ii) लिखित सम्प्रेषण कौशल (नोट्स निर्माण, प्रतिवेदन लेखन, सारांश लेखन, पत्र लेखल, आलेख, सन्देश, आवेदन आदि)। लिखित सम्प्रेषण कौशल का एक रूप 'नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल' है। जिसके माध्यम से विद्यार्थी परीक्षा में सफलता प्राप्त कर, अपनी उपलब्धि को बढा सकते है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली के दो प्रमुख मुद्दे हैं– एक ज्ञान को समझना और दूसरा ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया। वर्तमान

समय में इस बात पर बल दिया जाने लगा है कि शिक्षार्थी सक्रिय रहकर स्वयं ही ज्ञान का निर्माण कर सकता है। परम्परागत शिक्षक केन्द्रित और पाठ्यपुस्तक निर्देशित कक्षाएँ विद्यार्थियों के वांछित परिणाम लाने में विफल रही है। इसकी विफलता को देखते हुए निर्मितवादी अवधारणा का जन्म हुआ, इसमें शिक्षण की क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु शिक्षक के स्थान पर विद्यार्थी होता है। जहाँ बालक की रचनात्मक क्रियाओं को प्रोत्साहित करते हुए सीखने पर बल दिया जाता है।

निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल बालकों में रचनात्मकता को बढावा देकर स्वयं के अनुभवों, विचारों को संश्लेषित एवं विश्लेषित करने तथा मूल्यांकन करने का अवसर देता हैं। यहाँ बालक सक्रिय रहकर स्वयं ज्ञान का निर्माण करता है एवं शिक्षक मार्गदर्शक की भूमिका निभाता है। बालक पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान से जोड़कर साथियों के सहयोग से नवीन ज्ञान की प्राप्ति करता है। इसमें शिक्षा अथवा ज्ञान का संग्रह करने के स्थान पर विचारों के स्थानान्तरण को बढावा दिया जाता है।

निर्मितवाद पर आधारित '5Es' एक अनुदेशन मॉडल है, जिसमें पाँच चरणों– संलग्न (Engage), अन्वेषण (Explore), संक्षिप्तीकरण (Encapsulate), विस्तार (Elaborate) एवं मूल्यांकन (Evaluate) का अनुसरण करके समूह–चर्चा, विचार–विमर्श, प्रस्तुतीकरण इत्यादि के उपयोग द्वारा विद्यार्थियों को सिखाया जाता है।

निर्मितवादी प्रक्रिया में बालक संलग्न होकर अन्वेषण करना, प्रश्न पूछना, संश्लेषण एवं विश्लेषण करना, मूल्यांकन करने जैसी क्रियाएँ करता है, जिनमें वह सम्प्रेषण के विभिन्न कौशलों यथा– समूह चर्चा कौशल, पृच्छा(पूछताछ) कौशल, नोट्स निर्माण कौशल, सारांश लेखन कौशल, प्रतिवेदन लेखन कौशल एवं प्रस्तुतीकरण कौशल का प्रयोग करता है। इस प्रकार निर्मितवाद एवं सम्प्रेषण कौशल अंतःसम्बन्धित हैं।

समस्या कथन

''नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल संवर्धन में 5Es निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल की प्रभावोत्पादकता का अध्ययन''

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये है–

1. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के संवर्धन हेतु 5Es निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल आधारित पैकेज का निर्माण करना।
2. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल संवर्द्धन में 5Es निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल की प्रभावोत्पादकता का अध्ययन करना।

शून्य परिकल्पनाएँ

1. प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के पूर्व परीक्षण प्राप्तांकों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं हैं।
2. प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के पश्च परीक्षण प्राप्तांकों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं हैं।
3. विद्यार्थियों के प्रायोगिक समूह के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के पूर्व परीक्षण एवं पश्च परीक्षण प्राप्तांकों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं हैं।
4. विद्यार्थियों के नियंत्रित समूह के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के पूर्व परीक्षण एवं पश्च परीक्षण प्राप्तांकों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं हैं।

शोध विधि

प्रस्तुत शोधकार्य में शोध की प्रकृति को देखते हुए 'प्रायोगिक शोध विधि' का उपयोग किया गया। जिसमें ''पूर्व एवं पश्च परीक्षण प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह अभिकल्प'' का चयन किया गया।

सारणी संख्या – 1
पूर्व एवं पश्च परीक्षण प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह अभिकल्प

क्र.स.	समूह संख्या	पूर्व परीक्षण	शिक्षण	पश्च परीक्षण
1.	प्रायोगिक समूह	✓	✓	✓
2.	नियंत्रित समूह	✓	–	✓

उपकरण

प्रस्तुत शोधकार्य में निम्नलिखित उपकरणों का निर्माण किया गया–

1. '5Es निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल' आधारित नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल 'पैकेज' का निर्माण।
2. नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल सम्बन्धी पूर्व परीक्षण का निर्माण।
3. नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल सम्बन्धी पश्च परीक्षण का निर्माण।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोधकार्य को पूर्ण करने हेतु सोद्देश्यपूर्ण विधि द्वारा जोधपुर शहर में स्थित एक निजी विद्यालय का चयन किया गया एवं यादृच्छिक विधि से कक्षा–9 से 40–40 विद्यार्थियों का चयन कर प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह का निर्माण किया गया।

सांख्यिकी प्रविधि

प्रस्तुत शोधकार्य में दत्त विश्लेषण के लिए निम्नलिखित सांख्यिकीय प्रविधियों का उपयोग किया गया–

(1) मध्यमान

(2) मानक विचलन

(3) 'टी' परीक्षण

दत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या

परिकल्पना सं.–1 :प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के पूर्व परीक्षण के प्राप्तांकों के मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता

इस विश्लेषण के अन्तर्गत प्रायोगिक समूह एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल पूर्व परीक्षण के प्राप्तांकों के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता 'टी' परीक्षण द्वारा ज्ञात की गई, जो सारणी संख्या–2 में वर्णित है। नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के पूर्व परीक्षणों के मध्य अन्तर ज्ञात करने का प्रयोजन यह पता लगाना था कि प्रायोगिक शिक्षण के पूर्व दोनों समूह प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल का स्तर समान था अथवा नहीं।

सारणी संख्या – 2
प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के पूर्व परीक्षण के मध्यमान, मानक विचलन एवं 'टी' परीक्षण

परीक्षण	समूह (N)	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (SD)	'टी' परीक्षण	सार्थक / असार्थक अन्तर
पूर्व परीक्षण	नियंत्रित समूह(N_1)	3.28	1.55	0.45	असार्थक अन्तर
	प्रायोगिक समूह(N_2)	3.00	3.62		

स्वतंत्रता अंश (df) = 78

सारणी मूल्य

सार्थकता का स्तर– .05 स्तर पर = 1.99
.01 स्तर पर = 2.64

व्याख्या

उपरोक्त सारणी संख्या–2 के अनुसार नियंत्रित समूह एवं प्रायोगिक समूह के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल संबंधी पूर्व परीक्षणों के प्राप्तांकों के मध्य संगणित 'टी' मान 0.45 प्राप्त हुआ है, जो सारणी मूल्य (.05 स्तर पर 1.99 एवं .01 स्तर पर 2.64) से कम है। अतः यह स्पष्ट करता है कि नियंत्रित एवं प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल पर आधारित पूर्व परीक्षणों के प्राप्तांकों के मध्यमानों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

इस आधार पर शून्य परिकल्पना संख्या–1 : प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण

सम्प्रेषण कौशल के पूर्व परीक्षण के प्राप्तांकों के मध्यमानों में कोई सार्थक अंतर नहीं है, स्वीकृत की जाती है।

उपरोक्त दत्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्रायोगिक शिक्षण से पूर्व दोनों समूह प्रायोगिक समूह एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थी नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के स्तर पर समान थे।

परिकल्पना सं.–2 :प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के पश्च परीक्षण के प्राप्तांकों के मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता

इस विश्लेषण के अन्तर्गत प्रायोगिक समूह एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल पश्च परीक्षण के प्राप्तांकों के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता 'टी' परीक्षण द्वारा ज्ञात की गई, जो सारणी संख्या–3 में वर्णित है–

सारणी संख्या – 3
प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के पश्च परीक्षण के मध्यमान, मानक विचलन एवं 'टी' परीक्षण

परीक्षण	समूह (N)	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (SD)	'टी' परीक्षण	सार्थक / असार्थक अन्तर
पश्च परीक्षण	नियंत्रित समूह (N_1)	3.58	1.95	34.80	.01 स्तर पर सार्थक अन्तर
	प्रायोगिक समूह(N_2)	16.18	1.20		

स्वतंत्रता अंश (df) = 78

सारणी मूल्य

सार्थकता का स्तर– .05 स्तर पर = 1.99
.01 स्तर पर = 2.64

व्याख्या

उपरोक्त सारणी संख्या–3 के अनुसार नियंत्रित समूह एवं प्रायोगिक समूह के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल संबंधी पश्च परीक्षण के मध्य संगणित 'टी' मान 34.80 प्राप्त हुआ है। जो सारणी मूल्य (.05 स्तर पर 1.99 एवं .01 स्तर पर 2.64) से अधिक है। अतः यह स्पष्ट करता है कि नियंत्रित एवं प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल पर आधारित पश्च परीक्षण के मध्यमानों में सार्थक अंतर है।

यह अंतर शायद '5Es निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल' आधारित नोट्स निर्माण संप्रेषण कौशल पैकेज के माध्यम से करवाए गए प्रायोगिक शिक्षण के फलस्वरूप आया होगा। इस आधार पर शून्य परिकल्पना संख्या–2 : प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण संप्रेषण कौशल के पश्च परीक्षण के प्राप्तांकों के मध्यमानों में कोई सार्थक अंतर नहीं है, अस्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना सं.–3 :प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण संप्रेषण कौशल के पूर्व परीक्षण एवं पश्च परीक्षण के प्राप्तांकों के मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता

इस विश्लेषण के अन्तर्गत प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल पूर्व एवं पश्च परीक्षण के प्राप्तांकों के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता 'टी' परीक्षण द्वारा ज्ञात की गई, जो सारणी संख्या–4 में दिया गया है। नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के पूर्व एवं पश्च परीक्षणों के मध्य अन्तर ज्ञात करने का प्रयोजन यह पता लगाना था कि प्रायोगिक शिक्षण के पश्चात प्रायोगिक समूह के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल पूर्व एवं पश्च परीक्षण का स्तर समान था अथवा नहीं।

सारणी संख्या – 4
प्रायोगिक समूह के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के पूर्व परीक्षण एवं पश्च परीक्षण के मध्यमान, मानक विचलन एवं 'टी' परीक्षण

समूह (N)	परीक्षण	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (SD)	'टी' परीक्षण	सार्थक / असार्थक अन्तर
प्रायोगिक समूह	पूर्व परीक्षण	3.00	3.62	21.50	.01 स्तर पर सार्थक अन्तर
	पश्च परीक्षण	16.48	1.62		

स्वतंत्रता अंश (df) = 78 सारणी मूल्य

सार्थकता का स्तर– .05 स्तर पर = 1.99
.01 स्तर पर = 2.64

व्याख्या

उपरोक्त सारणी संख्या–4 के अनुसार प्रायोगिक समूह के नोट्स निर्माण कौशल संबंधी पूर्व एवं पश्च परीक्षणों के प्राप्तांकों के मध्य संगणित 'टी' मान 21.50 प्राप्त हुआ है, जो सारणी मूल्य(.05 स्तर पर 1.99 एवं .01 स्तर पर 2.64) से अधिक है। अतः यह स्पष्ट करता है कि प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण संप्रेषण कौशल संबंधी पूर्व परीक्षण एवं पश्च परीक्षण के मध्यमानों में सार्थक अंतर है।

यह अंतर शायद '5Es निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल' आधारित नोट्स निर्माण संप्रेषण कौशल पैकेज के माध्यम से करवाए गए प्रायोगिक शिक्षण के फलस्वरूप आया होगा। इस आधार पर शून्य परिकल्पना संख्या–3 : प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण संप्रेषण कौशल के पूर्व परीक्षण एवं पश्च परीक्षण के प्राप्तांकों के मध्यमानों में कोई सार्थक अंतर नहीं है, अस्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना सं.–4 :नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण संप्रेषण कौशल के पूर्व परीक्षण एवं पश्च परीक्षण के प्राप्तांकों के मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता

इस विश्लेषण के अन्तर्गत नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल पूर्व एवं पश्च परीक्षण के प्राप्तांकों के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता 'टी' परीक्षण द्वारा ज्ञात की गई, जो सारणी संख्या–5 में दिया गया है–

सारणी संख्या – 5
नियंत्रित समूह के नोट्स निर्माण सम्प्रेषण कौशल के पूर्व परीक्षण एवं पश्च परीक्षण के मध्यमान, मानक विचलन एवं 'टी' परीक्षण

समूह (N)	परीक्षण	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (SD)	'टी' परीक्षण	सार्थक / असार्थक अन्तर
नियंत्रित समूह	पूर्व परीक्षण	3.28	1.55	0.76	असार्थक अन्तर
	पश्च परीक्षण	3.58	1.95		

स्वतंत्रता अंश (df) = 78 सारणी मूल्य

सार्थकता का स्तर– .05 स्तर पर = 1.99
.01 स्तर पर = 2.64

व्याख्या

उपरोक्त सारणी संख्या–5 के अनुसार नियंत्रित समूह के नोट्स निर्माण संप्रेषण कौशल संबंधी पूर्व एवं पश्च परीक्षण के मध्य संगणित 'टी' मान 0.76 प्राप्त हुआ है, जो कि सारणी मूल्य(.05 स्तर पर 1.99 एवं .01 स्तर पर 2.64) से कम है। अतः यह स्पष्ट करता है कि नियंत्रित समूह के नोट्स निर्माण संप्रेषण कौशल संबंधी पूर्व एवं पश्च परीक्षण के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है।

इस आधार पर शून्य परिकल्पना संख्या–4 : नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों के नोट्स निर्माण संप्रेषण कौशल के पूर्व परीक्षण एवं पश्च परीक्षण के प्राप्तांकों के मध्यमानों में कोई सार्थक अंतर नहीं है, स्वीकृत की जाती है।

शोध सारांश

प्रायोगिक समूह एवं नियंत्रित समूह के नोट्स निर्माण संप्रेषण कौशल पूर्व एवं पश्च परीक्षण के प्राप्तांकों के विश्लेषण के उपरांत यह कहा जा सकता है कि नियंत्रित समूह में नोट्स निर्माण संप्रेषण कौशल के प्राप्तांकों के मध्यमानों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया, जबकि प्रायोगिक समूह में .01 स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि '5Es निर्मितवादी अनुदेशन मॉडल' आधारित शिक्षण विद्यार्थियों में प्रभावी रूप से नोट्स निर्माण संप्रेषण कौशल का विकास करने में सहायक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *Becker, K., & Maunsaiyat, S. (2004). A comparison of students' achievement and attitudes between constructivist and traditional classroom environments in Thailand vocational electronics programs. Journal of Vocational Education Research, 29(2), 133-153.*
2. *Borich, G. (2011). Effective teaching methods: Research based practice (7th ed.). Boston, M.A.: Pearson Education Inc..*
3. *Brown, T. (2005). Beyond constructivism: Exploring future learning paradigms. Education Today, 2, 1-11.*
4. *Jonassen, D. (1998). Designing Constructivist Learning Environments. (2nd Ed.). Erlbaum : Mahwah.*
5. *Konar, Nira (2011). Communication Skills for Professionals. Delhi : Prentice Hall India Learning Pvt. Ltd.*
6. *Larochella, Bednarz N. & Garrison, J. (1998). Constructivism and Education. Cambridge : Cambridge Press.*
7. *Lier, Van (1996). Interpreting Communicative Language Teaching : Context and Learner Autonomy in Education. London : Yale University Press.*
8. *Paliwal, A.K. (2007). Learn to Communicate in English. Jaipur : Vinayak Prakashan.*
9. *Sharma, Santosh (2012) Constructivist Approaches to Teaching and Learning. Handbook for Teachers of Secondary Stage. NCERT, New Delhi.*
10. *Vygotsky, L. S. (1978). Mind in society: The development of high psychological process. Cambridge, M.A.: Harvard University Press.*
11. *अग्रवाल, जे.सी.; चौहान, ज्योत्सना (2017). सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी की महत्वपूर्ण समझ। आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन।*
12. *कौल, लोकेश (1998). शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली। दिल्ली : विकास पब्लिशिंग हाउस।*
13. *मुखर्जी, रविन्द्रनाथ (2001). सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी। नई दिल्ली : विवेक प्रकाशन।*
14. *सरूपरिया, शीमा (2013). सूक्ष्म शिक्षण एवं निर्मितवादी पाठ योजनाएं। जयपुर : कल्पना पब्लिकेशन।*

जोधपुर सैन्य रेजीमेन्ट सरदार रिसाले की द्वितीय विश्वयुद्ध में भूमिका

डॉ. सुरेश कुमार
सहायक आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

SHODH SHREE
ISSN 2277-5587
RNI-RAJHIN02011/40531
shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात सर प्रताप ने सैन्य विभाग में फेर बदल का निर्णय लिया। फरवरी, 1922 ई. को सरदार रिसाले को ''भारतीय स्टेट फोर्सेज'' के नियमानुसार एक रेजिमेन्ट का रिसाला बनाया गया। सरदार रिसाले की एक रेजिमेन्ट में चार स्काडून गठित किये गये। इन चार स्काडूनों में दो स्काडून राठौड़ राजपूतों के होते थे, आधा स्काडून गिनायतों का एवं आधा स्काडून कायमखानी मुसलमानों का होता था। एक स्काडून मुख्यालय फौज का था। भंग रेजिमेन्ट के कमाण्डेड कर्नल शेरसिंह को रिसाले का ऑनरेरी कमाण्डेड बनाया गया। एवं कमाण्डेड प्रतापसिंह को सरदार रिसाले की रेजिमेन्ट का कमाण्डेड बनाया गया। 1922 से लेकर 1939 ई. तक सरदार रिसाला जोधपुर में ही रहा एवं यहां युद्ध के विभिन्न तौर तरीकों का प्रशिक्षण आदि प्राप्त करता रहा। द्वितीय विश्व युद्ध में सरदार रिसाले की जो गतिविधियाँ रही, उसे दो भागों में बाँटा जा रहा है। प्रथम काल 1940 ई. से अप्रैल 1944 तक है, जिसमें इस रिसाले ने भारत सरकार की सैनिक बटालियनों के साथ भारतीय सीमा की चौकसी का कार्य किया एवं युद्ध प्रशिक्षण प्राप्त किया। द्वितीय काल मई 1944 से अक्टूबर 1945 ई. तक का है, जिस दौरान सरदार रिसाले ने मध्यपूर्व के देशों में शांति व व्यवस्था बनाये रखने के साथ-साथ सुरक्षा आदि का भी कार्य किया। अगस्त 1945 को निरन्तर पाँच वर्षों तक भारत स्थित अंग्रेज सरकार व ब्रिटिश सरकार की द्वितीय विश्वयुद्ध में सफलतापूर्वक मदद करते हुए सैन्य रेजीमेन्ट सरदार रिसाले वापस जोधपुर पहुँचा।

संकेताक्षर : *रिसाला- अश्वारोही सेना, स्काडून-टूकड़ी, गिनायत-रिश्तेदार।*

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के बाद सरदार रिसाले के स्वरूप में जोधपुर राज ने कई परिवर्तन किये। युद्ध की समाप्ति के बाद ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि इम्पिरियल सर्विस टूप्स के अधीन जिन सैनिक रेजीमेन्टों ने युद्ध में ब्रिटिश सरकार का साथ दिया है, उन रेजीमेन्टों के अधिकारियों व सैनिकों को पारितोशिक के रूप में ग्रेच्युटी प्रदान की जायेगी। मारवाड़ राज्य ने भी इस घोषणा के सन्दर्भ में सहमति व्यक्त की। सर प्रताप ने सैनिकों को मिलने वाली ग्रेच्युटी की इस राशि का उपयोग शिक्षा के क्षेत्र में करने का निर्णय लिया। फलतः सरदार रिसाले के सैनिकों को, जिन्हें यह राशि मिलनी थी सर प्रताप के विरूद्ध आन्दोलन करने के लिए बाध्य होना पड़ा। सर प्रताप ने सैनिकों के इस कदम को अनुचित मानते हुए सैन्य विभाग में फेर बदल करने का निर्णय लिया।

इसी समय भारत स्थित ब्रिटिश सरकार ने सैन्य स्थापना संस्थान ने एक आदेश द्वारा इम्पिरियल सर्विस टूप्स के स्थान पर ''भारतीय स्टेट फोर्सेज'' का गठन करने का निर्णय लिया। भारत सरकार के इस निर्णय को जोधपुर राज ने भी अपने सैन्य विभाग में लागू करते हुए सरदार रिसाले का पुर्नगठन किया।[1]

फरवरी, 1922 ई. को सरदार रिसाले को ''भारतीय स्टेट फोर्सेज'' के नियमानुसार एक रेजिमेन्ट का रिसाला बनाया गया।[2] सरदार रिसाले की एक रेजिमेन्ट में चार स्काडून गठित किये गये।[3] इन चार स्काडूनों में दो स्काडून राठौड़ राजपूतों के होते थे, आधा स्काडून गिनायतों का एवं आधा स्काडून कायमखानी मुसलमानों का होता था। एक स्काडून मुख्यालय फौज का था।

इस प्रकार सरदार रिसाले को पुर्नगठित करते समय इसकी शक्ति को कम कर दिया गया। भंग रेजिमेन्ट के कमाण्डेड कर्नल शेरसिंह को रिसाले का ऑनरेरी कमाण्डेड बनाया गया। एवं कमाण्डेड प्रतापसिंह को सरदार रिसाले की रेजिमेन्ट का कमाण्डेड बनाया गया। 1922 से लेकर 1939 ई. तक सरदार रिसाला जोधपुर में ही रहा एवं यहां युद्ध के विभिन्न तौर तरीकों का प्रशिक्षण आदि प्राप्त करता रहा।

द्वितीय विश्वयुद्धः– प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के ठीक 20 वर्ष बाद द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। प्रथम महायुद्ध के उपरान्त विश्व शांति के प्रयत्न ही अप्रत्यक्ष रूप से द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण बन गये। यूरोप के सभी छोटे बड़े साम्राज्यवादी राष्ट्र जैसे इण्लैण्ड, इटली, जर्मनी, रूस, पौलेण्ड आदि अन्तर्राष्ट्रीय न्याय तथा पेरित शांति संधि की शर्तो के विपरीत भास्त्रीकरण की विनाशकारी होड़ में लग गए। युद्ध आरम्भ होने के तुरन्त बाद जर्मन सेनाओं ने ब्रिटेन पर हमला कर दिया। ब्रिटेन को अपने उपनिवेशों की रक्षा करने की चिन्ता थी, अतः ब्रिटिश सरकार ने अपने उपनिवेशों की सभी सरकारों को आदेश दिया कि वे स्थानीय सहयोग द्वारा सैनिकों की व्यवस्था कर सीमा की रक्षा करें। भारत को इस युद्ध का कोई पूर्वाभास नहीं था। भारतीय जनता तो यहाँ हो रहे सांविधानिक प्रयोग का नाटक देखने में निमग्र थी। वैसे भी यूरोप दूर था और यूद्ध के भारत पहुँचने की कोई सम्भावना न थी। अच्छे लोकतंत्रवादियों के समान भारत के राष्ट्रवादी नेताओं ने जर्मनी के अधिनायकवाद का खण्डन तो किया, परन्तु अंग्रेजी सरकार की युद्ध में मदद करने से साफ इनकार कर दिया।[4]

गवर्नर–जनरल लॉर्ड लिनलिथगों ने कई बार भारतीय नेताओं से अनुरोध किया कि वे इस संकट के समय ब्रिटिश सरकार की सहायता करे एवं युद्ध में सक्रिय सहयोग प्रदान करें, परन्तु कांग्रेसी मानस की धारणा यह थी कि ब्रिटेन के संकटग्रस्त रहने में ही भारत का हित है। अतः उन्होंने सहायता की अपील पर विचार तक नहीं किया।

जहाँ एक तरफ भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व करने वाली कांग्रेस ने युद्ध में भाग लेने से इन्कार कर दिया। वहीं दूसरी तरफ देशी राज्यों के शासकों ने वाइसराय लॉर्ड लिनलिथगों की सहायता की अपील पर अपने पूरे सैन्य–बल के साथ युद्ध में ब्रिटिश सरकार का संक्रिय सहयोग करने का निश्चय किया। मारवाड़ राज्य ने लार्ड लिनलिथगों की अपील पर पुरी सहानुभूति दिखाते हुए युद्ध में अग्रेंजी सरकार की सहायता करने का निश्चय किया। यद्यपि भारत के अन्य प्रांतों व रियासतों की तरह जोधपुर का राजनीतिक वातावरण भी बड़ा उग्र था एवं यहां दो तरह के आन्दोलन चल रहे थे। एक तो आन्दोलन जयनारायण व्यास के नेतृत्व में मारवाड़ लोक परिषद द्वारा चलाया जा रहा था।, जिसकी मुख्य मांग जोधपुर राज्य में प्रतिनिधि संस्थाओं का विकास कर राज्य प्रशासन में जन साधारण को भी हिस्सा देने की थी।।[5] दूसरी तरफ जागीरदारों के अत्याचारों के कारण मारवाड़ के किसान भी आन्दोलन कर रहे थे। एवं समय–समय लाग–बाग समाप्ति एवं लगान निर्धारित करने की मांग कर रहे थे। यद्यपि मारवाड़ के राजनीतिक वातावरण में काफी उग्रता थी। एवं यहाँ की स्थानीय समस्याओं को लेकर आन्दोलन हो रहे थे। तथापि यहाँ ब्रिटिश विरोधी भावनाएँ भी कम नहीं थी।[6] जनता में ब्रिटिश भासन के कारण असंतोष था। एवं वह ब्रिटिश भासन की समाप्ति का इन्तजार कर रही थी। ऐसी परिस्थितियों में जब द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हुआ तो मारवाड़ की जनता ने इसे सुखद संयोग मानते हुए ब्रिटिश सरकार की सहायता नहीं करने का फैसला किया, फिर भी महाराजा उम्मेदसिंह ने अग्रेंजी सरकार की सहायता का निर्णय लेकर यहाँ कि सेनाओं को युद्ध के लिए तैयार रहने का आदेश दिया।

द्वितीय विश्व युद्ध में सरदार रिसाले की जो गतिविधियाँ रही, उसे दो भागों में बाँटा जा रहा है। प्रथम काल 1940 ई. से अप्रैल 1944 तक है, जिसमें इस रिसाले ने भारत सरकार की सैनिक बटालियनों के साथ भारतीय सीमा की चौकसी का कार्य किया एवं युद्ध प्रशिक्षण प्राप्त किया। द्वितीय काल मई 1944 से अक्टूबर 1945 ई. तक का है, जिस दौरान सरदार रिसाले ने मध्यपूर्व के देशों में शांति व व्यवस्था बनाये रखने के साथ–साथ सुरक्षा आदि का भी कार्य किया।

नवम्बर 1939 ई. में जोधपुर सरदार रिसाले को एक माह की भीतर रिसालपुर पहुँच कर ''फर्स्ट इण्डियन केवेलरी ब्रिगेड के साथ कार्य करने का आदेश दिया गया। फर्स्ट इण्डियन केवेलरी ब्रिगेड इस समय उत्तर–पश्चिम सीमा पर सीमा सुरक्षा का कार्य कर रही थी।[7] सरदार रिसाले को इस आदेश की प्राप्ति होते ही यह भारतीय स्टेट फोर्सेज की ऐसी प्रथम रेजीमेन्ट या सैन्य यूनिट हो गई, जिसे साम्राज्ञी के सेना के साथ

चयनित किया गया एवं उसके साथ कार्य करने को कहा गया।

सरदार रिसाले ने 04 जनवरी 1940 को युद्ध कार्य के लिए जोधपुर से रिसालपुर के लिए प्रस्थान किया। प्रस्थान करने वाली रेजीमेन्टः

17 कमीशन प्राप्त अधिकारी, 02 कमीशन प्राप्त कैडट,

21 गैर कमीशन प्राप्त अधिकारी, 486 सैनिक,

383 रेजीमेन्ट की सहायता करने वाले गैर लडाकू सैनिक, एवं 521 घोड़ें, इस प्रकार एक विशाल काफिला जोधपुर से रवाना हुआ।

07 जनवरी को सरदार रिसाला रिसालपुर पहुँचा। रिसालपुर पहुँचने के बाद सरदार रिसाले के अधिकारी, सैनिक आदि 16 वीं/5 वीं ब्रिटिश केवेलरी द्वारा रिक्त किये गये बैरकों में पहुँची। व्यवस्था आदि का प्रबन्ध करने के तुरन्त बाद सरदार रिसाले के अधिकारियों व सैनिकों ने सीमा का निरीक्षण करना प्रारम्भ किया एवं ब्रिटिश सैन्य अधिकारियों से सीमा सुरक्षा की व्यवस्था के बारे में विचार-विमर्श कर, उसे अन्तिम रूप दिया।[8] फर्स्ट इण्डियन केवेलरी ब्रिगेड के बिग्रेडियर ए.ए. ई. फिलोज ने सरदार रिसाले के सैन्य अधिकारियों से सम्पर्क कर उन्हें उत्तर-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा के सम्बन्ध के आवश्यक निर्देश दिये।

जनवरी 1940 ई. तक सरदार रिसाले ने उत्तर-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा के लिए आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया था। इसी सुरक्षा व्यवस्था के दौरान उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त के कुछ अफरीदियों से सरदार रिसाले के सैनिकों की मूठभेड़ भी हुई, जिसमें सरदार रिसाले के 06 सिपाही मारे गये।[9] रिसालपुर में सरदार रिसाले की मुख्य गतिविधि प्रशिक्षण प्राप्ति से ही सम्बन्धित रही थी। फरवरी 1940 ई. में रिसाले के सैनिकों ने अर्न्तःरेजीमेन्ट युद्ध अभ्यास किया। 17 मार्च से 19 मार्च 1940 ई. तक सरदार रिसाले के सैनिकों ने रात्रि आक्रमण करना, नदी पार करना, शत्रु पर अचानक हमला करना आदि युद्ध के महत्वपूर्ण आयामों के बारें में ब्रिटिश प्रशिक्षकों से जानकारी हासिल की।

जुलाई 1940 ई. में जोधपुर महाराजा उम्मेदसिंह रिसालपुर सरदार रिसाले के सैनिकों की गतिविधियों की जानकारी हासिल करने रिसालपुर गये। रिसालपुर में महाराजा ने रिसाले के सैनिकों से उत्साह व वीरता के साथ कार्य करने का कहा। साथ ही महाराजा उम्मेदसिंह ने वायु सेना से सम्बन्धित विभिन्न प्रशिक्षणों में भी भाग लिया।[10] महाराजा उम्मेदसिंह स्वयं एक कुशल विमान चालक थे। इसी माह में सरदार रिसालें की रेजीमेन्ट ने उत्तरी कमाण्ड की वायु रक्षा पर्क्ति के साथ अभ्यास में भाग लिया। इसी अभ्यास के दौरान उन्होंने पेशावर हवाई अड्डे पर युद्धाभ्यास हमला किया। 11 नवम्बर 1940 ई. में सरदार रिसाले की रेजीमेन्ट के तीनों स्काड्रनों को बारी-बारी से तोरू व लाहौर में एक माह का विशेष युद्ध प्रशिक्षण दिया गया, जिसमें शत्रु से स्वयं की सुरक्षा करने का प्रशिक्षण महत्वपूर्ण था।

दिसम्बर 1940 ई. में सरदार रिसाले के सैनिकों की कई समस्याओं का सामना करना पड़ा। कमाण्डर ने उनकों काबूल में बहने वाली एक नदी को पार करने का प्रशिक्षण लेने का आदेश दिया। रिसाले के सैनिक मारवाड़ के मरूस्थलीय भू-भाग के रहने वाले थे, जिन्हें तैरना नहीं आता था। साथ ही इस माह में सर्दी का प्रकोप भी जोरों पर था।, ऐसी परिस्थितियों में यह अभ्यास करना सैनिकों के लिए कठिनाई साबित हुआ। 3 फरवरी एवं हवाई हमलों से सुरक्षा के अभ्यास में भाग लिया। इस अभ्यास के दौरान रिसाले के सैनिकों को विशेष रूप से जमीन में खाईयाँ खोदकर, हवाई हमलों के दौरान उनमें छिप जाने की कला का प्रशिक्षण दिया गया।

10 फरवरी 1941 की वाइसराय की परिषद ने निर्णय लिया था कि सरदार रिसाले को ''इण्डियन मोटर रेजिमेन्ट'' में बदला जायेगा। इस निर्णय के अनुसार सरदार रिसाले के पुर्नगठन की योजना थी, जिसके अनुसार रेजीमेन्ट के सभी कमीशन व गैर कमिशन प्राप्त अधिकारियों को वाहन चलाने का एवं वाहनों की देख-रेख करने का प्रशिक्षण दिया जायेगा। वस्तुतः सरदार रिसाले के रूप को ही परिवर्तित कर उसका यान्त्रिकरण करने की योजना थी।[12] इस योजना ने रिसाले के अधिकारियों के साथ-साथ जोधपुर महाराजा को भी प्रसन्न नहीं किया, फिर भी रिसाले की रेंजीमेन्ट को इसी स्वीकार करना पड़ा।[13] इस प्रशिक्षण के दौरान रेजिमेन्ट को 22 साधारण लोरी व 30 बख्तरबन्द गाड़ीया कष्टों शास्त्राग्रह से प्राप्त हुई।

07 जुलाई 1941 को सरदार रिसालें के कमाडिंग ऑफिसर ले.कर्नल बहादुर सिंह का कार्यकाल पुरा हो जाने के कारण ले.कर्नल जी.जी. कोलिन्स को सरदार

रिसाले का कमाण्डर बनाया गया।14 इस समय तक सरदार रिसाले को यांत्रिकरण का प्रशिक्षण दिया जाता रहा। इस बीच इसके कई अधिकारियों ने वाहन चालक प्रशिक्षण केन्द्र, लड़ाकू वाहन प्रशिक्षण स्कूल आदि स्थानों पर यांत्रिकरण का प्रशिक्षण प्राप्त किया। प्रशिक्षण के दौरान कई ब्रिटिश सैन्य अधिकारियों ने समय-समय रिसाले का निरीक्षण एवं उसकों प्रगति के बारें में संतोष जाहिर किया। जनरल सर.आर.सी.बाल्ड वेवेल, फर्स्ट आर्मड डिविजन के कमाण्डर टी.डब्ल्यू, कारवेट आदि ने निरीक्षण किया था।15

अक्टूबर 1941 में सरदार रिसाले को सिकन्दराबाद में स्थित 18 वीं इण्डियन डिविजन के साथ कार्य करने के लिए भेजा गया। सिकन्दराबाद में इसे नये-नये तरीकों का प्रशिक्षण दिया गया था। अब तक रिसाले की रेजीमेन्ट को युद्धों का सामान्य प्रशिक्षण जैसे शत्रु पर मशीनगनों तोपों से हमला करना, हवाई हमलों से रक्षा करना, वाहन चालक आदि के रूप में प्रशिक्षण दिया गया, परन्तु अब उसे खोजी दस्तों के रूप में प्रशिक्षित किया जाने लगा। प्रशिक्षण के दौरान सरदार रिसाले की रेजिमेन्ट को इस बात का प्रशिक्षण दिया गया कि शत्रु के ठिकानों का किस तरह से पता लगाया जाना चाहिए। शत्रु के संचार साधनों को बेकार करना, उसकी शक्ति का आंकलन करना एवं उसकी भावी रणनीति का पता करना आदि के बारें में पूर्ण प्रशिक्षित किया गया। इस प्रकार सरदार रिसाले की रेजीमेन्ट ने 18 वीं इण्डियन डिविजन की अग्रिम पर्क्ति के रूप में कार्य करते हुए, प्रशिक्षण के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की।

इस समय जापानी सैनाएँ निरन्तर आगे बढ़ रही थी। ऐसी सम्भावना व्यक्त की जा रही थी कि वह भीघ्र ही मद्रास पर आक्रमण करेगी। अतः सरदार रिसाले की 19 वीं इण्डियन डिविजन के साथ भीघ्र राजमपुरे पहुँचने का निर्देश मिला था। राजमपुरे जाकर रिसाले ने मेजर जनरल स्कूनस के नेतृत्व में सीमावर्ती इलाकों में युद्ध मोर्चा तैयार किया, परन्तु जापान की सैना का कोई आक्रमण नहीं हुआ। राजमदुरे प्रवास के दौरान सरदार रिसाले की रेजीमेन्ट को 19 वीं इण्डियन डिविजन से अलग कर 20 वी. डिविजन के नेतृत्व में त्रिचनोपल्ली भेजा गया।[16]

अगस्त 1942 ई. में मेजर जनरल ए.सी. डेविज के नेतृत्व में जब 25वी. भारतीय डिविजन का गठन हुआ तो सरदार रिसालों को इस डिविजन में खोजी दस्तें के रूप में कार्य करने के लिए रखा गया था। इस समय भारत पर जापानी हमले के प्रबल सम्भावना को देखते हुए मेजर जनरल ए.सी. डेविज ने समुद्रतटों पर सैनिक कैम्पों का निर्माण करने, बन्दरगाहों की रक्षा करने एवं समुद्री सीमा की रक्षा करने के लिए सरदार रिसालें के सैनिकों की सेवा का उपयोग किया। रिसाले के मेजर श्यामसिंह ने बड़ी निश्ठा के साथ समुद्री सीमा सुरक्षा के लिए पूर्ण व्यवस्था की एवं शत्रु के आक्रमण की सम्भावना को देखते हुए अपने सैनिकों को सदैव युद्ध के लिए तैयार रखा।

दिसम्बर, 1942 को सरदार रिसाले के सैनिकों को ''मिनएक्स'' अभियान में भाग लेने के लिए भेजा गया। ''मिनएक्स'' प्रशिक्षण का वह अध्याय था, जिसके अन्तर्गत युद्ध के समय उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों का प्रशिक्षण दिया जाता था। जैसे यदि शत्रु अचानक हमला कर दें तो उससे रक्षा कैसे की जा सकती हैं। जब हमला चल रहा हो और अस्त्र-शस्त्रों की कमी आ जाय तो उसकी आपूर्ति कैसे की जाय एवं शत्रु को धोखा देने के उपाय आदि समस्त जानकारियाँ इस अभियान में दी गई थी। जून 1943 ई. में रिसाला रेजीमेन्ट बैंगलोर के निकट पूर्वी पठार पर पहुँची। इस समय इस रेजीमेन्ट के दो मुख्य उत्तरदायित्व थे,

एक तो डिविजन की दक्षिणी पर्क्ति के लिए खोजी दस्तें के रूप में कार्य करना एवं दूसरा 55वीं बिग्रेड के लिए अग्रिमदस्तें के रूप में कार्य करना।

इस प्रकार अप्रैल 1944 ई. तक सरदार रिसाले की रेजीमेन्ट उत्तर पश्चिमी सीमा व दक्षिण भारतीय समुद्रतट पर निरन्तर सीमा सुरक्षा दल के रूप में कार्य करती रही। इस अवधि के दौरान विभिन्न भारतीय सेनाओं के साथ इसे कार्य करने का मौका मिला, जिससे इस रेजीमेन्ट को कई नये-नये अनुभव जानने का अवसर प्राप्त हुआ। चार वर्षो तक निरन्तर हिन्दुस्तान में ब्रिटिश सरकार की सहायता करने के बाद इसे मई 1944 ई. में मध्य पूर्व एशिया के देशों में भेजा गया। मध्यपूर्व में मित्र देशों की सेना की कमान सर आर्खीबाल्ड वेवल के हाथ में थी।[17] इस प्रदेश में भारतीय इन्फेन्ट्री के सैनिकों के साथ-साथ केवेलटी को भेजा गया था।

01 मई 1944 को सरदार रिसाला रेजिमेन्ट कोलाबा पहुँची, जहाँ से उसे ओवर सीज की तरफ प्रस्थान करना था। 19 मई को रेजिमेन्ट बसरा पहुँची। बसरा

में रेजिमेन्ट की अग्रिम पंक्ति ले.कर्नल उम्मेद सिंह के नेतृत्व में पहले ही जा चुकी थी। रेजिमेन्ट को बसरा से 20 कि.मी. दूर सायबा स्थित कैम्प में रखा गया। मई 1944 ई. में सरदार रिसाले को अंगोलों ईरानियन तेल क्षेत्र की सुरक्षा करने का महत्वपूर्ण कार्य सौंपा गया। यह कार्य महत्वपूर्ण इसलिए था कि शत्रु द्वारा इसी क्षेत्र पर आक्रमण किये जाने की सम्भावना ज्यादा थी।

सरदार रिसाले की रेजिमेन्ट को प्रशिया की भौगोलिक एवं सामरिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए 18 जून 1944 की अहवाज नाम स्थान की तरफ भेजा, जहाँ से रिसाले की 'ए' स्काड्रून के अतिरिक्त 'बी' एवं 'सी' स्काड्रून मस्जिद-ए-सुलेमान आगाजारी, पाजानुन एवं हाफ्तखेल आदि स्थानों की तरफ भी गये थे। प्रशिया के कई अन्य स्थानों की भौगोलिक स्थिति का अध्ययन भी सरदार रिसाले के सैनिकों ने किया था, इनमें प्रमुख स्थान काजिरम, कुन्तलीपीरजान, शिराज, बुरूजद आदि है।[18]

अहवाज में सरदार रिसाले का नेतृत्व ई.जे.आर.एमट्रेज कर रहे थे। जो स्वयं महान सेनानायक थे। फरवरी 1945 में सरदार रिसाले को इन्फेन्ट्री बटालियन के साथ जोड़ दिया गया। इस रेजिमेन्ट ने सर्कस नामक स्थान पर तीन माह का प्रशिक्षण भी प्राप्त किया। 16 अगस्त 1945 को निरन्तर पाँच वर्षो तक भारत स्थित अग्रेंज सरकार व ब्रिटिश सरकार की द्वितीय विश्वयुद्ध में सफलतापूर्वक मदद करते हुए सैन्य रेजीमेन्ट सरदार रिसाले वापस जोधपुर पहुँचा।[19]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *रिआर्गेनाइजेशन ऑफ दि जोधपुर फोर्सेज : फाईल संख्या 245-1 (1924)*
2. *जोधपुर स्टेट फोर्सेज आर्मी लिस्ट, वर्ष 1930, संख्या 790।*
3. *डंकन, आर.सी., हिस्ट्री ऑफ दि जोधपुर स्टेट फोर्सेज इन दि. वार, पृ.स.166*
4. *रॉबर्ट्स, पी.ई. : ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास, पृ.447*
5. *सक्सेना, के.एस.: राजस्थान में राजनैतिक जनजागरण,*
6. *प्रजा सेवक : समाचार-पत्र दि. 24.10.46*
7. *डंकन, आर.सी.: हिस्ट्री ऑफ द जोधपुर स्टेट फोर्सेज इन दि. वार, पृ.4*
8. *महकमा खासः फाईल सं. 236 (रा.रा.अ.बी.) (यूरोपियन वार 1939, जोधपुर स्टेट फोर्सेज)*
9. *हिन्दुस्तान, (समाचार पत्र दिनांक 26 जनवरी, 1940)*
10. *महकमा खास : फाईल सं. 236 (रा.रा.अ.बी.)*
11. *डंकन, आर.सी.: हिस्ट्री ऑफ दि जोधपुर स्टेट फोर्सेज इन दि. वार पृ.17*
12. *एडमिस्ट्रेटिव रिपोर्ट, जोधपुर पृ. 207*
13. *रिसालदार गुमानसिंह (जोधपुर) का व्यक्तिगत विवरण*
14. *जोधपुर स्टेट फोर्सेज आर्मी लिस्ट, वर्ष 1942, सं. 27*
15. *डंकन, आर.सी.हिस्ट्री ऑफ द जोधपुर स्टेट फोर्सेज इन दि. वार पृ.22*
16. *वही पृ.26*
17. *रॉबर्टस, पी.ई.: ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास, पृ. 448*
18. *डंकन, आर.सी. : हिस्ट्री ऑफ दि जोधपुर स्टेट फोर्सेज इन दि. वार पृ. 52*
19. *हिन्दुस्तान : समाचार पत्र, 19 अगस्त 1945*

हिन्दी की उपभाषा तथा बोलियों का अध्ययन

वीरेन्द्र कुमार यादव
शोध अध्येता, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (मध्यप्रदेश)

SHODH SHREE
ISSN 2277-5587
RNI-PUNHIN02017A0537
shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

हिन्दी शब्द फारसी शब्द की देन है। फारसी में संस्कृत की 'स' ध्वनि 'ह' में बदल जाती है। सिन्ध से फारसी मे हिन्दी और सिन्धी से हिन्दी बना हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में अनेक विद्वानों ने हिन्दी शब्द के व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है। धीरे-धीरे हिन्दी शब्द का अर्थ विस्तार हुआ और मध्य देश भी भाषा के रूप में प्रयुक्त होने लगा। भाषा विविधरूपा होती है। किसी भी विशाल क्षेत्र में व्यवहत भाषा के अनेक क्षेत्रीय रूप होते है जिन्हे उपभाषा या बोली कहा जाता है। हिन्दी भारत के बहुत बड़े भू-भाग की मातृभाषा, व्यवहार भाषा, संपर्क भाषा और साहित्यिक भाषा है। हिन्दी भाषा के क्षेत्र में राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराचल, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली, बिहार, झारखंड और छत्तीसगढ़ प्रमुख राज्य तथा चंड़ीगढ़ और अंडमान – निकोबार द्वीप समूह आते है। स्वाभाविक रूप से इस पूरे क्षेत्र में अनेक भाषा रूप प्रचालित हुए है। भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से समस्त हिन्दी प्रदेश में बोले जाने वाले विभिन्न भाषा रूपों को अनेक उपभाषाओं एवं बोलियो – उपबोलियों के वर्गो में विभाजित किया गया है। उपभाषा खंडो एवं बोलियों के वर्गीकरण के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किए है।

संकेताक्षर : *भाषा, उपभाषा, हिन्दी, हिन्दुस्तानी, उर्दू, रेक्ता, दक्खिनी, अपभ्रंश – उपनगर शोर सेनी, अर्धमागध, मागध, खस, राजस्थानी, हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी, ब्रजभाषा, हरियाणवी, बुन्देली, कन्नौजी, अवधी, बघेली छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मैथिली, कुमांयूनी, गढ़वाली।*

कुछ विद्वान प्राचीनकाल में उत्तर भारत को भारतखण्ड तथा जम्बू द्वीप कहते हैं। कुछ धर्म ग्रन्थों में उत्तर भारत को जम्बू द्वीप के नाम से ही पुकारा गया है। भारत को हिन्द देश का नाम सिन्धु देश के प्रतिरूप है। हिन्दी शब्द अब तक देश के अर्थ में व्यापक बन चुका था। इसी हिन्द शब्द से हिन्दी बना।

हिन्दी भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने पर अनेक नामों से अभिहित की गयी और इसे हिन्दुई, हिन्दवी, दक्खिनी, दखनी, दकनी, हिन्दुस्तानी, खड़ीबोली, रेखूता, रेखूती इस मध्य देश की भाषाओं में वैदिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश के बाद हिन्दी का विकास हुआ। हिन्दी शौरसेनी प्राकृत से विकसित हुई। हिन्दी का केन्द्र आर्यावर्त है इसीलिए आर्य समाज के प्रवर्तक आचार्य दयानन्द सरस्वती ने इसी को आर्य भाषा नाम भी दिया। इसी प्रकार दक्खिनी हिन्दी भी हिन्दी की ही एक शैली है तथा हिन्दुस्तानी शब्द हिन्दी का ही पर्याय था और इसी कारण हिन्दुस्तानी की आड़ में उर्दू को इतना बढ़ावा मिला की उर्दू हिन्दी की प्रतिद्वन्दी भाषा बन गयी।

''हाब्सन जाब्सन कोश में लिखा है– हिन्दुस्तानी शब्द वास्तव में विशेषण है किन्तु संज्ञा के रूप में इसके दो अर्थ होते हैं (क) हिन्दुस्तानी का निवासी (ख) हिन्दुस्तानी जबान''[1]

हिन्दी के समर्थन में अनेक आन्दोलन और संस्थाओं का निर्माण हुआ। उत्तर भारत में मदन मोहन मालवीय जी ने हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने का अन्दोलन किया तथा गाँधी जी को हिन्दुस्तानी नाम ही पसन्द आया।

हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने के लिये अनेक संस्थाएँ बनायी गयी नागरी प्रचारणी सभा, दक्षिण भारत राष्ट्र भाषा प्रचार

सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि।

''डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार पश्चिम से अम्बाला (पंजाब) से लेकर पूर्व में बनारस तक और उत्तर में नैनीताल की तलहटी से लेकर दक्षिण में बालाघाट (मध्य प्रदेश) तक हिन्दी का क्षेत्र है तथा हिन्दी की बोलियों बोली जाती है''।[2]

हिन्दी के विभिन्न रूपः खड़ी बोली हिन्दी के चार विविध रूप प्रचलित है।

(1) उर्दू (2) रेक्ता (3)दक्खिनी (4) हिन्दुस्तानी

विशेषता :–

(1) एक साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दी की प्रकृति संरचनात्मक है।

(2) इसमें तद्भव शब्दो का बाहुल्य है।

(3) तत्सम शब्दो का अल्प प्रयोग है।

क्षेत्र :– पंजाब, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि।

हिन्दी की उपभाषाएँ :– आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास इसी अपभ्रंश भाषा से हुआ है। हिन्दी का विकास भी अपभ्रंश से ही हुआ। अतः हिन्दी की जननी अपभ्रंश है। उत्तर भारत में अपभ्रंश के रूप प्रचलित थे निम्नवत है–

आधुनिक आर्य भाषाओं के विकास के पूर्व में इस प्रदेश में मुख्य पाँच प्राकृत भाषा प्रचलित थी–

अपभ्रंश	उपभाषा
(1) उपनागर अपभ्रंश	राजस्थानी हिन्दी
(2) शौरसेनी अपभ्रंश	पश्चिमी हिन्दी
(3) अर्धमागध	पूर्वी हिन्दी
(4) मागधी अपभ्रंश	बिहारी हिन्दी
(5) खस अपभ्रंश	पहाड़ी हिन्दी

इस प्रकार हिन्दी की पाँच उपभाषाएँ हुई

(1) राजस्थानी हिन्दी

(2) पश्चिमी हिन्दी

(3) पूर्वी हिन्दी

(4) बिहारी हिन्दी

(5) पहाड़ी हिन्दी[3]

(1) राजस्थानी हिन्दी : राजस्थान प्रदेश की भाषा राजस्थान है तथा सिन्ध और मध्यप्रदेश के कुछ भागो में बोली जाती है। अनेक रासो ग्रन्थ ढोला मारू–रा दूहा,रूक्मिणी री बेलि तथा राजस्थानी कवयित्री मीरा, दादू दयाल, चरण दास और हरिदास।

राजस्थानी की विशेषताएँ

(1) इस उपभाषा में ट वर्गीय ध्वनियों की प्रधानता है।

(2) स्वर के मध्य और अन्त मे 'ल' ध्यनि प्रायः 'ट' में बदल जाती है।

(3) ऋ–ष लेखन में अधिक प्रचलित है।

(4) ण, ड़ का प्रयोग अधिक है।

(5) एक वचन से बहुवचन बनाने के लिये ओं के स्थान पर आँ का प्रयोग करते है।

(6) राजस्थानी में संयोगात्मक भाषा अधिक है।

(2) पश्चिमी हिन्दी : इस उपभाषा का क्षेत्र पश्चिम में पंजाब और राजस्थान के सीमा से प्रारम्भ होकर पूर्व में अवधी बघेली की सीमा, दक्षिण में मराठी की सीमा में फैला हुआ है।

विशेषताएँ

(1) पश्चिमी हिन्दी मे अ विवृत्त ध्वनि है।

(2) ऐ, औ मूल स्वर है।

(3) आकारान्त तथा ओकारान्त पुलिंग शब्दों को वाक्यों में प्रयोग करते समय एकारान्त कर दिया जाता है।

(4) वर्तमान सहायक क्रिया हैं। भूतकाल सहायक क्रिया था, थे, हतो, हो भविष्यकाल सहायक क्रिया ग रूप है और ह रूप चलता है। प्राचीन कौशल की भाषा पूर्वी हिन्दी कहलाती है।

(3) पूर्वी हिन्दी : पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र व्यापक रूप में फैला है। पश्चिम में कानपुर से पूर्व में मिर्जापुर उत्तर में लखीमपुर नेपाल की सीमा से दक्षिण में दुर्ग– बस्तर की सीमा तक क्षेत्र फैला है। पूर्वी हिन्दी में साहित्यिक महत्व सिर्फ अवधी का है।

विशेषताएँ

(1) पूर्वी हिन्दी की बोलियाँ आपस में एक–दूसरे से बहुत मिलती–जुलती है।

(2) इसमें ण सभी जगह न मे बदल जाता है और श, व स में।

(3) इसमें ल से र हो जाता है।

(4) पूर्वी हिन्दी में महाप्राण ध्वनियां स्पष्ट है।

(5) सर्वनाम– हम तुम एक वचन में प्रयुक्त होते हैं।

(4) बिहारी हिन्दी : इस हिन्दी का क्षेत्र अधिकतर बिहार में है। बिहारी हिन्दी में दो प्रमुख बोलियाँ मैथिलि तथा मगधी है। इन बोलियों में इतनी विषमता है कि डॉ. सुनीत कुमार चटर्जी जैसे श्रेष्ठ भाषा वैज्ञानिक इन्हें एक वर्ग में रखना उचित नहीं समझते।[4]

विशेषताएँ

(1) बिहारी उपभाषा अकार बहुला है तथा शब्दों का समाप्त अ से अधिक होता है।

(2) बिहारी में अ का स्पष्ट उच्चारण होता है।

(3) बिहारी हिन्दी में संज्ञा के दो तीन रूप प्रचलित है।

(4) सर्वनामों में तोहनी तोहरनी हमनी का अधिक प्रयोग होता है।

(5) बहुवचन बनाने के लिये 'सभ' लोकनि, लोगनि, लोगन आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

(5) पहाड़ी हिन्दी : अधिकतर पहाड़ी क्षेत्रों में बोले जाने के कारण इसका नाम पहाड़ी पड़ गय प्राचीनकाल में यहाँ अनार्य जातियाँ निवास करती थी। वैदिक संस्कृत का यह केन्द्र स्थल बना और मध्यकाल में यहाँ से अनेक वैदिक साहित्य का सृजन हुआ और बाद में यहाँ खस जाति के लोग आये और यहाँ राजस्थानी राजपूतों का शासन रहा। पहाड़ी हिन्दी में साहित्य रचना अधिक नहीं हुई है। कुछ विद्वान इसे भाषा कहने में संकोच करते हैं।

विशेषताएँ

(1) अ का उच्चारण कहीं–कहीं विवृत्त है। ए, ऐ का उच्चारण तत्सम शब्दों के साथ–साथ अइ, अउ का प्रयत्न किया जाता है।

(2) स्वरों में आनुनासिक स्वरों का आधिक्य है।

(3) बहुवचन के प्रत्यय न अं है।

(4) भूत क्रिया–छियो, छिया छिय

(5) वर्तमान क्रिया– मैं जानूँ या मै। हिटनूं

भविष्य क्रिया– में ल रूप चलता है।

मानक हिन्दी की उपभाषा और बोलियों में सम्बन्ध की संरचना–

अपभ्रंश	**उपभाषाएँ**	**''बोलियाँ''**
क. शौरसेनी	पश्चिमी हिन्दी	1. कौरवी (खड़ी बोली)
		2. ब्रजभाषा 3. हरियाणवी
		4. बुन्देली 5. कन्नौजी
ख. अर्धमागधी	पूर्वी हिन्दी	1. अवधी 2. बघेली 3. छत्तीसगढ़ी
ग. उपनगर उपभ्रंश	राजस्थानी	1. पश्चिमी राजस्थानी भाखड़ी
		2. पूर्वो राजस्थानी जयपुरी
		3. उत्तर राजस्थानी मेवाती
		4. दक्षिणी राजस्थानी मालवी
घ. मागधी अपभ्रंश	बिहारी	1. भोजपुरी 2. मगधी 3. मैथिली
ड़ खस अपभ्रंश	पहाड़ी हिन्दी	1. पश्चिमी पहाड़ी
		2. मध्यवर्ती पहाड़ी
		3. कुमायूँनी, गढवाली

पूर्वी हिन्दी बोलियों का क्षेत्र विस्तार

(1) अवधी (2) बघेली (3) छत्तीसगढ़ी

(1) अवधी : अवधी का विकास अर्द्ध मागधी से हुआ अवधी हरदोई जिले को छोड़कर सारे अवध प्रान्त लखीमपुर, सुलतानपुर, खीरी, बहराइच, गोड़ा बाराबंकी लखनऊ, सीतापुर, उन्नाद, फैजाबाद, रायबरेली, प्रतापगढ़ इसके अलावा जौनपुर, मिर्जापुर (पश्चिमी भाग) फतेहपुर (कुछ भाग में) इलाहाबाद में अभी बोलने वालों की संख्या दो करोड़ से अधिक है।

अवधी का नमूना : ''याकमणई के दुई बिटवा रहैं। उन माँ लहुरवा बेटवा अपने बाप के कह्यसि जौन म्यार हीसा होय तौन बाँटि-याव-औ थोरे हिनन-माँ लहुरवा बेटवा आपणि सब जमा बटुरियाय-कै दूर परद्यसै चला गवा और छा अपना सब जमा कुचाल-माँ बहाय दिहिस''[5]

(2) बघेली : बघेल खण्ड बोली का नाम बघेली है। बद्येल राजपूतों के नाम पर इस क्षेत्र का नाम बघेलखण्ड पड़ा।

बघेली, रीवा, दमोह, जबलपुर, माँडला, बालाघाट बाँदा, फतेपुर तथा हमीरपुर इसके बोलने वालो की संख्या 75 लाख है।

''डॉ बाबू.राम सक्सेना ने अवधी की तीन बोलियाँ मानी है-

(1) पश्चिमी (2) केन्द्रीय (3) पूर्वी''[6]

(3) छत्तीसगढ़ी : छत्तीसगढ़ी वाले क्षेत्र को छत्तीसगढ तथा उसकी बोली को छत्तीसगढ़ी कहते है।

छत्तीसगढ़ रायगढ़, खैरागढ़ तथा उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों में इस बोली के बोलने वालों की संख्या लगभग 70 लाख है।

नमूना : ''एक उन मनाओ के दुई बिटवा रहिन तयो ओकर बड़का बेटवा खेती रहिस। मैं उठ के उपना दादा भरे जात भी और बोला गोढ़िया है।''[7]

पश्चिमी हिन्दी बोलियों का क्षेत्र विस्तार-

(1) कौरवी (खड़ी बोली) (2) ब्रजभाषा (3) हरियाणवी (4) बुन्देली (5) कन्नौजी

''डॉ. भोला नाथ तिवारी निमाड़ी को भी इसी के अन्तर्गत मानते हैं।"[8]

(1) कौड़वी (खड़ी बोली) : कौड़वी बोली को कई नामों से पुकारा जाता है। कौरवी हिन्दुस्तानी नागरी सरहिन्दी आदि इसका क्षेत्र रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून, अम्बाला, पटियाला।

(2) ब्रजभाषा : पश्चिमी हिन्दी की ओकार बहुआ उपवर्ग की बोली है। इसका क्षेत्र- मथुरा, आगपुर करौली, ग्वालियर, धौलपुर, अलिगढ़, बुलन्दशहर, एटा बरेली, नैनिताल आदि।

(3) हरियाणवी या बाँगरू : इस बोली का क्षेत्र-दिल्ली, जींद, रोहतक, नाभा, हिसार, पटियाला (के कुछ भाग) प्राचीनकाल में यही क्षेत्र कुरुक्षेत्र या नाम ब्रह्मावर्त से जाना जाता था।

(4) बुन्देली : इस क्षेत्र का विस्तार गुलवगी, बीजापुर गोलगुण्डा, बीदर और बरार।

(5) कन्नौजी बोली :- किसी समय कान्यकुब्ज या कन्नौज की एक हुआ करता था जिसका केन्द्र बिन्दु कन्नौज और फरुखाबाद था। इसके पूर्व में कानपुर, हरदोई, शाहजहापुर, पीलीभीत आदि है।

राजस्थानी हिन्दी बोलियों का क्षेत्र

(1) मारवाड़ी- जोधपुर, अजमेर-मारवाड़ा, किशनगढ़ और मेवाड़ तथा बीकानेर।

(2) जयपुरी- इस बोली का दूसरा नाम ढूढांडी हैं। जयपुर के पश्चिमी छोर पर एक ढूढं है जहाँ किसी युग में बड़े-बड़े यज्ञ हुआ करते थे। बूँदी और कोटा की हाडौती का विशेष स्थान है।

(3) मेवाती- अलवर, भरतपुर, उत्तर पश्चिमी गुडगाँव में।

(4) मालवी- मालवा प्रदेश की बोली है। उज्जैन का केन्द्र बिन्दु है। भोपाल और औरंगाबाद के कुछ क्षेत्रों में।

पहाड़ी हिन्दी की बोलियों का क्षेत्र

(1) कुमावनी- कुमाऊँनी कुमाऊं अंचल की बोली इसका पुराना नाम कूमाउर्चल इसका क्षेत्र हैं- नैनीताल, अल्मोडा, पिथौरागढ़। ''डॉ. ग्रियर्सन ने इसकी बारह उपबोलियों का उल्लेख किया है। जिसमे खस का स्थान सर्वोपरि है''।[9]

(2) गढवाली - गढ़वाली गढ़वाल क्षेत्र की बोली है तथा टिहरी, गढ़वाल, चमोली, उत्तर काशी का दक्षिण भाग सम्मिलित है।

बिहारी हिन्दी की बोलियों का क्षेत्र

(1) **भोजपुरी**– राजा भोज के वंशजो द्वारा स्थापित जनपद की राजधानी भोजपुर के नाम से प्रसिद्ध हुई इसलिए इस नाम भोजपुर पढ़ गया।

उत्तर प्रदेश में बनारस, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर देवरिया, आजमगढ़, मिर्जापुर, जीनपुर, राँची, पलामू आदि। भिखारी ठाकुर भोजपुरी विश्व प्रसिद्ध कवि है।

(2) **मगधी–** मगध प्रदेश के बोली को मगधी कहा गया। भागलपुर, पटना, गया, हजारीबाग, पलामू के कुछ भाग में प्रचलित।

(3) **मैथिली–** मिथला की बोली का नाम मैथिली है। इस बोली का विस्तार वैशाली, विदेह, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया, भागलपुर आदि है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *हिन्दी भाषा का इतिहासः डॉ. रमेश तिवारी पृष्ठ–52*
2. *हिन्दी भाषा का इतिहासः डॉ. रमेश तिवारी,पृष्ठ–55*
3. *भाषा विज्ञान हिन्दी भाषा और लिपिः राम किशोर शर्माः पृष्ठ–313*
4. *भाषा विज्ञान हिन्दी भाषा और लिपिः राम किशोर वर्मा पृष्ठ–320*
5. *हिन्दी भाषा का इतिहासः डॉ. रमेश तिवारी पृष्ठ–63*
6. *हिन्दी भाषाः डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया, पृष्ठ–136*
7. *हिन्दी भाषा का इतिहासः डॉ. रमेश तिवारी पृष्ठ–64*
8. *हिन्दी भाषा का विकासः डॉ. राम किशोर शर्मा, पृष्ठ–100*
9. *हिन्दी भाषा का विकासः डॉ. रमेश तिवारी पृष्ठ–75*

स्वतंत्रता पूर्व महिला शिक्षा का विकास : शेखावाटी के विशेष संदर्भ में

अन्जु
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सारांश : उन्नीसवीं सदी के अन्त में राजस्थान में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के लिए शासकों, उच्च जातियों, प्रतिष्ठित नागरिकों, अंग्रेज अधिकारियों एवं ईसाई धर्म प्रचारकों आदि सभी ने सराहनीय योगदान दिया। व्यवसायी तथा नौकरी पेशा वर्ग ने अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से आगे बढ़ने एवं अंग्रेजों का कृपापात्र बनने के प्रलोभन से उसका स्वागत किया। इसलिए बीसवीं सदी में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हो गया।

संकेताक्षर : *महिला शिक्षा, शिक्षा, शेखावाटी में महिला शिक्षा।*

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही शिक्षा का बहुत महत्त्व रहा है। गीता के अनुसार ज्ञान के समान पवित्र वस्तु दूसरी नहीं है। अतएव सम्पूर्ण जीवन का विकास शिक्षा में निहित है। वैदिक युग में ज्ञानी व्यक्ति की प्रतिष्ठा सर्वोच्च थी। जीवन को सार्थक और परिष्कृत बनाने के लिए शिक्षा के प्रमुख तत्त्वों– गुरु–शिष्य सम्बन्ध, गुरुकुल प्रणाली, शिक्षा विषय आदि पर बल दिया जाता था। इन विविध उपक्रमों के माध्यम से सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त किया जाता था और इन्हीं के द्वारा संस्कृति की संभावनाएं विकसित होती थीं। जिस प्रकार वैदिक संस्कृति में सहशिक्षा एवं स्त्री शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान था, राजस्थान में भी उसी परम्परा का उल्लेख मध्यकालीन शिलालेखों एवं काव्य ग्रन्थों में मिलता है जिससे यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन काल से चली आ रही स्त्री शिक्षा मध्यकालीन युग तक समाप्त नहीं हुई थी। प्राप्त साधनों से ज्ञात होता है कि मध्यम तथा राजपरिवार में स्त्रियां शिक्षित होती थीं। 15वीं शताब्दी के जावर के शिलालेख में महाराणा कुम्भा की लड़की रमाबाई संगीतज्ञ एवं हिन्दूशास्त्रविद बताई गई है। मीरांबाई हिन्दू दर्शन एवं काव्य रचना में निपुण थीं। केलवाड़ा ठिकाने की रसबाई को प्रेमाख्यान पढ़ने में रूचि थी। अमरसागर नामक लेखक उन्हें ऐसे आख्यान नकल कर पठनार्थ उपलब्ध कराते थे। जोधपुर के महाराजा विजय सिंह की पत्नी के पढ़ने के लिए राजस्थानी में रामायण तैयार करवाई गई थी।

मध्यम श्रेणी की स्त्रियां भी पुस्तकों के पढ़ने में रूचि लेती थीं जिनमें मारवाड़ की सोरठ उल्लेखनीय है। 1699 ई. में उदयपुर की गंगाबाई ने गीतगोविन्द की प्रति अपने पठनार्थ तैयार करवाई थी। साधारण दासियों द्वारा लिखे गये कई पत्र जो बीकानेर अभिलेखागार में सुरक्षित है इस बात के साक्षी है कि पढ़ने–लिखने का ज्ञान ऐसे वर्गों में भी प्रचलित था। जहां तक सह शिक्षा का प्रश्न है उसका अभाव बीजा सोरठ की बात से नही दिख पड़ता। परन्तु साधारण ग्रामीण तथा साधारण परिवारों में स्त्री शिक्षा इतनी लोकप्रिय नहीं थी और उसका अनुपात बहुत कम था। इस प्रकार बीसवीं सदी के दूसरे दशक तक संघर्ष का क्षेत्र विस्तृत होने लगा। बेगूं और आदिवासी क्षेत्र में आंदोलन होने लगे। इन क्षेत्रों में भी साधु सीताराम, रामनारायण चौधरी उनकी पत्नी अंजना देवी तथा राजकीय सेवायें छोड़कर आये माणिक्य लाल वर्मा, उनकी पत्नी नारायणी देवी ने पंचायतों की स्थापना कर उनके माध्यम से शिक्षण संस्थायें स्थापित की। आठ स्कूल पंचायतों के अधीन और 20 स्कूल आदिवासी क्षेत्र में स्थापित किये गये। यहां औसत विद्यार्थी संख्या 80 थी और विद्यार्थियों की आयु 10–18 वर्ष थी।

ग्रामीण किसानों में शैक्षणिक जागृति लाने के उद्देश्य से पाठशालायें स्थापित करने के क्षेत्र में शेखावाटी क्षेत्र बहुत आगे रहा। यहां सबसे पहले लाम्बा गोठड़ा के जाट सेठ छाजूराम अलखपुरिया ने सेठ ब्रजमोहन लोयलका के माध्यम से पिलानी में जाट छात्रावास की स्थापना की। 1922 में बेनीप्रसाद डालमिया ने चिड़ावा में शोषित मजदूर और

असहाय व्यक्तियों के लिए स्कूल प्रारम्भ किया। 1925 में जाट किसान पंचायत की स्थापना की गई जो कि कुछ समय बाद जाट बोर्डिंग हाऊस और 1932 में विद्यार्थी भवन के नाम से राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रहा।

जाट बोर्डिंग हाउस यानि विद्यार्थी भवन ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति ग्रामीण क्षेत्र में जगह–जगह पाठशालायें स्थापित करने में लगा दी। इस कार्य में सेठ भागीरथ कानोड़िया और मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी कलकत्ता भी सक्रिय थे। आगे चलकर महिला शिक्षा को अनिवार्य माना। बीकानेर के चुरू जनपद में स्वामी गोपालदास ने अनिवार्य शिक्षा, नारी शिक्षा, स्वदेशी और मजदूर अवधारणा के खूब कार्य किये, उन्होंने चुरू में जगह–जगह पुत्री पाठशालायें खोली, पुस्तकालय, वाचनालय खोले जिसके कारण उन्हें सामाजिक अवमानना सहनी पड़ी। 1932 में बीकानेर षडयन्त्र केस में उन्हें राजद्रोही घोषित कर तीन वर्ष की जेल हुई।

स्वतंत्रता आन्दोलन को राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप प्रदान करने में युवा पीढ़ी को केवल शिक्षित करने तक ही सीमित नहीं था वरन् आन्दोलन के समय उनके कार्य भी निर्धारित किये गये। चूंकि गांव के किसान पढ़े लिखे नहीं थे अतः उनके आवेदन पत्र लिखना आंदोलन के लिए चंदा एकत्रित करना, बड़े बुजुर्गों को समाचार पत्र पढ़कर सुनाना जिससे सामन्त एवं जागीरदारों के शोषणयुक्त कार्यों की जानकारी दी जा सके। पुलिस व अन्य सरकारी कर्मचारियों के गांव में आने की सूचना एवं गुप्त संदेश पहुंचाने का कार्य विद्यार्थी करते थे। आवेदन पत्र लिखते समय विद्यार्थी अक्षर बदल–बदल कर लिखते, जिससे लेखक पकड़ा नहीं जा सके, यही लोग समाचार पत्रों के लिए संवाद भी तैयार करते थे। विद्यार्थियों के लिए यह कार्य आसान नहीं था, चन्दा एकत्रित करते समय तो उन्हें परिवार वालों की प्रताड़ना भी सहनी पड़ती थी। उक्त शैक्षणिक गतिविधियों का आन्दोलन पर व्यापक प्रभाव पड़ा, इस प्रकार युवा पीढ़ी में आई जागृति के कारण राज्य और ब्रिटिशर्स को किसान आन्दोलन दबाने में कठिनाई आई। क्योंकि जागरूक विद्यार्थी किसानों की रात्रिकालीन सभाओं के लिए जंगल की सीमा पर पहरेदारी करते थे। ऐसी स्थिति में सभाकर्त्ता और संघर्षरत किसानों को गिरफ्तार करने आई सेना सभा स्थल पर पहुंचे उससे पूर्व ही उनके आने की सूचना किसानों को विद्यार्थियों द्वारा मिल जाती थी। इससे रात को जंगल में होने वाली गुप्त सभा के स्थल की सूचनाएं विद्यार्थी ही किसानों तक पहुंचाते थे।

बिजोलिया किसान आन्दोलन में एक महत्वपूर्ण नीतिगत परिवर्तन पंचायत के माध्यम से संघर्ष के दर्शन में देखा जा सकता है। यह कदम भारत की प्राचीन राजनीतिक जनतांत्रिक दर्शन को जनजागृति का आधार बनाना था। पंचायत और शिक्षा जनजागृति के सबसे सबल माध्यम हो सकते हैं। इसकी पुष्टि इस आन्दोलन से होती है। पथिक जी ने पाठशालाओं को पंचायत के नियंत्रण में रखा, शिक्षकों का वेतन भी पंचायत द्वारा किया जाता था। गांव के प्रत्येक घर से नकद या अनाज शिक्षा के चन्दे के रूप में लिया जाता था किसी एक व्यक्ति से दान नहीं। पथिक जी की मान्यता थी कि बाहरी आर्थिक सहयोग से हस्तक्षेप और असमाजिक तत्वों का प्रवेश प्रारम्भ हो जाएगा। यह हस्तक्षेप जनजागृति के लक्ष्य में रूकावट होगा। यद्यपि शिक्षा में बाहरी हस्तक्षेत्र को अस्वीकार किया, लेकिन राजकीय उत्तरदायित्व को आवश्यक माना। 1920 में सत्याग्रह के समय लाग–बाग और शिक्षा के लिए राज्य का उत्तरदायित्व मांग प्रमुखता से रखी गई। ठिकानों ने 30 रूपये प्रतिमाह पंचायतों को देना स्वीकार किया। इस प्रकार उत्तरदायित्व लेकिन हस्तक्षेप के सिद्धान्त को अपनाते हुए पथिक ने शिक्षा में स्वायत्तता के सिद्धान्त को अपनाया जिससे विद्यार्थियों का स्वतंत्र चिन्तन विकसित हो सके।

पंचायत और शिक्षा के माध्यम से संघर्ष के सिद्धान्त को राजपूताना के विभिन्न क्षेत्रों में हुए किसान आंदोलनों में भी अपनाया गया। बिजोलिया का निकटवर्ती क्षेत्र बेंगू और आदिवासी क्षेत्र तथा राजपूताना के अन्य रजवाड़े मारवाड़, जयपुर, बीकानेर और शेखावाटी क्षेत्र प्रमुख थे। 1921 में बेंगू में लाग–बाग के विरूद्ध पंचायत के माध्यम से पथिक जी के नेतृत्व में संघर्ष किया। 1925 में अलवर के किसानों ने करौली में लाग–बाग जैसी शोषण युक्त व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष किए।

1920–38 के मध्य के काल में संघर्ष की विभिन्न प्रवृत्तियों को देखते हुए इसे संघर्ष का पुर्नजागरणकाल कहा जा सकता है। इस काल में शिक्षा, पत्रकारिता और आर्य समाज व अन्य संगठनों के माध्यम से जनजागृति का कार्य तेजी से प्रभावशाली बनता जा रहा था। इससे राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था प्रभावित हुई।

परिवर्तन के चिन्तन और संघर्ष को मुख्यतः पांच प्रवृत्तियों ने प्रभावित किया। पहला दो तरफा बाहरी सम्पर्क 1917 में विश्वयुद्ध से लौटकर आये सैनिक जिन्होंने यह अनुभव किया कि पश्चिम की प्रगति का सबसे सबल पक्ष वहाँ की शैक्षणिक जागृति है तथा संघर्ष को सफल बनाने के लिए जाति और लिंग भेद को भुलाना होगा, इसके लिए महिलाओं और हरिजनों या अन्य कमजोर वर्ग को साथ लेकर चलना होगा, अतः कमजोर वर्ग को शिक्षित करना अनिवार्य माना, उनके लिए जगह-जगह शिक्षण संस्थायें स्थापित करवाई। 1919 में राजस्थान सेवा संघ के माध्यम से आदिवासी क्षेत्र में स्कूल खोले। साथ ही महिलाओं को भी शिक्षित किया जाने लगा। दो तरफा बाहरी सम्पर्क में दूसरा तत्व था यहाँ के व्यापारिक वर्ग का भारत के प्रमुख शहरों में बसना। वहां उनका सम्पर्क राष्ट्रीय स्तर के बड़े नेताओं से हुआ, जहां से वे संघर्ष के लिए मार्गदर्शन लेने लग गये थे। इस दृष्टि से मारवाड़ के अतिरिक्त शेखावाटी क्षेत्र सबसे आगे था। शेखावाटी में संघर्ष प्रचलित कठोर सामन्ती-जागीर व्यवस्था से भी कठोर था। इस दृष्टि से यहां पहले शिक्षा के द्वारा जनजागृति को आवश्यक माना, यही कारण है कि शेखावाटी में सर्वाधिक निजी शिक्षण संस्थायें स्थापित हुई जिनकी निश्चित संख्या बताना कठिन है क्योंकि गांव-गांव और ढ़ाणियों में स्कूल स्थापित किये गये। महिलाओं की शिक्षा को प्रोत्साहित किया गया।

यद्यपि गांधी जी ने देशी रियासतों के आन्दोलन में कांग्रेस के सीधे हस्तक्षेप को स्वीकार नहीं किया था लेकिन गांधी की नीति-रीति से पूरा राष्ट्र प्रेरित होने लगा। 1920-21 में असहयोग आन्दोलन के सकारात्मक पक्ष रियासतों के आन्दोलन को प्रभावित करने लगा। यद्यपि राष्ट्रीय स्कूलों की स्थापना, पंचायत व्यवस्था को व्यापक रूप में अपनाया जा चुका था। यहाँ तक कि ''अस्पृश्यता का अन्त'' सम्बन्धित जागरूकता भी प्रारम्भ हो चुकी थी। 1920 में भरतपुर में शुद्धिकरण आन्दोलन भी चला था। लेकिन गांधीजी के प्रभाव से हथकरघा एवं बुनाई उद्योग का जीर्णोद्धार करना नया कार्यक्रम था। इन कार्यक्रमों ने स्वतंत्रता संघर्ष को व्यापक रूप से प्रभावित किया क्योंकि इसका आधार आर्थिक स्वावलम्बन था। राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं में बुनाई उद्योग प्रमुख शैक्षणिक गतिविधि बन गया।

आदिवासियों को शिक्षित करने के उद्देश्य से राजस्थान सेवक मण्डल के सदस्यों ने बागड़ सेवा मंदिर की स्थापना की। इस संस्था ने खेती और वस्त्र बुनाई पर विशेष ध्यान दिया। नारायणी देवी, विमला देवी और रामादेवी जैसी महिलायें सक्रिय थी। आदिवासी क्षेत्र में कपड़ा शोषण का एक प्रमुख विषय था। व्यापारी उनके अज्ञान का लाभ उठाते थे। ऐसी स्थिति में व्यावसायिक शिक्षा का विशेष महत्व था। 1935 में महिला मण्डल उदयपुर और बाद में राजस्थान विद्यापीठ ने आदिवासी महिलाओं और हरिजनों को शिक्षित करने में प्रमुख भूमिका निभाई। महिला शिक्षा और उससे जागृति के क्षेत्र में सबसे अधिक प्रगति शेखावाटी क्षेत्र में रही। यद्यपि 1925 से ही वहां महिला जागृति के कार्य प्रारम्भ हो गये थे। लेकिन 1932 में जाट महासभा में हजारों महिलाओं के भाग लेने के साथ ही सक्रियता बढ़ी, उत्तमा देवी के नेतृत्व में महिला संगठन बना, रात्रिकालीन स्कूल चलाया गया। सेठी पीरामल ने कन्या स्कूल और हरिजनों के लिए हरिजन बस्तियों में स्कूल खोले। इसी प्रकार का प्रयास भागीरथ कानोडिया ने किया। निस्सन्देह समाज के उच्च वर्ग द्वारा इसका विरोध हुआ। लेकिन वर्ग संघर्ष भी स्वतंत्रता संघर्ष का एक हिस्सा था। राष्ट्रीय आन्दोलन इससे मजबूत हुआ। साथ ही आधुनिक भारत के निर्माण में भी मजबूत सम्बल प्रदान किया। यह सब दिशा निर्धारण, नव प्रवृत्ति राष्ट्रीय शिक्षा का ही परिणाम था।

इस नव प्रवृत्ति ने राजपूताना के राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रभावित किया। पहले विद्यार्थी गुप्त रूप से आन्दोलकारियों को सहयोग करते थे। दूसरा उनकी शिक्षा बौद्धिकता के अतिरिक्त शारीरिक विकास से भी सम्बद्ध थी लेकिन अब व्यावसायिक शिक्षा को आधार बनाकर आर्थिक तत्व से सम्बद्ध किया। शैक्षणिक माध्यम से आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से कमजोर जाट, आदिवासी, हरिजन एवं महिला वर्ग को जोड़ देने से संघर्ष एक परिपक्व राजनीतिक जन आन्दोलन की ओर बढ़ा। समाज का बहुसंख्यक वर्ग शिक्षा के माध्यम से अपने उत्पीड़न के कारणों को गम्भीरता से समझकर आन्दोलित हुआ। अतः ऐसी स्थिति में ब्रिटिश सरकार की फूट डालो और शासन करो की नीति संदिग्ध हो गई।

1927 में इण्डियन स्टेट पीपुल्स कांफ्रेन्स में भी राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना को व्यापक रूप से समर्थन प्राप्त था। शैक्षणिक जागृति के कार्य को कांग्रेस के साथ मिलकर 1938 के बाद और आगे

बढ़ाया। शैक्षणिक जागृति के आन्दोलन को व्यापक स्वरूप प्रदान किया। अब तक आन्दोलन की मुख्य मांगें लगान, बेगार के विरूद्ध और कुछ सामाजिक सुधारों और शिक्षण संस्थाओं की स्थापना तक सीमित थी लेकिन अब उत्तरदायी शासन की मांग होने लगी। इस परिवर्तित व्यापक स्वरूप की एक महत्वपूर्ण कड़ी शिक्षण संस्थायें थीं। शिक्षा के क्षेत्र में विशेष प्रभाव पड़ा। एक तो राष्ट्रीय शिक्षण संस्थायें थी, वहां के विद्यार्थी अब खुले रूप में आन्दोलकारी बन गये तथा यह शिक्षण संस्थायें आन्दोलन का केन्द्र बन गई। इसकी पुष्टि इसी तथ्य से होती है कि ब्रिटिश सरकार ने ऐसी संस्थाओं के पीछे गुप्तचर लगा रखे थे।

राजस्थान जैसे पिछड़े प्रदेश में जहाँ शिक्षा की दशा काफी शोचनीय थी 'त्यागभूमि' ने शिक्षा की अनिवार्यता को प्रतिपादित किया 'जापान और भारत' शीर्षक से लेखक केशवकुमार ठाकुर ने अपने लेख में दोनों देशों की तुलना करते हुए भारत में शिक्षा के अप्रसार पर दुःख प्रकट किया है। वे कहते हैं – 'भारतवर्ष की भाँति बालक और बालिकाओं की शिक्षा समस्या जापान में नहीं है। वहाँ पर उनकी शिक्षा के लिए राजकीय नियम हैं। जिनसे विवश होकर जापान के प्रत्येक बालक और बालिका को शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। वहाँ पर बालक और बालिकाएँ समान रूप से समान संख्या में शिक्षा पाते है।''

स्त्री शिक्षा विषयक मसले पर मासिक 'जैन गजट' ने भी लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। इस संदर्भ में पत्र ने अपने जून, सन् 1904 के अंक में लिखा – 'स्त्री शिक्षा कितनी आवश्यक है, इसे प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमारे वे जैनी बालक जिन्होंने एकमात्र श्री पद्मपुराण ही का स्वाध्याय किया है, धड़ल्ले के साथ कह उठेंगे कि स्त्रियाँ वैसे ही गुणों से भूषित होनी चाहिए जैसे कि पुरुष। प्राचीन काल में बालक–बालिकाएँ सब ही विद्या के भंडार से भरपूर रहते थे। गाड़ी बिना दो पहियों के नहीं चल सकती, इसी तरह गृहस्थ धर्म सुशिक्षित स्त्री और सुशिक्षित पुरुष के संयोग के बिना नहीं चल सकता–बेमेल जोड़ी ने न मालूम कितनों के घरों को तबाह कर डाला।'

शेखावाटी क्षेत्र के विद्यार्थियों ने 1939 में व्यापक आन्दोलन में भागीदारी निभाई। महिलाएँ इसमें बहुत आगे थी, 15 मार्च, 1939 के जयपुर राज्य प्रजामण्डल के आन्दोलन में गिरफ्तारियां दी, लाठियां खाई, पुलिस ने उन पर घोड़े तक दौडाये। इस समय रामप्यारी शर्मा राजपूताना शिक्षा मण्डल द्वारा शिक्षण संस्थायें चला रही थी। किशोरी देवी भामरवासी 1940 से मोहनपुरा आश्रम में जागृति का कार्य कर रही थी। 1925 से स्थापित जाट किसान पंचायत, जो कि 1939 से जाट विद्यार्थी भवन के नाम से जाना जाता था तथा 1935 से जाट बोर्डिंग हाऊस राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए विद्यार्थी तैयार कर रहा था। इस प्रकार बिजोलिया से किसानों का जो संघर्ष लाग–बाग व्यवस्था में सुधार से प्रारम्भ हुआ था उसका स्वरूप 1838 तक पूर्ण परिवर्तित हो गया। अब वही किसान वर्ग उत्तरदायी शासन की मांग करने लगे। उनके इस आन्दोलन को मजबूत करने में दूसरी ओर ऐसी शिक्षण संस्थायें थी जो सरकार द्वारा संचालित थी लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन में वहां के विद्यार्थी भाग लेने लगे थे।

बिड़ला, पौद्दार, मोरारका, पीरामल, खेतान, मोदी आदि देश के बड़े औद्योगिक घरानों की यह जन्मस्थली रही है, जिन्होंने यहाँ की शिक्षा में बड़ा योगदान दिया है। 1942 में लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए झुन्झुनूं में झूंथालाल मोदी ने भाहर में प्रथम बालिका विद्यालय प्रारम्भ किया। 1951 में आर्थिक संकट के कारण सरकार ने इस स्कूल का अधिग्रहण कर लिया, यहीं से बालिका शिक्षा में क्रांति आ गई। इस विद्यालय में आज जिलेभर की लड़कियां शिक्षा ग्रहण कर रही हैं। इसके अतिरिक्त सरकारी क्षेत्र में एक माध्यमिक व एक उच्च माध्यमिक स्कूल भी संचालित हैं।

'पिलानी (शेखावाटी) में बिड़ला बन्धुओं द्वारा स्थापित और उन्हीं के दान से संचालित बिड़ला कॉलेज है। यद्यपि यह एक सरकारी विद्यापीठ से संलग्न कॉलेज है तथापि इसके संस्थापकों और संचालकों को इस बात के लिए चिन्तनशील और भरसक प्रयत्नशील देखा है कि यह शिक्षालय राष्ट्रीय भावों से एवं राष्ट्रीय जीवन से परिपूर्ण हो। बिड़ला बन्धुओं ने अपने दान से 7 लाख का ट्रस्ट रजिस्ट्री करवा दिया है। दो छात्रालय 200 विद्यार्थियों के निवास के निमित्त बन रहे हैं। कॉलेज में व्यायाम और खेलकूद की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है।''

झुन्झुनूं में भौक्षणिक सुविधा संतोशजनक है। यहाँ पर कुल 90 विद्यालय हैं जिनमें से 28 राजकीय एवं 62 निजी विद्यालय हैं, उक्त विद्यालयों में से 37 उच्च माध्यमिक विद्यालय, 26 माध्यमिक विद्यालय, 12 उच्च प्राथमिक विद्यालय एवं 15 प्राथमिक विद्यालय हैं।

'राजपूताना शिक्षा मण्डल कलकता' का शिक्षा को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। श्री गंगाराम बालकिशन मोदी ने मण्डल के ट्रस्टियों के सहयोग से जी.बी. मोदी व एस.एस. मोदी विद्यालय की स्थापना की, जो शिक्षा के क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित कर रही है।

नगर का प्रथम महाविद्यालय मोतीलाल कॉलेज था, जहाँ सह-शिक्षा के रूप में छात्राएँ शिक्षा ग्रहण कर रही थी। प्रवासी सेठों की सहायता से अलग बालिका कॉलेज खोला गया। सेठ मदनलाल भााह एवं उनके पुत्रों ने भाहर के पश्चिम में मण्डावा रोड पर एक भव्य महाविद्यालय बनवाया जहाँ इस जिले की नहीं वरन् आसपास के जिलों से भी लड़कियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। कुछ समय बाद जिले में लड़कियों के राजकीय महाविद्यालय को स्वीकृति मिली तो सेठ मेघराज ट्रस्ट ने बालिका शिक्षा हेतु भव्य भवन बनाकर सरकार को सौंप दिया। यही नहीं आर.आर. मोरारका ट्रस्ट ने भी लड़कों के सरकारी कॉलेज के लिए विशाल भवन बनाकर सरकार को सौंप दिया, जहाँ बड़ी संख्या में छात्र छात्राएँ उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शिक्षण संस्थाओं की गतिविधियों को ब्रिटिश सरकार गम्भीरता से ले रही थी। इस भागीदारी का महत्व इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि शिक्षण संस्थाओं की गतिविधियों पर निगाह रखने के लिए गुप्तचर नियुक्त किये तथा 1921 में ए. जी.जी. राजपूताना ने यह निर्देश दिये थे कि आन्दोलन में भाग लेने वाले अध्यापकों को राजकीय सेवाओं से निलम्बित नहीं किया जाये। ब्रिटिश सरकार शिक्षण संस्थाओं के समाज पर व्यापक-प्रभाव से परिचित थी। यही कारण है कि ब्रिटिश सरकार ने कूटनीति से कार्य किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *छान्दोपनिषद्, 1.19-4*
2. *उपदेशमाला, वि.सं. 1457, पृ. 80*
3. *चौधरी, रामनारायण, आधुनिक राजस्थान का उत्थान, बुक सेंटर, अजमेर, 2001, पृ. 144*
4. *शर्मा, बृजकिशोर, राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2018, पृ. 170-175*
5. *नवीन राजस्थान, 2 जुलाई, 1922*
6. *राजपूताना एजेन्सी रिपोर्ट, नं. 69, लिस्ट 1, 1921*
7. *सक्सेना, शंकर सहाय, पद्मजा शर्मा, बिजोलिया किसान आन्दोलन का इतिहास, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 1972, पृ. 146-147*
8. *वही, पृ. 147-231*
9. *शर्मा, झाबरमल, खेतड़ी का इतिहास, राजस्थान एजेंसी, कलकत्ता, 1998, पृ. 76*
10. *चौधरी, रामनारायण, आधुनिक राजस्थान का उत्थान, बुक सेंटर, अजमेर, 2001, पृ. 146*
11. *महिला मण्डल, उदयपुर ने हरिजन महिलाओं, ठोलियों और महिला कैदियों को शिक्षित करने के लिए स्कूल चलाये-दयाशंकर श्रोत्रिय अभिनन्द ग्रंथ, पृ. 2*
12. *मिश्र, रतनलाल, शेखावाटी का इतिहास, मंडावाः राजेन्द्र मिश्र प्रकाशन, 1984, पृ. 18-19*
13. *मारवाड़ के अनेक स्वतंत्रता सेनानियों से की गई वार्ता एवं साक्षात्कार के आधार पर।*
14. *श्रीमती किशोरी देवी भामरवासी से व्यक्तिगत साक्षात्कार के आधार पर*
15. *त्यागभूमि, वैशाख, सम्वत् 1985, पृ. 16-17*
16. *जैन गजट, 18 जून, 1904*
17. *त्यागभूमि, माघ, सम्वत्, 1986*
18. *मास्टर प्लान झुन्झुनूं (2011-2031), नगर नियोजन विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर, पृ.16*

तबले के परिपेक्ष्य में अजराड़ा घराना

अजय राठौर
शोधार्थी, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

SHODH SHREE
ISSN 2277-5587
shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

अवनद्ध वाद्य की श्रेणी मे तबला बहुत ही महत्वपूर्ण वाद्य माना गया है। गायन, वादन एवं नृत्य के साथ संगत के लिए इस वाद्य का उपयोग किया जाता है। संगत के साथ ही यह वाद्य एकल वादन में भी अपनी विशेष पहचान रखता है, जिसके फलस्वरूप वर्तमान में तबले के छह घराने प्राप्त होते हैं जिन्हें दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ, बनारस, फरुक्खाबाद एवं पंजाब घराने के नाम से जाना जाता है। इस आलेख के माध्यम से अजराड़ा घराने पर विशेष प्रकाश डाला गया है जिसमें अजराड़ा घराने का दिल्ली घराने से उदगम्, अजराड़ा घराने की विशेषता जिसे आड़ी लय का बाज एवं सुलफ़ का बाज कहा जाता है, अजराड़ा घराने की परम्परा जो कि उस्ताद कल्लू खाँ और मीरू खाँ से प्रारंभ हुई, वादन शैली एवं अजराड़ा घराने की वंश परम्परा आदि की व्याख्या की गई है। अजराड़ा घराने का इतिहास लगभग 200 वर्ष पुराना है। इन 200 वर्षों मे कई कलाकारों ने समय – समय पर इस घराने को आगे बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

संकेताक्षर : *तबला, अजराड़ा घराना, लय, परम्परा, घीसकाम।*

भारतीय संगीत में 'घराना' शब्द का प्रचलन बहुत देखने को मिलता है। गायन वादन और नृत्य, संगीत की इन तीनों विधाओं में घराना प्रणाली पाई जाती है। घराने का अर्थ होता है परम्परा जो कई पीढ़ियों से चली आ रही है। यह परम्परा सबसे पहले कब शुरू हुई इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। परम्परा निरंतर आगे बढ़ती है पुत्रों एवं शिष्यों द्वारा। गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान से शिष्य अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुसार कुछ नया बनाने की और प्रस्तुत करने की कोशिश करता है, जो घराने में शिष्य का योगदान कहलाता है और जिससे घराने का विकास होता है।

आधुनिक समय में ताल वाद्य के रूप में तबला बहुत ही महत्वपूर्ण वाद्य माना गया है, किसी भी प्रकार के संगीत के साथ तबले की उपयोगिता हमेशा रहती है। तबले के सन्दर्भ में घराना प्रणाली को देखा जाए तो हमे छह घराने प्राप्त होते हैं। जिन्हें दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ, फरुक्खाबाद, बनारस एवं पंजाब घराने के नाम से जाना जाता है। इन सभी घरानों की अपनी – अपनी विशेषताएं हैं, किसी घराने की वादन शैली दूसरे घराने से नहीं मिलती। इससे यह कहा जा सकता है कि तबला वाद्य के विषय में बहुत ही गहनता से सोच विचार किया गया है।

तबले का परिचय

भारतीय संगीत में तबला बहुत महत्वपूर्ण वाद्य है एवं वर्तमान समय में अन्य ताल वाद्यों की तुलना में सबसे ज़्यादा प्रचलित वाद्य है। किसी भी प्रकार का संगीत हो चाहे शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, लोक संगीत ताल वाद्य के रूप में तबला हमेशा उपयोग में आता है। तबले को इस प्रकार बनाया गया की वह हर तरह के संगीत के साथ संगत के लिए उपयुक्त हो। संगत के साथ–साथ तबले पर एकल वादन भी किया जाता है। जब तबला बनाया गया तब सिर्फ संगत के लिए ही इसका उपयोग किया जाता था, किन्तु समय के साथ तबला वादकों ने तबले के एकल वादन को लेकर गहन विचार किया और तबला एकल वादन के लिए सामग्री को बनाया जिसे हम पेशकार, कायदा, रेला, टुकड़ा, चक्रदार, गत, तिहाई आदि के नाम से जानते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि तबला एकल वादन और संगत दोनों के लिए उपयुक्त है।

घराना

घराने का अर्थ होता है किसी विशिष्ट वादन शैली का शिष्यों द्वारा अनुसरण किया जाना, उस बाज को सीखना एवं उसका प्रचार प्रसार करना। यह परम्परा आगे पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती चली जाती है। शिष्य अपने गुरु से सीखी हुई विद्या को अपने शिष्यों को सिखाता है और शिष्यों द्वारा इस ज्ञान को आगे बढ़ाया जाता है। इन्हीं शिष्यों में कुछ ऐसे शिष्य भी होते हैं जो गहन विचार करके नई चीज़ें या नई बातें घराने में पैदा करते हैं और घराने को सम्रद्ध बनाते हैं।

किसी भी घराने को स्थापित करने के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि उस घराने में कुछ विशेषता या कुछ नयापन हो। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसी चीज़ें विकसित की जाए जो किसी अन्य घराने में नहीं पाई जाती है। यदि कुछ विशेषता ही नहीं है तो उसे नए घराने की मान्यता नहीं दी जा सकती है। घराना स्थापित करने के लिए नई सोच या नए विचारों का तीन पीढियों तक निरन्तर चलना ज़रूरी है। केवल किसी के घर में चार पीढ़ियों तक तबला बजने से ही उसे एक प्रथक घराने की मान्यता नहीं दी जा सकती। यदि चार पीढ़ियों से तबला बजता भी आया हो परन्तु उनकी वादन शैली में कोई बदलाव नहीं आया, इसका अर्थ यह है कि वे विशेष रूप से किसी एक घराने के बाज का ही अनुसरण करते हैं। इस स्थिति में उसे नए घराने की मान्यता नहीं दी जा सकती है। इसीलिए घराना स्थापित करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि कुछ नई चीज़ों को सामने लाया जाए, कुछ नए विचारों को अथवा नई तकनीक को उस्तादों के सामने रखा जाए और फिर उस्ताद यह तय करके बताएँ कि यह नई बातें दूसरे घरानों से किस प्रकार अलग है अथवा यह बातें दूसरे घरानों में नहीं पाई जाती है। उन्हीं नई बातों या विचारों का तीन पीढ़ियों तक अटूट चलना अत्यन्त आवश्यक है, तत्पश्चात नए घराने की स्थापना को मान्यता दी जाती है। भारतीय संगीत में घराने का नाम संस्थापक के नाम से नहीं अपितु संस्थापक के निवास स्थान के नाम से रखा जाता है।

भारतीय संगीत में घराने पुराने समय से चलते आ रहे हैं। परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ती है और हर समय कुछ नए बदलाव घराने में आते हैं, जिससे घराने का विकास होता है। हर कलाकार अपनी बोद्धिक क्षमता से कुछ ना कुछ योगदान करता है, जिसे आने वाले कलाकार अपनाकर आगे बढ़ाते हैं। जिस प्रकार गायन मे घरानों का विकास हुआ उसी प्रकार तबले में भी घरानों का विकास हुआ और सबसे पहले दिल्ली घराना बना उसके बाद अन्य घराने बने। बुजुर्गों ने बहुत सोच विचार किया जिसके फलस्वरूप तबले के छह घराने स्थापित हुए। हर घराने की अपनी–अपनी विशेषता होती है किसी घराने में कायदे, रेले पर ज़्यादा सोचा गया तो किसी घराने में गत, टुकड़े, परन आदि पर।

सुप्रसिद्ध तबला वादक उस्ताद अकरम खाँ ने अपने एक साक्षात्कार में बताया है कि ''एक मात्र तबला ही ऐसा वाद्य है जिसके छह घराने हैं, अन्य किसी वाद्य में इतने घराने देखने को नहीं मिलते''।

वर्तमान मे तबले के छह घराने देखने को मिलते हैं जिन्हें दिल्ली घराना, अजराड़ा घराना, लखनऊ घराना, फरुक्खाबाद घराना, बनारस घराना एवं पंजाब घराना के नाम से जाना जाता है।

सबसे पहले दिल्ली घराने की स्थापना उस्ताद सिद्धार खाँ ढाढ़ी द्वारा की गई, और फिर दिल्ली घराने के ही कलाकार दूसरी जगह फैले और उन्होंने वहाँ के सांगीतिक वातावरण के अनुरूप तबला वादन में कुछ बदलाव किये और नये घराने की स्थापना की। बनारस, दिल्ली, फरुक्खाबाद, लखनऊ और अजराड़ा घराने का उदगम् दिल्ली घराने से ही हुआ, किन्तु पंजाब घराना ऐसा घराना है जिसका सम्बन्ध दिल्ली घराने से नहीं है। पंजाब घराने में किसी घराने की छवि नहीं दिखाई देती, पखावज के खुले बोलों को ही बन्द करके एक नया घराना बनाया गया।

पुराने समय में तबला वादक रूढ़ीवादी विचारधारा के कारण किसी एक घराने का ही बाज बजाया करते थे एवं गुरु अपने शिष्यों को दूसरे घराने का तबला सुनने तक की भी इज़ाज़त नहीं देते थे, क्योंकि दूसरे घराने का प्रभाव शिष्यों पर बन जाने का डर बना रहता है। किन्तु वर्तमान समय मे यह देखने को मिलता है कि कलाकार हर घराने से कुछ ना कुछ अवश्य लेकर बजाता है और यह बताकर बजाता है कि यह रचना उस घराने से सम्बंधित है, जिससे श्रोताओं को हर घराने की खूबसूरती देखने को मिलती है।

डॉ. अबान मिस्त्री ने अपनी पुस्तक 'पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें' मे यह कहा है कि ''उत्तर भारतीय संगीत में कुछ एक दशक पूर्व तक घरानों को विशेष मान्यता प्राप्त थी। परन्तु आज के

प्रगतिशील युग मे परिस्थिति भिन्न हो गई है। अब घरानों की आवश्यकता व्यक्ति के ज्ञान की परिधि तक ही सीमित है। प्रत्येक घराने की विशेषताओं को आत्मसात करके अपने संगीत में ढाल लेना ही एक लक्ष्य रह गया है। अतः अब घरानों की कट्टरता मे शिथिलता आई है क्योंकि आज संगीत का क्षेत्र बहुत विकसित हो गया है''। इसीलिए वर्तमान समय मे यह आवश्यक है कि तबला वादक को बहुत ज़्यादा नहीं तो भी कुछ-कुछ जानकारी सारे घरानों की होनी ही चाहिए।

तबले की शुरुवात दिल्ली घराने से हुई और दिल्ली घराने की स्थापना उस्ताद सिद्धार खाँ ढाढ़ी द्वारा की गई। तबले से पहले ताल वाद्य के रूप मे पखावज का उपयोग किया जाता था एवं पखावज में खुले हाथ से वादन किया जाता था, तब उस्ताद सिद्धार खाँ द्वारा तबले पर हाथ रखने का तरीका इस प्रकार बनाया गया की तबले से बन्द आवाज निकले जो पखावज से भिन्न हो। पखावज में बाँया खुला बजाया जाता है किन्तु तबले में बाँये पर कलाई को इस प्रकार रखा गया जिससे बन्द आवाज भी निकली और पखावज की तुलना में अधिक गति से बाँये पर बोल बजने लगे, क्योंकि बाँये में खुले हाथ के स्थान पर दो उँगलियों का उपयोग किया गया। फिर उस्ताद सिद्धार खाँ द्वारा ऐसे बोल बनाये गये जो किनार पर बजाये जा सके, जिससे यह बाज किनार का बाज कहलाने लगा। दिल्ली घराने को दो उँगलियों का बाज भी कहा जाता है। दाँये और बाँये दोनो में दो उँगली 'तर्जनी और मध्यमा' का उपयोग किया जाता है।

अजराड़ा घराना

दिल्ली के पास मेरठ जिले में अजराड़ा नामक गाँव स्थित है। दिल्ली घराना तबले का सबसे प्रथम घराना है। दिल्ली घराने के संस्थापक उस्ताद सिद्धार खाँ के पुत्र उस्ताद बुगरा खाँ और उस्ताद बुगरा खाँ के पुत्र उस्ताद सिताब खाँ, यानि सिद्धार खाँ के पौत्र उस्ताद सिताब खाँ से अजराड़ा गाँव के निवासी दो भाई कल्लू खाँ और मीरू खाँ ने दिल्ली घराने के तबले की पूर्ण शिक्षा प्राप्त की।

दिल्ली घराने का तबला बराबर की लय का बाज था, अर्थात दिल्ली घराने के कायदे मध्य लय में ही बजा करते थे। तब दोनों भाइयों ने दिल्ली घराने के ही तबले में कुछ परिवर्तन कर एक नए घराने की स्थापना की। ''यह घराना दिल्ली घराने के शागिर्द (शिष्य घराने) के रूप मे जाना जाता है''।

दिल्ली घराने में केवल दो उँगलियों का ही प्रयोग किया जाता है, किन्तु अजराड़ा घराने के उस्तादों ने तीसरी उँगली 'अनामिका' का भी प्रयोग किया जिससे सुलफ़ के कायदे बजाना संभव हो सका। ''सुलफ़ एक 'फ़ारसी' शब्द है जिसका अर्थ होता है उड़ान या जिसकी गति बहुत तेज हो। अजराड़ा से पहले तबला सिर्फ बराबर की लय में बजाया जाता था, जब अजराड़ा घराना के उस्तादों ने देखा की केवल बराबर की लय के ही कायदे बजाये जा रहे हैं तो उन्होंने ऐसे कायदों की रचना की जिसे उड़ान में बजाया जा सके''।

अजराड़ा घराने को आड़ी लय का बाज भी कहा जाता है, क्यूंकि अजराड़ा घराने से पहले कायदे सिर्फ चतुश्र जाति में ही बजा करते थे। अजराड़ा घराने के उस्तादों ने ही सर्वप्रथम आड़ी लय के कायदों की रचना की, जिसे 'तिश्र जाति' कहा जाता है। अजराड़ा घराने से पहले तिश्र जाति के कायदे नहीं बजा करते थे, इसीलिए यह अजराड़ा घराने की विशेष पहचान बन गया।

अजराड़ा घराने के कुछ कायदों में दिल्ली घराने की दो उँगलियों की तिरकिट का प्रयोग किया जाता है। सुलफ़ के कायदे होते हुए भी तिरकिट बराबर की लय में ही बजायी जाती है, जिस प्रकार दिल्ली घराने में बजायी जाती है।

अजराड़ा बाज इतना खूबसूरत है कि आज किसी भी अन्य घराने का तबला वादक भी इस बाज की कुछ रचनाएँ अपने वादन में ज़रूर शामिल करता है। प्रो. प्रवीण उद्धव के शब्दों मे ''तंत्र वाद्य की संगत करते समय शुरुवात में जो बोल बजाये जाते हैं वे ज़्यादातर अजराड़ा घराने के ही होते हैं एवं पेशकर बजाते समय 70 से 80 प्रतिशत पेशकार के समापन में बजाई जाने वाली रचनाएँ अजराड़ा घराने की ही होती है''।

अजराड़ा घराने की उत्पत्ति

अजराड़ा घराने की स्थापना उस्ताद कल्लू खाँ और मीरू खाँ द्वारा की गई। इन दोनों भाइयों ने दिल्ली घराने के उस्ताद सिताब खाँ से तबले की शिक्षा प्राप्त की एवं शिक्षा पूर्ण होने पर अपने गाँव 'अजराड़ा' लौट आए। गाँव आकर दिल्ली घराने के ही तबले में परिवर्तन करके एक नई शैली की स्थापना की, जिसे 'अजराड़ा घराने' के नाम से जाना गया।

कुछ कलाकारों का यह मानना है कि अजराड़ा घराने

की स्थापना मियां बसंत से हुई। प्रो. अजय अष्टपुत्रे ने भी अजराड़ा घराने पर शोध किया और अपने एक व्याख्यान में यही कहा है कि ''जब वे अजराड़ा घराने पर शोध कर रहे थे, उस दौरान उनकी मुलाकात अजराड़ा घराने के महान तबला वादक उस्ताद हशमत अली खाँ साहब से हुई और खाँ साहब ने भी उन्हें यही बताया कि अजराड़ा घराने की शुरुवात मिया बसंत से हुई''।

अजराड़ा घराने के महान तबला वादक उस्ताद अकरम खाँ का कहना है कि ''अजराड़ा घराने की स्थापना मियां बसंत और मियां कन्हाई से हुई है। यह उनके गुरु उस्ताद नियाजू खाँ साहब ने उन्हें बताया है''।

जैसे तबले का आविष्कारक कौन है यह कहना कठिन है, वैसे ही अजराड़ा घराने की शुरुवात किसके द्वारा हुई यह भी कहना मुश्किल है, क्योंकि इतिहास मे ऐसे कोई लिखित प्रमाण प्राप्त नही होते। किन्तु ज़्यादातर लोगों का यही मानना है कि अजराड़ा घराने की शुरुवात उस्ताद कल्लू खाँ एवं उस्ताद मीरू खाँ द्वारा की गई।

अजराड़ा घराने की भाषा और निकास

सामान्यतः देखा जाए तो अजराड़ा घराने की भाषा दिल्ली घराने से ही मिलती है, किन्तु कुछ ऐसे बोल भी हैं जिनकी शुरुवात अजराड़ा घराने से हुई। जैसे :– घिडनग, दिंगनक, धिन धगेतिक, घ्डान, धीनगीन, घेतक। यह बोल अजराड़ा घराने से पहले नहीं बजा करते थे, क्योंकि इन बोलों को बजाने के लिए तीसरी उँगली 'अनामिका' का उपयोग करना पड़ता है और अजराड़ा से पहले सिर्फ दो उँगलियों का ही बाज बजा करता था। यही मुख्य कारण था कि अजराड़ा घराने के कायदे दिल्ली घराने की तुलना में ज़्यादा गति से बजाना संभव हो पाया। 'न' अक्षर को अजराड़ा के कलाकारों ने किनार पर बजाने की जगह अनामिका उँगली से स्याही पर बजाया, जिससे धीनगीन जैसे बोल तेज गति में बजाना आसान हो गया।

अजराड़ा घराने से पहले बाँया सीधा–सीधा बजाया जाता था या यूँ कह लें कि बाँये पर तबले की तुलना में कम ध्यान दिया जाता था। लेकिन जब अजराड़ा घराना बनाया गया तब उस्तादों ने ऐसी रचनाएँ बनाई जिसमें बाँये के भी बराबर के बोल हों और बाँये को कलाई से घिस कर बजाया जा सके, जिससे बाँये में मींड उत्पन्न हुई और तबला वादन में और खूबसूरती बढ़ गई। यदि बाँये को उस स्थान पर न घीसा जाए तो सुनने मे खालीपन लगेगा। पंडित अरविन्द मुलगांवकर के शब्दों मे ''अजराड़ा घराने के तबलियों ने एक प्रगति और की और वह था बाँये पर उचित स्थान और उचित समय पर किया जाने वाला 'घीसकाम' ''।

अजराड़ा घराने की वंश परम्परा

अजराड़ा घराने की परम्परा सर्वप्रथम उस्ताद कल्लू खाँ और उस्ताद मीरू खाँ से शुरू हुई, उसके बाद उनके वंश में उस्ताद मोहम्मदी बक्श फिर उनके पुत्र उस्ताद चाँद खाँ, उस्ताद चाँद खाँ के पुत्र उस्ताद काले खाँ, उस्ताद काले खाँ के पुत्र उस्ताद हस्सू खाँ, उस्ताद हस्सू खाँ के पुत्र उस्ताद शम्भू खाँ, उस्ताद शम्भू खाँ के पुत्र उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ, उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ के पुत्र उस्ताद मंजू खाँ और उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ के शिष्य प्रो. सुधीर कुमार सक्सेना हुए।

अजराड़ा घराने में ही एक और परम्परा चली आ रही है, जिसकी शुरुवात उस्ताद नन्ने खाँ से हुई थी। इस परम्परा के उस्तादों के नाम इस प्रकार है :– ''उस्ताद नन्ने खाँ, उस्ताद मोहम्मद खाँ, उस्ताद अल्लादिया खाँ, उस्ताद छिददा खाँ, उस्ताद मोहम्मद शफी खाँ, उस्ताद बशीरुद्दीन खाँ, उस्ताद हशमत अली खाँ''।

उस्ताद हशमत अली खाँ के बाद उनके पुत्र उस्ताद अकरम खाँ जो कि इस परम्परा की सातवीं पीढ़ी हैं एवं उस्ताद अकरम खाँ के पुत्र ज़रगाम खाँ जो कि आठवीं पीढ़ी हैं, इस परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *https://www.youtube.com/watch?v=N1xVN3TiuTw*
2. *मिस्त्री अबान, पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें, पं. केकी एस. जेजिना स्वर साधना समिति,बम्बई 1984, पृष्ठ 119*
3. *मूलगांवकर अरविन्द, तबला, त्रिवेदी वीणा (मराठी से अनुवाद), लुमिनस बुक्स, पृष्ठ 275*
4. *https://www.youtube.com/watch?v=_qTQIFPrAKg*
5. *https://www.youtube.com/watch?v=GMCeetFNd3A*
6. *https://www.youtube.com/watch?v=GMCeetFNd3A*
7. *https://www.youtube.com/watch?v=_qTQIFPrAKg*
8. *मूलगांवकर अरविन्द, तबला, त्रिवेदी वीणा (मराठी से अनुवाद), लुमिनस बुक्स, पृष्ठ 277*
10. *https://www.youtube.com/watch?v=ZSib48LzPzM*

आजाद हिन्द फौज में शेखावाटी क्षेत्र का योगदान

देवेन्द्र कुल्हार
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

राजस्थान का शेखावाटी क्षेत्र प्राचीन काल से ही अपने इतिहास एवं संस्कृति के लिए प्रसिद्ध रहा है। यहाँ का कण-कण रणबांकुरों की कहानियाँ कह रहा है। आजाद हिन्द फौज में सैकड़ों सैनिकों ने इस क्षेत्र से भाग लिया था। इसमें सेडूराम कृष्णियाँ, रेखाराम फौगाट, नारायणराम, नाथूराम गुर्जर, गुलाब सिंह शेखावत, सवाई सिंह शेखावत, किशनाराम और छोटूराम भगासरा की कहानियाँ आज भी गाँव देहात में बड़े चाव से सुनाई देती है।

संकेताक्षर : *राजस्थान, शेखावाटी, आजाद हिंद फौज, सीकर, झुंझुनू।*

राजस्थान का इतिहास बलिदान और शौर्य की गाथा है। राजस्थान की धरा का कण-कण इसकी यशोगाथा का गुणगान करती है। यहाँ की वीरों की त्यागपूर्ण साधनाएँ और विरांगनाओं के जोहर की भभकती ज्वालाएँ सदैव प्रेरणा स्त्रोत रही है।[1] मध्यकालीन राजस्थान को अनेक नामों से पुकारा जाता था। इसमें मेवाड़ मारवाड़, आमेर, हाड़ौती, बागड़ एवं शेखावाटी प्रमुख था।[2] शेखावाटी क्षेत्र आमेर (जयपुर) रियासत के उत्तर-पश्चिम में स्थित था। शेखावाटी प्रदेश ने भी राजस्थान के त्याग, बलिदान की अक्षुण्ण परम्परा का निर्वहन करते हुए अपना विशिष्ट योगदान दिया है। यहाँ के रणबांकुरों की वीरता के कारण यहाँ का इतिहास, देशभक्ति, स्वाभिमान और शौर्य की गाथाओं का उपनाम है।[3]

शेखावाटी, राजस्थान के एक भूखण्ड का नाम है जहाँ महाराजा शेखाजी के नाम से उनके वंशजों ने शासन किया, वह शेखावाटी कहलाया।[4] ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दृष्टि से इस सम्पूर्ण इलाके को सीकरवाटी, खण्डेलावाटी, उदयपुरवाटी, नरहड़वाटी, सिंघानावाटी, झुंझुनूवाटी आदि इलाकों में विभक्त था।[5] यह प्रदेश 27º20 से 28º34 उत्तरी अक्षांश तथा 74º41 से 76º6 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित था।[6] वर्तमान समय में शेखावाटी क्षेत्र के अन्तर्गत मुख्यतः झुंझुनूं एवं सीकर जिलों को शामिल किया जाता है।[7]

प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध में शेखावाटी क्षेत्र के अनेक स्वतंत्रता सेनानियों ने भाग लिया था। प्रथम विश्व युद्ध में शेखावाटी क्षेत्र के लगभग 14000 हजार सैनिकों ने भाग लिया था। इस 14 हजार सैनिकों में से 2000 हजार सैनिकों ने अपनी शहादत दी थी।[8] द्वितीय विश्व युद्ध में भी शेखावाटी क्षेत्र के अनेक सैनिक जर्मनी, जापान और अफ्रिका की भूमि पर युद्ध लड़ा था। ब्रिटेन की पराजय के बाद के सैनिक सुभाष चन्द्र बोस की आजाद हिन्द फौज में शामिल हो गए थे। आज भी शेखावाटी क्षेत्र में आजाद हिन्द फौज में लड़ने वाले भूले-बिसरे सेनानी मौजुद है जिन्होंने सुभाष चन्द्र बोस के साथ अपना खून-पसीना बहाया था।

आजाद हिंद फौज और शेखावाटी के भूले-बिसरे स्वतंत्रता सेनानी

सेडूराम कृष्णिया :- सेडूराम का जन्म 1918 ई. को झुंझुनू जिले के बुडाना गाँव में हुआ था। द्वितीय विश्व युद्ध के समय झुंझुनूं जिले के अरड़ावता गाँव में भर्ती का कैम्प लगा थ। इस कैम्प में लगभग 4 हजार युवाओं ने भाग लिया था। अंग्रेजी हुकुमत ने केवल 29 युवकों का चयन किया जिसमें सेडूराम भी थे।[9] सेडूराम को पहले दिल्ली फिर बम्बई ले जाया गया। बम्बई से उनको समुद्र के रास्ते लिबिया ले जाया गया। लीबिया में ब्रिटिश हुकुमत की सेना में बहादुरी से लड़े लेकिन जर्मनी की फौज ने उन्हें 06 जून, 1942 को कैद कर लिया। लीबिया में एक साल जेल में

कैद रहे। यहाँ से फिर उन्हे इटली और फ्रांस की जेल में भेजा गया। सेडूराम जब जेल में बंद थे तो उन्हें 19 दिन तक भोजन का एक अन्न भी नसीब नहीं हुआ। फ्रांस की जेल का खाना इतना घटिया था जिसे खाकर उल्टी–दस्त हो जाते थे। उन्होंने इतनी यातनाएँ सही की उनके शरीर का सारा मांस गायब हो गया था।[10]

सेडूराम जब फ्रांस जेल में बंद थे तब सुभाष चन्द्र बोस जेल में बंद सैनिकों से मिलने आये थे। सुभाष चन्द्र बोस ने सैनिकों को आजाद हिन्द फौज में शामिल होने का आह्वान किया। अधिकांश सैनिक सुभाष चन्द्र बोस के साथ हो गए थे उसमें एक सेडूराम भी थे। सेडूराम आजादी की लड़ाई में लगभग तीन वर्ष जेल में बंद रहे। उनका त्यागपूर्ण जीवन और उनकी बहादुरी के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री ने उन्हें ताम्र पत्र भेंट किया था।[11] आजादी के इस दीवाने का आजादी के अमृत महोत्सव काल मे 5 मार्च, 2022 को देहांत हो गया।[12] सेडूराम झुंझुनू जिले के आखरी आजाद हिंद फौज के स्वतंत्रता सेनानी थे।

नारायणराम आबूसर :– नारायणराम का जन्म सन् 1916 ई. में झुंझुनूं जिले के आबूसर में हुआ था। उनकी माता का नाम श्रीमति स्योकोरी तथा पिता का नाम चौधरी पन्नाराम था। जयपुर सरकार के अधिकारी मिस्टर एफ.एस.यंग से प्रोत्साहित होकर सन् 1934 में ब्रिटिश सेना में भर्ती हो गए। उनकी पहले ट्रेनिंग नसीराबाद (अजमेर) में हुई फिर उनको काबुल और फिर हांगकांग भेज दिया गया। हांगकांग में अंग्रेज भारतीय सैनिकों को हीन समझते थे व चाय के साथ केवल एक रोटी देते थे और स्वयं ब्रिटिश सैनिक मक्खन और डबल रोटी खाते थे तो एक दिन नारायणराम और उनके साथियों ने रोटियों (चपातियों) को फेंक दिया था। हांगकांग के बाजार में किसी ने उन पर ताना मारा कि 40 करोड़ भारतीय पर सात करोड़ अंग्रेज राज कर रहे है। यह बात उनको चुभ गई।[13]

जब द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हो गया तो हांगकांग के कुछ सैनिकों को पहले बम्बई भेजा गया और फिर उन्हें सिंगापुर भेज दिया गया। सिंगापुर में जापानियों ने भयंकर आक्रमण किया और ब्रिटिश सेना को पीछे हटने को मजबूर किया। इस हमले में बहुत से भारतीय सैनिक मारे गए। ब्रिटेन ने अपने अधिकारियों को जहाजों के माध्यम से आस्ट्रेलिया भेज दिया गया। 14 जनवरी, 1942 ई. को अंग्रेज एवं जापानियों के मध्य संधि हुई। अंग्रेजी जनरल ने केवल सिर्फ अंग्रेजी सैनिकों की पैरवी की। भारतीय सैनिकों को आत्मसमर्पण कर जापानियों के हवाले कर दिया।[14] भारतीय सैनिकों को जापानी जनरल ने सहानुभूति धैर्य दिलाया कि यदि देश की आजादी के लिए लड़ना चाहते हो तो जापान आपकी मदद करेगा। भारतीय सैनिकों को न्यूसन कैम्प भेज दिया। नारायणराम भी न्यूसन कैम्प में शिफ्ट हो गये। उनके मन में हांगकांग का वह कटाक्ष धधक रहा था। ऊपर से ब्रिटिश जनरल की केवल ब्रिटिश सैनिकों की पैरवी करना, जले पर नमक झिड़कने के बराबर काम किया।

न्यूसन कैम्प में रास बिहारी बोस भारतीय सैनिकों से मिले और न्यूसन कैम्प के सैनिकों से ही आजाद हिंद फौज का गठन किया। हम कह सकते है कि न्यूसन कैम्प आजाद हिंद फौज का उद्गम था। नारायणराम अब आजाद हिंद फौज में शामिल हो गए। आजाद हिंद फौज में एक सैनिक के रूप में अनेकों कष्ट सहे, ब्रिटिश हुकुमत के खिलाफ लड़े और अन्त में जिस हुकुमत की सेना में भर्ती हुये थे उन्होंने ही उन पर राजद्रोह का केस लगा दिया। उनका दृढ़ संकल्प था ''इतिहास बदलेगा, वक्त बदलेगा, भारत आजाद होकर रहेगा।[15]

रेखाराम फोगाट :– रेखाराम फोगाट का जन्म 1920 ई. में झुंझुनूं जिले के समसपुर में हुआ था। उनके पिता का नाम चौधरी बीजाराम था। ये सन् 1940 ई. में मात्र 20 वर्ष की आयु में ब्रिटिश सेना में भर्ती हो गये थे।[16]

दिसम्बर, 1941 में रेखाराम को जापान के विरुद्ध लड़ने के लिए भेज दिया। जापान के सामने ब्रिटिश सेना को आत्मसमर्पण कर देना पड़ा और रेखाराम सहित भारतीय सैनिकों को न्यूसन कैम्प रखा गया। आजाद हिंद फौज की स्थापना के बाद रेखाराम अपने साथी सैनिकों के साथ ब्रिटिश मौर्च की सेना के खिलाफ लड़ाई लड़ी। उन्होंने बर्मा, मांडले, सिंगापुर आदि स्थानों पर आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के साथ लड़े। 5 मई 1945 को अंग्रेजों ने उनको गिरफ्तार कर कलकत्ता के पास जिगर गढा जेल में बन्द कर दिया। वहाँ से उनकों दिल्ली लाया गया और उनको फिर मुल्तान की जेल भेज दिया। मुल्तान जेल से 2 मार्च, 1946 को उनको रिहा कर दिया गया। आजादी के बाद उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज हितार्थ में समर्पित किया।[17]

नाथूराम गुर्जर :– नाथूराम गुर्जर का जन्म 1914 ई. में सीकर जिले की दातारामगढ़ तहसील के घाटवा गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम कानाराम था। नाथूराम 18 अप्रैल, 1941 को पंजाब रेजीमेन्ट सेंटर लाहौर में ब्रिटिश सेना में भर्ती हुए थे। जल्द ही उनका ब्रिटिश सेना से मोह भंग हो गया और वे नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की सेना में शामिल हो गए। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के साथ उन्होंने रंगून पर हमला किया था। इस हमले में अंग्रेजों का खजाना और उनका गोला–बारुद पर कब्जा कर लिया था। इस हमले के बाद नाथूराम को ब्रिटिश सेना ने पकड़ लिया। नाथूराम को एक साल तक जेल में रखा गया और उन पर देशद्रोह का मुकदमा चलाया गया। जेल के अन्दर उन्होंने घास की रोटी के साथ खेजड़ी के छिलकों को पीसकर उसकों मसाले के रूप में खाते थे। 1971 में भारत सरकार एवं 1981 में राज्य सरकार ने उन्हें ताम्रपत्र भेंट किया।[18]

गुलाब सिंह शेखावत :– गुलाब सिंह का जन्म 1920 ई. में सीकर जिले के घाटवा गाँव में ही हुआ था। गुलाब सिंह 1942 ई. में ब्रिटिश भारतीय आर्मी में भर्ती हुए थे। जल्द ही नेताजी के आह्वान पर उन्होंने ब्रिटिश आर्मी छोड़ कर आजाद हिंद फौज में शामिल हो गये। 1942 के बाद उनका परिवार से सम्पर्क टुट गया तो घर वालों ने उन्हें मरा हुआ समझ लिया। आजादी की लड़ाई के बाद वे गुजरात पुलिस में भर्ती हो गये। 1985–1986 ई. में जब वे अपने गाँव वापस आये तो परिजनों की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा।[19]

सवाई सिंह शेखावत :– सवाई सिंह का जन्म भी सीकर जिले की दातारामगढ़ तहसील के घाटवा गाँव में हुआ था। सवाई सिंह 1938 में इंडियन आर्मी में भर्ती हुए थे। नेताजी` आह्वान पर वे आजाद हिंद फौज में शामिल हो गए थे। आजाद हिंद फौज की स्वाधीनता की लड़ाई में इराक, इरान और अफगानिस्तान में लड़ाई लड़ी। अफगानिस्तान में जब ब्रिटिश सेना ने नेताजी पर आक्रमण किया, उस समय वे नेताजी के साथ लड़ रहे थे। इसी दौरान उनकों अंग्रेजी सेना में पकड़ लिया और जेल में डाल दिया। 1946 में सवाई सिंह का भाई देवी सिंह को सवाई सिंह एक अस्पताल में गंभीर घायल अवस्था में मिला।[20] सवाई सिंह को आजादी के बाद कई मेडल देकर सम्मानित किया और उनका नाम सुनहरे अक्षरों में लिखा गया।[21]

किशनाराम धाना :– किशनाराम का जन्म सीकर जिले की लक्ष्मणगढ़ तहसील के धाना में हुआ था वे मात्र 22 वर्ष की आयु में ब्रिटिश सेना में सन् 1941 में भर्ती हो गये थे। उनकी प्रारंभिक ट्रेनिंग नसीराबाद (अजमेर) में हुई थी।[22]

नसीराबाद में ट्रेनिंग के बाद वे बम्बई भेज दिये गये। वहाँ से उनको दिसम्बर, 1941 को सिंगापुर भेज दिया गया। अंग्रेजी सेना आत्मसमर्पण के बाद किशनराम को नेच्यून कैम्प में 10 माह कैद में गुजारने पड़े। जब आजाद हिंद फौज का गठन हुआ तो उन्होंने कोहिमा, चिटगाँव व इम्फाल के मोर्चो पर लड़ाई लड़ी। 15 मई, 1945 को किशनाराम और उनके साथियों को अंग्रेजों ने कैद कर लिया और मांडले कैम्प में रखा गया। वहाँ से उनको कलकत्ता की जिगर गठा जेल में कैद रखा। तीन महिने जिगर गठा जेल में रहने के बाद उनको मुलतान भेज दिया। मुलतान जेल में उनकों अनेक प्रकार की यातनाएँ तथा प्रलोभन दिये गये परन्तु वे झुके नहीं। अप्रैल, 1946 को उनको रिहा कर दिया। आजादी के बाद वे सामाजिक कार्यो में अपनी भूमिका निभाई और जिला स्वतंत्रता सैनिक संगठन के अध्यक्ष भी रहे।[23]

छोटूराम भगासरा :– छोटूराम भगासरा का जन्म झुंझुनूं जिले के काजला गाँव में हुआ था। आजाद हिंद फौज में इन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उनके त्यागपूर्ण संघर्ष के कारण उनका स्मारक आज काजलां गाँव में अपनी गवाही दे रहा है।[24]

निष्कर्ष में कह सकते है कि शेखावाटी क्षेत्र के अनेक वीर स्वतंत्रता सेनानियों ने प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्व युद्ध में भाग लेकर अपने प्राणों की आहूति दी। प्रथम विश्व युद्ध में लगभग 2000 सैनिक केवल शेखावाटी क्षेत्र से शहीद हुये थे। वे अभागे भूले बिसरे शहीद कौन थे, उनका क्या नाम था? वे कहाँ शहीद हुये? आदि प्रश्नों का उत्तर केवल झुंझुनूं जिले में लगा एक शिलालेख उनकी संख्या बता कर मौन है। द्वितीय विश्व युद्ध और फिर आजाद हिन्द फौज में जिन वीरों ने भाग लिया उनकी शहादत आज भी गाँवों में सुनने को मिल जाती है। आज आजादी के 75वें अमृत महोत्सव में उन भूले बिसरे स्वतंत्रता सेनानियों को पुनः स्मरण कर युवा पीढ़ी को प्रेरणा लेनी चाहिए।

चित्र संख्या : 1 – सेडूराम कृष्णिया

चित्र संख्या : 2 – नारायणराम आबूसर

चित्र संख्या : 3 – रेखाराम फोगाट

चित्र संख्या : 4 – नाथूराम गुर्जर

चित्र संख्या : 5 – गुलाब सिंह शेखावत

चित्र संख्या : 6 – सवाई सिंह शेखावत

चित्र संख्या : 7 – किशनाराम धाना

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. व्यास, डॉ. रामप्रसाद (2018) : आधुनिक राजस्थान का वृहद इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 5
2. भार्गव, डॉ. वी. एस. (2002) : राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति, मीत्तल पब्लिशिंग हाऊस, मथूरा, पृ. 9–12
3. शेखावत, सुरजन सिंह (2014) : शेखावाटी प्रदेश का प्राचीन इतिहास, सुरजन सिंह शेखावत स्मृति संस्थान, झुंझुनूं, पृ. 1
4. ओझा, गौरी शंकर (1930) : आदर्श नरेश अजीत सिंह (प्रस्तावना) पृ. 1–2
5. रेवेन्यू रिकॉर्ड्स, त.6ए फाइल नं. 11 (1925), राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
6. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग– ग्ग्प्ए 1908, पृ. 268
7. आर्य, हरफूल सिंह (1984) : शेखावाटी ठिकानों का इतिहास एवं योगदान, शोध प्रबन्ध ग्रंथ, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, पृ. 1
8. झुंझुनू जिले में लगा एक शिलालेख के आधार पर
9. साक्षात्कार, ओमप्रकाश, स्वतंत्रता सेनानी सेडूराम कृष्णियाँ का भतीजा।
10. राजस्थान पत्रिका, झुंझुनूं पत्रिका, सीकर संस्करण, पृ. 1, 6 मार्च, 2022
11. वहीं
12. वहीं
13. साक्षात्कार, इतिहासकार गणेश बेरवाल, निवासी सीकर 03.09.2022
14. सिंह, मोहन (1990) : शेखावाटी स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, रवीन्द्र प्रकाश, झुंझुनूं, पृ. 379–80
15. सिंह, मोहन (1990) : पूर्वोक्त
16. साक्षात्कार, इतिहासकार, गणेश बेरबाल, निवासी–सीकर 03.09.2022
17. सिंह, मोहन (1990) : पूर्वोक्त, पृ. 380
18. राजस्थान पत्रिका, सीकर संस्करण, 24 जनवरी, 2020
19. राजस्थान पत्रिका, सीकर संस्करण, 24 जनवरी, 2020
20. वहीं
21. लाल किले पर लगी स्वंत्रता सेनानियों की सूची में अंकन
22. साक्षात्कार, इतिहासकार गणेश बेरवाल, निवासी सीकर 03.09.2022
23. सिंह, मोहन (1990) : पूर्वोक्त, पृ. 381
24. साक्षात्कार, कैप्टन कर्पूर सिंह भगासरा, निवासी कांजला, दिनांक 05.09.2022

मानसिक स्वास्थ्य का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. दिनेश कुमार शर्मा
प्राचार्य, एम. बी. शिक्षा महाविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मानसिक स्वास्थय व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों बुद्धि, संवेग आदर्शों आंकांक्षाओं, विचारों, आदि में समायोजन रखते हुये वातावरण और उसके व्यक्तित्व के साथ-साथ दूसरे सदस्यों के साथ मेल-मिलाप, खुशी एवं प्रवाहशीलता के साथ समायोजन एवं कार्य करने की अभिक्षमता है। सम्पूर्ण व्यक्तित्व के सभी पक्षों का सामंजस्य के साथ कार्य करने की योग्यता को ही मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) माना जाता है। मानसिक रोगों का केवल अभाव नहीं है मानसिक स्वास्थ्य यह तो मानव जीवन वास्तविक अनुभूतियों, इच्छाओं, भावों व विचारों का सतुलन एकात्म्य है। (''यादृशी दृष्टि तादृशी सृष्टि) (मन के हारे हार है मन के जीते जीत) ''स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है।''

संकेताक्षर : *मानसिक, स्वास्थ्य मानस रोग, व्यक्तित्व, समायोजन, आदर्शों, अभिलाषओं, तनवा, भ्रान्तियाँ, व्यवहार, वातावरण, संतुलित इत्यादि का प्रयोग किया गया है।*

मानसिक स्वास्थ्य और शिक्षा में घनिष्ठ संबंध है क्योंकि शिक्षा का कार्य मानसिक रूप से अधिक होता है, साथ ही शिक्षा प्राप्ति हेतु मानसिक एकाग्रता और मानसिक बल की आवश्यकता होती है। व्यावहारिक जीवन में भी मानसिक स्वास्थ्य का स्वस्थ होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ मानसिक रोगों का केवल अभाव नहीं है। क्योंकि इससे मुक्त होने के पश्चात् भी मानव मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं हो सकता है, अतः मानसिक स्वास्थ्य के लिये मानसिक रोगों की अनुपस्थिति के साथ-साथ भावों, इच्छाओं, अभिलाषाओं, संवेगों तथा जीवन के आदर्शों में सन्तुलन होना भी आवश्यक है। मानसिक स्वास्थ्य को विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने परिभाषित किया है। जो इस प्रकार से है-

लैडेल (Ledeell) महोदय के मतानुसार- ''मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है वास्तविकता के धरातल पर वातावरण से पर्याप्त सामंजस्य करने की योग्यता।''

कार्ल मेनिंगर के अनुसार- ''मानसिक स्वास्थ्य अधिकता खुशी तथा प्रभावशीलता के साथ वातावरण एवं उसके प्रत्येक दूसरे व्यक्तियों के साथ मानव का समायोजन है- यह एक संतुलित मनोदशा, सतर्क बुद्धि, सामाजिक रूप से मान्य व्यवहार तथा खुश-मिजाज बनाएं रखने की क्षमता है।''

मनोरोग किसी व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य की वह स्थिति है जिसे किसी स्वस्थ व्यक्ति से तुलना करने पर सामान्य नहीं का जाता है स्वस्थ व्यक्तियों की तुलना में मनोरोग से ग्रस्त व्यक्तियों का व्यवहार असामान्य अथवा प्रतिकूल निर्धारित कियाा जाता है। तथा जिसमें व्यथा अथवा समर्थता अन्तर्ग्रस्त होती है। इन्हें मनोरोग मानसिक रोग, मानसिक बीमारी अथवा मानसिक विकार भी कहते है। मनोरोग मस्तिष्क में रासायनिक असंतुलन की वजह से पैदा होते है तथा इनके उपचार के लिये मनोरोग चिकित्सा की जरूरत होती है मनोविकारों के बहुत से कारण होते है जिसमें आनुवंशिकता, कमजोर व्यक्तित्व सहनशीलता का अभाव, बाल्यावस्था के अनुभव, तनावपूर्ण परिस्थितियाँ और इनका सामना करने की असामर्थ्य सम्मिलित है आज के समय में तनाव मानवों के लिये बहुत ही सामान्य अनुभव बल चुका है जो कि अधिसंख्य दैविक और मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं द्वारा व्यक्त होता है तनाव की परिभाषा

दैविक प्रतिक्रिया पर केन्द्रित है। हैस शैले ने तनाव (Stress) शब्द को खोजा और इसकी परिभाषा शरीर की किसी भी आवश्यकता के आधार पर अनिश्चित प्रक्रिया के रूप में की है। इसका प्रमुख आधार दैविक है। और यह हार्मोन की क्रियाओं को अधिक महत्व देती है जो एड्रिनल और अन्य ग्रन्थियों द्वारा स्रावित होते है। प्रमुख मानसिक रोग विभिन्न प्रकार के होते है ये विकार व्यक्तित्व मनोदशा खाने की आदतों चिन्ता आदि से संबंधित हो सकते है कुछ मानसिक रोग के जन्म इस प्रकार से है– मनोदशा विकार, ज्ञानात्मक विकार, व्यक्तित्व विकार, खंडित मनस्कता शाइजोफ्रेनिया, द्रव्यसंबंधी विकार– मदिरापान, अवसाद, सविराम विस्फोटी विकार, चिन्ता, मनाविक्षिप्ति, मानसिक मंदन, संविभ्रम इत्यादि प्रमुख है।

मनोरोगों के मुख्य कारण

मनोरोगों के कई मुख्य कारण है इनमें से मुख्य कारण इस प्रकार से है–

1. जैविक कारण–

   आनुवंशिकः– मनोविक्षिप्ति या साइकासिस स्कीजोफ्रिनिया उन्माद, अवसाद इत्यादि व्यक्तित्व रोग, मदिरापान, मंद बुद्धि मिर्गी इत्यादि रोग उन लोगों में अधिक पाये जाते है जिनके परिवार का कोई सदस्य इनसे पीड़ित हो तो संतान को इनका खतरा लगभग दोगुना हो जाता है।

2. व्यक्तित्व– अपने में खोये हुये, चुप रहने वाले, कम मित्र वाले, किताबी कीड़े जैसे गुण वाले स्कीजायड व्यक्तित्व वाले लोगों में स्कीजोफ्रीनिया अधिक होता है। जबकि अनुशांसित तथा साफ–सफाई पसंद समय निष्ठ मित व्ययी जैसे गणों वाले बाध्य व्यक्तित्व के लोगों में खपत रोग बाध्य विक्षिप्त अधिक पाया जाता है।

3. शरीर वृतिक कारण– किशोरावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था, गर्भधारण जैसे शारीरिक परिवर्तन कई मनोरोगों के कारण बन सकते है।

4. वातावरण जनित कारण– कुछ दवाओं, रासायनिक तत्वों, धातुओं मदिरा तथा अन्य मादक पदार्थो का सेवन मनोरोगों की उत्पत्ति का कारण बन जाता है।

5. सामाजिक– संस्कृतिक कारण– सामाजिक एवं मनोरंजक गतिविधियों से जुड़ाव, अकेलापन, राजनीतिक प्राकृतिक या सामाजिक दुर्घटनाएँ जैसे कि– लूटमार, आतंक, भूकम्प, अकाल, बाढ़ सामाजिक बोध एवं अवरोध बेरोजगारी इत्यादि मनोरोग उत्पन्न कर सकते है।

आयुर्वेद के मतानुसार मानसिक रोग

रज और तम ये दो मानस रोग है। इसकी विकृति से होने वाले रोग मानस रोग कहलाते है, जैसे– काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मान मद, शोक, चिन्ता, उद्वेग, भय, हर्ष, विषाद, असूया दैन्य, मत्सर, और दम्भ इत्यादि।

मानसिक स्वास्थ्य के तत्व एवं उद्देश्य

मानसिक स्वास्थ्य में जन्मजात एवं अर्जित योग्यताओं की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिये अवसर मिलना चाहिए। जन्मजात प्रवृतियों का दमन नहीं होना चाहिए।

व्यक्ति की क्षमताओं, इच्छाओं और संवेगों की क्रियाशीलता में परस्पर मेल तथा संतुलन होना चाहिए जिससे व्यक्ति में मानसिक संघर्ष और भावना ग्रन्थियों का जन्म ना हो। ऐसा न होने से विकार उत्पन्न हो जाते है।

उद्देश्य

1. मानव को अपनी मौलिक अवाश्यकताओं की पूर्ति के लिये कुशलता दक्षता और योग्यता प्रदान करना।

2. व्यक्ति को मूल प्रवृत्तियों, संवेगों तथा अन्य जन्मजात शक्तियों पर नियंत्रण तथा संतुलन बनाये रखने की क्षमता प्रदान करना।

3. मानव को सामाजिक बनाना एवं उसे सामाजिक नियमों रीति–रिवाजों तथा आदर्शों से परिचित कराना।

4. मानव का संतुलित एवं सर्वांगीण विकास करना।

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषताएँ

1. मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की संज्ञानात्मक, भावात्मक, तथा क्रियात्मक प्रक्रियाओं का ऐ संतुलित तथा समन्वित विकास होता है। वे अपने जीवन के लक्ष्यों

और उद्देश्यों को प्राथमिकता की दृष्टि से क्रमबद्ध रूप से विकसित करते है।

2. नियमित दिनचार्य
3. सहनशीलता
4. निर्णय करने की क्षमता
5. आत्मज्ञान
6. आत्म–मूल्यांकन
7. सुरक्षा का भाव
8. संतोष व अच्छे संबंध बनाये रखने की क्षमता
9. शारीरिक इच्छाओं की संतुष्टि
10. सकारात्मक एवं खुश रहने की क्षमता
11. तनाव एवं अतिसंवेदनशीलता की अनुपस्थिति
12. अच्छा शरीरिक स्वास्थ्य
13. स्पष्ट जीवन लक्ष्य
14. वास्तविक प्रत्यक्षण
15. जिन्दगी का एक सुस्पष्ट सिद्धांत

मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक– निम्नलिखित स्पष्ट है– 1. अच्छा घरेलू वातावरण 2. विद्यालय का वातावरण 3. वास्तविक मनोवृत्ति की कमी 4. शारीरिक स्वास्थ्य 5. माता–पिता का मानसिक रोग से पीड़ित होना 6. मुख्य आवश्यकताओं की संतुष्टि वंशानुक्रम का प्रभाव 7. शारीरिक दोष या विकास का प्रभाव 8. कठोर अनुशासन 9. माता–पिता द्वारा अतिसुरक्षा तथा अल्पसुरक्षा 10. समाज से संबंधित कारण इत्यादि कारणों का प्रभाव मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

गलत धारणाएँ

मानसिक रोग या पागलपन एक ऐसा शब्द है जिसके इसके कारणों एवं उपचार के विषय में न जाने कितनी भ्रान्तियाँ एवं आशंकाएँ जुड़ी हुई है। कुछ लोग इसे एक असाध्य, आनुवंशिक, एवं छूत की बीमारी मानते है तो कुछ इसे जादू–टोना, भूत–प्रेत व डायन का प्रकोप मानते है। कुछ लोग इसे बीमारी न मानकर जिम्मेदारियों से बचने का नाटक मात्र मानते है। अज्ञानी लोग उपचार के लिये स्थानीय, ओझा, पंडित, मुल्ला– मौलवी, तांत्रिक आदि के पास जाकर अनावश्यक भभूत जड़ी–बूटी का सेवन करते है तथा अमानवीय ढंग से सताये जाते है। ताकि पिशाचात्या का प्रकोप दूर किया जा सके। यह सब गलत है। सही धारणा यह है कि यह बीमारी है और वैज्ञानिक ढंग से चिकित्सा विज्ञान द्वारा इसका इलाज संभव है। ये भी सही नही है कि–

1. मानसिक विकार कोई रोग नहीं है बल्कि बुरी आत्माओं की वजह से पैदा होते है।
2. दवाओं के सेवन से बचना चाहिए।
3. आपकों यह रोग अपनी कमजोरी से हुआ है इससे बचाव करना चाहिए।
4. दवाएँ नुकसान दायक होती हे ये निर्भरता बढ़ाती है जीवनभर लेनी पड़ती है।
5. अधिकतर मनोविकारों का कोई इलाज नहीं होता है।
6. बच्चों को दवाएँ नही दी जानी चाहिए।
7. ईलाज के लिये नींद की गोलियां दी जाती है।
8. अवसाद जैसे मर्ज अपने–आप ठीक हो जाते है या प्रभावित व्यक्ति के प्रयासों से।
9. देवी–देवताओं या झांड–फूक से रोग सही हो सकता है इस प्रकार हमें ऐसी भ्रान्तियों से दूर रहना चाहिए तथा समय रहते उपचार कराना चाहिए। तभी हम मानसिक रोगों पर विजय पा सकेंगे और अपना मानसिक स्वास्थ्य बेहतर सकारात्मक बना सकेगें।

निहितार्थ

मानसिक स्वास्थ्य को समुन्नत बनाने में शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षकों का व्यवहार यदि स्नेहपूर्ण एवं सहानुभूति पूर्ण हो तो इस प्रकार के व्यवहार से छात्रों को मानसिक शान्ति मिलती है। जेण्डन ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि शिक्षकों द्वारा लगातार बालकों के प्रति स्नेहपूर्ण एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाता है तो इससे छात्रों में आत्म सम्मान एवं आत्मविश्वास बढ़ता है। तथा उनका मानसिक स्वास्थ्य मजबूत होता है। संतुलित पाठ्यक्रम संतुलित गृहकार्य, अच्छे अनुशासन पर बल, आवश्यकताओं के अनुकूल अध्यापन वैयक्तिक विभिन्नताओं के सिद्धांत के अनुसार व्यवहार, खेल एवं मनोरंजन की व्यवस्था, शैक्षिक निर्देशन, व्यक्तिगत निर्देशन, अच्छी आदतों का निर्माण, आदि का शिक्षार्थियों के जीवन में बल दिया जाये तो उनका मानसिक स्वास्थ्य स्वस्थ एवं अच्छा होगा। किसी भी

विद्यार्थी में बुरे मानसिक विचार, आत्महत्या, चोरी, ईर्ष्या, मदिरापान, भ्रष्टाचार एवं अश्लील हरकते, यौनाचार आदि उसके जीवन में नहीं होंगे, यदि छात्र का मानसिक स्वास्थ्य सबल एवं सकारात्मक व सही दिशा की ओर होता है तो छात्रों में दुर्व्यवहार की भावना उसके व्यवहार में परिलक्षित नही होती है। मानसिक स्वास्थ्य को अच्छा बनाने में माता–पिता, परिवार, शिक्षक, मित्र, विद्यालय, सत्साहित्य, श्रेष्ठ महापुरूषों की आत्मकथाएं, संस्कार इत्यादि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हुकमैन के अनुसार, छात्रों में व्याप्त अनुशासनहीनता की 30% मात्रा की जबावदेही मानसिक रूप से अस्वस्थ शिक्षकों पर ही होती है। इससे स्पष्ट होता है कि मानसिक स्वास्थ्य जितना अधिक अच्छा होगा उतना ही अधिक व्यक्ति उन्नति करेगा, उसके विचार व व्यवहार समाज के अनुकूल होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *सिंह रामपाल– अधिगम का मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा*
2. *सिन्हा प्रो. जेसी– शिक्षण अधिगम का मनोवैज्ञानिक आधार– श्री कविता प्रकाशन, जयपुर*
3. *विर्क जसवंत– अधिगम कर्ता अधिगम एवं संज्ञान–Twenty First Century Publication, Patiala*
4. *दूरस्थ शिक्षा L.N.M.U. –शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार*
5. *पाठक पी.डी.– शिक्षा मनोविज्ञान– श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा*
6. *विकीपीडिया – cc By - SA3.0 मनोविकार www.http/himwikipediap.org.wiki*

मारवाड़ के दीवान

प्रेम स्वामी
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

यह राज्य का राजस्व सम्बन्धी सबसे बड़ा अधिकारी होता था। राजस्व की वसूली उसका हिसाब-किताब, अधीनस्थ कर्मचारियों की निगरानी आदि का कार्य उसके जिम्मे होता था। उसे पर्याप्त दीवानी और फौजदारी अधिकार भी होते थे। वह परगनों के हाकिमों, कानूनगों आदि से सीधा सम्पर्क रखता था। जमीन की किस्म, पैदावार, जागीर व खालसे के गांवों की पूरी जानकारी उसे होती थी। मारवाड़ में दो प्रकार के दीवानों की नियुक्ति की जाती थी 'देश-दीवान' तथा 'तन-दीवान'। मारवाड़ के दीवान पद का उल्लेख सर्वप्रथम राव मालदेव के समय से मिलता है। राव मालदेव ने अपने दीवान पंचौली नैतसी को जैसलमेर पर आक्रमण करने हेतु भेजा था। महाराजा अजीतसिंह के काल की एक बही में दीवान पद की योग्यता का उल्लेख किया गया है। तन-दीवान की नियुक्ति सर्वप्रथम महाराजा जसवंतसिंह के समय की थी। महाराजा ने खोजा सुन्दर को तन-दीवान नियुक्त किया था। तन-दीवान महाराजा के निजी सचिव के रूप में भी कार्य करता था। उसे राज्य की सारी गतिविधियों की जानकारी रहती थी।

संकेताक्षर : *दीवान, देश दीवान, तन दीवान।*

मारवाड़ के प्रशासन में दीवान का पद भी महत्वपूर्ण था। कार्य की दृष्टि से मारवाड़ प्रशासन में दीवान दो प्रकार के होते थे-प्रथम 'देश दीवान' और दुसरा 'तन दीवान'। 'देश दीवान' को ही समान्यतयाः दीवान नाम से उल्लेख किया जाता था। मारवाड़ के सभी शासक अपने शासन काल में निरन्तर देश दीवान की नियुक्ति करते थे। कोई न कोई व्यक्ति इस पद पर नियुक्त किया जाता रहता था। अतः देश दीवान के पद में सामान्यतया निरन्तरता थी। जबकि इसके विपरित तन दीवान की नियुक्ति में निरन्तरता नहीं थी। तात्कालिक परिस्थतियों के अनुसार तन दीवान की नियुक्ति की जाती थी। दीवान शब्द का प्रयोग सल्तनतकाल से ही होने लगा था। सल्तनतकाल में एक महत्वपूर्ण विभाग दीवान-ए-अर्ज का वर्णन मिलता है। इसका प्रधान आरिज-ए-मुमालिक होता था। इसका कार्य सैनिकों की भर्ती करना, उनकी रसद की व्यवस्था करना, सैनिको का व्यक्तिगत विवरण रखना आदि होता था। अर्थात इसका दायित्व सैनिक कार्यों तक ही सीमित था।

मारवाड़ में राव मालदेव के समय से दीवान पद का विवरण मिलता है। सन् 1552 में मालदेव ने पंचौली नैतसी को दीवान पद पर नियुक्त किया तथा उसको जैसलमेर पर आक्रमण करने का आदेश दिया। दीवान पंचौली विशाल सेना के साथ जैलसमेर पर आक्रमण कर जैसलमेर के शासक को परास्त किया। युद्ध विजय के पश्चात् दीवान पंचौली बहुत सारे खजाने के साथ मालदेव के दरबार में उपस्थित हुआ। इसके पश्चात् सन् 1554 में मालदेव ने दीवान पंचौली अभो झाझावत को मेड़ता पर आक्रमण करने भेजा जिसमें दीवान वीरगति को प्राप्त हुआ।

सन् 1583 में मारवाड़ मुगलों के अधीन हो गया जिससे दीवान के कार्य एवं अधिकारी मुगल प्रशासन के दीवान के समान हो गए और दीवान का पद पूर्णतया मुगल प्रशासन से प्रभावित हो गया। इस काल में दीवान पद को दो भागों में विभक्त कर दिया-देश दीवान और तन दीवान।

सर्वप्रथम हम देश दीवानों का विस्तृत अध्ययन करेगे-

देश दीवान

मारवाड़ में देश दीवान का पद मुगल प्रशासन से अत्यधिक प्रभावित था। मारवाड़ के अनेक ग्रन्थों एवं यहां के विभिन्न शासकों की बहियों से दीवान पद पर रहे व्यक्तियों का वर्णन मिलता है। इन बहियों एवं ग्रन्थों में इनके द्वारा किए गए कार्यो का वर्णन विस्तार से मिलता है। महाराजा अजीतसिंह के समय की एक बही में दीवान पद की योग्यता का उल्लेख किया गया है। इस बही के अनुसार दीवान पद पर वो ही व्यक्ति उपयुक्त है जो बुद्धिमान, अनुभवी, दूरदृष्टिता रखने वाला तथा मानसिक रूप से संन्तुलित एवं शारिरिक दृष्टि से हष्ट पुष्ट एवं स्वस्थ होना चाहिए। दीवान पद पर आसीन व्यक्ति आलस्य और क्रोधी स्वभाव का नहीं होना चाहिए। वह समय के महत्व को समझने वाला होना चाहिए। वह मेहनती होना चाहिए। दीवान पद पर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए जो शासक की इच्छाओं के अनुसार कार्य करे। कभी–कभी महाराज दो व्यक्तियों को संयुक्त रूप से दीवान पद पर नियुक्त करते थे। इसका उदाहरण है सवाई राजा सूरसिंह (1608) के कार्यकाल का। महाराजा सूरसिंह ने 1608 ई. में मुहता वेला जांझणोत और जगा अजवाणी को संयुक्त रूप से दीवान पद पर नियुक्त किया था। लेकिन कुछ समय पश्चात् दीवान जगा अजबाणी पर भ्रष्टाचार के आरोप लगे। महाराजा ने असन्तुष्ट होकर जगा अजबाणी पर आर्थिक दण्ड लगाया। जगा अजबाणी ने आर्थिक दण्ड से अपमानित होकर आत्महत्या कर ली। सन् 1615 ई. में महाराजा सवाईं सूरसिंह ने जोशी देवदत्त को दीवान पद पर नियुक्त किया[1] उसका वेतन 6–7 हजार रूपये प्रति माह था। सन् 1618 ई महाराजा ने भंडारी रूघनाथ को दीवान बनाया परन्तु कुछ समय पश्चात् उन्हें हटाकर भंडारी लूणा को दीवान पद पर नियुक्त किया। सन् 1619 ई. में गजसिंह मारवाड़ के शासक बने। महाराजा गजसिंह के शासन के प्रारम्भिक वर्षो में दीवान पद पर जोशी देवदत्त ने कार्य किया। कुछ समय पश्चात् जोशी देवदत्त को दीवान पद से मुक्त कर दिया। इसके बाद पंचोली मोहनदास को दीवान पद पर नियुक्त किया। सन् 1627 ई में महाराजा बुरहानपुर से जोधपुर आये। उस समय सिंघवी सिहमल की महाराजा से नजदीकियां बढ़ी। महाराजा ने सिहमल को दीवान पद पर नियुक्त कर दिया। सिंघवी सिहमल दो वर्ष तक दीवान पद पर कार्य किया। सन् 1629 ई. में महाराजा ने उसको दीवान पद से पदच्युत कर दिया। पदच्युत होने के पश्चात वह मेवाड़ चला गया। इसके बाद मुँहणोत जयमल जैसावत दीवान पद पर कार्य करता है। सन् 1633 ई. में जयमल के स्थान पर सिंघवी सुखमल को दीवान बनाया।

सन् 1638 ई. में जसवंत सिंह प्रथम मारवाड़ शासक बना। उन्होने शासक बनते ही सिंघवी सुखमल को दीवान बनाया जो मुत्युपर्यन्त 1645 ई. तक दीवान पद पर रहा। सिंघवी सुखमल महाराजा के विशेष कृपापात्र थे। इसके बाद सिंघवी रायमल को दीवान पर पर नियुक्त किया जो अल्प समय तक पद पर रहे। कुछ समय बाद महाराजा ने मियां फरासत को आगरा बुलाया और दीवान पर पर नियुक्त किया। मियां फरासत ने महाराजा गजसिंह के काल में एक सेवक के रूप में कार्य आरम्भ किया था। मियां फरासत ने तीन वर्ष तक दीवान पर पद कार्य किया। इसके बाद सन् 1648 ई. में रघुनाथ भाटी को दीवान बनाया। जो कुछ समय तक ही इस पद पर रहा और सन् 1649 ई. में महाराजा ने पुनः फरासत को दीवान बना दिया। मियां फरासत ने मेड़ता परगने के लोगो की मांग पर करो में कटौती की थी तथा मेड़ता के लोगों को करों में राहत पहुँचाई। उन्होंने दीवान पद पर रहते हुए जनता के हित में राहत कार्य करवाये। उन्होनें जोधपुर एवं जालौर क्षेत्र में पानी की सुविधा के लिए अनेक तालाब एवं बावड़ियां बनवाई।[2] वह 1689 ई. (मृत्युपर्यन्त) तक दीवान पद पर रहे। उसकी मृत्यु के बाद उसके घर की तलाशी ली गई थी जहां बहुत सी सम्पत्ति मिली, जिसको राज्य सरकार ने जब्त कर ली।

सन् 1658 ई. में दीवान पद पर भडांरी ताराचन्द नियुक्त था जिसने अप्रेल 1658 ई. में हुए धरमत के युद्ध में महाराजा जसंवत सिंह के साथ भाग लिया। इसके बाद मुँहणोत नैणसी दीवान बना।[3] दीवान बनने से पहले नैणसी पोकरण और मलारणा में हाकिम के रूप में सेवा दे चुका था। महाराजा जसंवतसिंह उनके कार्यो से बहुत प्रभावित थे। मुँहणोत नैणसी चहुमुंखी व्यक्तित्व का धनी था। वह सभी कार्यो में दक्ष था। अनेक सैन्य अभियानों में कुशल नेतृत्व क्षमता का परिचय दिया। वह युद्ध कला में निपुर्ण होने के साथ–साथ विद्वान भी था।

नैगसी ने मारवाड़ की तात्कालिक परिस्थितियों से सम्बन्धित ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना की थी। इन ग्रन्थों में नैणसी की ख्यात और मारवाड़ रा परगंना री

विगत जैसे इतिहास ग्रन्थ प्रमुख हैं। नैणसी के जीवन का अन्तिम समय अत्यन्त दुःखद रहा। सन् 1666 ई. में महाराजा जसंवतसिंह औरंगाबाद में थे। उसी समय महाराजा ने दीवान नैणसी और उसके भाई सुन्दरदास को कैद करने के आदेश दे दिए और उन पर एक लाख रूपये का आर्थिक दण्ड लगाया। नैणसी ने इस अपमान से परेशान होकर 1670 ई. में आत्महत्या कर ली।

सन् 1666 ई. में नैणसी को कैद करने के पश्चात् महाराजा ने पंचोली केसरीसिंह को दीवान बनाया। पंचोली केसरीसिंह साहसिक और निर्भीक व्यक्तित्व के धनी थे। उसने महाराजा की अनुपस्थिति में मारवाड़ में प्रधान आसकरण के साथ मिलकर कुशल शासन प्रबन्ध किया। सन् 1678 ई. में महाराजा जसवंतसिंह का पैशावर में निधन हो गया। महाराजा के निधन के समय पंचोली केसरीसिंह मारवाड़ में था। उसने महाराजा की मृत्यु के बाद नियमानुसार सभी आभूषण, हाथी, अश्व, तोप आदि सभी प्रकार की सम्पत्ति बादशाह औरगजैब को सुपुर्द की परन्तु बादशाह को सम्पत्ति को लेकर संदेह उत्पन्न हुआ। अतः बादशाह ने दीवान के सभी कर्मचारियों से पूछताछ के आदेश दिया। इस पर केसरीसिंह ने सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हुए कहा कि मारवाड़ के महाराजा की सारी सम्पति का दायित्व उस पर है और सभी कर्मचारी उसके दिशा निर्देश के अनुसार ही कार्य करते है। अतः सम्पत्ति के सम्बन्धित सभी प्रश्नों के उत्तर वह स्वयं देगें। अतः उन्हें कैद कर लिया गया और अनेक यातानाएं दी गई। यातनाओं से परेशान होकर अतः में उसने आत्महत्या कर ली।[4]

महाराजा जसंवतसिंह की मृत्यु के बाद सन् 1707 ई. तक मारवाड़ ने वीर दुर्गादास के नेतृत्व में सत्ता के लिए संघर्ष किया। अन्ततः 1707 ई. में महाराजा अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार किया। महाराजा ने 1707 ई में सिंघवी बख्तावरमल को दीवान बनाया। वह लगभग 1 वर्ष से कम समय तक दीवान पद पर रहा। उनके बाद 1708 ई. में भंडारी विट्ठलदास को पद पर नियुक्त करते समय ढाई लाख रूपये पेशकशी के निश्चत किए गए। कुछ समय पश्चात् विट्ठलदास पर राज्य विरोधी नीतियों के आरोप लगे। अतः में उसकी हत्या करवा दी।[5] इसके बाद क्रमशः भंडारी रघुनाथ और भंडारी अमरसिंह दीवान पद पर रहे परन्तु ये दानों ही अपने कत्तव्यों का पालन सही तरीके से नहीं कर सकें। सन् 1714 ई. में भंडारी माईदास लूणावत और मुथा गोकलदास समदड़िया को सम्मिलित रूप से दीवान का कार्य सौपा गया। सन् 1716 ई. में हुसैनअली खां ने जोधपुर पर आक्रमण किया। तब भंडारी खींवसी को कैद से मुक्त किया और हुसैन अली खां से समझौते की वार्तालाप के लिए दूत बनाकर मेड़ता भेजा।[6] वह सन्धि कराने में सफल रहा। सन्धि के अनुसार महाराजा की पुत्री इन्द्रकंवर का विवाह बादशाह फर्रूखशियर से किया गया। कुंवर अभयसिंह को मुगल दरबार में सेवा के लिए भेजा गया तथा मुगलों ने थट्टा का सुबा महाराजा को दे दिया। सन्धि के पश्चात् भंडारी खीवंसी अभयसिंह के साथ दिल्ली दरबार में उपस्थित हुआ।

दिल्ली दरबार में रहते हुए उसने कई परगने मारवाड़ शासक के नाम करवाये। उसने गुजरात का सूबा महाराजा के नाम करवाया। महाराजा ने खींवसी को मारवाड़ का प्रधान नियुक्त किया। वही दुसरी ओर भंडारी रघुनाथ हुसैन अली के कैद में था। उसे मुक्त करवाकर सन् 1715 ई. में दीवान बनाया। सन् 1715 में ही मारवाड़ के दीवान रघुनाथ और प्रधान भंडारी खींवसी ने मुहणोत नैणसी के दो पुत्रों संग्रामसिंह और सांवतसिंह को परगनो के हाकिम बनाने की सिफारिश की। महाराजा ने दोनों को 8 परगनों के हाकिम की जिम्मेदारी दी। सन् 1716 ई. में महाराजा ने गुजरात के बड़नगर के जोडेचों पर आक्रमण कर पराजित किया और उन पर 10 लाख रूपये के हर्जाने की मांग की। परन्तु दीवान रघुनाथ की सलाह से बाद में इस हर्जाने को कम करके 5 लाख रूपये कर दिया।[7]

सन् 1722 ई. में मुगल बादशाह मुहम्मदशाह और अजीतसिंह के बीच संन्धि हुई। इस संन्धि के अनुसार कुंवर अभयसिंह को शाही सेवा में भेज दिया गया। अभयसिंह के साथ भंडारी रघुनाथ भी शाही दरबार में आ गया। कुछ समय पश्चात् महाराजा अजीतसिंह और मुहम्मदशाह के संबंध मधुर ना रहे। जयपुर नरेश सवाई जयसिंह ने बादशाह के आदेश के अनुसार कुंवर अभयसिंह को महाराजा के खिलाफ भड़काया और महाराजा की हत्या की योजना बनाई। इस योजना में भंडारी रघुनाथ भी शामिल था। कुंवर अभयसिंह के कहने पर उसके भाई बख्तसिंह ने महाराजा की हत्या कर दी। सन् 1724 ई में दिल्ली में अभयसिंह का राजतिलक हुआ और महाराजा की हत्या का पूरा दोष

भंडारियों पर लगा दिया तथा कायस्थ पंचोली रामबक्ष को दीवान नियुक्त किया गया। बाद में महाराज दिल्ली से जोधपुर आये और उन्होनें मुथा गोकलदास समदड़िया को दीवान नियुक्त किया। सन् 1725 ई. में पुनः भंडारी रघुनाथ को विशेष अधिकारों के साथ दीवान बनाया गया। उनको 'उठण रो कुरब' से सम्मानित किया गया। सन् 1728 ई. में प्रधान भंडारी खीवसी की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र अमरसिंह को दीवान बनाया।

उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के राजतिलक समारोह के अवसर पर जयपुर के नरेश जयसिंह और जोधपुर महाराजा अभयसिंह हुरड़ा नामक गांव में एकत्रित हुए। इन सभी राजपूत राजाओं ने मराठों का मिलकर कार्यवाही करने का समझौते पर विचार-विमर्श हुआ। राजस्थान के सभी महत्वपुर्ण राजाओं का एक साथ सम्मिलित होने से बादशाह मुहम्मदशाह को संदेह हुआ। उनको लगा की सभी राजपूत मिलकर मुगल शासन के खिलाफ षडयंत्र कर रहे है परन्तु उस समय भंडारी अमरसिंह बादशाह से मिला और हुरड़ा सम्मेलन के उद्देश्य से उनको अवगत करवाया। यह सुनकर बादशाह ने भी मराठों के विरुद्ध कार्यवाही में राजपूतों का साथ देने का वचन दिया।[8]

सन् 1738 ई. में महाराजा अभयसिंह ने एक बार फिर भंडारियों पर कार्यवाही की और सभी भडारियों को कैद कर लिया गया। भंडारियों की जगह पंचोलियों को नियुक्त किया। पंचोली लाला को दीवान नियुक्त किया। पंचोली लाला का उल्लेख अहमदाबाद की लड़ाई के समय दीवान पद पर होता है और इस युद्ध में लाला को युद्ध के दौरान तीर लगा था। अहमदाबाद युद्ध के बाद पंचोली लाला ने दीवान पद पर रहते हुए बख्तसिंह के खिलाफ मेड़ता पर आक्रमण 1739 ई. में किया था।

दीवान पंचोली लाला के समय राज्य में एक महत्वपूर्ण घटना घटी। इस घटना की खबर पंचोली लाला को नहीं लगी। जबकि दीवान को राज्य के अन्दर और बाहर होने वाली सारी गतिविधियों की जानकारी होनी चाहिए। महाराजा अजीतसिंह के पुत्र राजवी रतनसिंह और रूपसिंह सलेमकोट में कैद थे। वहां के किलेदार बिहारीदास उहड़ ने राजवी रतनसिंह को गद्दी पर बैठाने के लिए एक षड्यंत्र रचा तथा जयपुर नरेश सवाई जयसिंह से सहायता हेतु उने पत्राचार किया परन्तु इस षड्यत्र की भनक भूतपूर्व दीवान खींवसी के पुत्र अमरसिंह और भंडारी मनरूप को लग गई। उनहोने महाराज के सामने इस षडंयत्र का पर्दापास कर दिया। और षड्यंत्र विफल हुआ। महाराजा ने तुरन्त प्रभाव से किलेदार बिहारीदास को पद से मुक्त कर कैद कर लिया। पंचोली लाला को दीवान पद पर रहते हुए भी इस षडयंत्र का पता नहीं होने के कारण दीवान पद से हटाकर कैद कर लिया गया तथा खीवंसी के पुत्र भण्डारी राय अमरसिंह को नया दीवान नियुक्त किया। उसके बाद 1744 ई में पहल भंडारी गिरधरदास और फिर भंडारी मनरूप क्रमशः दीवान बनाए गए।

कालान्तर में महाराजा रामसिंह गद्दी पर बैठे। उन्होनें सन् 1749 ईं में भंडारी मनरूप के बेटे सूरतराम को दीवान बनाया। दीवान पद पर नियुक्त करते समय सूरतराम को सिरोपाव, पालकी और बैठने का कुरब देकर सम्मानित किया। लेकिन कुछ समय पश्चात् ही वह अपने कर्तव्य पर खरा नहीं उतर सका। इसके कारण महाराजा ने उन्हें एक लाख पच्चीस हजार का जुर्माना लगाया और पद से हटा दिया। सुरतराम के बाद भंडारी सवाईराम (रतनसिंह का पुत्र) को दीवान बनाया।

राजा बख्तसिंह जब राज्य की गद्दी पर बैठे तो उन्होनें सिंघवी फतेहचंद (1751) को दीवान बनाया।[9] फतेहचंद लम्बे समय तक दीवान पद पर रहे। 1753 ई. में महाराजा विजयसिंह का राज्यारोहण हुआ तो उन्होनें फतेहचंद को दीवान पद पर बनाये रखा। फतेहचंद ने दीवान के पद पर रहते हुए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए।

सन् 1756 ई. में मराठा सरदार जनकोजी सिंधिया और जोधपुर के बीच हुई संधि में दीवान फतेहचंद की महत्वपुर्ण भूमिका थी।[10] दीवान फतेहचंद ने कई सफल सैन्य अभियान भी किए। जब रामसिंह के सहयोगियों ने विद्रोह किया तब फतेहचंद ने कुशल सैन्य युद्ध नीति से विद्रोहियों को परास्त कर मेड़ता पर अधिकार कर लिया था। परन्तु एक प्रमख सरदार देवीसिंह का झुकाव मराठा खानूजी जाधव के पक्ष में होने के कारण आखिर में सन्धि करनी पड़ी और मेड़ता एवं जालौर के परगने रामसिंह को देने पड़े।

सन् 1759 ईं. में भंडारी नरसिंहदास को दीवान नियुक्त किया गया परन्तु उसकी कोई विशेष उपलब्धि नहीं रही। सन् 1764 ई में मुहणोत सुरतराम को दीवान नियुक्त किया।[11] उसके अगले वर्ष चापांवतों ने विद्रोह कर दिया। चापांवतों ने मराठा सरदार खानू जी

जाधव को मारवाड़ पर आक्रमण का न्यौता दिया। राज्य की ओर से सूरतराम के नेतृत्व में सेना भेजी गई। मारवाड़ की सेना ने वीरता के साथ युद्ध करते हुए मराठों को पराजित किया। इस विजय से सुरतराम की ख्याति और बढ़ी। इसके बाद सूरतराम ने पीह ठिकाने के उदावतों से 20 हजार रूप पेशकशी के निश्चित किए।[12]

हालांकि दीवान सूरतराम के कौशल युद्ध रणनीति से मराठों को पराजित किया परन्तु उसकी शिथिल प्रकृति के कारण मराठा सरदार खानूजी युद्ध मैदान से भागने में सफल रहा। अतः आउवा के ठाकुर जैतसिंह ने इसकी शिकायत महाराजा से की। जिसके कारण उसे दीवान पद से हटना पड़ा। इसके बाद सिंधवी फतेहचंद को फिर से दीवान बनाया गया और 14 हजार रूपये का पट्टा दिया। अगले ही वर्ष सन् 1766 ई में गोवर्धन खींची के प्रभाव से पुनः सिंघवी सुरतराम दीवान बना।[13] इस बार दीवान बनने पर उसे स्वतन्त्र रूप से कार्य करने के अधिकार प्राप्त हुआ एवं राव की पदवी मिली। उसने अपने स्तर पर परगनों में हाकिमों की नियुक्तियां की। उसने तत्कालीन बख्शी भींवराज को हटाकर सिंघवी हिन्दूमल को नियुक्त किया परन्तु सुरतराम भींवराज को कैद नही कर सका। सन् 1774 ई में इसकी मृत्यु हो गई।

तत्पश्चात् सिंघवी फतेहचंद को दीवान बनाया। वह 1780 ई. तक इस पद पर रहे। सन् 1780 ई. में फतेहचंद की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ में अगले दस वर्ष तक कोई दीवान के पद पर नहीं रहा। सन् 1790 ई. में सिंघवी ज्ञानमल अनन्तर भंडारी भवानीदास को दीवान नियुक्त किया गया।[14] इस समय पेशवा की ओर से वकील कृष्ण जी जगन्नाथ मारवाड़ में नियुक्त थे। उसके द्वारा लिखें गए एक पत्र में सिंधवी ज्ञानमल को मारवाड़ का दीवान बताया गया है तथा उसके बाद में लिखा की ज्ञानमल राज्य विरोधी है।[15]

महाराजा भीमसिंह के समय सन् 1795 ई. में भंडारी शिवचंद को दीवान नियुक्त किया परन्तु एक वर्ष से कम समय में ही उसको हटाकर सिंघवी जोधराज को दीवान बनाया गया।[16] जोधराज प्रभावशाली व्यक्ति था परन्तु उसकी प्रधान सवाईसिंह से नहीं बनती थी क्योंकि सवाईसिंह फलौदी का परगना अपने नाम करवाना चाहता था। परन्तु जोधराज के कारण वह ऐसा करने में सफल नहीं हो सका।[17]

सन् 1798 ई. में सवाईराम के पुत्र मुँहणोत सीरदारमल को दीवान नियुक्त किया तथा तत्काल प्रभाव से उसे सेना सहित मेड़ता जाने के आदेश दिया गया। वह दो वर्ष तक इस पद पर रहे। फिर सन् 1800 ई. में दीवान का पद खालसा में रखा गया और इसका कार्य पुनः सिंघवी जोधराज को सौंपा गया। उसने जोधपुर के गुलाब सागर पर नोहरा बनवाया। उसने सख्ती से सरदारों और मुत्सद्दियो से राशि वसूल कर राजकीय कोष में जमा करवाई। यह राशि लगभग 5 लाख थी। इस कारण सरदार उनसे नाराज हो गए और सरदारों ने मिलकर सन् 1802 ई में इसकी हत्या करवा दी।[18] परन्तु जोधराज का प्रभाव इतना था की उनकी मृत्यु के बाद उसके अवयस्क पुत्र शिवराज को दीवान बनाया। अवयस्क के कारण उसका कार्य पंचोली गोपालदास सम्भालता था।[19]

तन–दीवान –

मारवाड़ में इस पद का सृजन सर्वप्रथम महाराजा जसवत सिंह ने किया था क्योंकि महाराजा को मुगल मनसबदारी के कारण अधिक समय मारवाड़ के बाहर ही रहना पड़ता था। अतः महाराजा को एक ऐसे पद की आवश्यकता महसूस हुई जो महाराजा के साथ एक निजी सचिव बनकर उन्हें परामर्श करें। पहले से नियुक्त दीवान जो मारवाड़ का प्रशासन सम्भालता था उसे अब देश दीवान से सम्बोधित किया जाने लगा और तन–दीवान नाम से एक नया पद सृजित किया था। तन दीवान सीधे महाराजा द्वारा नियुक्त किया जाता था। महाराजा के निजी सचिव के रूप में तन दीवान की राज्य की सारी गतिविधियों पर नजर रहती थी। महाराजा के गुप्त खजाने की जानकारी भी तन–दीवान को रहती थी।[20] मुगल बादहशाह को जब भी सैन्य अभियान के समय सेना की आवश्यकता होती थी तब महाराजा अपनी सेवा भेजते थे। उस सेना का संचालन तन–दीवान ही करता था। यदि महाराजा स्वयं उस सेना के साथ होते तो तन–दीवान महाराजा के परामर्शदाता के रूप में उनके साथ होता था।[21]

महाराजा जसंतवसिंह ने सर्वप्रथम खोजा सुन्दर को तन–दीवान नियुक्त किया था। खोजा सुन्दर गजसिंह के समय 1629 ई. में सेवा में आया था। इसको महाराजा ने खरीदा था। खोजा सुन्दर ने महाराजा जसंवतसिंह के समय सन् 1638 से लेकर मई 1646 ई. तक के लम्बे समय तक तन–दीवान का कार्य किया। इसके पश्चात् खोजा अगर को तन दीवान बनाया।[22] खोजा अगर को राजा गजसिंह ने खरीदा

था। इसको सन् 1646 में दीवान नियुक्त किया। वह 1 वर्ष से कम समय (मार्च 1647 तक) पद पर रहा इसके बाद पंचोली बलभद्र को तन–दीवान नियुक्त किया।[23] वह जूलाई 1654 ई. तक इस पद पर बना रहा। अपने पद के प्रति निष्ठा नहीं कर पाने के कारण महाराजा ने पंचोली बलभद्र को एक लाख रूपये का आर्थिक दण्ड लगााकर करागृह में डाल दिया। जहां 1655 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद सन् 1654 ईं. मुहणोत सुन्दरदास को तन–दीवान बनाया। वह दो बार तन दीवान बने थे। सन् 1655 ई. में इनको तन दीवान से हटाकर जालोर परगने का हाकिम नियुक्त किया था। कुछ समय पश्चात् इसे वापिस मारवाड़ का तन–दीवान नियुक्त किया गया।

दिसम्बर 1666 ई. में उसे पद से हटाकर जेल में डाल दिया था। महाराजा जसंवतसिंह की मृत्यु के पश्चात् लम्बे समय तक मारवाड़ को मुगल बादशाह के साथ सर्घष करना पड़ा। महाराजा अजीतसिंह के मारवाड़ का शासक बनने के बाद राज्य के प्रशासनिक पदों पर नियुक्तियां सुचारू रूप से पुनः आरम्भ हुई और सन् 1708 ई. में भंडारी माईदास को तन–दीवान बनाया। अगले ही वर्ष 1709 ई. में भंडारी खींवसी को तन–दीवान नियुक्त किया। इसी साल मुगल बादशाह बहादुरशाह अजमेर आये थे। मारवाड़ महाराजा की ओर से तन–दीवान भंडारी खीवसी बादशाह के सामने उपस्थित हुए। बादशाह ने अजीतसिंह को काबुल का सुबेदार नियुक्त किया। यह समाचार लेकर भंडारी खीवसी मारवाड़ दरबार में उपस्थित हुए। महाराजा अजीसिंह ने इसे अस्वीकार कर दिया क्योंकि महाराजा अपने राज्य से इतने दूर जाने को राजी नहीं हुए।

इस प्रकरण के कारण बादशाह व महाराजा के बीच मनमुटाव हुआ। इस बीच भंडारी खीवसी इस समस्या को सुलझाने मे लगातार प्रयासरत रहे। भंडारी खींवसी नें शाहजादा अजीमुश्शान से सम्पर्क कर उसके माध्यम से अपनी बात बादशाह के सामने रखने का प्रयास किया। आखिर में खीवसी को सफलता मिली और बादशाह महाराजा अजीतसिंह से मिलने को राजी हो गये। महाराजा स्वयं बादशाह से जाकर मिले ओर अपना पक्ष रखा और बादशाह ने अपना निर्णय वापिस ले लिया और काबुल के प्रस्ताव को स्थगित कर दिया। इस प्रकार भंडारी खीवसी ने तन दीवान रहते हुए महाराजा और बादशाह के मध्य एक कड़ी का कार्य किया और मुगलों और मारवाड़ के मधुर सम्बन्धों को बनाये रखने में सफलता प्राप्त की। 1712 ईं. में भंडारी खीवसी से नाराज होकर उनको तन दीवान के पद से हटा दिया और कैद कर लिया। इसके पश्चात् पुनः दीवान का पद भंडारी माईदास और मुथा गोकलदास को दिया गया परन्तु इनके लिए तन–दीवान के शब्द का प्रयोग नहीं किया गया।

सन् 1725 में महाराजा अभयसिंह ने खीवंसी का पुत्र भंडारी अमरसिंह को तन–दीवानगी का सिरोपाव दिल्ली में दिया।[24]

दीवान के कार्य

राज्य के सभी ओहदेदारों पर नजर रखना। राज्य में सम्मिलित सभी परगनों पर नियन्त्रण रखना। परगनों से होने वाली पैदावार की आय–व्यय का लेखा–जोखा उसकी निगरानी में ही हेाता है। ओहदेदारों के वेतन का वितरण करने का कार्य भी दीवान ही करता था। विभिन्न परगनों में राजा द्वारा नियुक्त हाकिमों पर नियत्रंण रखता था। राज्य के परगनों के पदाधिकारी जो भी शिकायत लेकर महाराजा के पास आते थे उनकी शिकायतों का निस्तारण महाराजा दीवान की सलाह लेकर करता था।[25]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *राठौडा री ख्यात, खण्ड. 1 पृ.सं. 153*
2. *मारवाड़ रा परगना री विगत, खण्ड–1 पृ.स. 588–589*
3. *मूंदियाड़ री ख्यात, पृ.स. 107*
4. *अजीत विलास (परम्परा), भाग–27 पृ. 25, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर, 1969 ई.*
5. *मित्र मीरा, महाराजा अजीतसिंह एवं उनका युग, पृ. 256, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अगादमी, जयपुर, 1973*
6. *मूतोड़ियो मांगीलाल, इतिहास की अमरबेल–ओसवाल, खण्ड–2, पृ. 330, प्रियदर्शी प्रकाशन, लाडनूं, 2001 ई.*
7. *जोधपुर राज्य की ख्यात, पृ. 413, 414*
8. *परिहार जी.आर. मराठा–मारवाड़ सम्बन्ध, पृ. 34–35 राजस्थानी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1977*
9. *ओहदाबही–संख्या–1, पृ. 5, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
10. *बारहट शिवदत्तदान, जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ. 41–42, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1991 ई.*

11. ओहदा बही–संख्या–1 पृं. 5, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
12. राठौड़ा री ख्यात, खण्ड–3, पृ. 5 580–581
13. ओहदा बही–संख्या–2, पृ. 3
14. मारवाड़ री ख्यात, पृ. 7
15. अरजी बही पृ. 25
16. ओहदा बही–संख्या–2, पृ. 3, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
17. राठौड़ा री ख्यात, खण्ड–3 पृ. 672, 673
18. मारवाड़ री ख्यात, पृ. 157–158
19. राठौड़ा री ख्यात पृ. 684–685
20. युग पुरूष महाराजा जसंतवसिंह (प्रथम) परम्परा भाग–68, पृ. 25–26, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर 1983 ई.
21. मित्र मीरा महाराजा अजीतसिंह एवं उनका युग पृ. 260–261
22. जोधपुर हुकूमत री बही, सतीशचंद्र एवं अन्य (से.) पृ. 88–99, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1996 ई.
23. भाटी, जितेन्द्रसिंह, राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था, पृ.स. 78, राजस्थानी ग्रन्थागार, 2011 ई.
24. भाटी, हुकमसिंह, मारवाड़ के ओहदेदारों का इतिहास में योगदन, पृ. 49 महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र जोधपुर, 2013 ई.
25. भाटी, जितेन्द्र सिंह, वहीं. पृ.67

महात्मा ज्योतिबा फुले,शिक्षा क्रान्तिकारी दूत

पपेन्द्र सैनी
शोधार्थी, महाराज विनायक ग्लोबल यूनिवर्सिटी, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

जब–जब भी धरती पर असन्तुलन पैदा हो जाता है तब– तब परम धाम से कुछ आत्माये अवतार लेती है। महवीर, महात्मा बुद्ध, नानक, महात्मा ज्योतिबा फुले, महात्मा गांधी आदि महा पुरूष इसी श्रेणी मे आते है। जिन्होने तत्कालीन समय मे जागृति लाकर विषमताओ को दूर किया । भारत देश मे महाराष्ट्र राज्य मे 'साई बाबा' संत कवि 'नामदेव' तथा महात्मा ज्योतिबा फुले आदि महापुरूष हुए है। जिनहोने तत्कालीन समाज मे व्याप्त छुआ छूत, शोषण, पाखण्ड अंधविश्वास, अशिक्षा, वर्णवेद तथा अन्याय के विरूद्ध आजीवन संघर्ष करते हुए समता मुलक समाज की स्थापना के अथक पर्यास किए। भारतीय समाज को वक्त– बेवक्त कुछ समाज सुधारक और मार्गदर्शक मिलते ही रहे है।महात्मा ज्योतिबा फुले उनमे से एक है, जिनहोने दलित, पराश्रित, निराश्रित और दीनहीन समाज को शिक्षा, नेतिक संघर्ष और जागरूकता का पाठ पढ़ाया । सन 1855 ई. में ज्योतिराव ने 'रात्रि पाठशाला' खोली। उन्होंने लगभग 40 वर्ष की उम्र मे बीस विद्यालयो की स्थापना की। महाराष्ट्र सरकार के अभिलेखो मे 18 विद्यालय खोले जाने का उल्लेख मिलता है।वर्तमान में ज्योति की कूल 22 किताबें मिलती है। लगभग सभी मौलिक हैं और कुछ सत्यशोधक समाज की रिपोर्ट के रूप में प्रस्तुत की गई है। ज्योतिबा फुले का संपूर्ण साहित्य दलितों अछूतो कमजोर,वाछितों, शोषित, पीड़ित, के गरीबों के पक्ष में खड़ा है ज्योतिवा समाज में बराबरी लाने के उपायों पर जिंदगी भर सोचते– समझते रहे। उनके लिए लड़ते रहे, उनके लिए लिखते रहें, उन्हीं के लिए जिए और उन्हीं के लिए मरे। साहित्य रचना को, जहां तक बन पड़े, उन्होंने लोकधर्मी बनाया उनका पूरा साहित्य भारतीय जन क्रांति के मूल तत्व को विशद करने वाला दस्तावेज है। महात्मा ज्योति राव फुले को भारतीय इतिहास में एक विशेष स्थान प्राप्त है। उनके शिक्षा अर्थशास्त्र राजनीति एवं धर्म–संबंधी बहुमूल्य विचार अदभुत ज्ञान– गरिमा से ओतप्रोत थे जो युग युग तक है हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे।ज्योतिराव फुले सच्चे महात्मा थे। समग्र मानवता के आराधक को दुख पीड़ित जनता के सेवक को ही महात्मा कहा जाता है और ऐसा महात्मा निश्चित ही ज्योतिराव फुले में समाविष्ट था। महात्मा ज्योतिराव फुले शोषित समाज के मसीहा थे। जिन्होंने अनेक रूढ़िवादी पर सीधा प्रहार किया। राष्ट्रीय, एकता, एकीकरण और समाज में समतावाद पर चिंतनीय निष्ठावान व्यक्तियों में वह एक लोहा पुरुष थे। महात्मा ज्योतिराव फुले वर्तमान शताब्दी के समाज सुधारको में शीर्ष स्थान प्राप्त है। वह ऐसे महान युग प्रवर्तक थे जिन्होंने दलितों एवं पिछड़ों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया। इन्होंने रूढ़ियों अंधविश्वासों और सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन के लिए जोरदार आंदोलन किया। महात्मा फुले भारत की बुनियादी क्रांति के पहले महापुरुष थे, इसलिए वह महात्मा बुद्ध, महावीर, मार्टिन लूथर, नानक आदि के उत्तराधिकारी थे। उनका यह समर्पित जीवन आज के युग का प्रेरणास्रोत बना है।

संकेताक्षर : *साहित्य सृजक, विचारक, समाज सेवी, दार्शनिक युगप्रवर्तक कर्मयोगी।*

महाराष्ट्र मे सतारा नगर से 40 कि.मी. दूर कट्गुण नामक एक गाँव है। फुले जी के पूर्वज उसी गांव के पाटिल (चौधरी) और कुलकर्णी (पटवारी) के चौगुला (सहायक) थे। उस समय गांव के दो बड़े अधिकारी होते थे। पाटिल और कुलकर्णी । तब फुले का कुल परिवार (वंश) गोन्हे कहलाता था। यह फूलमाली थे। इस परिवार में एक बालक का जन्म हुआ उसका नाम रखा गया शेटीबा । ज्योतिराव के परदादा की कुलकर्णी से अनबन होने पर कट्गुण नामक गांव से खानबड़ी गांव में रहने लगे। वहीं से शेटीबा का जन्म हुआ शेटीबा के तीन पुत्र थे राणोंजी, कृष्णा, गोविंद। यह तीनों फूलमाली होने तथा पेशबा के यहां फूलो के व्यवसाय करने के कारण फूले

नाम से लोकप्रिय हुए। गोविंद का विवाह पुणे के निकट धनकवाड़ी गांव के निवासी झगड़े की पुत्री चिमनाबाई से हुआ। गोविंद दंपति ने दो पुत्रों को जन्म दिया। उनमें एक का नाम राजाराम तथा दूसरे का नाम ज्योतिराव था।

दिनांक 11 अप्रैल 1827 ई. को जन्मे ज्योतिराव की मां एक वर्ष पश्चात पंच तत्व में विलीन हो गई। तब दाई माँ ने उनका पालन–पोषण किया। यह प्रतिभा सम्पन और परिश्रमी बालक थे । सात वर्ष की आयु में पारंपरिक विद्यालय में प्रविष्ट हुए अंग्रेजी माध्यम के इस विद्यालय में बिना भेदभाव के शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात खेती का काम सौंप दिया गया। खेती और उधान के कारण कार्य को करते हुए शिक्षा में रुचि बनी रही। तेरह वर्ष की आयु में सन 1840 में खंडाला तहसील के नयागांव नवा से पाटिल की 8 वर्षीय कन्या सावित्री वाई से इनका विवाह कर दिया गया।

गोविंदराव के घनिष्ठ मित्र ईसाई पादरी लेजिट के एक साक्षात्कार मे ज्योतिराव ने निः संकोच उतर दिये। लेजिट उनसे बहुत प्रभावित हुए। उन्होने स्कौटिश स्कूल मे ज्योतिराव को प्रवेश करवाया। उस समय वह 14 वर्ष के थे । इस मिशन स्कूल की शिक्षा ज्योतिराव ने सन 1847 ई. मे पूर्ण कर ली।

इन्होंने तब तक अंग्रेजी की 7 पुस्तकों का अध्ययन पूरा कर लिया। मराठी, अंग्रेजी, मोड़ी, और गुजराती भाषाओं की विद्धान बन गए तथा अनेक धार्मिक, ऐतिहासिक व सामाजिक ग्रंथों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया। साथ ही अपनी पत्नी को भी उन्होंने घर पर ही अक्षर ज्ञान कराना आरंभ किया।

मिशन स्कूल के अध्ययन काल में ज्योतिराव ने जॉर्ज वाशिंगटन और शिवाजी की कहानियां पढ़ी इन महान पुरुषों के जीवन चरित्र का इन पर बहुत प्रभाव पड़ा। उनके विचार और देश प्रेम ने फुले की जीवन धारा बदल दी। उस समय भारत में अंग्रेजों का शासन था। सर्वत्र अंग्रेजों की दमन नीति, शोषण और गुलामी की उत्पीड़न को समझने लगे। उन्होंने अपनी मित्रमंडली सहित प्रसिद्ध क्रांतिकारी वासुदेव फड़के से कुश्ती, तीर चलाना तथा बंदूक द्वारा निशाना लगाना सिखा।

उस चरित्र वाले ज्योतिराव फुले ने अशिक्षा को दूर करने का संकल्प किया। अज्ञान, अंधकार मानव– मानव के प्रति भेद–भाव समाज के सबसे बड़े शत्रु है। इन्हीं पर पहली सफलता आवश्यक है।

शुद्र और नारी के लिए शिक्षा तथा धर्म के मार्ग बंद थे। ज्योतिराव ने पाठशाला खोलने का निश्चय किया।

ज्योतिबा ने जातिगत भेदभाव को इस समाज के लिए सबसे बड़ा अभिशाप माना। इसे खत्म करने के लिए उन्होने अँग्रेजी सरकार से लड़े। नयी शिक्षा व्यवस्था कायम करने के लिए कानून बनवाये और दलित,गरीब तथा वंचित समाज को सम्मानजनक जीवन जीने का हक दिलवाया।

ज्योतिबा फुले का व्यक्तित्व 'महात्मा' के नाम से समाद्त है। उनके मूल्यवान जीवन को कुछ शब्दो मे समेटना आसान नहीं।

'विधा बिना मती गयी' की अलख जगाने वाले महात्मा ज्योतिबा 19 वी सदी के महान विचारक,समाज सेवी , लेखक, दार्शनिक तथा क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे।

आधुनिक भारत के निर्माताओ में महात्मा फुले का नाम अग्रणी है, उन्होने 19 वी शताब्दी के पुर्नजागरण में शोषण मुक्त स्वस्थ समाज स्थापना हेतु अपना जीवन समर्पित कर दिया ।

ज्योतिराव फुले का नाम समाज सुधारक की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 19 वीं शताब्दी के समाज सुधारको में उनका व्यक्तित्व अनूठा है। जिनहोने विशिष्ट ध्येय के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित किया। फुले ने सामाजिक समता, धार्मिक सहिष्णुता, आर्थिक न्याय, दलित वर्ग की राजनीति मे भागीदारी और शोषण मुक्ति के लिए जीवन के अंतिम क्षण तक संघर्ष किया और इस रूप में वे महाराष्ट्र के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र के महान चिंतक बन गये। इसलिए इनके सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन की वर्तमान मे भी प्रासंगिकता है।

एक युगप्रवर्तक कर्मयोगी थे। वे मानवता के हितेषी, पीड़ित, दलित एवं उपेक्षितों के सजग– प्रहरी एवं संरक्षक थे। उनके हदय में मानवता के प्रति दया, सहानुभूति एवं ममत्व के भाव भरे हुए थे। वे स्त्री व पुरुष समानता, स्वतंत्रता एवं भाईचारे के पोषक थे। समाज के सभी वर्गो को समान अधिकार दिलाने हेतु वे आजीवन प्रयत्नशील एवं संघर्षरत रहे।

महिला सशक्तिकरण

भारत का प्रथम छात्रा विद्यालय

1. निम्न वर्ग की आर्थिक व सामाजिक दशा सुधारने के लिए ज्योतिराव फुले ने बिना किसी भेदभाव के निशुल्क शिक्षा हेतु पुणे के बुधवार पेट में भिड़े नामक व्यक्ति के मकान में निजी क्षेत्र में 1जनवरी 1948 ई. को छात्रा विद्यालय की स्थापना की। यह भारत में प्रथम छात्रा विद्यालय था।

छात्र– छात्राओं को गणित भाषा और सामाजिक विज्ञान

की निशुल्क शिक्षा दी जाने लगी। छात्राओं के प्रवेश में अधिक वृद्धि होने लगी। उस समय धार्मिक व सामाजिक मान्यताओं की दृष्टि से सहज कल्पना की जा सकती है। कि विरोध बाधा और रूढ़िवाद के हिमालय को कैसे पार किया होगा ज्योतिराव ने जबकि शुद्र और नारियों के लिए शिक्षित होना धर्म का उल्लंघन माना जाता था।

2. निरंतर छात्राओं की वृद्धि से प्रेरित होकर फूले ने गंज पेट में शुद्र बालिकाओं के लिए एक अन्य विद्यालय की स्थापना की। लाख प्रयत्न करने पर भी इनके लिए जब कोई शिक्षिका तैयार नहीं हुई तो भली-भांति विचार करके अपनी ही पत्नी सावित्रीबाई को इस विद्यालय की शिक्षिका नियुक्त किया।

इस प्रकार सावित्रीबाई राष्ट्र की प्रथम शिक्षिका बनी। प्रताड़ना, अपमान, लांछन, मानसिक तनाव के होते हुए सावित्रीबाई ने शिक्षण का पुनीत कार्य निरन्तर बनाये रखा।

3. तीन जुलाई 1851 ई. को ज्योतिराव फुले ने पूना ब्राह्मण बस्ती मे बुधवार पेठ में एक और बालिका विद्यालय की स्थापना की। फूले इस विद्यालय मे भी बिना वेतन के चार घंटे प्रतिदिन शिक्षण कार्य करते थे। सावित्रीबाई को भी इस का विद्यालय में शिक्षण हेतु बुला लिया।

4. राष्ट्रो में शिक्षा,शिक्षा प्रसार हेतु मई 1852 ई. में ''शिक्षण संस्था'' की स्थापना की जिसका उद्देश्य और अधिक स्कूल व पाठशाला खोलना था। मुंबई सरकार के गवर्नर की अध्यक्षता में फूले का सार्वजनिक अभिनंदन किया गया।

शिक्षा प्रसार की गतिविधि से बौखला उठे। उस समय सामाजिक व्यवस्था के अनुसार स्त्रियों को सार्वजनिक रूप से शिक्षा देना धर्म के विरुद्ध मान्यता थी। कि अच्छे घर की पुत्री और बहू को घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए। ज्योतिराव के पिता को भड़काया की पुत्र वधू को घर से बाहर न जाने दे। पिता डर गए तथा उनके प्रभाव में आकर फूले दंपति को पिता की धमकी के अनुसार घर छोड़ना पड़ा। यह समाचार नवंबर 1851 ई. के ''बोम्बे गार्डियन'' अखबार में प्रकाशित हुआ।

5. सन 1852 ई. में 'पूना लाइब्रेरी' स्थापना की।

6. सन 1855 ई. में ज्योतिराव ने 'रात्रि पाठशाला' खोली। उन्होंने लगभग 40 वर्ष की उम्र मे बीस विद्यालयो की स्थापना की। महाराष्ट्र सरकार के अभिलेखो मे 18 विद्यालय खोले जाने का उल्लेख मिलता है।

विधवा विवाह के पक्षधर, अनाथालय बाल हत्या प्रतिबंधक गृह की स्थापनाः- उस समय विधवाओं का जीवन अत्यंत दयनीय था। उनके सिर का मुंडन करवाया जाता था। यद्यपि 1829 ई. में सती प्रथा समाप्ति हेतु कानून बनाया जा चुका था। परंतु विधवाओं का जीवन अत्यंत कष्टदायक बना दिया गया। विधवा मुंडन के साथ मुह ढककर रहना व जीना अधिक कठिन था। उसका मुंह देखना अशुभ माना जाता था।

8 मार्च 1860 ई.मे ज्योतिराव ने विधवा युवती का विवाह करवाया। नारी जाति के उत्थान का मार्ग प्रशस्त हुआ। शोषण ग्रस्त विधवाओं को सम्मान पूर्वक जीने के लिए अनाथालय की स्थापना और बाल हत्या प्रतिबंधक गृह की 1863 ई. को स्थापना की यहा अवेध शिशु की रक्षा और पालन-पोषण की पूर्ण व्यवस्था थी।

सत्यशोधक समाज

महात्मा फुले ने समाज को भ्रमित होने से बचाने तथा धर्म परिवर्तन से दूर रहने के लिए 24 सितम्बर 1872 ई. को ''सत्य शोधक समाज'' की स्थापना की। इसकी शाखाए पूरे दक्षिण प्रान्त मे फैला दी । देश भक्त न्यायमूर्ति राना डे, राय बहादुर शास्त्री, लाल शंकर- उमाशंकर त्रिवेदी आदि व्यक्तियों ने ज्योतिराव को पूर्ण सहयोग दिया।

1. ईश्वर एक, सर्व व्यापी निर्गुण,निर्विकार तथा सत्य स्वरूप है और हम सभी मे व्याप्त है।

2. प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर भक्ति का अधिकार प्राप्त है। उसके लिये किसी मध्यस्थता की आवश्यकता नहीं।

3. मनुष्य की श्रेष्ठता उसकी जाति मे नहीं वरन उसके स्वय के गुणों मे है ।

सत्य शोधक समाज का गठन 1873 मे फुले द्वारा किया गया था। इस समाज के झंडे के नीचे फुले निचली जतियों को एकत्रित करके उनको राजनीतिक गतिविधियों का अहसास भी कराने का प्रयास करते थे। इस प्रकार फुले के सत्य शोधक समाज की राजनीतिक भूमिका रही है ।

साहित्य सृजक

- ज्योतिबा फुले की सबसे पहली रचना 'तृतीय रतन' नाटक है, जो सन 1855 में लिखा गया। उसके बाद सन 1891 तक व लगातार लिखते रहें। पँवाड़ा छत्रपति शिवाजी भोसले का (जून 1869), पँवाड़ाः शिक्षा विभाग के ब्राह्मणों

अध्यापकों का (जून 1869) ब्राह्मणों की चालाकी (1869), गुलामगिरी (1873), हंटर शिक्षा आयोग के सामने निवेदन पेश (19 अक्टूबर 1882), किसान का कोडा (18 जुलाई 1883), ग्राम जोशी के संबंध में (29 मार्च 1886), सत्यशोधक समाज के लिए मंगल गाथा और पूजा विधि (जून 1887) सार्वजनिक सत्य धर्म (1891), अखण्डादि काव्य रचना आदि रचनाये फूले कालीन भारतीय समाज की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, शेक्षिक स्थिति को अच्छी तरह समझ लेने के लिए पर्याप्त है। यही नहीं, उन्होंने अपने विचारों को समाज के आम आदमी तक पहुंचाने के लिए सत्यशोधक समाज की स्थापना की और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन्होंने जो भी लिखा, उसको स्वम छपवा कर प्रकाशित किया। सन 1873 मे प्रकाशित 'गुलामगिरी' को इन्होंने यूनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका) के उन लोगों को समर्पित किया है। जिनहोने ने वहां के काले लोगों को गौरो की दासता से मुक्त कराने के काम को आगे बढ़ाया था। ज्योतिबा फुले शूद्रो–अति शूद्रो की गुलामी की तुलना काले, हब्शी गुलामों से की ।

- वर्तमान में ज्योति की कूल 22 किताबें मिलती है। लगभग सभी मौलिक हैं और कुछ सत्यशोधक समाज की रिपोर्ट के रूप में प्रस्तुत की गई है। कुछ किताबें जो अत्यंत लोकप्रिय हैं यहाँ उनकी जानकारी दी जा रही है

ज्योतिबा फुले का संपूर्ण साहित्य दलितों अछूतो कमजोर,वाछितों, शोषित, पीड़ित, के गरीबों के पक्ष में खड़ा है ज्योतिवा समाज में बराबरी लाने के उपायों पर जिंदगी भर सोचते– समझते रहे। उनके लिए लड़ते रहे, उनके लिए लिखते रहें, उन्हीं के लिए जिए और उन्हीं के लिए मरे।

साहित्य रचना को, जहां तक बन पड़े, उन्होंने लोकधर्मी बनाया उनका पूरा साहित्य भारतीय जन क्रांति के मूल तत्व को विशद करने वाला दस्तावेज है ।

सदीयों से सोए हुए समाज को जगाना और उसे उसकी अस्मिता का करा देना फूले साहित्य का मुख्य उद्देश्य था। बने तो सीधे–सीधे नहीं तो दरार देकर उन्होंने अपनी बात लोगों को समझा दी अज्ञान और अंधविश्वास की युगों से जमी हुई सख्त परतें उन्हें तोड़ने की और उनके लिए लोहा लेकर का फौलादी हल चलाना जरूरी था। उनकी शैली 'कबीर की शेली' थी। अपनी साहित्य रचना को, जहां तक बज पड़े. उन्हें लोकधर्मी बनाया. उनका पूरा साहित्य भारतीय जन क्रांति के मूल तत्वों को विशुद्ध करने वाला दस्तावेज है। अधिकार, विद्रोह, विज्ञान, संकल्प और रचना उनके साहित्य की पंचशुत्री है।

राजनीतिक योगदान, महान विचारक

ज्योतिराव ने अपने भाषणों व लेखों के आधार पर 1878 में दक्कन कानून बना। इसी प्रयास के अनुसार सन 1888 ई. में मिल मजदूर संगठन की स्थापना की गई।

ज्योतिराव फुले ने राजनीति में सक्रिय भाग लिया वे सन 1876–82ई. के लिए पुणे नगर नगरपालिका सदस्य चुने गये ।

ज्योतिराव ने एक योजना बनाई जिसके अनुसार पुणे देश की एकमात्र नगरपालिका थी जिसके द्वारा वहां के नागरिकों को पानी फिल्टर करके वितरित किया जाता था।

ज्योतिराव नगरपालिका की आय – व्यय जांच उपसमिति के 1867– 68 व 1877–78 में सदस्य रहे प्रजातंत्र के समर्थक

फुले राजनीति के क्षेत्र में जन भागीदारी के पक्षधर थे

प्रजातन्त्र के समर्थक

समाज के दलित व कमजोर वर्गों की सत्ता में भागीदारी के समर्थक थे

दलित वर्गों के हितों की राजनीति के पक्षधर

राजनीति में शोषित वर्ग अधिकाधिक भागीदारी के प्रबल समर्थक

सत्यशोधक समाज की राजनीतिक भूमिका

सत्य शोधक समाज का गठन 1873 मे फुले द्वारा किया गया था । इस समाज के झंडे के नीचे फुले निचली जतियों को एकत्रित करके उनको राजनीतिक गतिविधियों का अहसास भी कराने का प्रयास करते थे। इस प्रकार फुले के सत्य शोधक समाज की राजनीतिक भूमिका रही है ।

वर्तमान समय में ज्योतिराव फुले के सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन की महती आवश्यकता है। आज भी समाज में सामाजिक एवं राजनीतिक स्तर पर कई तरह की बुराइयां व भ्रांतियां व्याप्त है। इन बुराइयों व अपराधो को मिटाने हेतु फुले के सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन को जीवन में उतार कर समाज व राजनीति में परिवर्तन लाया जा सकता है।

महात्मा ज्योति राव फुले को भारतीय इतिहास में एक

विशेष स्थान प्राप्त है। उनके शिक्षा अर्थशास्त्र राजनीति एवं धर्म संबंधी बहुमूल्य विचार अदभुत ज्ञान– गरिमा से ओतप्रोत थे जो युग युग तक है हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे।

सारांश

ज्योतिराव फुले सच्चे महात्मा थे। समग्र मानवता के आराधक और दुख पीड़ित जनता के सेवक को ही महात्मा कहा जाता है और ऐसा महात्मा निश्चित ही ज्योतिराव फुले में समाविष्ट था। महात्मा ज्योतिराव फुले शोषित समाज के मसीहा थे। जिन्होंने अनेक रूढ़िवादी पर सीधा प्रहार किया। राष्ट्रीय, एकता, एकीकरण और समाज में समतावाद पर चिंतनीय निष्ठावान व्यक्तियों में वह एक लोहा पुरुष थे। महात्मा ज्योतिराव फुले वर्तमान शताब्दी के समाज सुधारको में शीर्ष स्थान प्राप्त है। वह ऐसे महान युग प्रवर्तक थे जिन्होंने दलितों एवं पिछड़ों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया। इन्होंने रूढ़ियों अंधविश्वासों और सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन के लिए जोरदार आंदोलन किया।

जब तक कभी हमारे देश में जनता के सर्वांगीण हितों की रक्षा करने वाला राजनीतिक दल सामने आयेगा। वह चाहे कोई भी नाम धारण कर ले फिर भी उसे ज्योति राव की नीति उनका तत्वज्ञान उनके कार्यक्रम को लेकर ही आगे बढ़ना होगा। लोकतंत्र का यही एकमात्र सच्चा मार्ग है।

परिणाम एवं निष्कर्ष

महात्मा ज्योतिराव फूले उन्नीसवी सदी के उतुंग व्यक्तित्व थे, जिन्होंने विशिष्ट देह के लिए अपना जीवन समर्पित किया वे शिक्षा क्रांति के अग्रदूत है।

महात्मा फुले भारत की बुनियादी क्रांति के पहले महापुरुष थे, इसलिए वह महात्मा बुद्ध, महावीर, मार्टिन लूथर, नानक आदि के उत्तराधिकारी थे। उनका यह समर्पित जीवन आज के युग का प्रेरणास्रोत बना है।

यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि फुले जी का अशिक्षा पर किया हुआ हमला अचूक था। फुले द्वारा बताया गया सत्य मनुष्य के हजारों वर्षो के परिश्रम से अर्जित संस्कृति एवं ज्ञान का सार है।

सदियों से सोये हुए समाज को जगाना और उसे उसकी अस्मिता का मान करा देना फुले जी के साहित्य का मुख्य उद्देश्य था। बने तो सीधे–सीधे नहीं तो दरार देकर उन्होंने अपनी बात लोगों को समझा दी। अज्ञान और अंधविश्वास की युगो से जगी हुई सख्त तोड़नी थी और उसके लिए लोहे लेखनी का फौलादी हल चलाना जरूरी था। उनकी शैली ''कबीर की शैली'' थी अपने साहित्य–रचना को जहाँ बन पड़े। उन्होंने लोक धर्मी बनाया उनका पूरा साहित्य भारतीय जन क्रांति के मूल तत्वों को विशद करने वाला दस्तावेज है अधिकार, विद्रोह, विज्ञान, संकल्प और रचना उनके साहित्य की पंचसूत्री है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *खापर्डे, डी.के.–आधुनिक भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक क्रांति के प्रणेता महात्मा ज्योतिराव फुले, बहुजन पब्लिकेशन ट्रस्ट, नई दिल्ली,1990,पृ.11*
2. *मोर्य, पूरण सिंह– डॉ. भीमराव अम्बेडकर महात्मा ज्योतिबा राव फुले, डॉ. अम्बेडकर महात्मा ज्योतिबा राव साहित्य अकादमी, 6 दिसंबर 1986, पृष्ठ संख्या 26–27*
3. *मस्के, साक्षान्त–परम्परागत वर्ण–व्यवस्था और दलित साहित्य,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009. पृ. 92*
4. *सबनिसा, मिलिंडा प्रभाकर–वंदे मातरम, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृ. 28*
5. *पाण्डेय, पृथ्वीनाथ–निबन्ध सागर, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 278*
6. *जगताप, मुरलीधर– सामाजिक क्रांति के अग्रदूत महात्मा ज्योतिबा फूले, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, 2009, पृ. 114*
7. *सैनी, किशन सिंह–भारतीय सामाजिक क्रान्ति के प्रेरणा स्त्रोत महात्मा ज्योतिराव फुले (1827 ई. –1890ई.), सपना प्रिंटिंग प्रैस खिरनी घाट, भरतपुर राजस्थान 2002 पृ.03*
8. *सैनी, मोहनलाल ज्योतिराव फुले का सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन एक अनुशीलन, आयुष पब्लिकेशन, जयपुर, 2017, पृ. 104*
9. *शीतल, डॉ. सोहनलाल, महात्मा ज्योतिराव फुले, रमन बुक सेंटर, मथुरा,2016, पृ.07*
10. *नागर, हीरा लाल – महात्मा ज्योतिबा फुले, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्लीए 2017 पृ.07*
11. *आर्य, जियालाल–ज्योतिपुंज महात्मा फुले, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2006, पृ.07*
12. *विमल कीर्ति, एल. जी मिश्राम (मलबारी के दो टिप्पणियों के बारे में महात्मा फुले के विचार) 04 दिसम्बर 1884 राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 01*
13. *शर्मा, वीरेन्द्र प्रकाश– भारत सामाजिक परिवर्तन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1998,पृ.199–200*
14. *सैनी, योगमाया– महात्मा ज्योतिबा फुले, का चिन्तन राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2004*

राजस्थान के जनजीवन की समृद्ध लोक कला ''मांडणा कला'' का कलात्मक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन

SHODH SHREE
ISSN 2277-5587 RNI-RAJHIN02171/40531
shodhshree@gmail.com

डॉ. प्रियंका वर्मा
सहायक आचार्य, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा

शोध सारांश

भारत में भूमि और भित्ति को सजाने की समृद्ध लोक-कला आदिकाल से प्रचलित है। इस कला के भारत के प्रत्येक भू-भाग में विविध रूप और तकनीकें देखने को मिलती हैं, इनके नाम भी भिन्न-भिन्न हैं। लिखने को राजस्थान की लोक भाषा में "माँडना" कहा जाता है, यहाँ चित्रण एवं लेखन दोनों के लिए मांडना शब्द ही प्रयुक्त होता है । आज मांडना शब्द उन मंगल-सूचक अभिप्रायों हेतु प्रयुक्त होता है, जिनका निर्माण स्त्रियों द्वारा घर के आँगन को साफ करके उसे गोबर व पीली मिट्टी से पोतने के पश्चात् किया जाता है। वात्स्यायन द्वारा रचित कामसूत्र में इनका उल्लेख आलेख्यम और मणिभूमिकर्म के नाम से किया गया है। कालिदास की रचना रघुवंश में भी पूजा-गृहों में भूमि पर अलंकरणों का वर्णन है। यदि राजस्थान में विविध त्यौहारों तथा संस्कारों पर बनाए जाने वाले मांडनों को एकत्र किया जाए तो एक बड़ा कला-संग्रह निर्मित हो जाएगा। ये मांडने बिना किसी विशेष यन्त्र के स्वतन्त्र हस्त-संचालन पद्धति से बनाए जाते हैं, इनके निर्माण में लाल और सफेद रंग का अधिक प्रयोग किया जाता है, ये रंग क्रमशः मुख्य रूप से गेरू और खड़िया से निर्मित किए जाते हैं। पुनरावृत्ति के कारण कुछ आकृतियों में मानकीकरण (स्टैण्डराईजेशन) आ गया है। कुछ सरलीकृत व सजावटी आकृतियाँ प्रमुख मांडने के चारों तरफ बनाई जाती हैं, इनका उद्देश्य प्रमुख मांडने को प्रभाविता प्रदान करना, उसकी सुन्दरता में अभिवृद्धि करना और रिक्त अन्तराल को भरना होता है। भरावन के कुछ अलंकरण मांडणे की बाह्य रेखा की कठोरता को समाप्त कर उनमें लावण्य और प्रवाह लाने का कार्य करते हैं, साथ ही ये एकरसता को भी भंग करते हैं। छोटे अलंकरणों की पुनरावृत्ति द्वारा मांडने की प्रमुख आकृति को लयात्मकता और सन्तुलन प्रदान किया जाता है। मांडनों को मुख्यतः चार ज्यामितीय आकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है- सामान्य वर्गाकार, वर्गाकार, अनियमित षटकोण, वृत्ताकार, आदि। मांडणा की परम्परागत लोक-कला की शिक्षा पुस्तकों या शिक्षण-संस्थाओं पर आधारित नहीं है, यह हमारे घर-आँगन में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सहज ही संचरणशील होती है। किन्तु फिर भी अनायास ही प्रभाविता, प्रवाह, प्रमाण सहयोग, सामन्जस्य, सन्तुलन इत्यादि संयोजनात्मक तत्वों तथा रेखा, रूप, वर्ण, तान, पोत, अन्तराल, इत्यादि दृश्य कला के तत्वों व इनसे सम्बन्धित नियमों का समावेश इसमें हुआ है, जो मांडनों की प्रत्येक आकृति व अलंकरण में स्पष्ट दिखाई देता है। हालांकि लोक-कलाकार ने सजग होकर सचेतन रूप से इस हेतु प्रयास नहीं किया है, क्योंकि इन लोक-कलाओं का सहज, सरल और संप्रेषणीय होना ही इनकी प्रधान विशिष्टता है।

संकेताक्षर : *लोक-कला, मांडना कला, अलंकरण, कलात्मकता, संयोजनात्मक तत्व, भूमि-सज्जा, भित्ति-चित्रण।*

भारत में भूमि को सजाने की कला अनोखी है। भारतीय संस्कृति में इसका विशिष्ट और आवश्यक स्थान है। भूमि-सज्जा का कार्य मुख्यतः महिलाओं द्वारा किया जाता है। भारत के प्रत्येक राज्य में भूमि-सज्जा का स्वरुप अलग है, उसी के अनुसार इनके नाम भी भिन्न-भिन्न हैं। इन्हें राजस्थान और मध्यप्रदेश में "मांडणा", उत्तर प्रदेश में "चौक पूरना", "उरैन", तमिलनाडू में "कोलम'', आंध्रप्रदेश में "मुग्गू"(मुग्गुल), एवं गुजरात और महाराष्ट्र में "रंगोली", कर्नाटक में "रंगवल्ली", उड़ीसा में "झोटी" व "मुरूजा", उत्तराखंड में "ऐपण", बिहार में "अरिपन", केरल में "फूल-कोलम", हिमाचल प्रदेश में "मांडना" व

अदूपना एवं पश्चिम बंगाल में "अल्पना", कहा जाता है। भूमि–सज्जा की ये सभी तकनीकें और प्रकार सदियों से हमारे विवाह इत्यादि संस्कारों, त्यौहारों का महत्वपूर्ण हिस्सा रहें हैं। हमारे लोक जीवन में रचे–बसे इन चित्रों को प्रत्येक मांगलिक अवसर पर बनाया जाता है। ऐसा लोक–विश्वास है कि इन्हें बनाने से घर–परिवार में देवी–देवताओं का वास होता है, विपत्तियाँ नहीं आती, अमंगल नष्ट होता है और सदैव सुख व समृद्धि रहती है।[1]

राजस्थान में परम्परागत भूमि–सज्जा की तकनीक को मांडना कहा जाता है। मांडना राजस्थानी लोक–भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है लिखना, यहाँ लिखने और चित्र बनाने हेतु मांडना शब्द का ही प्रयोग किया जाता था। इसलिए मांडणा शब्द यहाँ की लोक भाषा में बहुत प्रचलित रहा है, आज इस शब्द का प्रयोग मुख्यतः उन मंगल–सूचक अभिप्रायों के लिए किया जाता है, जो घर की साफ–सफाई करके लीपने–पोतने के बाद महिलाओं द्वारा निर्मित किए जाते हैं। राजस्थान में त्यौहारों और अन्य शुभ–मांगलिक अवसरों पर जो मांडणे निर्मित किए जाते हैं, अगर उनका संगृह किया जाए तो इन लोक–अलंकरणों का एक बहुत बड़ा भंडार एकत्र हो जाएगा।

एतिहासिक पृष्ठभूमि

मांडणा कला प्रागैतिहासिक काल से विद्यमान रही है। प्रागैतिहासिक कालीन मनुष्य भी गुहाओं की भित्तियों पर चित्रालंकरण करता था। वात्स्यायन द्वारा रचित कामसूत्र में भी इनका वर्णन आलेख्यम, मणिभूमिकर्म इत्यादि नामों से किया गया है। शुक्रनीतिसार में चित्राद्यालेखनम् का उल्लेख है, जिसमें आँगन में भिन्न–भिन्न रंगों के पुष्पों एवं हल्दी, कुमकुम इत्यादि से रंगे चावलों से भिन्न–भिन्न आकृतियाँ बनाना, पुष्प बिछाना इत्यादि सम्मिलित है। कालिदास ने भी अपनी रचना रघुवंश में पूजा–गृहों में बने भूमि–सज्जा अलंकरणों का वर्णन किया है। कवि बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित में विवाह के अवसर पर निर्मित किए जाने वाले सुन्दर भूमि–सज्जा अलंकरणों का उल्लेख प्राप्त होता है। बाणभट्ट द्वारा ही रचित अन्य कृति कादम्बरी में शिशु–जन्म पर निर्मित किए जाने वाले शुभ–मांगलिक अलंकरणों का वर्णन है।[2]

भूमि–सज्जा की कला के उद्भव को लेकर अनेक किंवदंतिया प्रचलित हैं। लक्ष्मण जी ने सीता जी की रक्षा के लिए जो रेखा खींची थी, उसी के प्रभाव–स्वरुप रावण कुटिया के अन्दर नहीं जा सका। लोकगीतों में भी इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं कि जब श्रीकृष्ण ने राधा से उनके घर का पता पूछा तो राधा ने कहा–'जिस घर के दरवाजे पर सर्वाधिक सुंदर रंगोली बनी हो, वही मेरा घर है।' इन किंवदंतियों से तत्कालीन समाज में इस भूमि–सज्जा की कला के लोक–प्रचलन एवं लोक–प्रियता के बारे में स्पष्ट जानकारी मिलती है।

निर्माण विधि

राजस्थान के पारम्परिक मांडने के निर्माण हेतु किसी विशिष्ट उपकरण की जरुरत नहीं पड़ती। ज्यामितीय आकृतियों यथा– वृत्त, वर्ग, चतुर्भुज इत्यादि एवं बिंदु व रेखाओं की मदद से सम्पूर्ण अलंकरण बनाया जाता है। मांडनों के निर्माण हेतु राजस्थान में मुख्य रूप से दो रंगो का सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है, ये हैं लाल और सफेद रंग, जो की क्रमशः खडिया और गेरू से प्राप्त किये जाते हैं। मुख्य आकृति लाल रंग से निर्मित की जाती है एवं उनमें भरावन का कार्य सफेद रंग से किया जाता है। मांडने बनाने के लिए सर्वप्रथम आँगन को साफ करके उसे गोबर और पीली मिट्टी से लीप कर तैयार किया जाता है। कभी–कभी ये मांडणें मात्र एक रंग से सफेद अथवा लाल से भी बना दिए जाते हैं।[3] इन्हें बनाने के लिए स्त्रियाँ रुई अथवा सूती कपड़े की कतरन को रंग में भिगो कर उसे अंगूठे और अंगुलियों से दबाते हुए पारम्परिक आकृति का निर्माण एक ही प्रवाह में सरलता से करती जाती हैं, उनकी अंगुलियों के दबाव से आवश्यक मात्रा में रंग रिसता जाता है और आँगन में रेखाएं और आकृतियाँ बनती चली जाती हैं। कभी–कभी इसके लिए खजूर की डंडी से बनाई गई तुलिका का भी प्रयोग होता है। अधिकांशतः किसी एक बिंदू से प्रारम्भ करके मांडने को उसके चारों ओर बढ़ाते चले जाते हैं। कठिन से कठिन ज्यामितीय आकृति को भी अभ्यस्त स्त्रियाँ बहुत ही कम समय में रेखाएं खिंच कर और गिनकर निर्मित कर लेती हैं। प्रमुख रेखाओं के अंकन के पश्चात् उन्हें छोटी रेखाओं अथवा बिन्दुओं की सहायता से भरा जाता है, इन भरावन के अलंकरणों को लोक–भाषा में झंवरा, बेल, भरती, चीरण, जुआ, इत्यादि कहा जाता है। मांडने को चारों ओर से भिन्न–भिन्न आकारों की बेलों, कंगूरों तथा लटकनों के अलंकरणों से सजाया जाता है, इन्हें सेवण, फुलडि, इत्यादि नामों से संबोधित किया जाता है। रामरज से प्राप्त पीले रंग का प्रयोग भी इन मांडनों में किया जाता है, यह मांडनों में तीसरा सबसे ज्यादा

प्रयुक्त होने वाला रंग है।

क्षेत्रीय विविधता

राजस्थान के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में मांडनों में विविधता देखने को मिलती है। हाडौती क्षेत्र में मोर के अलंकरण मांडनों में अधिक बनते हैं, यहाँ इनमें शेर एवं बिल्लियों की आकृतियाँ भी बनाई जाती है, साथ ही धान कूटती हुई महिलाओं एवं फल तोड़ते हुए पुरूषों का चित्रण भी मांडनों में किया जाता है। राजस्थान के दक्षिणी प्रदेश में भील जनजाति के लोगों द्वारा मांडनों में नाचती हुई महिलाएं, लकड़ियाँ ले जाते हुए एवं शहद इकट्ठा करते हुए पुरुष समूह, इत्यादि बनाते जाते हैं। राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र में लक्ष्मीजी का पगल्या एवं सातिए की आकृति मुख्यतः बनाई जाती है, साथ ही कुछ विशेष मांडने भी अंकित किये जाते है।

डूंगरपुर और बांसवाड़ा के मांडनों में आदिवासी जन-जीवन से जुड़ी आकृतियाँ देखने को मिलती है। इन मांडनों में सरल संयोजन का प्रयोग हुआ है। इनमें सजावट अथवा ज्यामितीय अलंकरणों की कमी है। यहाँ के मांडणों के प्रमुख विषय हैं- पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, खेती एवं आखेट, शहद इकट्ठा करती हुई स्त्रियाँ, लकड़ी का गट्ठर ले जाते, नृत्य करते, झोंपड़ी के बाहर खड़े स्त्री-पुरुष, इत्यादि सीधी-सरल रेखाओं द्वारा निर्मित किए जाते हैं। फलस्वरूप उनके इन चित्र-अलंकरणों में उनके सम्पूर्ण दैनिक-जीवन की झांकी परिलक्षित होती है। अगर पृष्ठभूमि लाल रंग से बनी हो तो मांडने सफेद रंग से बनाए जाते हैं और यदि पृष्ठभूमि सफेद रंग से बनी हो तो मांडने की आकृतियाँ लाल रंग से बनाई जाती है, उदयपुर में भी मांडनों में इसी रंग-योजना का प्रयोग किया जाता है। उदयपुर में गोबर व मिट्टी से पुते आँगन में मांडने सीधे सफेद रंग से भी बना दिए जाते हैं। सवाईमाधोपुर में मांडणों के विषय मुख्यतः गमला, पहिया, सातिया, सूर्य, पक्षी, मनुष्य, इत्यादि होते हैं। सवाई माधोपुर में सम्पूर्ण घर के आँगन, दीवारों, चूल्हे, इत्यादि को मांडनों से सजाया जाता है, यहाँ घर के प्रत्येक भाग में मांडणें देखे जा सकते हैं। यहाँ ये मांडणें बारिश के मौसम के पश्चात् बनाए जाते हैं। इन मांडणों में बनी प्रत्येक आकृति को शतरंज, बावड़ी इत्यादि अलंकरणों की भरत से भरा जाता है। सम्पूर्ण भित्ति को स्त्रियाँ इसी प्रकार के मांडणों से भर देती है। यहां मांडणों में पांच तरह से मोर की आकृति चित्रित की जाती है, कहीं-कहीं दो बिल्लियाँ चित्रित की जाती है, तो कहीं-कहीं स्त्रियों को अनाज कूटते हुए चित्रित किया जाता है, मनुष्य आकृति का चित्रण प्रागैतिहासिक काल से इन चित्रों में होता चला आ रहा है। यहाँ इतने प्रकार के आकारों का चित्रण मिलता है जिसका सम्पूर्ण वर्णन नहीं किया जा सकता। ये मांडने स्त्रियों की कल्पना शक्ति का अद्वितीय उदाहरण हैं।[4]

कुछ प्रमुख राजस्थानी मांडने

पगल्या- पगल्या का अर्थ है चरणचिन्ह, प्रमुख रूप से ये चरणचिन्ह घर में धन और वैभव की देवी माँ लक्ष्मी और काली माता की उपस्तिथि के सूचक हैं, ये मांडने मुख्यतः दिवाली के अवसर पर बनाए जाते हैं, किन्तु अन्य अवसरों पर भी इनका निर्माण किया जाता है। वर्तमान में केवल सजावट के प्रयोजन से इनका स्वरूप बदलकर अतिथियों के स्वागत-सत्कार हेतु इनका निर्माण किया जाता है। कभी-कभी इसे अन्य आकृति के साथ संयुक्त करके भी बनाया जाता है, जैसे- बीजणी का पगल्या, सांकल का पगल्या, सोलह बीजणी का पगल्या, इत्यादि। पगल्या मांडने का निर्माण करने वाले की कलात्मक अभिव्यक्ति का उत्कृष्टतम नमूना है। यह त्रिकोणीय आकृति में ऊपर की ओर बढ़ता हुआ बनाया जाता है। इस मांडणें के प्रारम्भ में पांच अथवा तीन उल्टी त्रिभुजीय आकृतियाँ आधार-स्वरुप बनाई जाती हैं। इस मांडने की आकृति किसी राजा के ताज के सदृश्य प्रतीत होती है। जैसे-जैसे मांडने के आकार को बढ़ाया जाता है चरण-चिन्ह कम दृश्यमान होते जाते हैं और अन्य अलंकरण अधिक। मुख्यतः पगल्या के मांडने का निर्माण घर में सुख और समृद्धि के आमंत्रण हेतु ही किया जाता है।

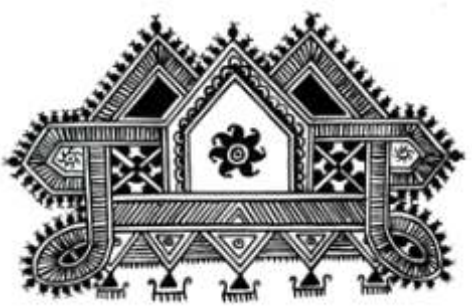

चित्र संख्या-1 सांकल का पगल्या

स्वस्तिक- इसके हेतु साधारणतया लोक-भाषा में सातिया अथवा साथिया शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह एक मांगलिक प्रतीक है, अतः इसका निर्माण प्रत्येक धार्मिक आयोजन में किया जाता है। इसका

आकार बहुत ही सरल होता है। इसके स्वरुप को बौद्ध, जैन, वैदिक इत्यादि सभी धर्मो द्वारा स्वीकार किया गया है। इसे सूर्य एवं सभी दिशाओं का प्रतीक माना जाता है, कहीं–कहीं इसे चारों कालों, वर्णो अथवा चारों आश्रमों का प्रतीक भी माना जाता है। हिन्दू धर्म में समस्त रीति–रिवाजों का प्रारम्भ सातिये का निर्माण करके ही किया जाता है। घर में कोई भी नई वस्तु या वाहन इत्यादि लाने पर सर्वप्रथम उस पर सातिया बनाया जाता है, इसके पश्चात् ही उसका उपयोग किया जाता है, ताकि वह वस्तु या वाहन शुभ फलदाई और बाधा व हानि रहित हो जाए। बहुत से मांडनों में अलंकरण स्वरुप भी सातिये का जाल बनाकर अथवा किनारे पर इसकी पुनरावृत्ति करके इसका प्रयोग किया जाता है।

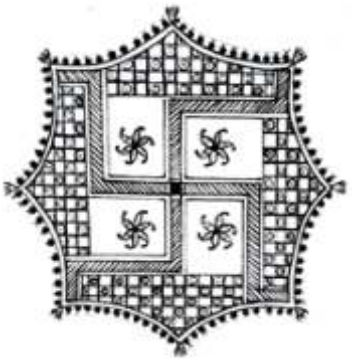

चित्र संख्या–2 सातिया का चौक

टपकी मांडणे– बिन्दु को लोक–भाषा में टपकी कहा जाता है। खड़िया अथवा गेरू से मांडने की सजावट हेतु इनका निर्माण किया जाता है तथा मांडने के आधार स्वरुप व आरम्भिक रेखांकन के लिए भी इन बिन्दुओं को आड़ी व खड़ी पंक्ति में लगाया जाता है और इन्हें जोड़ कर विविध आकार बनाए जाते हैं।

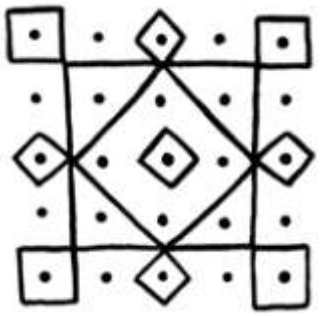

चित्र संख्या–3 टपकी मांडणा

रथ एवं बैलगाड़ी– रथ व बैलगाड़ी की आकृतियों के आधार पर ही इनके अलंकारिक अभिप्राय बनाए गए हैं। इन्हें मुख्यतः अतिथियों के आगमन पर बनाया जाता।

चित्र संख्या–4 रथ

चित्र संख्या–5 बैलगाड़ी

पान– पान की आकृति का मांडणा शुभ–मांगलिक अवसरों पर निर्मित किया जाता है।

चित्र संख्या–6 पान

गमला– पुष्पों वाले गमले का अंकन महमानों के आगमन पर स्वागत–सत्कार हेतु किया जाता है।

चित्र संख्या–7 गमला

बीजणी– राजस्थान की लोक–भाषा में हाथ के पंखे को बीजणी कहा जाता है, इस प्रकार के मांडने मुख्यतः ग्रीष्म ऋतू में निर्मित किये जाते हैं।

चौक मांडणे– राजस्थान में शुभ–मांगलिक अवसरों पर तथा महमानों के आने पर ये चौक मांडने बनाए जाते हैं। इनका निर्माण करने वाला अपनी कल्पना एवं आयोजन के अवसर के अनुरूप इनकी रचना करता है।

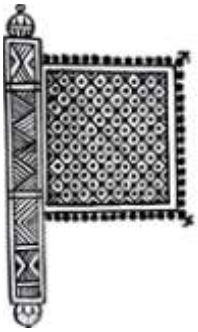

चित्र संख्या–8 बीजणी

चित्र संख्या–9 चौक

चित्र संख्या–10 चौक

चित्र संख्या–11 चौपड़

चौपड़– चौपड़ एक लोक–मनोरंजन हेतु खेला जाने वाला खेल है, जिसमें पासों की आवश्यकता होती है। इसी की आकृति को आधार बना कर ये मांडणे निर्मित किये जाते हैं।[5]

विविध त्यौहारों, रीति–रिवाजों और ऋतुओं से सम्बन्धित मांडणे

राजस्थान में किसी भी त्यौहार अथवा मांगलिक अवसर की शुरुआत स्त्रियों द्वारा घर में मांडने बना कर की जाती है,[6] "आंगलियां डूबसी जद आसी त्यौहार" ये पंक्तियां इसी वक्तव्य को दर्शाती हैं। दीपावली के अवसर पर मुख्यतः बनाए जाने वाले मांडने हैं– डाबा का जोड़, पगल्या, खड़ताल, साटया का जोड़, बीजणी का पगल्या, रथ, डमरू, पान, हीड़, चौक, कमल का फूल, दीवटा, इत्यादि। दिवाली पर ये मांडने कम या अधिक प्रत्येक घर के आँगन में बनाए जाते हैं। इन मांडनों के अलावा दीवारों पर भी मांडने बनाए जाते हैं, इनमें मुख्यतः कुंवल्या, कलश, मोर–मोरड़ी, सुआ, चौपड़, सेवरा, गमला, इत्यादि मांडने निर्मित किये हैं। होली के त्यौहार पर मुख्यतः बनाए जाने वाले मांडने हैं– होली का डंडा एवं होली का चंग। रक्षाबंधन के अवसर पर सरवण का मांडना, श्रावणी तीज के अवसर पर लहरिया, चौक, चूनडी, पान, घेवर इत्यादि मांडने, मकर संक्रांति के अवसर पर सक्रांत का कुंडा, गणगौर पर्व पर गौर का वेसणा, इत्यादि मांडने बनाए जाते हैं। बड़ पूजनी अमावस्या के अवसर पर बड़ के वृक्ष की आकृति पर आधारित मांडने का निर्माण किया जाता।

शिशु–जन्म के रीति–रिवाजों में बनाए जाने वाले प्रमुख मांडने हैं– अठमासा को चौक, सूरज का चौक, सातिया, सूर्य–चन्द्रमा, इत्यादि। विवाह–संस्कार के अवसर पर सिंहासन का चौक, बीजणी का चौक, बिंदायक को ओवारो, गलीचा, रथ, बैलगाडी, बंदनवार, आदि मांडने मुख्यतः निर्मित किये जाते हैं।

मौसम पर आधारित मांडणों में गोल अथवा चौकोर चौक में उस मौसम विशेष से सम्बन्धित पुष्पों, पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों व उस समय प्रयुक्त होने वाले उपकरणों के अलंकरण निर्मित किये जाते हैं, यथा–ग्रीष्म ऋतू में बीजणी, बारिश में लहरिया के अलंकरण, इत्यादि।

कलात्मक तत्व

मांडणों का स्वयं का कला–शास्त्र है, सर्वप्रथम छोटी आकृतियों से इनका प्रारम्भ किया जाता है और अन्तराल के अनुरुप आकार बना कर इन्हें बढ़ाते जाते हैं और इस प्रकार एक बड़ा संयोजन बना लिया जाता है। सरलीकृत आकृतियों को मुख्य आकृति के चारों ओर बनाते जाते हैं, इनके निर्माण का प्रमुख कारण केंद्रीय आकृति को प्रभाविता प्रदान करना, उसे सुन्दर बनाना एवं रिक्त अन्तराल को भरना है। ये अलंकरण भिन्न–भिन्न नामों से जाने जाते हैं, इन्हें ये नाम इनमें प्रयुक्त आकृतियों के आधार पर दिए गए हैं, जैसे– फुलड़ा–फुलड़ी।

इन अलंकरणों के मुख्यतः तीन वर्ग किये जा सकते हैं–

प्रथम, वे अलंकरण जो मांडनों की अन्दर की आकृतियों में भरे जाते हैं अथवा किनारे पर बनाए जाकर आकृति की सुन्दरता को बढ़ाते हैं।

द्वितीय, वे अलंकरण जो मांडने के आकार में वृद्धि करने हेतु प्रयुक्त होते हैं, किन्तु उनका स्वतंत्र अस्तित्व भी होता है।

तृतीय, वे अलंकरण जो मांडने को आकार देने के साथ ही साथ उसे विस्तार भी प्रदान करते हैं।

भरावन के कुछ अलंकरण मांडने के किनारों में प्रयुक्त

किये जाते हैं और कुछ रेखा इत्यादि के अलंकरण मांडनों की खाली जगह को भरने हेतु प्रयोग होते हैं। चोया या चोगा, झूमरा और लड्डू इत्यादि कुछ परम्परागत अलंकरणों के नाम हैं जो मांडनों के बाहरी किनारों पर बनाए जाते हैं। इन अलंकरणों के द्वारा आकृति की बाहर की रेखा की कठोरता को समाप्त कर उन्हें कोमल बनाने एवं उनमें लयात्मक प्रवाह लाने का कार्य किया जाता है। लड्डू और हरड़े के अलंकरणों की आकृति इन वस्तुओं से ही प्रेरित होती है, इनका आकार अंडाकार अथवा अर्धवृत्ताकार होता है, इनका निर्माण किसी गोल मांडने की बाहरी रेखा पर किया जाता है, जिससे की उसकी सुन्दरता में अभिवृद्धि के साथ उसकी कठोरता और एकरसता को समाप्त किया जा सके। कुछ छोटी-छोटी एवं प्रथक अलंकारिक आकृतियाँ भी निर्मित की जाती हैं, जिनका प्रयोग आवश्यकता अनुसार किसी भी स्थान पर कर दिया जाता है, इनकी पुनरावृत्ति द्वारा मांडने में प्रवाह तथा सन्तुल उत्पन्न किया जाता है। इनमें पुष्पों वाले समस्त अलंकरण आते हैं। इन छोटे अलंकरणों के कुछ उदाहरण हैं- चौकडी, सातिया, गौ का खुर, हटड़ी बावड़ी, खंड, कटार, कुवल्या, हीड़ एवं दीवटा इत्यादि, इनका निर्माण मांडने को विस्तार देने के साथ-साथ स्वतंत्र रूप से छोटे मांडने की तरह भी किया जाता है। कुवल्या मांडने का निर्माण घर की चौखट की साज-सज्जा और दीवटा मांडने का निर्माण दिया रखने के आले को सुसज्जित करने हेतु किया जाता है, हीड़ एवं हटड़ी भी इसी प्रकार के स्वतंत्र अलंकरण हैं, जिनका प्रयोग मुख्य मांडने को विस्तार देने हेतु उसके चारों और किया जाता है। तृतीय श्रेणी में वे अलंकरण आते हैं जो मुख्य मांडने में सर्वथा प्रथक व स्वतंत्र स्थान लिए होते हैं, पूरक आकृति के रूप इनका प्रयोग बहुत कम किया जाता है, इनके कुछ उदाहरण हैं- पगल्या, श्रवण एवं गौर का वैसणा इत्यादि। जिस वस्तु पर आधारित अलंकारिक आकृति मांडनों में बनाई जाती है, कभी उसकी वास्तविक रूप-आकृति को केन्द्र में रख कर आकृति-संयोजन किया जाता है, तो कभी उसके सरलीकृत रूप का अंकन किया जाता है।

मांडने मुख्यतः चार ज्यामितीय आकारों पर आधारित होते हैं-

सामान्य वर्गाकार- इसमें एक छोटे वर्ग के चारों और चार समान आकार के वर्गो का संयोजन किया जाता है। इस प्रकार के कुछ चौक के मांडने वर्ग, वृत्त और त्रिभुजाकार आकृतियों के समायोजन से भी निर्मित होते हैं।

वर्गाकार- इस दूसरे प्रकार के चौक के मांडने में एक छोटे वर्ग के चारों ओर अर्धवृत्ताकार आकृतियाँ संयोजित की जाती है एवं इन आकृतियों के चारों ओर त्रिभुज बनाकर इन्हें अष्टभुजाओं द्वारा जोड़ा जाता है। इस प्रकार के चौक के मांडने ढूंढाड क्षेत्र में होली के त्यौहार पर मुख्यतः निर्मित होते हैं।

अनियमित षटकोण- ढूंढाड प्रदेश में चौक के अन्य प्रकार के मांडने भी प्रचलित हैं, बीच में दो वर्ग बना कर दो अनियमित षटकोणीय आकृतियाँ इस प्रकार निर्मित की जाती हैं की सम्पूर्ण मांडना 16 कोणों का बन जाता है।

वृत्ताकार- हाडौती प्रदेश में चौक व्रत के आकार में मुख्यतः निर्मित किया जाता है। धागे की सहायता से आँगन में इसका निर्माण महिलाओं द्वारा किया जाता है। ज्यामितीय आकारों की सहायता से पहले इस गोल चौक के मांडने का संयोजन करते हैं, तत्पश्चात भरत के अलंकरणों से रिक्त स्थानों को भर कर मांडने को पूर्ण किया जाता है। वृत्त अनन्त अर्थात् अन्त-हीनता का प्रतीक माना जाता है।[7]

टोंक व सवाईमाधोपुर के आस-पास भित्ति पर बनाए जाने वाले पशु-पक्षियों को उड़ते हुए क्षैतिजीय आकार में ही नहीं निर्मित किया गया है, अपितु वे लम्बवत खड़े हुए भी अंकित हुए हैं। पशुओं के मुख सम्मुख मुद्रा में निर्मित किए गए हैं। जिस प्रकार इन मांडनों में बिन्दुओं और रेखाओं का प्रयोग हुआ है वह एतिहासिक आस्ट्रेलियाइ कला के नजदीक है। इन मांडनों में शरीर पार्श्वमुद्रा में है जबकि चेहरा सम्मुख मुद्रा में, इस प्रकार की आकृतियाँ हमें प्राचीन मिश्र की कला में देखने को मिलती है। इन मांडनों में चहरे की आकृति अगर झुकी हुई या तिरछी बनी हो तो भी आखों को पूरा निर्मित किया जाता है। सिर सम्पूर्ण मानव-शरीर की समकोणीय स्थिति में निर्मित किया जाता है। शरीर की आकृति में किंचित कठोरता होने पर भी मुख-मुद्रा में शांति और स्थिरता प्रदर्शित होती है और चेहरा थोडा ऊपर की ओर उठा हुआ निर्मित किया जाता है। मिस्त्र की कला में भी इसी प्रकार की मुद्राएं तथा आकृतियाँ निर्मित हुई हैं, जिनमें आकृति का मुख और पैर पार्श्वमुद्रा में और शेष शरीर सम्मुख मुद्रा में चित्रित हुआ है।[8]

कला का यह स्वरुप पूर्णतया लोक–सामाज व संस्कृति से जुड़ा है, यह सब पहले से ही निर्धारित होता है की कौनसा मांडना, किस समय पर, कहाँ और कैसे बनाया जाएगा। प्रत्येक मांडने का एक प्रतीकात्मक अर्थ होता है, सब कुछ पूर्व–निर्धारित होते हुए भी महिलाऐं जब मांडना बनाती है तो रेखा, रूप, लय–प्रवाह तथा संयोजन में भिन्नता आ जाती है, जो की उन महिलाओं के परिवेश, कलात्मक सोच एवं दक्षता पर निर्भर करता है।[9]

कला द्वारा मनुष्य अपनी भावनाओं, विचारों और अनुभवों को अधिक सरलता से अभिव्यक्त कर पाता है, यही कारण है की ग्रामीण, अल्प–शिक्षित अथवा अशिक्षित महिलाऐं भी इस मांडना कला के गोल, चौकोर और त्रिकोणीय आकारों में अपने भावों को सरलता एवं सुन्दरता से अभिव्यक्त कर देती हैं। हालाँकि इन चित्रों में छिपे संदेशों को समझने के लिए दर्शक को इनके प्रतीकात्मक अर्थ की जानकारी होना आवश्यक है, उदाहरनार्थ–चौकोर आकृति खेत, मैदान, बैलगाड़ी, घर अथवा पशु या मनुष्य के धड की प्रतीक होती है, त्रिकोणीय आकृति वृक्ष की पत्तियों, पक्षियों तथा उनके पंखों को दर्शाती हैं।

मांडने बनाने की यह कला पुस्तकों अथवा शिक्षण–संस्थाओं द्वारा नहीं सिखाई जाती, यह हमारे घर और आंगन के परम्परागत और चिर–परिचित वातावरण में स्वतः बिना किसी प्रयास के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचरणशील होती है, लेकिन इसके पश्चात् भी अनायास ही दृश्य कला के संयोजनात्मक एवं कलात्मक तत्वों का समावेश इसमें हो गया है। प्रभाविता, प्रवाह, प्रमाण, सहयोग, सामंजस्य, संतुलन, इत्यादि संयोजन के तत्वों का समावेश मांडनों की प्रत्येक आकृति व अलंकरण में स्पष्ट दिखाई देता है, रेखा,रूप, वर्ण, तान, पोत, अन्तराल, इत्यादि कला तत्वों का स्वाभाविक व सटीक प्रयोग भी इनमें देखा जा सकता है।[10] हालांकि सजग रूप से लोक कलाकार इस हेतु प्रयास नहीं करता क्योंकि सभी लोक व जनजातीय कलाओं की प्रमुख विशेषता इनकी सरलता, सहजता व सम्प्रेषणीयता है। मुख्यतः मांडने भी इनका निर्माण करने वाले लोक–कलाकारों के भावों–विचारों एवं सौन्दर्य–प्रियता की सहज, सरल एवं प्रभावी अभ्व्यक्ति है।[11] मांडनों की ये सुन्दर और निराली आकृतियाँ इनका निर्माण करने वाले कलाकारों मुख्यतः महिलाओं के स्वाभाविक कलात्मक बोध को अनायास ही प्रदर्शित करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डा. हृदय गुप्त– देशज कला, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2018, पृ. 3।*
2. *चंद्रमणि सिंह– दादी मांडया मांडणा, कंचन कोठारी, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2016, पृ.10।*
3. *आर. ए. अग्रवाल– भारतीय चित्रकला का विवेचन, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2007, पृ. 221।*
4. *कंचन कोठारी– दादी मांडया मांडणा, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2016, पृ. 28।*
5. *डा. हृदय गुप्त– देशज कला, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2018, पृ. 9।*
6. *अविनाश बहादुर वर्मा– कला एवं तकनीक, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 1998, पृ. 54।*
7. *कंचन कोठारी–दादी मांडया मांडणा, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2016, पृ. 41।*
8. *डा. मदन मीणा– दादी मांडया मांडणा, कंचन कोठारी, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2016 पृ. 15।*
9. *अशोक– कला सौंदर्य और समीक्षा शास्त्र, संजय पब्लिकेशन्स, आगरा, 1999, पृ. 160।*
10. *एस. के. शर्मा, आर. ए. अग्रवाल– रूपप्रद कला के मूलाधार, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1995, पृ. 83।*
11. *र. वि. साखलकर– कला कोश, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1998, पृ. 224।*
12. *गुलाब कोठारी– राजस्थान की शिल्प कला, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2016, पृ. 7।*
13. *भंवरलाल शर्मा– दृश्यांकन के मूलाधार, अंकुर बुक डिपो, किशनगढ़, 1996, पृ. 74।*

जलविभाजन (वाटरशेड) के माध्यम से बंजर भूमि प्रबन्धन

विष्णु कुमार सोनी
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

वर्तमान शोध पत्र उदयपुरवाटी तहसील में सतत विकास के लिए वाटरशेड (जलविभाजन) माध्यम से बंजर भूमि प्रबन्धन के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण अपनाने में महत्वपूर्ण मुद्दों से सम्बन्धित हैं यह अरावली पर्वतमाला की विशिष्टताओं और किसानों के सशक्तिकरण की प्रक्रियाओं से सम्बन्धित है। इसलिए बंजर भूमि प्रबंधन की एक व्यापक रणनीति वैज्ञानिक ढ़ांचे के भीतर समाज और आवास दोनों की समग्र और अंतः विषय समझ पर आधारित होनी चाहिए। बंजर भूमि की और अधिक गिरावट को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न उपाय किये जाने है।

संकेताक्षर : *बंजर भूमि का प्रबन्धन, ग्रामीण विकास, सरकारी एजेन्सिया, अरावली पर्वत।*

पिछले दो से तीन दशकों के दौरान बंजर भूमि को विकसित करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा कोशिश की गई है। भूमि सुधार और ग्रामीण विकास कार्यक्रम आम तौर पर बंजर भूमि या सीमांत भूमि को सुधारने के लिए लक्षित नहीं थे, इसलिए इसमें सुधार नहीं दिखा। दूसरी और मिट्टी का कटाव और जल अपवाह के कारण भूमि अवकर्षण की गति तीव्र हो गई है। यह शोध पत्र बंजर भूमि प्रबन्धन के वर्तमान दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि का पता लगाता है, तथा इसके सुधार के लिए सुझाव देता है।

बंजर भूमि वर्गीकरण का पूर्ववर्ती विश्लेषण हालांकी विभिन्न प्राकृतिक और मानव निर्मित कारणों से समय के साथ भूमि अवकर्षण या उत्पादकता में कमी के बारे में कुछ नहीं कहता है। गांव की भूमि आम तौर पर ''सार्वजनिक त्रासदी'' की घटना का शिकार रही है। जहां सभी के द्वारा इसका शोषण किया जाता है। सरकार के द्वारा भी इस बंजर भूमि के प्रबन्धन के लिये कोई विशेष प्रयास नहीं किया गया। ना तो कोई धनराशि आवंटित की गई और न ही किसी विशिष्ट सरकारी विभाग को घास और चारागाह विकास के लिए जिम्मेदारी दी गई। इसलिए 1980 के दशक में लेागों की जरूरतों को पूरा करने के लिए तथा इन जमीनेां को खराब होने से बचाने के लिए सामाजिक वानिकी कार्यक्रम शुरू किया गया। इसके लिए 1985 में ''राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड'' की स्थापना की गयी।

सरकार द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों का मुख्य जोर मृदा संरक्षण, भूमि विकास, चारागाह विकास तथा सम्पूर्ण जल संभर के लिए जल संसाधन संरक्षण से सम्बन्धित गतिविधियों पर होना चाहिए, ना कि केवल बंजर भूमि पर वृक्षारोपण कार्यक्रम के रूप में।

इस शोध पत्र का उद्देश्य उदयपुरवाटी तहसील में बंजर भूमि के विकास के लिए जलविभाजन (वाटरशेड) प्रबन्धन के प्रभाव का अध्ययन करना है। वाटरशेड में तहसील की सभी ढलान वाली तथा वर्षा आधारित भूमि शामिल है। इसलिए अरावली की पहाड़ियां (उदयपुरवाटी व गुढ़ा क्षेत्रों की पहाडिंया) सबसे नाजुक क्षेत्र है, तथा प्रबन्धन करने में कठिन हैं। वर्तमान पर्यावरण और सतत विकास के लिए पर्यावरण के अनुकुल कार्यक्रमों का आयोजन करना जटिल एवं कठिन है।

सामाजिक आर्थिक मुद्दे – अध्ययन क्षेत्र में अभी भी गांवों मे ंप्राथमिक व्यवसाय कृषि के बाद पशुपालन है। आरक्षित वन क्षेत्र के अंदर स्थित गांव आज भी अपनी आजीविका लघु वन उपज से अर्जित करते है। जोहड़ो के विकास से कृषि क्षेत्रों के सामाजिक आर्थिक परिदृश्य पर प्रत्यक्ष प्रभाव डाला हैं। निर्माण के एक वर्ष के भीतर ही

गांवों में जोहड़ों को रिचार्ज कर दिया गया तथा पूरे वर्ष जलापूर्ति सुनिश्चित की जा सकी। पशुओं के लिए पानी और चारे की उपलब्धता में वृद्धि से ग्रामीण क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था में सुधार हुआ है। इसके अलावा खादान्न उत्पादन में वृद्धि की है। मृदा सरंक्षण में सुधार हुआ है, कुओं के पानी के स्तर में वृद्धि हुई है।

भूमिगत जल पर प्रभाव – जोहड़ निर्माण भूमिगत जल में सुधार में प्रमुख भूमिका निभाता है। यहां के ग्रामीण क्षेत्रों में जलस्तर में सुधार हुआ है। साथ ही सुखे कुंओं को पुनर्जिवित भी किया गया है। जलस्तर में वृद्धि जोहड़ से कुंए की दूरी, मिट्टी के प्रकार, तथा मृदा की नमी धारण करने की क्षमता और क्षेत्र में चट्टानों की सरंध्रता पर निर्भर करती है। कुओं का पुनर्भरण जोहड़ में रोके गये पानी की मात्रा पर भी निर्भर करता है।

कृषि उत्पादन पर प्रभाव – इस क्षेत्र में भूमिगत जलस्तर में सुधार एवं जोहड़ निर्माण से हाल ही में कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुई है। इस क्षेत्र के गांवों मे कृषि बंजर भूमि सबसे आम थी, जिसे या तो केवल रबी की फसल के लिए बंजर छोड़ दिया गया था। जोहड़ निर्माण व भूमिगत जल स्तर में वृद्धि से गेहूँ की उत्पादकता पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में हाल ही में किए गये एक अध्यन से पता चलता है कि इसकी उपज में वृद्धि हुई है। इस क्षेत्र में जोहड़ निर्माण से पहले बंजर भूमि पर मुश्किल से खेती की जाती थी। लेकिन वर्तमान में इस क्षेत्र की भूमि को उच्च फसल सघनता के साथ खेती के तहत लाया गया है। हालांकि अभी भी यहां खाद्यान फलस उत्पादन में ही वृद्धि हुई है। नकदी फसलों के उत्पादन में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है।

क्षैत्र के विकास के उपाय

1. **कृषि योग्य भूमि का उपचार–** गांवों में कृषि योग्य भूमि कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 65 प्रतिशत है। लेकिन इस भूमि की उत्पादकता बहुत कम है। इसलिए गांवों में विभिन्न कार्यक्रम चलाये जा रहे है। ढ़लान वाले क्षेत्रों में सम्मोच्य रेखीय जुताई की जा रही है। नलिकाओं द्वारा होने वाले कटाव पर नियंत्रण किया जा रहा है। ग्रामीणों के उत्साह को बढ़ाने के लिए फसल प्रदर्शन के लिए विभिन्न स्थलों का चयन किया गया है। कृषि वानिकी एवं शुष्क बागवानी को बढ़ावा दिया जा रहा है। इस क्षेत्र में जैविक खेती प्रणाली भी शुरू की गई है।

2. **गैर कृषि भूमि उपचार–** गैर कृषि योग्य भूमि यहां के कुल क्षेत्रफल का 28 प्रतिशत है। गांव की इन बंजर भूमि को विकसित करने के लिए विभिन्न तकनीकों का अनुमान लगाया गया है। इन क्षेत्रों में वनस्पति आवरण में वृद्धि की जा रही है। झाड़ियां तथा पेड़ लगाये गए है।

3. **पशुधन प्रबन्धन–** कृषि क्षेत्र को विकसित करने के लिए एक अन्य महत्वपूर्ण उपाय पशुधन संसाधन का प्रबन्धन करना है। इनमें शावक सांडों का बधियाकरण, प्राकृतिक प्रजनन, पशु उपचार शिविर, सूखा चारा उगाना आदि सम्मिलित है।

4. **प्रमुख फसले –** इस क्षेत्र में खरीफ में उगाई जाने वाली मुख्य फसलें, बाजरा, मूंग, मोठ, गंवार आदि है। इन फसलों की खेती या तो एकल फसल या मिश्रित फसल के रूप में की जाती है। रबी की फसल ऋतु में उगाई जाने वाली प्रमुख फसले सरसों, गेहूँ, चना तथा जौ हैं। यहां के किसान फल एवं सब्जियों का उत्पादन भी करते है।

सतत विकास के लिए बंजर भूमि का सुधार

अरावली की दीर्घकालीन स्थिरता को ध्यान में रखते हुये अध्ययन क्षेत्र में बंजर भूमि का पुनर्वास किया जाना चाहिए। कुछ उपायों को अपनाकर गंभीर से बहुत गंभीर रूप से अपरदित क्षेत्रों का ध्यान रखा जा सकता है। खेत की मेडबंदी तथा समतलीकरण, समोच्चरेखीय खेती, मानसून में अतिरिक्त वर्षा जल का भंडारण, शुष्क कृषि तथा उचित फसल चक्रण, उपायों से भूमि को स्थिर किया जा सकता है। तेजी से बढ़ने वाली चारा प्रजातियों जैसे पेनिसेटन पैडिकलेटम घास, कलिटोरिया और पेड़ों की प्रजातिया जैसे अकेशिया, ल्यूकेसिया ल्यूकोसेफला, पेसटोरल और सिलवी पेसटोरल सिसटम (जनरल ऑफ इंडियन सोसाइटी ऑफ रिमोट, सेसिंग, खण्ड 26, दिसम्बर 1998 पृष्ठ.167) के तहत अनुशंसित है।

वर्तमान में इन अत्यधिक अशांत भूमि को वर्तमान पीढ़ी द्वारा आगे की पीढ़ी द्वारा उपयोग के लिए पुनः प्राप्त करने की आवश्यकता है। इन क्षेत्रों के प्रभावी संरक्षण के लिए क्षेत्र में मिट्टी की विशेषताओं को परिभाषित करते हुये प्राथमिकता के आधार पर एक उचित सर्वेक्षण किया जाना चाहिए। बड़े गढ़ों को जलाशय और मछली के तालाब के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

1. परती भूमि का सुधार – परती भूमि आसानी से खेती के योग्य है, लेकिन कुछ बाधाओं के कारण खेती नहीं की जा रही है। यह पुनः निर्मित भूमि निश्चित रूप से इस क्षेत्र के सतत विकास के लिए अधिक खाघान्न, दलहन, तिलहन का उत्पादन करेगी। इस भूमि के उत्थान के लिए उचित प्रबन्धन एक अच्छा कार्य हैं जिसमें निम्न उपचारात्मक उपाय शामिल है–

1. मानसून से पूर्व ही भूमि की तैयारी और जुताई करना।
2. अगले चरण में खेत का विभाजन, समतलीकरण और ढ़लान के अनुसार बांध बनाना शामिल है, जिससे भूमि में नमी की मात्रा बढ़ जायेगी।
3. मिट्टी की जांच कराकर उसमें खाद की मात्रा का आकलन करना।
4. खरीफ के दौरान पहली जुताई में दलहन फसलों को प्राथमिकता दी जाये, जिससे मिट्टी की उत्पादकता में वृद्धि होती है।
5. इन उपायों को अपनाकर, सिंचाई सुविधाओं का विकास करके रबी की ऋतु में गेहूँ/सरसो/जौ की फसल लेने के बाद खरीफ दालों को उगाने की सुविधा प्रदान करना।

2. सांस्कृतिक रूप से बंजर भूमि का पुनरूद्धार– जैसा की पहले उल्लेख किया गया है, इस श्रेणी में विभिन्न प्रकार की बंजर भूमि शामिल है। जिसे अलग–अलग श्रेणी के लिए अलग–अलग सुधार विधि की आवश्यकता होती है। इसके सुधार के लिए निम्नलिखित उपचारात्मक उपायों को अपनाया जा सकता है–

1. खेती योग्य बंजर भूमि, जिसमें से अधिकांशत नमी की कमी के कारण अनुत्पादक रहती है, उसमे देशी बारहमासी घासों की स्थापना पर जोर दिया जाना चाहिए, जो लम्बे समय तक नमी को बनाये रख सकती है।
2. मिट्टी की उर्वरकता में सुधार करने के लिए फलीदार पौधों को उगाना चाहिए।
3. ये फलीदार पौधे बायोमास के पोषक तत्वों में सुधार करेंगे तथा राइजोबियम की सहजीवी क्रिया के माध्यम से मिट्टी की उत्पादकता में सुधार करेंगी।

निष्कर्ष – उदयपुरवाटी तहसील के अरावली क्षेत्र में बंजर भूमि के विश्लेषण के आधार पर इस स्तर पर निष्कर्ष निकालना सार्थक होगा की यहां के क्षेत्र में जनसंख्या, कृषि, उद्योग, शहरीकरण तथा जनजागरूकता की मांगो के दबाव में अरावली क्षेत्र के पर्यावरण प्रबन्धन की व्यवस्थित नीति के साथ सतत विकास आवश्यक है। पिछले कई वर्षो से भूमि अनुपात में लगातार गिरावट की प्रवृति देखी जा रही हैं तथा प्राकृतिक संसाधनों पर दबाब बढ़ता जा रहा है।

उदयपुरवाटी तहसील में भूमि तथा जल संसाधनों के खराब प्रबन्धन के साथ–साथ जनसंख्या का बढ़ता दबाव भी अरावली क्षेत्र के नाजुक वातावरण पर अत्यधिक दबाव डाल रहा है। इस तरह के अध्ययन में न केवल मौजूदा बंजर भूमि के स्थानिक और क्षेत्रीय वितरण का पता लगाने के बाद में वाटरशेड प्रबन्धन के माध्यम से यहां की भूमि के विकास के लिये सूक्ष्म स्तरीय जांच आवश्यक है।

ग्रामीण स्तर पर उदयपुरवाटी तहसील में बंजर भूमि की वर्तमान जांच स्थानिक वितरण के मूल्यांकन एवं विश्लेषण की दृष्टि से की गई है। इस सन्दर्भ में यह अध्ययन न केवल व्याख्यात्मक है अपितु प्रासंगिक भी है। इसलिए इस अध्ययन के तहत इस क्षेत्र में वाटरशेड प्रबन्धन की दृष्टि से बंजर भूमि के विकास का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अग्रवाल एन.एल. (1981) ''भारतीय कृषि का अर्थ तंत्र'', राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।*
2. *गुप्ता एन.एल. (1979) ''राजस्थान में कृषि का विकास'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।*
3. *गुर्जर आर. के. व जाट बी.सी. (2004) ''जल प्रबन्धन विज्ञान'', पेथंर प्रकाशन, जयपुर।*
4. *गुर्जर आर. के. व जाट बी.सी. (2006) ''संसाधन एवं पर्यावरण'', पंचशील प्रकाशन, जयपुर।*
5. *Bansal, P.C. (1977) "Agriculture Problems of India", The Geography, Vol. 27, Aligarh.*
6. *Bhatt, P.N. (Editor, 1979) "Watershade Management letureres delivered at short course held from 4 to 11 June at SWCRTI, Dehradun.*

झालावाड़ का शहरीकरण : कारण एवं चुनौतियाँ

डॉ. शिवानी स्वर्णकार
सहायक आचार्य, राजकीय मीरा बालिका महाविद्यालय, उदयपुर

भरत कुमार सोनी
सहायक आचार्य, राजकीय महिला महाविद्यालय, महेंद्रगढ़ (हरियाणा)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

इस प्रपत्र में झालावाड़ शहर में शहरीकरण के कारकों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। इसके माध्यम से शहरीकरण के विभिन्न आयामों का अध्ययन किया गया है। इस उद्देश्य के लिए झालावाड़ शहर की बढ़ती जनसंख्या के लिए शहरी आकर्षक तथा ग्रामीण प्रतिकर्षक कारकों का अध्ययन किया गया है। परिणाम बताते हैं कि पिछले दशक में तेजी से मजबूत होती परिवहन व्यवस्था, प्रशासन, शिक्षा, औद्योगिकीकरण, स्वास्थ्य सेवाओं, बढ़ते रोजगार और ग्रामीण से शहरी प्रवास के कारण झालावाड़ शहर में जनसंख्या बढ़ी है तथा शहरी संरचना भी बदल गई है, जो जारी है। कई विकासशील मेगा शहरों की तुलना में झालावाड़ में शहरीकरण अपेक्षाकृत धीमा तथा विलम्बित रहा है। फिलहाल झालावाड़ प्रवृत्तियों के अनुसार शहरीकरण की प्रक्रिया के पूर्व त्वरण चरण में है, कुछ सालों में इसका विकास तेज़ी से होने की पूर्ण सम्भावना है। यहां की राजनीतिकता भी इसके विकास की दर में परिवर्तन का एक बड़ा कारण बनी है। बढ़ता शहरीकरण कई मुद्दों को उठाता है, जो पर्यावरण पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव डाल सकते हैं। इस स्थिति में योजनाकारों, प्रबंधन, सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों के लिए प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग को अनुकूलित करने और पर्यावरण पर प्रभाव को कम करने के साथ-साथ विकास को समायोजित करने के लिए नीतियों को लागू करने के लिए शहरीकरण की निगरानी महत्वपूर्ण है।

सर्केताक्षर : *शहरीकरण, नगरीय फैलाव, शहरीकरण के कारक, शहरी विकास, शहरी नियोजन, झालावाड़।*

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार, शहरीकरण शब्द का सीधा-सा अर्थ है- ''किसी क्षेत्र को अधिक शहरी बनाने की प्रक्रिया।" ब्रिटानिका शब्दकोश के अनुसार ''शहरीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बड़ी संख्या में लोग स्थायी रूप से अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्रों में केंद्रित हो जाते हैं, शहरों का निर्माण करते हैं।" शहरीकरण पारंपरिक ग्रामीण समाजों से आधुनिक, औद्योगिक और शहरी समुदायों में सामाजिक परिवर्तन का एक रूप है। यह एक लंबे समय तक चलने वाली सतत प्रक्रिया है। यह शहरी इकाइयों में जनसंख्या का एक प्रगतिशील संकेंद्रण है (डेविस, 1965)। इसके परिणामस्वरूप शहरी क्षेत्रों का भौतिक विकास होता है। यह आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण और वैश्वीकरण से संबंधित एक अवधारणा है। हालांकि यह कोई आधुनिक घटना नहीं है। प्राचीन इतिहास में रोमन, ग्रीक, मिस्र और हड़प्पा सभ्यता अपने बड़े शहरों के लिए जानी जाती थी। हड़प्पा सभ्यता की विशिष्ट विशेषता नगर नियोजन है। साथ ही भारत के प्राचीन शहर जैसे- पटना, कन्नौज, वाराणसी, उज्जैन, मदुरै आदि आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गतिविधियों के केंद्र थे।

वर्तमान में 'शहरी' का अर्थ क्या है इसकी कोई सार्वभौमिक परिभाषा नहीं है। संयुक्त राष्ट्र राष्ट्रीय स्तर पर परिभाषित शहरी शेयरों के आधार पर आंकड़ों की रिपोर्ट करता है। हालाँकि समस्या यह है कि देश शहरीकरण की बहुत भिन्न परिभाषाएँ अपनाते हैं। न केवल शहरी बनाम ग्रामीण की सीमाएं भिन्न होती हैं, बल्कि उपयोग किए जाने वाले मीट्रिक के प्रकार भी भिन्न होते हैं। कुछ देश न्यूनतम जनसंख्या सीमा का उपयोग करते हैं, अन्य जनसंख्या घनत्व, बुनियादी ढांचे के विकास, रोजगार के प्रकार या केवल पूर्व-परिभाषित शहरों की जनसंख्या का उपयोग करते हैं।

वैश्विक शहरीकरण

सबसे अधिक शहरीकृत प्रदेशों में उत्तरी अमेरिका (शहरी आबादी, 2018– 82%), लैटिन अमेरिका और कैरिबियन (81%), यूरोप (74%) और ओशिनिया (68%) शामिल हैं। एशिया में शहरीकरण का स्तर अब लगभग 50% है। अफ्रीका ज्यादातर ग्रामीण आबादी रहती है, लेकिन 43% आबादी शहरी क्षेत्रों में रहती है।

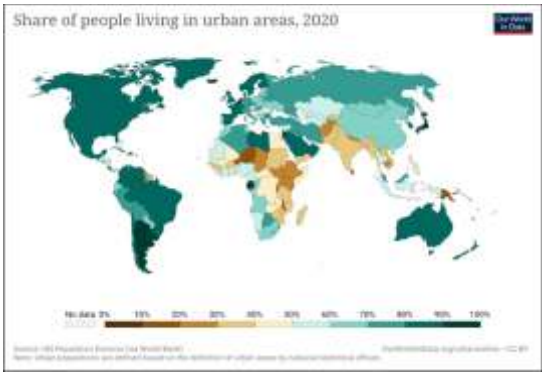

विश्व में शहरीकरण की संभावनाएँ

संयुक्त राष्ट्र के विभाग (संयुक्त राष्ट्र DESA) की 2018 की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया की शहरी आबादी का आकार में भविष्य और बढ़ जाएगा। ज्यादातर संकेन्द्रण बस कुछ ही देशों में होने की उम्मीद है। 2018 से 2050 के बीच भारत, चीन और नाइजीरिया दुनिया की शहरी जनसंख्या की अनुमानित वृद्धि दर के 35% के हकदार होंगे। 2050 तक के लिए यह अनुमान है कि भारत में 416 मिलियन शहरी निवासी जुड़ जाएंगे, जबकि 2011 में भारत की जनसंख्या का 31.1% यानी 1210 मिलियन शहरी आबादी के रूप में है।

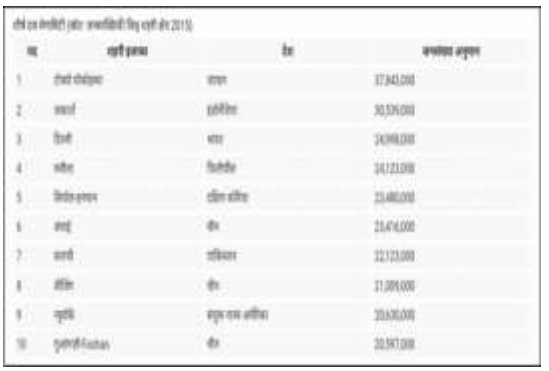

भारत में शहरीकरण का राज्यवार परिदृश्य

देश की शहरी आबादी का 75% से अधिक 10 राज्यों में है– महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, राजस्थान और केरल। महाराष्ट्र 50.8 मिलियन व्यक्तियों (देश की कुल शहरी आबादी का 13.5%) के साथ सबसे आगे है। उत्तर प्रदेश में लगभग 44.4 मिलियन शहरी आबादी है, इसके बाद तमिलनाडु में 34.9 मिलियन है।

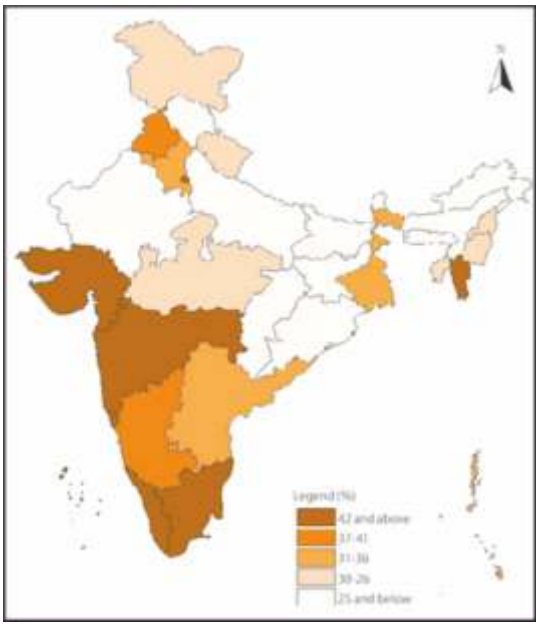

उच्च स्कोर वाले राज्य– 62.2% शहरी आबादी के साथ गोवा सबसे अधिक शहरीकृत राज्य है। तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र और गुजरात ने 40% से अधिक शहरी आबादी प्राप्त कर ली है। पूर्वोत्तर राज्यों में मिजोरम 51.5% शहरी आबादी के साथ सबसे अधिक शहरीकृत है।

कम स्कोर वाले राज्य– हिमाचल प्रदेश, बिहार, ओडिशा, असम और उत्तर प्रदेश में शहरीकरण का स्तर राष्ट्रीय औसत से कम है।

केंद्र शासित प्रदेश– दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र और चंडीगढ़ क्रमशः 97.5% और 97.25% शहरी आबादी के साथ केन्द्रशासित प्रदेशों में सर्वाधिक शहरी आबादी वाले हैं।

राजस्थान में शहरीकरण

भारत में शहरीकरण अब दुनिया के बाकी हिस्सों के साथ तेजी से बढ़ रहा है। राजस्थान में शहरीकरण की

प्रवृत्ति भी राष्ट्रीय स्तर की तरह ही बढ़ रही है। राज्य की शहरी आबादी 16.28 प्रतिशत (1961) से बढ़कर 23.39 प्रतिशत (2001) और बाद में 2011 में 24.87 प्रतिशत हो गई।

Spatial Variation in the Levels of Urbanization (Rajasthan)

S. No.	Level of Urbanisation (in %)	Districts
1	More than 40 per cent	Kota, Jaipur and Ajmer
2	24.1 per cent to 40 per cent	Ganaganagar, Churu, Bikaner and Jodhpur
3	16.1 per cent to 24.0 percent	Jhalawar, Alwar, Chittaurgarh, Bharatpur, Hanumangarh, Udaipur, SawaiMadhopur, Bundi, Sirohi, Dhaulpur, Baran, Nagaur, Bhilwara, Tonk, Pali, Jhunjhunu and Sikar
4	8.4 per cent to 16.0 per cent	Dausa, Jaisalmer, Karauli and Rajsamand
5	8.3 per cent and below	Jalore, Pratapgarh, Banswara, Barmer and Dungarpur

Source : Census 2011

1 लाख और उससे अधिक की आबादी वाले शहर/शहरी समूह में जयपुर 30.46 लाख की आबादी के साथ जनसंख्या के आकार के मामले में राजस्थान का सबसे बड़ा शहर है। इसके बाद जोधपुर, कोटा और बीकानेर हैं। जिला मुख्यालयों में बांसवाड़ा शहर की जनसंख्या का आकार राज्य में सबसे कम है।

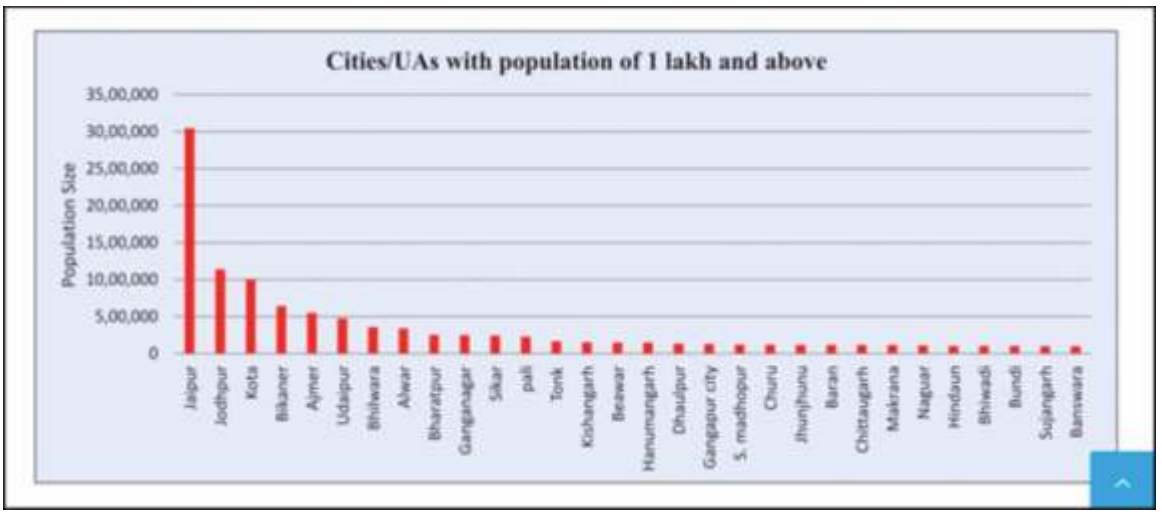

शहरीकरण में स्थानिक भिन्नता को देखें तो कोटा (60.31 प्रतिशत), जयपुर (52.40 प्रतिशत), अजमेर (40.08 प्रतिशत), जोधपुर (34.30 प्रतिशत) और बीकानेर (33.86 प्रतिशत) प्रमुख शहरी जिले हैं, जबकि जालोर (8.30 प्रतिशत), प्रतापगढ़ (8.27 प्रतिशत), बांसवाड़ा (7.10 प्रतिशत) और डूंगरपुर (6.39 प्रतिशत) सबसे कम शहरीकृत जिले हैं।

झालावाड़ जिले में 2011 की जनगणना के अनुसार 14,11,129 कुल जनसंख्या है, जिसमें से 2,29,291 अर्थात 16.2% आबादी शहरी है। झालावाड़ शहर में जनगणना 1991 के अनुसार जनसंख्या 38,671 थी, जो 2001 में बढ़कर 48,054 तथा 2011 में 66,919 हो गई है।

अध्ययन क्षेत्र

झालावाड़ राजस्थान का एक शहर है, जो झालावाड़ जिले का प्रशासनिक केंद्र है। यह हाड़ौती प्रदेश का एक ऐतिहासिक नगर रहा है। शहर का प्राचीन नाम बृजनगर था। झालावाड़ जिला 8 अप्रैल 1838 को कोटा राज्य से स्वतंत्र हुआ और एक नवीन रियासत झालावाड़ राज्य के रूप में स्थापित हुआ। इसकी स्थापना उम्मेदपुरा छावनी के रूप में कोटा के दीवान झाला जालिम सिंह ने की थी। इन्हीं के पौत्र झाला मदन सिंह के कोटा दीवान के पद पर रहते झालावाड़ कोटा से विलग हो स्वतंत्र रियासत बना। झालावाड़ के

प्रथम शासक झाला मदन सिंह बने। इनके पश्चात क्रमशः पृथ्वी सिंह, जालिम सिंह द्वित्तीय, भवानी सिंह, राजेन्द्र सिंह और हरिश्चंद्र झाला यहां के शासक रहे। झालावाड़ ब्रिटिश भारत की अंतिम रियासत थी। इसके बाद किसी और राज्य का निर्माण नहीं हुआ। अप्रैल,1949 को 'संयुक्त राजस्थान' बनने के बाद अक्टूबर, 1949 में झालावाड़ को आधुनिक भारत का जिला घोषित कर दिया गया। 15 जनवरी 1987 को झालावाड़ कोटा संभाग का हिस्सा बना।

शहर की भौगोलिक स्थिति 24-56° N से 24-60° N तथा 76-13° E से 76-18° E अक्षांशों के मध्य है। शहर का क्षेत्रफल 15.23 km^2 (5.88 mi^2) है। शहर अपने सम्भाग मुख्यालय से 90 km तथा राज्य की राजधानी जयपुर से 340 km दूर है। यह इन दोनों प्रमुख शहरों से राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 52 द्वारा जुड़ा हुआ है। यह एक नगर परिषदयुक्त शहर है, जिसमे अंतिम जनगणना के अनुरूप 13,595 घर तथा 30 वार्ड थे, जबकि वर्तमान में शहर में 45 वार्ड हैं। शहर की जनसंख्या 2001 में 48,054 थी, जो 2011 में 66,919 हो गयी और इस हिसाब से शहर दूसरी श्रेणी के नगरों में शामिल है। यहां साक्षरता 83.01% तथा लिंगानुपात 925 है।

Name	Status	District	Population Census 1991-03-01	Population Census 2001-03-01	Population Census 2011-03-01
Aklera	Municipality	Jhalawar	14,490	18,172	26,240
Bakani	Census Town	Jhalawar	...	7,938	9,812
Bhawani Mandi	Municipality	Jhalawar	29,740	35,695	42,283
Jhalawar	Municipality	Jhalawar	38,671	48,054	66,919
Jhalrapatan	Municipality	Jhalawar	23,067	30,103	37,506
Khanpur	Census Town	Jhalawar	...	13,061	13,848
Kolvi (Mandi Rajendrapur)	Census Town	Jhalawar	...	7,867	8,584
Manoharthana	Census Town	Jhalawar	7,161	9,228	11,292
Pirawa	Municipality	Jhalawar	9,594	11,185	12,807

विश्लेषण

झालावाड़ शहर के शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि, विकास तथा ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों को आकर्षित करने हेतु कई छोटे–बड़े कारक जिम्मेदार हो सकते हैं, परंतु पूर्णतः निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले हमें विभिन्न तथ्यों को समझना होगा जो निम्न प्रकार हैं–

पर्यटन

झालावाड़ में कई ऐतिहासिक स्थल और स्थान हैं जो प्राकृतिक सुंदरता से भरपूर हैं। ये स्थल पुरातत्व और इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। झालावाड़ राजस्थान में एक प्रमुख पर्यटन केंद्र के रूप में है, जो पर्यटकों को प्राकृतिक दृश्यों और ऐतिहासिक रोमांच की अधिकता प्रदान कर सकता है।

शहर से 11 किलोमीटर दूर गागरोन का किला जो राजस्थान का एक जलदुर्ग है। जिसे 2013 में यूनेस्को ने विश्व धरोहर में शामिल किया था। यह कालीसिंध तथा आहू नदी के किनारे पर बना हुआ है, जो कई सालों से बिना नींव के खड़ा है। यह एक चट्टान पर बना हुआ है। किले के बाहर ही सूफी संत मिट्ठे महावली की दरगाह है। जबकि दूसरे किनारे सन्त पीपा की स्थली है।

झालावाड़ के गढ़ पैलेस में ऐतिहासिक संग्रहालय निर्मित है। गढ़ पैलेस का एक असंगत लेकिन आकर्षक हिस्सा भवानी नाट्य शाला थियेटर है, जिसे महाराजा ने अपने यूरोपीय दौरों पर देखे गए भव्य ओपेरा हाउसों पर बनाया था।

शहर से 7 किमी दक्षिण में झालरापाटन की पुरानी दीवारों वाले शहर में 11वीं शताब्दी के मंदिरों का एक शानदार समूह है। झालरापाटन शहर में राजस्थान का प्रसिद्ध सूर्य मंदिर स्थित है तथा सैकड़ों वर्ष पुराना प्राचीन शिव मंदिर भी पवित्र चंद्रभागा नदी के किनारे स्थित है। कार्तिक पूर्णिमा को इस चंद्रभागा नदी के किनारे विशाल पशु मेले की शुरुआत होती है जो दो–ढाई महीने तक चलता रहता है इस समय यहां पर विदेशी पर्यटक भी आते हैं।

झालरापाटन में ही हर्बल गार्डन में आयुर्वेदिक, हर्बल और औषधीय पौधों की विस्तृत विविधता है। यहां पौधों की कुछ दुर्लभ तथा लुप्तप्राय प्रजातियों को भी लोग देख सकते हैं।

झालरापाटन के ही समीप मुंडिया खेड़ा गांव में एक तालाब है, जहां सर्दियों में विदेशी पक्षी अपना बसेरा करने आते हैं तथा सर्दियों में यह तालाब पक्षियों का अजायबघर बन जाता है। इस चीज को देखते हुए प्रशासन ने बर्ड फेस्टिवल की शुरुआत की तथा कुछ जाने–माने पक्षी विशेषज्ञों और जंतु प्रेमियों को उत्सव में आमंत्रित भी किया, जिससे झालावाड़ इन लोगों में भी प्रसिद्ध हुआ।

झालरापाटन शहर में ही प्रसिद्ध नौलखा किला तथा साइंस पार्क स्थित हैं।

झालावाड़ शहर से लगभग 120 किलोमीटर दूर कोलवी की प्राचीन बौद्ध गुफाएं स्थित है जो पर्यटक को को लुभाती हैं।

शहर से कुछ ही किलोमीटर दूर कालीसिंध नदी पर भू-पर्यटन विकसित करने की भी संभावनाएं व्यक्त की जा सकती हैं, जहां नदी अपने पेटे में चट्टानों का अपरदन कर विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियों का निर्माण करती है जो देखते ही बनता है।

परिवहन

एक दशक पूर्व तक झालावाड़ शहर अन्य बड़े शहरों से अच्छे से जुड़ाव नहीं रखता था। यहां कोई रेलवे स्टेशन नहीं था और छभ 12 जो जयपुर से जबलपुर तक जाता था, वह झालावाड़ होकर गुजरता था। किंतु कोटा से झालावाड़ तक उस समय यह हाईवे डबल लेन था और सही से मरम्मत न होने के कारण यहां से गुजरने वाले यात्री तथा मालवाहक वाहन इससे परेशान रहते थे। परंतु सन 2013 के बाद जब राज्य में सरकार परिवर्तन हुआ तथा मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे सिंधिया बनी, जो स्वयं झालरापाटन विधानसभा से विधायक के रूप में मनोनीत होती रहती हैं, उन्होंने सरकार में आते ही अपने गृह जिले तथा शहर के विकास की ओर ध्यान दिया।

झालावाड़ स्टेशन जो वर्तमान में एक टर्मिनल स्टेशन है को भोपाल लाइन से जोड़ने हेतु कार्य निरंतर रूप से जारी है ताकि शहर की संयोजकता मध्य प्रदेश तथा राजस्थान के अन्य शहरों, जैसे- कोटा तथा जयपुर से आसानी से मजबूत हो सके। पिछली सरकार में रेलवे स्टेशन का कार्य शुरू हो चुका था, परंतु उसको शीघ्रता से पूर्ण करवा कर शहर वासियों तथा अन्य जिले के लोगों को एक नई सौगात दी और 2013 से झालावाड़ शहर को कोटा तक तथा 2018 में झालावाड़ से जयपुर होते हुए श्रीगंगानगर तक रेल सेवा शुरू हो गयी। रेलवे स्टेशन के भोपाल लाइन से जुड़ने के बाद इसका संपर्क मध्य प्रदेश के प्रमुख शहरों तथा राजधानी से आसानी से हो जाएगा तत्पश्चात यह एक टर्मिनल स्टेशन में रहकर एक महत्वपूर्ण रेलवे स्टेशन के रूप में उभर कर लोगों के सामने आएगा। जो इस प्रदेश के यात्रियों, व्यापारियों, उद्योगों आदि को सेवाएं प्रदान करने के साथ-साथ कच्चे मार्ग तथा निर्मित माल के आयात निर्यात को भी सुचारू रूप से बनाए रखने में सहायक होगा।

इसी विधानसभा में मुख्यमंत्री रहते हुए उन्होंने जब छभ12 छभ 52 में परिवर्तित हुआ तो सरकार ने शहर की बेहतर यातायात सुविधाओं की ओर भी ध्यान दिया तथा एनएच 52 को कोटा से संपूर्ण जिले की सीमा तक फोरलेन किया गया तथा इसे द्रुतगामी परिवहन के रूप में विकसित किया गया। बाहर से जाने वाले वाहनों के लिए झालावाड़ तथा झालरापाटन दोनों शहरों को पार करते हुए एक बाईपास का प्रस्ताव रखा गया जिसका निर्माण अभी भी जारी है। झालावाड़ से आगे जिले के अंतर्गत झालरापाटन तथा अकलेरा प्रमुख शहर हैं, जो नेशनल हाईवे 52 पर स्थित हैं। यह हाईवे आगे मध्यप्रदेश में उज्जैन तथा इंदौर होता हुआ महाराष्ट्र से गुजरता हुआ, अंत में कर्नाटक के अंकोला तक जाता है। दूसरी ओर यह संगरूर, पंजाब से होते हुए हरियाणा तथा राजस्थान में जयपुर, टोंक, बूंदी तथा कोटा शहरों को झालावाड़ से जोड़ता है। इस नेशनल हाईवे के विकास से झालावाड़ जैसे तृतीय वर्ग के छोटे शहर के विकास को गति मिली है।

वर्तमान में इस हाईवे का विकास झालरापाटन से आगे जारी है। द्रुत परिवहन के लिए झालरापाटन से आगे तीन धार चौराहे पर इस हाईवे पर फ्लाईओवर का निर्माण जारी है, ताकि सीधे जाने वाले वाहन बिना रुके निकल सके। वही तीन धार के समीप ही कालीसिंध नदी पर जो पुल पहले दो लेन में था वहीं पर एक और पुल का निर्माण जारी है जिससे फोरलेन पर वाहनों को पुल से गुजरते समय भी परेशानी नहीं होगी।

एक अन्य सड़क प्रोजेक्ट कोटा जिले के दरा तथा झालावाड़ जिले के तीन धार के मध्य चल रहा है। यह प्रोजेक्ट दरा से शुरू होकर नेशनल हाईवे 12 के सहारे झालावाड़ शहर तक तथा यहां से बारां शहर की ओर जाने वाले मेगा हाईवे से होता हुआ पुनः एक स्थानीय सड़क से होता हुआ तीन धार तक चलाया जा रहा है, जो झालावाड़ शहर तथा तीन धार से जुड़ाव रखने वाले अन्य ग्रामीण क्षेत्रों को कोटा तथा दूसरी ओर बारां तक द्रुत परिवहन उपलब्ध कराने में सहायक होगा। इस परियोजना की कुल लंबाई 48.880 किलोमीटर है। परियोजना के दायरे में नए ग्रीन फील्ड बाईपास संरेखण के विकास के साथ मौजूदा राजमार्ग को 4 लेन का बनाना शामिल है। राजमार्ग में मुख्य कैरिजवे के लिए कठोर फुटपाथ और सर्विस रोड के लिए लचीले फुटपाथ शामिल हैं। परियोजना में राजमार्ग के मौजूदा 2–लेन का निर्माण 10.489 किलोमीटर की लंबाई तक के लिए नए 4–लेन कठोर फुटपाथ कैरिजवे के साथ किया जाना है, जबकि शेष लंबाई 38.391 को नए 4–लेन के कठोर फुटपाथ कैरिजवे के साथ बनाया जाना है जिसमें 1.363 किमी पुनर्संरेखण भाग शामिल हैं। इस समग्र दायरे में 37.028 किमी को भीड़भाड़ वाले प्रमुख शहरों और गांवों अर्थात ढाबादेह, सहरावाड़ा, सुकेत (तीनों कोटा जिले में), झालावाड़, झालरापाटन (झालावाड़ जिले में) को दरकिनार करके नए बाईपास के रूप में विकसित किया गया है। यह परियोजना डवत्ज्भ् के नवीनतम प्रस्ताव से भी सुसज्जित है, जिसमें भविष्य में बढ़ती यातायात समस्याओं का मुकाबला करने के लिए संरेखण को चौड़ा करने के लिए सभी प्रमुख संरचनाओं को सिक्स लेन संरचनाओं के रूप में विकसित किया जाएगा।

साथ में ही यहां पर पहले से स्थित कोलाना हवाई पट्टी जो कि शहर से मात्र 4 किलोमीटर दूर मेगा हाईवे पर स्थित है, 2004 में निर्मित हुई थी। 2020 में इस पट्टी को विस्तृत कर हवाईअड्डे का रूप देने की घोषणा हुई तथा तुरंत कार्य शुरू भी हो गया। हवाई पट्टी के विस्तार से यहां आने वाले उद्योगपतियों को सुविधा मिलेगी। कोलाना हवाई पट्टी के विस्तार की गति अब आगे बढ़ गई है। कोलाना हवाई पट्टी के विस्तार के बाद यह हवाई पट्टी अंतरराष्ट्रीय मानकों पर तैयार होगी। यहां बोइंग विमान भी उतर सकेंगे। हालांकि झालावाड़ में स्थित हवाई पट्टी अभी कोटा से भी बड़ी है, जिसके चलते कोटा के लिए आने वाले बड़े विमान झालावाड़ में ही उतरते हैं। ऐसे में अब इसके विस्तार के बाद यहां अंतरराष्ट्रीय मानकों के तहत सभी प्रकार के विमान उतर सकेंगे। इसके विस्तार पर 48 करोड़ रुपए खर्च होंगे। अभी यहां रनवे की लंबाई 1700 मीटर है। विस्तारीकरण के बाद इसको 1900 मीटर किया जाएगा। कोलाना हवाई पट्टी पर फ्लाइंग स्कूल खोलने की भी तैयारी चल रही है। इसके लिए फ्लाइंग स्कूल के कैप्टन केजरी सिंह ने भी दौरा किया था। इसमें उन्होंने पाया कि हवाई पट्टी की चौड़ाई 45 मीटर होना चाहिए। इसी के हिसाब से अब इसकी चौड़ाई भी बढ़ाई जाएगी। हालांकि अभी स्थानीय स्तर पर फ्लाइंग स्कूल के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

Jhalawar Airport...एयरपोर्ट के विकास कार्यों के लिए 6.77 करोड़ रुपए का बजट मंजूर

. कोटा में एयरपोर्ट के लिए निःशुल्क जमीन देने की घोषणा के बाद झालावाड़ में हलचल बढ़ी

. बकाया भुगतान और सड़क व चारदीवारी जैसे आवश्यक कार्य पूरे होंगे

झालावाड़. कोटा में ग्रीन फील्ड एयरपोर्ट बनाने के लिए राज्य सरकार की ओर से निशुल्क जमीन की घोषणा के बाद झालावाड़ एयरपोर्ट को लेकर भी गतिविधियां तेज हो गई है। कांग्रेस सरकार बनने के बाद पहली बार एयरपोर्ट के विकास कार्यों के लिए 6.77 करोड़ रुपए का बजट खर्च करने की मंजूरी दे दी है। हालांकि एयरपोर्ट के अधूरे

Hindi News / Local / Rajasthan / Kota / Airport Is Developed In Jhalawar Rajasthan

हवाई पट्टी से हवाई अड्डे की तरफ बढ़ते कदम, रनवे से गुजर रहा मेगा हाईवे शिफ्ट होगा

2 वर्ष पहले

- कोलाना हवाईपट्टी का विस्तारकर बनाया जाएगा अंतरराष्ट्रीय एयरपोर्ट
- इस साल साढ़े 9 करोड रुपए का बजट मिला है, इससे काम की रफ्तार भी तेज

हवाईपट्टी का विस्तार होने के बाद अब जिले में उद्योग और पर्यटन का भी विस्तार होगा। यहां पर वल्लभ पित्ती ग्रुप की धागा फैक्ट्री का निर्माण कार्य चल रहा है। यहां फार्मा रिसर्च सेंटर नाइपर की भी घोषणा हो चुकी है। साथ ही कई और उद्योग आने की भी संभावनाएं हैं। अब यहां हवाई पट्टी का विस्तार होने से इन उद्योगों से संबंधित काफी सुविधाएं यहां मिल सकेंगी। इसके अलावा रामगंजमंडी और मध्यप्रदेश के उद्योगपति भी यहां अपने विमान लैंड कर सकेंगे। साथ ही पर्यटन के क्षेत्र में गागरोन दुर्ग का जीर्णोद्धार सहित अन्य पुरामहत्व की विरासतों को निखारा जा रहा है। हवाई पट्टी के विस्तार के बाद यहां के पर्यटन क्षेत्र में भी बढ़ावा होगा।

शिक्षा

शहर में उच्च शिक्षा के लिए विभिन्न कॉलेज हैं, जो विभिन्न धाराओं में उच्च स्तरीय शिक्षा प्रदान करते हैं, जैसे–

- झालावाड़ मेडिकल कॉलेज, झालावाड़
- राजकीय पीजी कॉलेज, झालावाड़
- राजकीय कन्या महाविद्यालय, झालावाड
- राजकीय विधि महाविद्यालय, झालावाड़
- राजकीय उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़
- राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, झालावाड़
- पॉलिटेक्निक महाविद्यालय, झालावाड़

मेडिकल कॉलेज में पूरे राजस्थान तथा कुछ बाहरी प्रदेशों के विद्यार्थी भी प्रतिवर्ष दाखिला लेते हैं तथा अपने 4 वर्ष यहां बिताते हैं, इस प्रकार शहर का यह कॉलेज हर साल कई चिकित्सकों को तैयार करता है। वहीं विधि महाविद्यालय में भी जिले तथा आसपास के प्रदेश के विद्यार्थी दाखिला लेते हैं तथा अपनी शिक्षा पूरी कर कानूनी क्षेत्र में उतरते हैं। इसी प्रकार उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय भी प्रदेश के इच्छुक विद्यार्थियों को अपने प्रकार की शिक्षा प्रदान करता है, जो कृषि की नई पद्धतियों एवं तकनीकों से किसानों को फायदा पहुंचाते हैं। राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय विभिन्न विद्यार्थियों को अभियंता के रूप में आगे बढ़ने का अवसर प्रदान करता है। इस प्रकार विद्यालयी शिक्षा के अतिरिक्त शहर के यह प्रमुख महाविद्यालय विभिन्न धाराओं के विद्यार्थियों को आगे बढ़ने का अवसर प्रदान करते हैं और प्रदेश तथा आसपास के विद्यार्थियों को शिक्षा हेतु आकर्षित करते रहते हैं।

विद्यालय शिक्षा हेतु यहां पर कई प्रसिद्धि प्राप्त निजी विद्यालय भी संचालित हो रहे हैं जिनमें लेडी अनुसुइया, जेके गोटन, पल्लवन, किडजी, बचपन आदि समूहों के विद्यालय शामिल हैं। झालावाड़ में नवोदय और केन्द्रीय विद्यालय भी हैं।

चिकित्सा

चिकित्सा सुविधाओं को देखें तो श्री राजेंद्र सार्वजनिक चिकित्सालय शहर का प्रमुख चिकित्सालय है, जो राज्य स्तरीय चिकित्सालयों के बराबर सुविधा प्रदान करता है। यहां न केवल झालावाड़ जिले, बल्कि समीपी मध्य प्रदेश के इलाकों से भी कई मरीज प्रतिदिन आते हैं तथा सेवाएं प्राप्त करते हैं। इस चिकित्सालय में निजी चिकित्सालयों के बराबर सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। इसके अतिरिक्त शहर में कई निजी चिकित्सालय भी

संचालित हैं, जो सार्वजनिक चिकित्सालय पर पड़ने वाले भार को कम करने में सहायता प्रदान करते हैं।

कृषि

झालावाड़ एक कृषि बाजार केंद्र है। झालावाड़ के आसपास का क्षेत्र मालवा पठार का हिस्सा है, जो उत्तर में एक उपजाऊ लहरदार मैदान और दक्षिण की ओर एक पहाड़ी क्षेत्र है। कपास, धनिया, संतरे, गेहूं, तिलहन, सरसों, सोयाबीन, मक्का और ज्वार प्रमुख फसलें हैं। जिनके अधिक उत्पादन का यहां से निर्यात भी होता है।

खनन

झालावाड़ बेल्ट में कई खनन स्थल हैं जहाँ से कोटा स्टोन का खनन किया जाता है और फिर इस पत्थर को झालावाड़ क्षेत्र में मौजूद कई उद्योगों में तराशा और पॉलिश किया जाता है। झालावाड़ में बिरियाखेड़ी और पिपलिया क्षेत्र झालावाड़ के कुछ प्रमुख खनन स्थल हैं।

खनिजों की उपलब्धता

खनिज	पट्टों	क्षेत्रफल (हेक्टर में)	उत्पादन (टन)
बलुआ पत्थर	54	89.24	24974
चिनाई का पत्थर	29	29.500	1273240
बैटोनाइट	5	5.010	2212
चूना पत्थर (Dimni.)	48	211.82	1626470
चूना पत्थर (जलना)	1	1.00	1000
कांकड़ बजरी	0	0.00	1274062
मुर्रम	0	0.000	700000

औद्योगिक परिदृश्य

यहां प्रमुख उद्योगों में स्टोन कटिंग, स्टोन पॉलिशिंग, वनस्पति तेल, मेंहदी पाउडर, रेडीमेड गारमेंट्स, लकड़ी के फर्नीचर, सीमेंट से बने टैंक, पीवीसी पाइप, जूते, वाशिंग पाउडर, टायर रिट्रेडिंग, मसाले आदि के उद्योग हैं। प्रमुख हस्तशिल्प इकाइयों के रूप में बर्तन निर्माण, पत्थर–खंभे पर कलाकारी, चमड़े के जूते, कपड़ा निर्माण, अचार, मूर्तियां, लकड़ी का काम, लोहे का काम, रस्सी, झाड़ू, चटाई आदि भी संचालित हैं।

विकास केंद्र, झालारापाटन ने झालारापाटन के पास एक औद्योगिक विकास केंद्र की स्थापना की, जिसमें उद्योगों के लिए कुल 450 भूखंड हैं। इनमें से 316 भूखंड विभिन्न उद्योगों को आवंटित किए गए हैं। 110 उद्योग अपना परिचालन चला रहे हैं और शेष निर्माण की प्रक्रिया में हैं। इस विकास केंद्र के प्रमुख उद्योग स्टोन कटिंग और पॉलिशिंग, स्टील फर्नीचर और अलमीरा, पीवीसी जूते, कृषि सहायक उपकरण, ट्रैक्टर ट्रॉली, बिजली के ट्रांसफार्मर, आदि हैं।

मुख्य औद्योगिक क्षेत्र

- औद्योगिक क्षेत्र, झालावाड़,
- मामा भांजा, चरण 1, 2 और 3, झालावाड़,
- औद्योगिक क्षेत्र, पाटन रोड, झालावाड़,
- औद्योगिक क्षेत्र, झालरापाटन
- गिन्दौर, झालरापाटन,
- भवानीमंडी रोड, झालरापाटन।

जिले के अन्य क्षेत्रों में

- औद्योगिक क्षेत्र, भवानीमंडी,
- औद्योगिक क्षेत्र, अकलेरा,
- औद्योगिक क्षेत्र, देवरीघटा,
- औद्योगिक क्षेत्र, मनोहरथाना।

व्यापार

यहां की प्रमुख निर्यात योग्य वस्तुएं कपास, धनिया, सरसों, संतरे, सिंथेटिक यार्न, कोटा स्टोन और चूना पत्थर हैं।

जिले में शहर के आसपास मुख्य उद्योग पत्थर काटना और पॉलिशिंग का है। जो कई लोगों को रोजगार उपलब्ध कराता है और कई परिवारों का पेट पालता है। निर्यात क्षेत्र में इस क्षेत्र की बहुत संभावनाएं हैं क्योंकि इस पत्थर का उपयोग फुटपाथ और फर्श के लिए बहुतायत से किया जा रहा है। इसके अलावा आसपास के क्षेत्रों में प्रचलित निम्न अन्य उद्योगों के भी उत्पादों का निर्यात यहां से किया जाता है–

- हथकरघा उद्योग, असनावर, झालावाड़
- पत्थर की मूर्ति, झालरापाटन
- बांस की टोकरी, झालावाड़

झालावाड़ शहर में पंजीकृत कंपनियाँ

- बनास पत्थर प्राइवेट लिमिटेड, एफ–49, चरण – III, RIICO औद्योगिक क्षेत्र, झालावाड़।
- बनास खनिज प्राइवेट लिमिटेड, एफ–51, चरण – III, RIICO औद्योगिक क्षेत्र, झालावाड़।
- हाडोती गैस निजी लिमिटेड,एफ–3, चरण III, रीको औद्योगिक क्षेत्र, झालावाड़।
- मनोज सप्लायर्स प्राइवेट लिमिटेड, ए–7, राजपूत चतरावास, NH 52, कोटा रोड, झालावाड़।

- श्री अग्रसेन स्लैब्स एंड टाइल्स प्राइवेट लिमिटेड, ए–4, विपुल अपार्टमेंट्स, मामा–भांजा सर्कल, झालावाड़।
- हाडोती खनिज प्राइवेट लिमिटेड, बड़ा बाजार, झालावाड़।
- पीयूष रासायनिक कपड़ा प्राइवेट लिमिटेड।
- जालिम सिंह का चौक, झालावाड़।
- राज राजेश्वर एजुकेशन एंड रिसर्च फाउंडेशन, बड़ा बाजार, झालावाड़।
- तिरुपति गोल्डलाइफ ट्रेडलाइन प्राइवेट लिमिटेड, बी–6, न्यू मास्टर कॉलोनी, मेगा हाईवे, बारां रोड, झालावाड़।
- डेयरी किसान उत्पादक कंपनी लिमिटेड, गांव और पोस्ट– देवनगर, बकानी, तहसील– झालरापाटन, जिला–झालावाड़।

आधारभूत संरचनाएं

कालीसिंध ताप विद्युत परियोजना झालावाड़ शहर के पास में ही स्थित है। कोयला आधारित ताप विद्युत परियोजना की प्रस्तावित क्षमता 1200 मेगावाट है। परियोजना स्थल झालावाड़ (जिला मुख्यालय) और NH–52 से लगभग 12 किमी दूर है। साइट में झालारापाटन तहसील के 5 गाँव निमोडा, उंडल, मोतीपुरा, सिंघारिया और देवरी गांव शामिल हैं। यह राज्य राजमार्ग संख्या 19 से 2 किमी और रामगंजमंडी–भोपाल ब्रॉड गेज रेल लाइन से 8 किमी दूर है।

खेलकूद तथा मनोरंजन

शहर में स्थित विजयाराजे सिंधिया क्रिकेट स्टेडियम न केवल स्टेडियम है, बल्कि यह खेल संकुल है। यह खेल संकुल प्रतिदिन यहां के युवाओं को विभिन्न प्रकार के खेलों के लिए सुविधाएं प्रदान करता है तथा साथ ही सुबह और शाम प्रत्येक आयु वर्ग के लोग यहां आकर खेलों के साथ–साथ व्यायाम, रनिंग, वाकिंग, साइकिलिंग आदि करके शारीरिक स्वास्थ्य का ख्याल रखते हैं। यह खेल संकुल टेबल–टेनिस, लॉन टेनिस, बैडमिंटन, तैराकी, बास्केटबॉल, वॉलीबॉल, दौड़, फुटबॉल, हैंडबॉल और क्रिकेट जैसे कई खेलों और खेलों का आनंद लेने का अवसर प्रदान करता है। इस संकुल ने एक रणजी ट्रॉफी इवेंट में भी सेवा दी है। साथ ही प्रशासन कई बार विभिन्न उत्सवों पर उत्सव से संबंधित क्रियाएं तथा प्रतियोगिताएं यहां संचालित करता रहता है।

मनोरंजन के लिए शहर में प्रशासन ने कई उद्यान तैयार किए हैं जिनमें से कुछ विभिन्न तालाबों के किनारे हैं तथा कुछ शहर के भीतरी भागों में जहां भी प्रतिदिन सुबह–शाम लोग स्वास्थ्य का ख्याल रखते हुए सेवाएं लेने आते हैं।

निष्कर्ष

उक्त अध्ययन से कुछ विशेष तथा अन्य गुण कारक निकलकर सामने आते हैं जो झालावाड़ शहर के शहरीकरण तथा विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक और देखा जाए तो परिवहन जो अन्य बड़े शहरों से शहर को संयोजकता प्रदान करता है प्रमुख कारक के रूप में उभर कर सामने आता है। जब तक शहर में सड़क परिवहन आधुनिक स्तर तक विकसित नहीं हुआ था तब तक शहर का जुड़ाव राजस्थान के अन्य बड़े शहरों तथा मध्य प्रदेश के समीपी शहरों से आज की तरह नहीं था। जैसे–जैसे शहर तक आने वाली सड़कों तथा राजमार्गों का विकास होने लगा वैसे वैसे धीरे–धीरे शहर भी विकसित होने लगा तथा यहां विभिन्न सेवाओं को प्राप्त करने के लिए आसपास के ग्रामीण इलाकों से लोग आने लगे। दूसरी ओर नजर करें तो यहां के उद्योग जो फिलहाल छोटे हैं, उनकी संख्या धीरे–धीरे बढ़ रही है तथा वृहद उद्योग लगने की भी संभावनाएं व्यक्त की जा रही हैं। यहां खनिज से संबंधित उद्योग प्रमुख रूप से विकसित हुए हैं जो कई लोगों को रोजगार प्रदान करते हैं आसपास के ग्रामीण इलाकों से लोग यहां आकर्षित हो रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र

में भी वृद्धि तथा उच्च शिक्षा की विभिन्न धाराओं से संबंधित महाविद्यालयों की उपस्थिति के कारण विद्यार्थी शहर में आकर अपना बसेरा करते हैं। बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं भी लोगों को अपनी और आकर्षित कर रही हैं। जिला तथा शहरी प्रशासन शहर में आवश्यक सुविधाएं प्रदान करने तथा विभिन्न क्रियाकलापों से लोगों को आकर्षित करने में सतत संलग्न रहते हैं। साथ ही राजनीतिक कारक ने भी झालावाड़ के इस मंद लेकिन आवश्यक विकास और शहरीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यही सब कारक भविष्य में भी झालावाड़ शहर के शहरीकरण तथा विकास मैं निरंतर योगदान करते रहने की संभावना है और साथ में अन्य औद्योगिक कंपनियों से किए गए सरकारी प्रोजेक्ट के कारण भी रोजगार के अवसर बढ़ने से शहरीकरण के और बढ़ने की संभावना व्यक्त की जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *तिवारी, आर.सी. (2018), ''अधिवास भूगोल'', प्रवालिका प्रकाशन, प्रयागराज, उत्तरप्रदेश।*
2. *सिंह, रामयज्ञ (2005), ''अधिवास भूगोल'', रावत पब्लिकेशन, जयपुर।*
3. *Ahluwalia, I. J. (2016). Challenges of urbanisation in India. In Contemporary issues in development economics (pp. 163-177). Palgrave Macmillan, London.*
4. *Bakrania, S. (2015). Urbanisation and urban growth in Nepal. Governance. Social Development, Humanitarian Response and Conflict (GSDRC), Applied Knowledge Services of University of Birmingham, Birmingham, UK. http://www.gsdrc.org/wp-content/uploads/2015/11/HDQ1294.Pdf.*
5. *Beniwal, Sangeeta & Mohan, Madan. (2018). An Assessment of Urbanization in Rajasthan. Inter. J. Edu. Res. Technol. 9 [4] 2018; 17-20. DOI:10.15515/ijert.0976 4089.9.3.1720*
6. *Bhagat, R. B. (2011). Emerging pattern of urbanisation in India. Economic and political weekly, 10-12.*
7. *Burgess, E. W. (2008). The growth of the city: an introduction to a research project. In Urban ecology (pp. 71-78). Springer, Boston, MA. (Originally Published in 1925 in "The trend of population". Publications of the American Sociological Society, vol XVIII (pp 85–97))*
8. *Davis, K. (1965). The Urbanization of the Human Population: Scientific American. In The City Reader (pp. 1-11). Routledge London.*
9. *Jaysawal, D., &Saha, S. (2014). Urbanization in India: An impact assessment. International Journal of Applied Sociology, 4(2), 60-65.*
10. *Lerch, Matthias (2017). International migration and city growth. Population Division Technical Paper 2017/10. New York: United Nations.*
11. *McGranahan, G., & Satterthwaite, D. (2014). Urbanisation concepts and trends (Vol. 220). London;: Iied*
12. *Moudon, A. V. (1997). Urban morphology as an emerging interdisciplinary field. Urban morphology, 1(1), 3-10.*
13. *Nayak, P. R. (1962). The challenge of urban growth to Indian local government. In Seminar on Urbanization in India, op. cit (p. 7).*
14. *Poston Jr, D. L., &Bouvier, L. F. (2010). Population and society: An introduction to demography. Cambridge University Press.*
15. *Tabassum, F. (2007). The Process of Urbanization in the Principalities of Chanderi and Nagaur in the 15th Century (Unpublished master's thesis). Dr. Rammanohar Lohia Avadh University, Faizabad.*
16. *United Nations, Department of Economic and Social Affairs, Population Division (2018). The World's Cities in 2018—Data Booklet (ST/ESA/SER.A/417).*
17. *United Nations, Department of Economic and Social Affairs, Population Division (2019). World Urbanization Prospects: The 2018 Revision (ST/ESA/SER.A/420). New York: United Nations.*

Websites

1. *www.jhalawar.rajasthan.gov.in*
2. *www.britanica.com www.census2011.co.in*
3. *www.urban.rajasthan.gov.in www.isg.urban.rajasthan.gov.in*
4. *https://rajasthan.gov.in/Government/DistrictGovernment/Pages/Jhalawar.aspx*
5. *http://www.rajcensus.gov.in/ admin.html*
6. *https://www.indiacensus.net/district/jhalawar*
7. *https://ourworldindata.org/urbanization*
8. *https://www.bbc.co.uk/bitesize/guides/zwtqnbk/revision/1*
9. *https://www.worldbank.org/en/topic/*

urbandevelopment/publication/demographic-trends-and-urbanization

10. *https://www.conserve-energy-future.com/causes-effects-solutions-urbanization.php*
11. *https://www.citypopulation.de/en/india/rajasthan/0831__jhalawar/412https://www.nkbuildcon.com/detail-urban/46*
12. *https://m.timesofindia.com/city/jaipur/kolana-airstrip-in-jhalawar-on-runway-to-full-airport-status/amp_articleshow/62465522.cms*
13. *https://www.patelinfra.com/dtrp.php*
14. *https://bhaskar.com/amp/rajasthan//kota/news/airport-is-developed-in-jhalawar-rajasthan-126832450.html*

महानरेगा में पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व के अभिकरण

डॉ. शक्ति सिंह शेखावत
सहायक आचार्य, आयुक्तालय, कॉलेज शिक्षा राजस्थान, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात एवं विशेष रूप से पांचवी पंचवर्षीय योजना काल से ही गरीबी उन्मूलन हेतु सतत प्रयास किए जा रहे है, गरीबी उन्मूलन के लिए आवश्यक है कि सबको रोजगार मिले, अतः जब तक रोजगार एक अधिकार के रूप में जनता को प्राप्त नहीं होगा तब तक गरीबी उन्मूलन कोरा स्वप्न ही रहेगा। अतः रोजगार सृजन के द्वारा गरीबी उन्मूलन के साथ-साथ राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम 2005 बनाया, अब रोजगार शासकीय योजना से नहीं वरन् ससंद द्वारा प्रदत्त अधिकार से मिलेगा अर्थात् भारत सरकार एवं राज्य सरकारें जब चाहे पूर्व की योजनाओं की भांति इसे समाप्त या कमजोर नहीं कर सकती। प्रस्तुत शोध में यह अध्ययन करने का प्रयास किया गया है कि महात्मा गांधी नरेगा का राजस्थान में क्रियान्वयन कितना सफल रहा है। इस योजना की सफलता का दारोमदार पंचायत राज संस्थाओं पर है वे कितनी कार्यकुशलता से कार्य कर रही है, क्या मैट अपना कार्य जिम्मेदारी से कर रहे हैं, मस्टररोल का संधारण उचित तरीके से हो रहा है। श्रमिक को किए गए कार्य की मजदूरी समय पर व उचित मिल रही है या नहीं। इस योजना के तहत परिसम्पत्तियों का निर्माण जनता के लिए कितना उपयोगी है, निर्माण सामग्री अच्छी है या घटिया, कार्यस्थल पर सामाजिक भेदभाव है या नहीं साथ ही भ्रष्टाचार एवं अनियमितता की क्या स्थिति है? भ्रष्टाचार एवं अनियमितता रोकने हेतु सामाजिक अंकेक्षण, सूचना का अधिकार, निगरानी एवं सतर्कता समिति, इत्यादि अभिकरण कितने कारगर है इत्यादि सवालों का विश्लेषण कर महानरेगा के क्रियान्वयन का मूल्यांकन किया जा सकता है।

संकेताक्षर : *महानरेगा, पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, श्रमिक, पंचायत राज संस्थाऐ, भ्रष्टाचार, अनियमितता।*

ग्रामीण भारत में निर्धनता के कारण जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा कुपोषण का शिकार है। जून, 2001 से जून, 2002 के बीच हुए राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 57वें दौर के अनुसार ग्रामीण भारत में अनेक परिवार 'लम्बी अवधि तक भूखे' की स्थिति में है। अतः देश के ग्रामीण परिवारों को शारीरिक श्रम के रूप में कम से कम कुछ न्यूनतम दिवसों का रोजगार सुनिश्चित करने की आवश्यकता महसूस की गई। अन्ततः राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम, 2005 संसद द्वारा पारित किया गया। इस अधिनियम को राष्ट्रपति की स्वीकृति 25 अगस्त, 2005 को प्राप्त हुई तथा भारत के राजपत्र, असाधारण, भाग द्वितीय, खण्ड प्रथम, दिनांक 27 अगस्त, 2005 को अधिनियम अधिसूचित किया गया।[1] महात्मा गांधी नरेगा भारतीय इतिहास में नियोजित या क्रियान्वित अन्य कार्यक्रमों से अलग एक आमूलचूल परिवर्तन हैं। महात्मा गांधी नरेगा के प्रारंभ के साथ ही इसके क्रियान्वयन में अनियमितता एवं भ्रष्टाचार के आरोप समय-समय पर समाचार पत्रों, गैर सरकारी संगठनों, अर्थशास्त्रियों एवं शिक्षाशास्त्रियों द्वारा लगाए जा रहे है।

इंदिरा गांधी पंचायती राज संस्था के एक सर्वे में चयनित जिला प्रमुखों एवं प्रधानों के अनुसार एक चौथाई से भी कम नागरिकों ने महानरेगा कानून को पूरा पढ़ा है, 87 फीसदी का मानना है कि योजना में भ्रष्टाचार खुले खाते हो रहा है। इनमें से केवल छः फीसदी जनप्रतिनिधियों ने ही यह कहा है कि महानरेगा के लिए कलक्टर ईमानदार है, ग्राम सेवक-सरपंच व सीईओ को ईमानदार बताने वाले तो केवल नाम के ही प्रधान एवं प्रमुख है। इनकी नजर में रोजगार

सहायक व मजदूर ही सबसे ज्यादा ईमानदार है।

पारदर्शिता के अभिकरण

महात्मा गांधी नरेगा के क्रियान्वयन में भ्रष्टाचार एवं अनियमितता की स्थिति निरंकुश नहीं है। इस अधिनियम में स्वयं में निहित, राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार द्वारा प्रदत्त अधिकार, अभिकरण इस योजना के पारदर्शी एवं उत्तरदायी क्रियान्वयन में प्रयासरत है। इन अभिकरणों का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित प्रकार से है।

1. वार्ड सभा

राजस्थान पंचायतीराज (संशोधन) अधिनियम, 2000 द्वारा राजस्थान पंचायती राज अधिनियम में वार्ड सभा की एक अभिनव व्यवस्था की गई है। यह भारतीय लोकतंत्र की सबसे छोटी इकाई है।

वार्ड सभा के सदस्य उस वार्ड में निवास करने वाले सभी वयस्क व्यक्ति होंगे तथा वार्ड में एक वार्ड सभा होगी (धारा 3(1)) वार्ड सभा की बैठक वर्ष में कम से कम दो होगी अर्थात प्रत्येक छः माही में एक। लेकिन वार्ड सभा के कुल सदस्यों के 1/10 सदस्यों द्वारा अध्यपेक्षा किये जाने पर अथवा पंचायत समिति, जिला परिषद या राज्य सरकार द्वारा अपेक्षा किये जाने पर ऐसी अपेक्षा के 15 दिन के भीतर वार्ड सभा की बैठक बुलाई जा सकेगी (धारा 3 (2)), इसकी गणपूर्ति हेतु कुल सदस्यों के 1/10 सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक होगी, इसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग तथा महिला सदस्यों की उपस्थिति उनकी जनसंख्या के अनुपात में होगी (धारा 4), अध्यक्षता वार्ड पंच द्वारा की जायेगी, वार्ड पंच की अनुपस्थिति में अध्यक्ष को बहुमत से चुना जायेगा (धारा 5)।

वार्ड सभा में उन सभी विषयों पर खुलकर चर्चा की जायेगी जो उसके समक्ष रखे जाये। वार्ड सभा द्वारा प्रस्तावित सुझावों पर पंचायत द्वारा विचार किया जायेगा। वार्ड की विकास योजनाएं बनाने में पंचायत की सहायता, विकास योजनाओं के हिताधिकारियों की पूर्विकता क्रम में पहचान करना, विकास योजना के प्रभावी क्रियान्वयन में सहायता करना, लोक उपयोगिताओं के लिए स्थान का सुझाव देना, वार्ड में किए गए कार्यों की सूचना प्राप्त करना, उनका सामाजिक संपरीक्षा करना तथा पूर्णता प्रमाण पत्र देना, यह समस्त कृत्य अधिनियम की धारा 7 से वार्ड सभा के है।[2] वार्ड सभा अधिनियम 7 से प्राप्त कृत्यों एवं अन्य शक्तियों का प्रयोग ग्रामीण विकास की अन्य योजनाओं के साथ महात्मा गांधी नरेगा के क्रियान्वयन में करती है। अर्थात वार्ड सभा सबसे छोटी इकाई है जो महानरेगा के पारदर्शी एवं उत्तरदायी क्रियान्वयन में अपनी भूमिका निभाती है। हालांकि व्यवहार में राजस्थान में वार्ड सभा की बैठके केवल खानापूर्ति बनकर रह गई है, हालांकि एक परिपक्व लोकतंत्र में ऐसे अभिकरणों की महत्ति आवश्यकता है।

2. ग्राम सभा

ग्राम सभा के कृत्यों में सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए योजनाओं, कार्यक्रमों और परियोजनाओं (महात्मा गांधी नरेगा सहित) का अनुमोदन करना, गरीबी उन्मूलन और अन्य कार्यक्रमों (महात्मा गांधी नरेगा सहित) के अधीन हिताधिकारियों के रूप में व्यक्तियों की पूर्विकता क्रम में पहचान या चयन करना। किसी भी विशिष्ट क्रियाकलाप, स्कीम (महात्मा गांधी नरेगा सहित), आय और व्यय के बारे में पंचायत के सदस्यों और सरपंच से स्पष्टीकरण मांगना, महानरेगा के क्रियान्वयन में सहयोग एवं निगरानी रखना, तथा प्रत्येक छः माह में कार्यों का सामाजिक अंकेक्षण करना, ग्राम सभा को योजना के संबंध में ग्राम पंचायत से सूचना प्राप्त करने का अधिकार है।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना अधिनियम, 2005 के प्रावधानों 16(1) और 16(3) में सामाजिक अंकेक्षण के कार्य में ग्राम सभा की भूमिका का उल्लेख किया गया है। 16(1) यह स्पष्ट करता है कि "ग्राम पंचायत, ग्राम सभा और वार्ड सभा की सिफारिशों के अनुसार किसी स्कीम के अधीन ग्राम पंचायत क्षेत्र में क्रियान्वित की जाने वाली परियोजना की पहचान और ऐसे कार्य के निष्पादन और पर्यवेक्षण के लिए उत्तरदायी होगी।" ग्राम सभा महानरेगा के क्रियान्वयन को पारदर्शी तथा उत्तरदायी बनाने का सशक्त माध्यम है लेकिन ग्रामीण समाज की जागरूकता की कमी एवं प्रशासनिक अकर्मण्यता के चलते ग्राम सभा अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में शत प्रतिशत सफल तो नहीं हो पायी लेकिन जैसे जैसे ग्रामीण समाज में साक्षरता एवं जागरूकता बढ़ेगी पंचायतीराज के मूल स्तम्भ के रूप में ग्राम सभा विकसित होगी जैसा कि चित्तौड़गढ़ जिले की मुंगाना ग्राम पंचायत का उदाहरण है जहां ना केवल वार्ड सभा और ग्राम सभा बल्कि महिला सभा की बैठक भी आहूत होती है, तथा महानरेगा का क्रियान्वयन भी सफल रहा

है।[3] यदि प्रत्येक गांव मुंगाना से प्रेरित हो तो महानरेगा का क्रियान्वयन अधिक पारदर्शी एवं उत्तरदायी बनाया जा सकता है।

3. सामाजिक अंकेक्षण

सामाजिक अंकेक्षण किसी विशेष परियोजना अथवा कार्यों से संबंधित सभी लेखों की जांच करने के साथ-साथ कार्य की गुणवत्ता, विशेष उपलब्धियों, कार्यों, लाभान्वितों और कार्यस्थल आदि का अंकेक्षण है। वित्तीय अंकेक्षण में धन के सही उपयोग का निरीक्षण होता है, जबकि सामाजिक अंकेक्षण से धन के सही उपयोग के साथ यह भी देखा जाता है कि उस धन के खर्च का क्या प्रभाव हुआ है ?

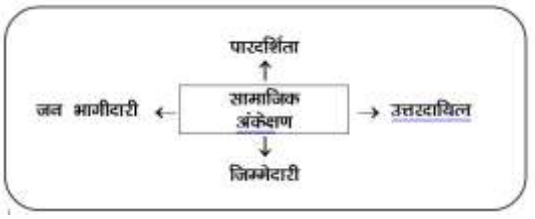

महात्मा गांधी नरेगा के क्रियान्वयन को पारदर्शी बनाने, ग्रामीण जनता को निर्णय और प्रक्रिया के सहभागी बनाने एवं उनकी सहमति प्राप्त करने तथा जनप्रतिनिधियों एवं सरकारी कर्मचारियों को उत्तरदायी बनाने के लिए सामाजिक अंकेक्षण की आवश्यकता महसूस की गई। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम की धारा 17 एवं अनुसूची 1 के पैरा 13 में 6 माह में न्यूनतम एक बार सामाजिक अंकेक्षण का कानूनी उत्तरदायित्व ग्राम सभा को निर्धारित किया गया है। अतः सामाजिक अंकेक्षण ग्राम पंचायत की वैधानिक अनिवार्यता है। सामाजिक अंकेक्षण जन निरीक्षण की एक सतत प्रक्रिया है। यह सबको साथ लेकर चलने की सफल सामूहिक प्रक्रिया है। इससे न केवल विकास कार्यो में भागीदारी बढ़ती है वरन् भ्रष्टाचार को समाप्त करने एवं लोकतन्त्र को मजबूत बनाने का एक अच्छा औजार है।[4]

राजस्थान में महात्मा गांधी नरेगा अधिनियम, 2005 एवं महात्मा गांधी नरेगा स्कीम की लेखा परीक्षा नियम, 2011 की भावना के अनुरूप प्रभावी सामाजिक अंकेक्षण के लिए राज्य स्तर पर सामाजिक अंकेक्षण निदेशालय स्थापित किया गया है। सामाजिक अंकेक्षण निदेशालय द्वारा योजना के सामाजिक अंकेक्षण से संबंधित समस्त कार्य, जिनमें वार्षिक कलैण्डर तैयार करना, संसाधन व्यक्तियों का चयन, प्रशिक्षण एवं अभियोजन सुनिश्चित करना, समय पर सामाजिक अंकेक्षण सुनिश्चित कराना, सामाजिक अंकेक्षण की कार्यवाही के उपरान्त उसका फॉलोअप करना आदि कार्य संपादित किए जा रहे है। इससे ना केवल अधिनियम के प्रावधानों की पालना की जा सकी है, बल्कि सामाजिक अंकेक्षण की गुणवत्ता में भी सुधार हुआ है।

4. आंतरिक अंकेक्षण

राज्य स्तर पर गठित राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी परिषद् के अधीन महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम में कार्यों के आंतरिक अंकेक्षण हेतु राज्य के प्रत्येक जिला स्तर पर एक अंकेक्षण दल गठित किया गया है। आंतरिक अंकेक्षण की प्रणाली भी महानरेगा के क्रियान्वयन को पारदर्शी बनाने में महत्त्वपूर्ण है, हालांकि ये पूर्णत सरकारी व्यवस्था है इसमें जनसहभागिता की कोई भूमिका नहीं है।

5. विशेष अंकेक्षण

विशेष जांच में राज्य स्तर पर, जिले की सर्वाधिक व्यय वाली ग्राम पंचायत तथा जिला स्तर पर सर्वाधिक व्यय वाली पंचायतों की विशेष जांच की जाती है, अंकेक्षण के इस प्रकार करने का उद्देश्य अधिक व्यय से अनियमितता की आशंका की जांच करना है। राज्य सरकार द्वारा की जा रही विशेष जांच से भ्रष्टाचार एवं अनियमितता के कई मामले सामने आ रहे है। विशेष अंकेक्षण महानरेगा में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर कर इसके क्रियान्वयन को पारदर्शी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

6. भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग)

संसदीय लोकतंत्र का एक आवश्यक तत्व स्वतंत्र लेखा परीक्षा की व्यवस्था करना हैं। संसद सामान्य जन द्वारा निर्मित होने के कारण इस प्रकार की जांच करने की क्षमता एवं योग्यता नहीं रखती, किन्तु यह संसद का कार्य है कि वह सरकार के वित्तीय व्यवहारों की जांच करे तथा यह सुनिश्चित करे कि करदाताओं के धन का क्या सदुपयोग अथवा दुरूपयोग हो रहा है। इस कार्य के लिए उसे एक विशेषज्ञ की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए स्वतंत्र नियंत्रक महालेखा परीक्षक को संसदीय शासन प्रणाली का एक आवश्यक तत्व माना गया है।

भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का पद एक

ऐसा सांविधानिक उपाय है जिसके द्वारा राष्ट्र अपने वित्त प्रशासन में व्यय पर संसदीय उत्तरदायित्व, संघीय पर्यवेक्षण तथा विशेषज्ञ प्रशासनिक नियंत्रण सुनिश्चित करता है।[5] महात्मा गांधी नरेगा के क्रियान्वयन में राजकीय धन के दुर्विनियोग में कैग जांच करती है तथा अपनी रिपोर्ट भारतीय संसद को सौंपती है। संसद को सौंपी एक रिपोर्ट के अनुसार महानरेगा में फंड का इस्तेमाल उन कार्यों के लिए किया गया, जो इसके दायरे में नहीं आते।

7. निगरानी एवं सतर्कता समिति

महात्मा गांधी नरेगा योजना के तहत ग्राम सभा द्वारा प्रत्येक ग्राम में एक ग्राम स्तरीय निगरानी एवं सतर्कता समिति का गठन किया जाना जरूरी है। समिति में 9 सदस्य होंगे, जिनमें अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति एवं महिलाओं का प्रतिनिधित्व हो तथा कम से कम 50 प्रतिशत सदस्य महानरेगा श्रमिक हो। इस समिति का गठन ग्राम सभा द्वारा एक वर्ष के लिए किया जाता है।[6]

यह समिति ग्राम स्तर पर होने वाले समस्त कार्यों की निगरानी करेगी तथा यह भी देखेगी कि प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार का अवसर प्राप्त हो गया हैं। यह श्रमिक का पंजीकरण, जॉब कार्ड जारी करने तथा श्रम का भुगतान के समय पर हो रहा है या नहीं देखेगी। ग्राम पंचायत अथवा कार्यकारी संस्था के प्रारम्भ किये जा रहे कार्य का ब्यौरा, समयावधि तथा गुणवत्ता मानकों के बारे में इस समिति को बताने का दायित्व ग्राम पंचायत का होगा। समिति कार्यस्थल पर जा कर कार्यस्थलों का निरीक्षण करेगी तथा कार्यों की प्रगति और गुणवत्ता पर निगरानी रखेगी। परियोजना परिपूर्णता प्रमाण पत्र के साथ इस समिति की अंतिम रिपोर्ट भी नत्थी की जाएगी और उसे पंचायत की अगली ग्राम सभा की बैठक में पेश किया जाएगा। इस रिपोर्ट की एक प्रति कार्यक्रम अधिकारी, पंचायत समितियों व जिला कार्यक्रम समन्वयक (ई.जी.एस.) एवं जिला कलेक्टर को भेजी जाएगी।

निगरानी एवं सतर्कता समिति के सदस्यों द्वारा 15 दिन में एक बार चल रहे कार्यों का निरीक्षण किया जाता है। समिति के सदस्यों को प्रतिदिवस का निरीक्षण का 75 रूपए की दर से मानदेय देय होगा, जो कि नरेगा की प्रशासनिक व्यय की राशि से दिया जायेगा।[7] निगरानी एवं सतर्कता समिति का सिद्धान्त महानरेगा के क्रियान्वयन में पारदर्शिता लाने में महत्त्वपूर्ण है लेकिन व्यवहार में यह निगरानी एवं सतर्कता समितियां इस के सिद्धान्त के अनुसार कार्य नहीं कर रही है क्योंकि सरपंच एवं सचिव मिलीभगत से समितियों का गठन करवा लेते है तथा केवल कागजी खानापूर्ति कर ली जाती है। महानरेगा के क्रियान्वयन में जब तक ग्राम सभा की भूमिका व्यावहारिक रूप से सकारात्मक नहीं होगी तब तक सामाजिक अंकेक्षण या सतर्कता एवं निगरानी समिति अपनी प्रभावी भूमिका नहीं निभा सकती।

8. महात्मा गांधी नरेगा एवं सूचना का अधिकार

महात्मा गांधी नरेगा के क्रियान्वयन से सम्बन्धित प्रत्येक प्रकार की सूचना जिसमें पंजीकरण, जॉब कार्ड, रोजगार आवेदन पत्रों के निपटारे, स्वीकृत कार्य, परियोजना के क्रियान्वयन, खर्च की गई राशि, मजदूरी का भुगतान, लाभार्थियों की सूची, कैश बुक, वाउचर अंकेक्षण रिपोर्ट, शिकायतों का निपटारा, मस्टररोल, लॉग बुक, बेरोजगारी भत्तों इत्यादि के सम्बन्ध में सूचना मांगी जा सकती है। ग्राम पंचायत में ग्राम सेवक सूचना अधिकारी, पंचायत समिति में विकास अधिकारी सूचना अधिकारी होता है।

सूचना के अधिकार अधिनियम के प्रवर्तन में आने में मजदूर किसान शक्ति संगठन (एम.के.के.एस.) तथा कैम्पेन फॉर पिपुल्स राईट टू इन्फॉरमेशन (एन.सी.पी. आई.) के लम्बे संघर्ष की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है जिससे प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्ता अरूणा रॉय तथा निखिल डे की अगुवाई में राजस्थान में किया गया। साथ ही नरेगा के प्रवर्तन में भी इन गैर सरकारी संस्थाओं की भूमिका रही है। अतः राजस्थान महात्मा गांधी नरेगा के क्रियान्वयन में भी अग्रणी भूमिका में रहा है साथ ही सामाजिक अंकेक्षण एवं सूचना के अधिकार के प्रयोग द्वारा महानरेगा के क्रियान्वयन को भ्रष्टाचार मुक्त एवं पारदर्शी बनाने के प्रयास में अग्रणी राज्य रहा है। राजस्थान में सूचना के अधिकार अधिनियम के प्रचार प्रसार के फलस्वरूप विभिन्न स्तरों पर इस अधिनियम का जनता या गैर सरकारी संगठनों द्वारा महात्मा गांधी नरेगा के सामाजिक अंकेक्षण हेतु जानकारियां प्राप्त करने या अन्य अनियमितता एवं भ्रष्टाचार की आशंका में तथ्य प्राप्त करने हेतु समय–समय पर उपयोग करते है, जिससे राजस्थान में महानरेगा के कई घोटाले उजागर हुए है तथा क्रियान्वयन के जिम्मेदार जनप्रतिनिधियों एवं सरकारी अधिकारी भी आर.टी.आई. के कारण योजना का क्रियान्वयन पारदर्शी करने का प्रयास करते है।

9. गैर सरकारी संगठनों की भूमिका

महात्मा गांधी नरेगा तथा सूचना का अधिकारी अधिनियम 2005 के प्रवर्त्तन में आने के पीछे गैर सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) के लम्बे संघर्षो का इतिहास रहा है जिसमें मजदूर किसान शक्ति संगठन, सूचना एवं रोजगार अभियान प्रमुख रहे है जिसमें श्रीमति अरूणा रॉय एवं श्री निखिल डे का नेतृत्व रहा है। ये दोनों संगठन नेशनल कैम्पेन फॉर पिपुल्स राइट टू इनफोरमेशन जो कि राष्ट्रीय स्तर पर कार्य कर रहा है से जुड़ा हुआ है। गैर सरकारी संगठन महात्मा गांधी नरेगा के क्रियान्वयन को पारदर्शी बनाने में विभिन्न स्तरों पर कार्य कर रहे है। किसी अधिनियम की सफल क्रियान्विति के लिए आवश्यक है जनता में जागरूकता पैदा करना। जनजागरण के लिए गैर सरकारी संगठनों द्वारा नरेगा मेला, पदयात्रा, संगोष्ठियों का आयोजन किया जाता है, इस प्रकार के आयोजन आस्था संस्थान, मजदूर किसान शक्ति संगठन, सूचना एवं रोजगार का अभियान जैसे संगठनों द्वारा समय-समय पर आयोजित किये जाते है।[8]

10 शिकायत निवारण एवं लोकपाल

महात्मा गांधी नरेगा 2005 की धारा 19 तथा 27 के अनुसार राज्य सरकारों को यह शक्ति दी गई है कि इस अधिनियम के क्रियान्वयन के संबंध में किसी व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत की सुनवाई करने के लिए तथा ऐसी शिकायतों को निष्पादन करने के लिए ब्लॉक तथा जिला स्तर पर उपयुक्त शिकायत निवारण तंत्र बनाएगी[9]। इस शक्ति का प्रयोग कर राजस्थान सरकार ने जिलों में जिला महात्मा गांधी नरेगा लोकपाल की नियुक्ति की।

निष्कर्ष

महानरेगा के क्रियान्वयन को पारदर्शी बनाने में उपर्युक्त समस्त अभिकरण अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है लेकिन जनजागरूकता की कमी, तथा श्रमिक वर्ग की आर्थिक राजनीतिक एवं सामाजिक कमजोर स्थिति के कारण, योजना के क्रियान्वयन में व्याप्त अनियमितताओं एवं भ्रष्टाचार के विरूद्ध शिकायत करने में भय तथा आशंका के चलते उक्त अभिकरणों के प्रति सहयोग नही कर पाते।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *तिवारी, चौधरी एवं चौधरी, "महात्मा गांधी नरेगा" ऋचा प्रकाशन, जयपुर, 2011, पृष्ठ संख्या 2-3*
2. *बाबेल, डॉ. बसन्तीलाल, 'पंचायतीराज एवं ग्रामीण विकास योजनाएं', राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 2014, पृष्ठ संख्या 12-14*
3. *पंचायत राज मंत्रालय, भारत सरकार, राष्ट्रीय गौरव ग्राम सभा पुरूष्कार, 2014, www.panchayat.gov.in*
4. *परनामी, डॉ. नैन्सी, "राजस्थान में मनरेगा", राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2013, पृष्ठ संख्या 94*
5. *फड़िया, डॉ. बी.एल., "लोक प्रशासन", प्रतियोगिता साहित्य सीरिज, आगरा, 2002, पृष्ठ संख्या 729*
6. *परनामी, डॉ. नैन्सी, "राजस्थान में मनरेगा", राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2013 पृष्ठ संख्या 94*
7. *शासन सचिव एवं आयुक्त, ई.जी.एस. पत्र दिनांक 20 अप्रेल 2009*
8. *द हिन्दु, मंगलवार, 11 मई 2006*
9. *सिंह, डॉ. सुरेन्द्र, "सूचना का अधिकार", राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2014, पृष्ठ संख्या 03*

भारत विभाजन की यथार्थ अभिव्यक्ति और 'तमस'

रश्मि
शोधार्थी, महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत विभाजन की त्रासदी को लेकर हिन्दी साहित्य में अनेक उपन्यास लिखे गए है। जिसमें झूठा–सच (यशपाल), आधा गांव (राही मासूम रजा), गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान (कृष्णा सोबती), कितने पाकिस्तान (कमलेश्वर), बीज (अमृतराय), बयालीस (प्रतापनारायण श्रीवास्तव) आदि महत्त्वपूर्ण रहे हैं। इसी परम्परा में भीम साहनी का 'तमस' उपन्यास भी सराहनीय रहा है। इसमें 1947 के साम्प्रदायिक दंगों को आधार बनाया गया है। कथा की पृष्ठभूमि पंजाब क्षेत्र रहा है। इसमें तत्कालीन युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का यथार्थवादी अंकन हुआ है।

संकेताक्षर : *विभाजन, त्रासदी, यथार्थ, साम्प्रदायिकता, विसंगतियां।*

आजादी के पश्चात् हुए देश विभाजन से मानवीय सम्बन्धों में दरार, उलझन और विरोध दिखाई देता है, परिणामस्वरूप जो विसंगतियाँ और विकृतियाँ निर्मित हुई उन्हें हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में संवेदनात्मक और वैचारिक दृष्टि से देखा–परखा गया है। आजादी के बदले मिली विभाजन की त्रासदी और सांप्रदायिकता की समस्या को हिन्दी उपन्यासो में यथार्थ अभिव्यक्ति मिली है। ऐसे उपन्यासों में तमस, लौटे हुए मुसाफिर, मैं मुहाजिर नहीं हूँ, झूठा सच, सुखा बरगद, जिंदा मुहावरे, आधा गाँव, तट के बंधन, नष्ट नीड़, छाको की वापसी, और इंसान मर गया, देश की हत्या, पिंजर, पाकिस्तान मेल और उदास नस्ते प्रमुख हैं।

भीष्म साहनी कृत तमस उपन्यास 1973 में लिखा गया था। इस उपन्यास की कथावस्तु 1947 के साम्प्रदायिक दंगो को आधार बनाकर लिखी गई है। इस उपन्यास की कथावस्तु केवल पाँच दिन की दिखाई देती है। ये पाँच दिन 1947 के मार्च यथार्थ है। क्योंकि इन दंगो को उपन्यासकार ने करीब से देखा, ही नही बल्कि वे इस भयानकता का शिकार भी हुए है। उपन्यास में स्वयं उपन्यासकार ने इस संदर्भ में लिखा है–"विभाजन ने मेरे जीवन को बड़े स्तर पर प्रभावित किया। बहुत–सी घटनाएँ मेरी आँखों के सामने घटी। जिस समाज में मैं रहता था, वह रोज–ब–रोज ज्यादा से ज्यादा तनावग्रस्त होता जा रहा था और मैंने लोगो में कड़वाहट देखी। जब मैं बच्चा था, मैंने अपने वहाँ हिन्दू मुस्लिम पहला दंगा देखा।"[1] विभाजन जैसी भयंकर त्रासदियाँ किसी भी देश के धार्मिक परिवेश में अपने आप घटित नहीं होती बल्कि इन विभाजनकारी शक्तियों के पीछे राजनीति, साम्प्रदायिकता, आंतकवद, जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद, रंगभेद आदि घट होते है। जब ये घटक किसी समाज में अपनी गहरी पैठ बना लेते है तब इन्सान अपने जीवन मूल्यों को पीछे छोड़ते हुए हिन्दू–मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई बन जाता है। परिणामस्वरूप लोग धर्मान्धता में इतने अंधे हो जाते है कि अपने–अपने धर्म के वर्चस्व के लिए विभाजन जैसी वीभत्स घटनाओं को अंजाम देते है।

'तमस' एक गंभीर रचना है। जिसमें भीष्म सहानी ने साम्प्रदायिकता और विभाजन से जुडे जीवन के विविध पक्षो का यथार्थ अंकन किया है। क्योंकि 21वीं सदी में आज भी देश के अन्दर साम्प्रदायिक ताकतें बेखौफ अपनी जड़ो का विस्तार कर रही है। इसके लिए सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों भी इनके लिए जिम्मेदार होती है। इस उपन्यास में विभाजनकारी इन्हीं घटकों का उल्लेख अंग्रेजी शासक रिचर्ड के कहने पर रात के अंधेरे में मस्जिद के सामने सूअर काट कर डाल देता है। लेकिन उसे इस बात का अंदाजा नहीं होता कि इसका अंजाम निर्दोष

लोगों को भुगतना पड़ेगा। इतना होने के बाद तो शेष क्या रहता ? मुसलमानों ने हिन्दुओं पर आक्रमण किये। सम्पत्ति लूटकर घरों में आग लगा दी। बदले की झूलसती आग में मुसलमानों ने भी गाय काटकर खुलेआम हिन्दू बाहुल्य इलाकों में फेंक दी। दोनो ही धर्मो के लोगो की अंग्रेजों की राजनीति समझ में नहीं आई और शुरू हो गया पराचर घृणा का खेल जो आखिरकार मौत का तांडव बना। इस खोखली और भयावह राजनीतिका खेल दृ अंग्रेजी शासक रिचर्ड स्वयं अपनी पत्नी लीजा के समक्ष खोल देता है। –"इसमें कोई विशेष बात नही है, लीजा सिविल सर्विस हमें तटस्थ बना देती है। हम यदि घर घटना के प्रति भावुक होने लगे तो प्रशासन एक दिन भी नहीं चल पाएगा। यदि 106 गाँव जल जाएँ तो भी नही ? तो भी नहीं रिचर्ड ने तनिक रूककर कहा ये मेरा देश नहीं है। न ही ये मेरे देश के लोग है।"[2]

भारत में अपने शासन को सुचारू और लम्बा चलाने के लिए अंग्रेजों ने भारतीय लोगो को हिन्दू और मुस्लिम में बाँट कर एक कभी नहीं मिटने वाली खाई पैदा कर दी थी। जिसका परिणाम देश विभाजन में रूप में देखने को मिलता है। अंग्रेजी शासन को यह पता था कि इन लोगों के बीच इस तरह फूट डालने की नई अपनाई गई तो हमारा शासन लम्बा नही चल पायेगा। अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई इस षडयंत्रकारी राजनीति का पर्दाफाश करते हुए स्वयं उपन्यासकार कहते है कि "काश मैं उस विशेष पत्र का उद्धरण आदि दे पाता जिसे एक ब्रिटिश वायसराय ने लिखा जिसमें वह कहता है जिस दिन हिन्दू और मुस्लिम एक साथ आ जाएँगे, भारत के तट से हमारी रवानगी उसी दिन हो जाएगी। यह एक साफ संकेत था कि साम्राज्य तभी लंबा चल सकता था जब हिन्दू और मुस्लिम एक दूसरे की गर्दन पर चढ़ जाएँ। गांधी जी सहित आन्दोलनकारी नेताओं ने सभी के साथ इस दृष्टि को सामने रखा कि ब्रिटिश 'फूट डालो और राज करो' की नीति का पालन करता है। यह एक सचेत तौर पर विकसित नीति थी। उन्होंने न केवल राजनीतिक पहलू को भी इसके अन्तर्गत रखा था। उन्होंने एक समय में हिन्दुओं की पीठ पर हाथ रखा और दूसरे समय में मुस्लिमों की यह काफी समय तक चला।"[3]

भीष्म साहनी ने 'तमस' उपन्यास में इस बात को बेहतरीन ढ़ंग से अभिव्यक्त किया है कि अंग्रेजों ने कैसे धार्मिक कट्टरता को प्रोत्साहित कर विभिन्न धर्मों के बीच मतभेद बढ़ाए। 'तमस' में इस यथार्थ का चित्रण तो किया ही है साथ ही उस आतंक भरे माहौल को जीवित किया है जो मानवता के तहस–नहस कर उसके जीवन मूल्यों और संस्कृतियों को नष्ट किया है। साथ ही उपन्यासकार ने साम्प्रदायिकता के उन कारणो को तलाशते नजर आते है जिनके तूल पकड़ने में विभाजन जैसी भीषण दुर्घटना घटी। भीष्म साहनी ने विभाजन में हुए दंगों की अमानुषिकता को भोगा है। उस भीषण संहार का हमारे पास अगर कोई मजबूत प्रमाण है तो वो 'तमस' उपन्यास है, जिसे पढ़कर हम विभाजन की त्रासदी को पूरी तरह समझ पाते है। विभाजन की इस घटना में सबसे ज्यादा कंलकित और बर्बरता का अध्याय स्त्रियों के साथ हुई यौन पाशविकता का जहाँ सरेआम बलात्कार को एक हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया था। मुसलमानों ने जब स्त्रियों पर हमला किया तो असंख्य औरतें अपने स्वाभिमान और अस्मिता की रक्षा हेतु कुएँ में कूद जाती है। "देखते ही देखते दासियों औरत अपने बच्चों को लेकर कुएँ में कूद गई.....गाँव के पास में जगह–जगह से 'अल्लाह–हो–अकबर' और सतसिरी अकाल के नारों के साथ कुएँ में डूबती औरतों और बच्चों की चीख मिल गई थी।"[4] इतना ही नहीं 'तमस' उपन्यास में कई ऐसे वीभत्स उदाहरण मिलते हैं, जिनको पढ़कर मानवता शर्मशार होती नजर आती है। जिन पर आज विचार को तो हम विश्वास ही नहीं कर सकते। "रास्ते चल रही दो लड़कियों में से एक को चार लफंगो ने पकड़ लिया। चारों ने उसके साथ दुष्कर्म किया थोड़ा–थोड़ा सिसक बोला कसम से.....नीचे से न हूँ न हाँ ध्यान से जब देखा तो मैं लाश से ही जना किए जा रहा था।"[5] वाकई विभाजन के दौर की इन घटनाओं का अवलोकन करते है तो पाते है कि वह दौर मानवता को शर्मशार करने वाला था। जहाँ मनुष्य के सभी मानवीय दाने खत्म हो चुके थे।

इसी तरह विभाजन के कारण सामाजिक विघटन देखने को मिलता है। जो लोग सदियों से झांसी संस्कृति के साथ रहते आये थे। अचानक वो उनके बीच साम्प्रदायिक तनाव और संघर्ष की स्थिति पैदा हो गई थी। इन हिंसा और नफरत के कारण लोगों के जीवन का संगीत बदल चुका था। लोगों की संवेदनाएँ जवाब दे चुकी थी। हर कोई इ़रा हूआ बेगान कठपुतली बनकर जी रहा था। इन तमाम नफरत और द्वेष के घटकों से शहर अधमरे हो गए थे। "दिन के उजाले में शहर

अधमरा–सा पड़ा था, मानो उसे साँप सूँघ गया हो। मण्डी अभी भी जल रही थी, म्यूनिसि फैलती के फायर ब्रिगेड ने उसके साथ जूझना कब का छोड़ दिया था। उसमें से उठने वाले धूँए से आसमान में कालिमा फैल रही थी, जबकि रात के वक्त आसमान लाल हो रहा था। सत्रह दुकानों जलकर राख हो चुकी थीं। दुकानें बन्द थी। दूध–दही की दुकानें कहीं–कहीं खुली थीं और उनके निकट दो–दो–चार–चार आदमी खडे रात की घटनाओं के बारे में कयास लगा रहे थे। मार काट के बारे में अफवाएँ ज्यादा थी। ग्वाल मण्डीवाल कहते है इत्ता में दंगा हुआ है और रत्नावाले कहते है, कमेटी मुहल्ले के दंगा हुआ है।"[6] दंगो में अक्सर बाजारों में लूटपाट कर आगजनी की घटनाएँ लगातार हो रही थी। मारकाट की अफवायें फैल रही थी। जिसके कारण लोग भयभीत थे हर गांव, हर शहर आगजनी में झूलस गया था।

विभाजन की इस भीषण त्रासदी में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों के लोगों को पूरी तरह झकझोर दिया था। इस दहशत के कारण लोग अपना सब कुछ त्यागकर देश छोड रहे थे। जिसमें उनके परम्परागत उद्योग–धन्धे नष्ट हो गये। अब उन्हें आर्थिक विस्थापन का भी सामना करना पड़ रहा था। लोग रोजी रोटी के लिए तरस रहे थे। शहर के साथ ही छोटे–छोटे गाँवों में अपनी आजीविका के लिए सालों से व्यवसाय वाले लोग दुकानदार इस नफरती साम्प्रदायिकता दहशत में गाँव छोड़ने पर मजबूर हो गये। 'तमस' उपन्यास के इस आर्थिक विस्थापन का भी चित्रण किया गया है। ''इस गाँव से निकल चलो, खानपुर चले चलो, जहाँ हमारे सगे–सम्बन्धी रहते है। पर हरनाम नहीं माना।.....चलती दुकान छोड़कर कैसे भागा जाये ? झगड़े–फसाद तो होते रहते हैं, पर काम धन्धा तो बन्द नहीं किया जा सकता। फिर कहाँ जाये। शहर में आयें जहाँ पहले में ही आग लग रही थी ? खानपुर में जाये तो वहाँ हमारा कौन खिलाने के लिए बैठा है ? पीछे किसी ने दुकान लूट ली तो फिर खायेंगे कहाँ से ? बेटा बीस मील दूर मीरपुर गाँव में बैठा है। उसके पास पहुँच भी गए तो वह हम बूढ़ों की जान बचायेगा या अपनी जान बचायेगा। यही चिंता शहर में छोटे–छोटे काम धन्धों वालों को सता रही थी। वे सब कल की चिंता में परेशान थे। रोजी–रोटी न छूटे इसमें चिंतित थे। इत्र फरोश की फेरी का व्यवसाय करने वाला बंद बाजार, तनाव के बीच गुजरते हुए महसूस करता है।[7] ''आज शहर में गड़बड़ है। मुझे भी आज फेरी पर नहीं निकलना चाहिए। –आज भी कोई दिन है फेरी करने का ? सारे शहर में सूखा पड़ा है। पर मैंने सोचा घर पर बैठ कर क्या करूंगा। दो चार आने का जुगाड हो जाये तो क्या बुरा है, दुकानदार घर बैठा रहे तो खायेगा कहां से ?.....इत्र के चार फाहे भी कोई हमसे ले–ले तो हमारी चवन्नी खरी हो जाती है''[8] विभाजन की हिंसा में छोटे–छोटे व्यावसायिकों की रोजी–रोटी छीन भी गई। जिससे परिवार की आजीविका को लेकर भी लोग चिंतित हो उठे थे।

उपरोक्त विवेचन के पश्चात निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि देश की विभाजन की वीभत्स त्रासदी ने सदियों से चिरसंचित साझा संस्कृति, परम्पराऐं, जीवन मूल्यों को एक झटके के साथ तोड़–मरोड़ कर मरणासन स्थिति में ला दिया। इस भयंकर घटना में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को तहस–नहस किया। भीष्म सहानी कृत 'तमस' उपन्यास में उपन्यासकार ने इस घृणित त्रासदी से उजड़े व्यक्ति के साथ दो देशों के बीच कभी न पाटी जाने वाली खाई का चित्रण किया है। इस दरार में मानवता शर्मशार होती दिखाई देती है। व्यक्ति के सामाजिक मूल्य मान मर्यादा, नैतिकता, मनुष्यता, उसके रीति–रिवाज, परम्पराऐं, सांस्कृतिक मूल आदि धाराशायी होते नजर आ रहे है। आजादी के पचहत्तर सालों बाद भी दोनो देशो के लोग विभाजन के दोहरी मार को झेलते हुए जीने को विवश हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *तमस (उपन्यास) : भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2017, संस्करण–34, पृ. 47*
2. *वहीं, पृ. 276–77*
3. *बनासजन (पत्रिका) : सं. पल्लव, अगस्त–2005, पृ. 348*
4. *तमस (उपन्यास) : भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2017, संस्करण–34, पृ. 262*
5. *वहीं, पृ. 258*
6. *वहीं, पृ. 121*
7. *वहीं, पृ. 161*
8. *वहीं, पृ. 148*

भारत में ग्रामीण बेरोजगारी के संदर्भ में मनरेगा योजना के योगदान का अध्ययन

डॉ. दुर्गेश कच्छवाह
सहायक प्रोफेसर, ओंकारमल सोमानी कॉलेज, ऑफ कॉमर्स, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

बेरोजगारी किसी भी देश के विकास में प्रमुख बाधाओं में से एक है। भारत में बेरोजगारी एक गंभीर मुद्दा है। वर्तमान में भारत की 68% जनसंख्या गांवो में रहती है इसलिए यहां मुख्य रूप से ग्रामीण बेरोजगारी अर्थात मौसमी बेरोजगारी व छिपी हुई बेरोजगारी ही पायी जाती है बेरोजगारी के कई कारण है पर मुख्य कारण शिक्षा की कमी, पूंजी का अभाव देखने को मिलता है ग्रामीण क्षेत्रों में मनरेगा योजना चलने से ग्रामीण बेरोजगारी समाप्त तो नहीं हुई है पर कुछ हद तक कम हुई है इसलिए जिन क्षेत्रों में अच्छे कार्य हुए है वहां ग्रामीण बेरोजगारी के साथ-साथ मजदूरों के जीवन में कई पहलू प्रभावित हुए है ग्रामीण मजदूरों को रोजगार मिला है आय में वृद्धि होने के साथ-साथ रहन-सहन के स्तर में सुधार हुआ है क्रय क्षमता में भी वृद्धि हुई है।

संकेताक्षर : *बेरोजगारी, मनरेगा योजना, ग्रामीण बेरोजगारी, रोजगार, सकरात्मक प्रभाव।*

संसार में पांच आर्थिक राक्षस मानवजाति को ग्रसित करने को तैयार रहते है – गरीबी अज्ञानता, गंदगी, बीमारी एवं बेरोजगारी। इन सबमें बेरोजगारी सबसे भयंकर है'' बेरोजगारी समाज एवं राष्ट्र दोनों के लिए हानिकारक है प्रजातन्त्र में बेरोजगारी घातक मानी जाती है बेरोजगारी व्यक्ति को सामाजिक बुराईयों की तरफ ढकेलती है व्यापक बेरोजगारी राष्ट्रीय उत्पादन एवं पूंजी निर्माण दोनों पर प्रतिकुल प्रभाव डालती है गरीबी बेरोजगारी का ही दुष्परिणाम होती है सामान्य तौर पर बेरोजगार व्यक्ति गरीब अवश्य होता है या लम्बे समय तक बेरोजगार रहने से गरीब बन जाता है।

''जब कोई व्यक्ति काम करना चाहता है और वह काम करने के लिए शारीरिक दृष्टि से समर्थ भी है लेकिन अगर उसको कार्य नहीं मिलता जिससे कि वह व्यक्ति अपनी आजीविका कमा सके तो इस प्रकार की समस्या को बेरोजगारी की समस्या के नाम से जाना जाता है''

यही बेरोजगारी कई तरह की समस्याओं को जन्म देती है बेरोजगार होने के कारण लोग चोरी डकेती, लूटमार तथा असामाजिक कार्यो को अंजाम देते है जिससे सामाजिक अशांति फैलती है। ग्रामीण बेरोजगारी को कम करने व लोगों को आत्मनिर्भर बनाने के उद्धेश्य से ही सरकार की महत्वकांशी योजना ''महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना'' का शुभारम्भ किया गया। ''मनरेगा'' दुनिया का अब तक का ऐसा पहला कानून है जिसमें व्यापक पैमाने पर मजदूरी रोजगार की गारंटी दी गई है। इस अधिनियम का प्राथमिक उद्धेश्य मजदूरी रोजगार बढ़ाना है। इसका सहायक उद्धेश्य उन कार्यो के माध्यम से प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन को सुदृढ़ बनाना है जो सूखा, वनों की कटाई तथा मृदा क्षरण जैसे स्थायी गरीबी के कारणों को दूर करते है तथा स्थायी विकास को बढ़ावा देते है यह योजना बेरोजगारी कम करने में काफी हद तक सहायक भी सिद्ध हुई है।

साहित्य की समीक्षा

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के विकास में बेरोजगारी सबसे बाधक तत्व है इसे कैसे कम किया जाए व इसके क्या नकारात्मक प्रभाव होते है इस हेतु बहुत साहित्य उपलब्ध है संबंधित विषय पर कुछ अध्ययन किए गए है। रंजना कश्यप के अध्ययन में पाया गया कि ग्रामीण बेरोजगारी को कम करने में मनरेगा वरदान साबित हुआ है।

उद्देश्य

1. ग्रामीण क्षेत्रों में पायी जाने वाली बेरोजगारी व उसके मुख्य कारणों का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण बेरोजगारी के संदर्भ में मनरेगा योजना के योगदान का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन की विषय सामग्री व आंकड़े प्राथमिक व द्वितीयक स्रोतो से एकत्रित की गई है इस हेतु बेरोजगारी व मनरेगा पर आधारित प्रकाशित रिपोर्ट, संदर्भ पुस्तके, समाचार पत्र, जर्नल, वेबसाईट, शोध लेखो आदि का अध्ययन किया गया।

ग्रामीण – क्षेत्र में बेरोजगारी के कारण

1. **शिक्षा की कमी :–** ग्रामीण क्षेत्र में 42 प्रतिशत लोग अशिक्षित हैं, 30 प्रतिशत प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त किये है, किन्तु उनके बच्चों में शिक्षा की कमी के कारण लोग बेरोजगार हैं।
2. **पूंजी का अभाव :–** बेरोजगारी के कारणों में एक कारण यह भी है कि जनजातीय परिवारों के पास पर्याप्त पूंजी न होने के कारण वे जो भी कमाते हैं उसे दो वक्त की रोटी जुटाने में ही खर्च कर देते हैं। उनके पास इतनी पूंजी नहीं होती कि अच्छी शिक्षा प्राप्त कर सकें या खुद का व्यवसाय चला सकें।
3. **मौसमी कृषि :–** मौसमी कृषि के कारण भी लोग खेती के दिनों को छोड़कर शेष समय में बेरोजगार होते हैं।
4. **मानसून की अनियमितता :–** ग्रामीण जनता कृषि पर निर्भर होती है, और कृषि मानसून पर निर्भर होती है। यदि मानसून अच्छा तो उत्पादन अच्छा और मानसून सही न होने से फसलों के उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। यह भी बेरोजगारी का एक कारण है।
5. **भूमि का उप–विभाजन :–** भूमि का उप विभाजन भी बेरोजगारी का एक कारण है। भूमि को भाई–भाई में, बाप–बेटे में बांटते–बांटते इतने छोटे–छोटे टुकड़े कर दिये गये हैं कि कृषि उत्पादन ढ़ंग से नहीं हो पाता है।
6. **लघु व कुटीर उद्योगों का पतन :–** पहले जिन परिवारों के लिए लघु व कुटीर उद्योग आय प्राप्त करने का जरिया था उनके पतन के कारण लोग बेरोजगार हो गये।
7. **ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरों को कार्य कम व ज्यादा आराम का पसंद होना :–** कुछ ग्रामीण ऐसे भी देखने को मिलते हैं, जैसे कुछ काम कर लिए उसकी मजदूरी मिल जाती है। तो अन्य काम मिलने पर उसे प्राथमिकता नहीं देते हैं भले ही वो क्यों न घर में आराम कर रहे हों। ऐसी स्थिति भी बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि करते हैं।
8. **दोषपूर्ण विचार पद्धति :–** ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश लोग थोड़ा बहुत पढ़ने के बाद नौकरी चाहते हैं। वे कृषि कार्य भी नहीं करना चाहते और स्वयं के व्यवसाय के लिए उनके पास इतनी पूंजी नहीं होती है। यह भी बेरोजगारी का एक कारण है।
9. **कृषि के क्षेत्र में पूंजी प्रधान तकनीकों का अभावः–** ग्रामीण कृषि करते भी हैं तो पुराने तकनीक का प्रयोग करते हैं जिससे उत्पादन ठीक से नहीं हो पाता। क्योंकि अच्छे बीज, खाद व अन्य चीजें खरीदने के लिए उनके पास पर्याप्त पैसे नहीं होते हैं।
10. **प्रशिक्षण सुविधाओं का अभाव :–** ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादातर श्रमिक अप्रशिक्षित होते हैं। अप्रशिक्षित होने के कारण बेरोजगारी उनमें अधिक पायी जाती है।

मनरेगा की विशेषताएँ

केन्द्र सरकार के महत्वकांक्षी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम का नाम बदल कर अब औपचारिक रूप से ''महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम कर दिया गया है नरेगा का नामकरण महात्मा गांधी के नाम पर करने की घोषणा 2 अक्टूम्बर 2009 को गांधी जयन्ती के अवसर पर की थी। ''काम के बदले अनाज योजना'' व सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना'' का विलय अब इस योजना में कर दिया गया है।

इस अधिनियम कि विशेषताएं निम्न है

1. प्रत्येक परिवार के प्रत्येक वयस्क सदस्य जो कुशल शारीरिक मजदूरी के लिए सहमत हो उसे प्रत्येक वित्त वर्ष में कम से कम 100 दिनों का काम पाने का हकदार है।
2. काम का इच्छुक प्रत्येक परिवार ग्राम पंचायत में अपने वयस्क सदस्यों की वांछित जानकारी

देकर पंजीकरण करवा सकता है पंजीकरण 5 वर्ष तक वैध होगा।

3. ग्राम पंचायत पंजीकृत परिवार को फोटो युक्त जॉब कार्ड जारी करेगी जो 5 वर्ष के लिए वैध होगा। जॉब कार्ड पर पंजीकरण संख्या अंकित होगी। यह जॉब कार्ड रोजगार प्राप्त करने का महत्वपूर्ण दस्तावेज होगा।

4. रोजगार पाने के लिए पंजीकृत परिवार के प्रत्येक सदस्य को रोजगार की प्राप्ति के लिए ग्राम पंचायत या कार्यक्रम अधिकारी (ब्लॉक स्तर) को लिखित आवेदन करना होगा।

5. आवेदन करने के 15 दिनों के अन्दर ग्राम पंचायत द्वारा रोजगार दिया जाएगा।

6. यदि पात्र आवेदक को कार्य की मांग के 15 दिनों को भीतर को रोजगार नहीं मिलता है तो उसे निर्धारित शर्त के अनुसार रोजगार भत्ता दिया जाएगा।

7. मजदूरी का भुगतान राज्य में लागू न्यूनतम मजदूरी की दर से किया जाएगा।

8. महिलाओं को प्राथमिकता दी जाएगी जिससे रोजगार पाने वालों में से कम से कम एक तिहाई संख्या महिलाओं की है।

9. कार्य आवेदक के निवास स्थान से 5 किलोमीटर के क्षेत्र में दिया जावेगा। इससे अधिक दूरी पर रोजगार उपलब्धि की अवस्था में 10% अतिरिक्त मजदूरी दी जाएगी।

10. यह योजना रोजगार के अन्य कार्यक्रमों से बिल्कुल अलग है क्योंकि यह मात्र एक योजना नहीं बल्कि एक कानून है जो रोजगार की वैधानिक गारण्टी प्रदान करता हूं।

11. MNREGA अधिनियम के तहत इस योजना में रोजगार की कानूनन गारण्टी प्रदान की गई है अतः आवश्यकतानुसार अधिक राशि भी इस कार्यक्रम के तहत उपलब्ध कराई जा सकती है।

12. MNREGA के अंतर्गत मजदूरी का भुगतान बैंको या पोस्ट ऑफिस खातों के माध्यम से करना अनिवार्य है इससे गरीबों के वित्तीय अन्तर्वेशन में मदद मिलेगी।

13. केन्द्रीय सरकार द्वारा वेतन दर नियत किये जाने तक कृषि मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी लागू होगी।

14. केन्द्रीय रोजगार गारंटी परिषद् गठित की जाएगी जो इसे सौंपे गए विभिन्न कार्य और कर्त्तव्य निभाएगी। प्रत्येक राज्य सरकार भी इसी प्रयोजनार्थ राज्य परिषद् का गठन करेगी।

15. पंचायत जिले के भीतर ही योजना के कार्यान्वयन की देखरेख उसे मॉनीटर करने और निरीक्षण हेतु जिला स्तर पर स्थायी समिति जिला स्तर पर स्थायी समिति का गठन करेगी।

16. इस योजना के लिए राज्य सरकारे प्रत्येक ब्लॉक के लिए एक कार्यक्रम अधिकारी की नियुक्ति करेगी।

17. ग्राम सभा की सिफारिशों पर परियोजनाओं की पहचान करने तथा उन्हें निष्पादित करने और ऐसे निर्माण कार्यों की देख रेख के लिए ग्राम पंचायत उतरदायी होगी।

18. केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय रोजगार गांरटी निधि स्थापित करेगी। राज्य सरकारे इस योजना के कार्यान्वयन के लिए राज्य रोजगार गारंटी निधियां स्थापित करेगी।

19. यह योजना इस अर्थ में स्वयं चयन करेगी कि गरीब लोगों में जिन्हें न्यूनतम वेतन पर काम की जरूरत है, वे योजना के अन्तर्गत काम करें।

बेरोजगारी पर मनरेगा योजना का प्रभाव

1. **बेरोजगारी पर प्रभाव :–** मनरेगा योजना चलने से बेरोजगारी कम हुई है।

2. **रोजी रोटी पर प्रभाव :–** मनरेगा योजना ग्रामीण मजदूरों के जीवन में दो वक्त की रोटी जुटाने में अहम भूमिका निभाती है।

3. **आय पर प्रभाव :–** मजदूरी बढ़ने से निश्चित ही आय में वृद्धि हुई है।

4. **ऋण चुकाने में सहायक :–** ग्रामीण मजदूरों के पास पर्याप्त मात्रा में पैसे नहीं होते हैं, ऐसी स्थिति में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ये ऋण भी लेते हैं। 40 प्रतिशत मजदूर मनरेगा की मजदूरी से ऋण अदा कर पाते हैं।

5. **उन्नत किस्म के खाद व बीज का प्रयोग :–** 50 प्रतिशत मजदूरों को मनरेगा से जो मजदूरी प्राप्त होती है उससे धान के बीज वगैरह खरीद पाते हैं। पहले उनके पास खरीदने के लिए पैसे नहीं होते थे। इससे उत्पादन में वृद्धि हुई है।

6. **कार्यक्षमता में वृद्धि :–** मनरेगा से जो मजदूरी प्राप्त होती है उससे मजदूरों के लेन–देन करने की क्षमता में वृद्धि हुई है। पहले ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को अनाज के रूप में ही मजदूरी प्राप्त होती थी, जिससे लेन देन की क्षमता कम होती थी।

7. **रहन–सहन के स्तर में सुधार :–** कार्यक्षमता बढ़ने से अब लोगों के रहन–सहन में भी बदलाव आया है।

8. अब लोगों को केवल फसल बोने व काटने के समय ही रोजगार मिलता है ऐसा नहीं कहा जा सकता बाकी समय वे मनरेगा में कार्य करके अपनी आजीविका चलाते हैं।

सुझाव

1. **सिंचाई सुविधाओं का विकास :–** ग्रामीण क्षेत्रों में सिंचाई सुविधाओं के विकास पर ज्यादा जोर देने की जरूरत है। जिससे लोग कृषि पर ध्यान दे सकें। सिंचाई सुविधा होने से सभी मौसम में वे कुछ फसल लगा सकते हैं।

2. **लघु व कुटरी उद्योगों का विकास :–** लघु व कुटीर उद्योगों के विकास करने की जरूरत है। जिससे लोग घर में जो भी सामान बना सकते हैं उसका निर्माण अधिक संख्या में करके आत्मनिर्भर बन सकें। जैसे– बांस के सामान, लकड़ी के खिलौने, मिट्टी के बर्तन व खिलौने आदि।

3. **ग्रामीण क्षेत्रों में सहायक उद्योगों का विकासः–** ग्रामीण क्षेत्रों में मौसमी व छिपी हुई बेरोजगारी पायी जाती है इसलिए कृषि के साथ–साथ मुर्गीपालन, पशुपालन जैसे कार्यो को बढ़ावा देने की जरूरत है।

4. **गावों के विकास पर बढ़ावा देने की जरूरत :–** गांव को शहर नहीं पर शहर जैसी सुविधायें प्रदान की जाय जिससे लोग वहां रहने के लिए उचित वातावरण पा सकें।

5. **सामाजिक वातावरण में परिवर्तन की आवश्यकता :–** ग्रामीणों में यह भावना जागृत करने की आवश्यकता है कि घर में बैठे रहने से अच्छा कुछ न कुछ काम किया जाय जिससे अधिक आय की प्राप्ति हो सकेगी।

6. **प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार :–** प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार किया जाय जिससे लोग प्रशिक्षण प्राप्त कर रोजगार में लग सकें व बेरोजगारी कम करने में सहयोग दे सकें।

7. **रोजगार मूलक योजनाओं की जानकारी :–** लोगों को रोजगार मूलक योजनाओं की जानकारी अधिक से अधिक दिया जाय जिससे लोगों तक योजनाओं का लाभ पहुंच सके। इसके लिए योजना प्रचार–प्रसार कर्मियों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

निष्कर्ष :– निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में जनता कृर्षि पर निर्भर होती है तथा ग्रामीण बेरोजगारी के अंतर्गत मौसमी बेरोजगारी व छिपी बेरोजगारी देखने को मिलती है इस बेरोजगारी पर मनरेगा योजना का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि इससे लोगों को रोजगार मिला है उनकी बेरोजगारी कम हुई है आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है साथ ही लोगों की क्रय शक्ति बढ़ी है आय बढ़ने से लोगों के रहन सहन के स्तर में भी सुधार हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *जनगणना 2011 के आंकड़े*
2. *जैन किरण 2013*
3. *राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम 2005 की वार्षिक रिपोर्ट*
4. *httpp/www.yourarticlelibrary.com/ unemployment/rural india.*
5. *अग्रवाल ए.एन. : भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन*
6. *लक्ष्मीनारायण नाथुराम का : भारतीय अर्थव्यवस्था व विकास प्रक्रिया ''हर्षवर्धन जैन कालेज बुक हाउस, जयपुर।*
7. *प्रतियोगिता दर्पण : भारतीय अर्थव्यवस्था विशेषांक*
8. *मिश्र एस. के. : ''भारतीय अर्थव्यवस्था निस्पति और समस्याऐं प्रगति पब्लिकेशन्स दिल्ली*
9. *मुखर्जी रविन्द्रनाथ : सामाजिक शोध व साँख्यिकी विवेकप्रकाशन दिल्ली*
10. *मित्तल के. सी. : रोजगार के सिद्धान्त एवं राजस्व दी. पब्लिशिंग हाउस दिल्ली*

वैश्वीकरण का भारत पर प्रभाव

डॉ. पुष्पा चौधरी
सह आचार्य, राजकीय कला महाविद्यालय,सीकर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

परिवर्तन व विकास अन्तः आधारित एवं अवश्यम्भावी प्रक्रियाऐं है। यह तथ्य विश्व में विद्यमान सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक आदि सभी व्यवस्थाओं के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। औद्योगिकीकरण की अवधारणा भी इसी का परिणाम थी। औद्योगिकी की अवधारणा के साथ ही एक नई अवधारणा 'भूमण्डलीकरण' उभर कर आई जिसने विश्व की समस्त व्यवस्थाओं में आमूलचूल परिवर्तन ला दिया है। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा है। सन् 1991 में नई आर्थिक नीति की घोषणा के साथ भारत ने भी इसे अपना लिया। धीरे-धीरे भूमण्डलीकरण ने भारत में स्थित मिश्रित अर्थव्यवस्था का स्थान ले लिया। निजीकरण एवं अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में खुलपान तथा भारत में विदेशी कम्पनियों का निवेश बढ़ाने पर बल दिया जाने लगा है। मानव जीवन को सुखमय बनाने के लिए हो रही इस भागदौड़ ने जहां राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक उत्पादों तक पहुंच आसान बनाई हैं वहीं प्राचीन भारत जीवन शैली एवं नैतिक मूल्यों को नकारात्मक रुप से प्रभावित किया है। सर्वाधिक त्रुटिरहित जीवन शैली विश्व में यदि कहीं रही है तो वह भारत की ही मानी जाती है लेकिन वैश्वीकरण ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक रुप से उसे कमजोर किया है। हमारी "वसुधैव कुटुम्बकम्" की शाश्वत परम्परा को नकारात्मक रुप से प्रभावित किया है।

संकेताक्षर : *वैश्वीकरण, आर्थिक नीति, रुपान्तरण, धर्म, भ्रष्टाचार, लघु व कुटीर उद्योग, किसान व मजदूर, गरीब-अमीर।*

भारत में वैश्वीकरण की घटना बीसवीं शताब्दी की महत्वपूर्ण घटनाओं में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। 1990 के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था गहरे संकट के दौर से गुजर रही थी। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का भारतीय अर्थव्यवस्था में विश्वास कम हो गया था मुद्रा स्फीती की दर चरम पर थी। विदेशों की ओर भारतीय पूंजी का पलायन हो रहा था। प्रवासी भारतीयों ने अपनी जमा पूंजी यहां से निकालनी आरम्भ कर दी थी। ऐसी विषम परिस्थितियों में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक ने भारत को वैश्वीकरण की नीति अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया तथा यह शर्त लगा दी कि यदि भारत नई आर्थिक नीति को अपने देश में लागू करेगा तभी उसे वित्तीय सहायता प्रदान की जाएगी। दबाव के परिणाम स्वरुप भारत ने 24 जुलाई, 1991 को नवीन उदारीकरण की नीति अपनाई। इस नीति में बाजारीकरण, लाइसैंस, रजिस्ट्रेशन, नौकरशाही, सब्सिड़ी आदि को कम करने पर बल दिया गया। निजीकरण व अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में खुलापन एवं भारत में विदेशी कम्पनियों का निवेश बढ़ाने आदि पर बल दिया गया । इस प्रकार भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था के स्थान पर बाजारोन्मुख वैश्विक अर्थव्यवस्था की स्थापना हुई।

वैश्वीकरण के अर्थ को लेकर बौद्धिक जगत में सहमति नहीं बन पाई है। अभी तक वैश्वीकरण के सम्बन्ध में कोई सन्तुलित दृष्टिकोण उभर कर नहीं आया है। क्योंकि इसके समर्थक व आलोचक दोनों ही प्रकार के विद्वानों द्वारा इसके सन्दर्भ में विचार व्यक्त किए जाते रहे हैं, साथ ही वैश्वीकरण के विभिन्न पक्षों का विशद वर्णन किया जाता रहा है। सामान्य अर्थों में वैश्वीकरण का अर्थ स्थानीय एवं क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रुपान्तरण की प्रक्रिया से लगाया जाता है। यह रुपान्तरण आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, प्रौद्योगिकीय एवं पर्यावरण

आदि विभिन्न क्षेत्रों में हो सकता है। वैश्वीकरण के कारण विश्व के एक कोने में हो रहा विकास या परिवर्तन बहुत सरलता से विश्व के अन्य देशों में भी पहुंच जाता है। यह सत्य है कि इस अवधारणा ने मार्क्स वादियों, नक्सलवादियों, आधुनिकता के आलोचकों, नागरिक अधिकारवादियों, गांधीवादियों, पर्यावरणविदों एवं लोकतंत्र के समर्थकों आदि सभी को विचार करने पर मजबूर कर दिया है। रजनी कोठारी ने वैश्वीकरण को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि वैश्वीकरण पुराने किस्म के भूमण्डलीय साम्राज्यवाद से भिन्न एक अराजनीतिक, प्रौद्योगिकी आधारित और राष्ट्र राज्य को कमजोर करने वाला नव पूंजीवादी सामाज्यवाद है।[1]

इसी प्रकार एंथनी गिडिंग्स ने लिखा है कि वैश्वीकरण को सामाजिक सम्बन्धों के विश्वव्यापी सघनीकरण के रुप में परिभाषित किया जा सकता है जो दूर-दूर स्थित स्थानीयताओं को आपस में जोड़ देता है। यह सूत्र कुछ इस तरह से कार्य करता है कि स्थानीयताओं के दायरे में होने वाली घटनाओं की शक्ल सूरत उनसे बहुत दूर चल रहे घटनाक्रम के आधार पर बनती है। और स्थानीयताओं का घटनाक्रम स्वयं को प्रभावित कर ऐसा ही असर कहीं सुदूर घटनाओं पर डालता है।[2]

वैश्वीकरण वस्तुओं, सेवाओं व पूंजी के सन्दर्भ में विश्व बाजार का बढ़ता हुआ एकीकरण है जिसमें वैश्वीकरण उत्पादन व उपभोग में राष्ट्रीयताऐं अप्रासंगिक हो जाती है।[3] वैश्वीकरण को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण से सम्बन्धित अवधारणा भी माना है जिसमें कारखाने, खेत, वन, सरकारें, बैंक, श्रम तथा कृषि कार्य करने वाली जनसंख्या तथा शहर सभी आपस में गुँथे हुए है।[4] स्पष्ट है कि वैश्वीकरण को केवल आर्थिक प्रक्रियाओं में ही नहीं बांधा जा सकता अपितु इसका सम्बन्ध गैर आर्थिक प्रक्रियाओं से भी है जिसमें राजनीति, इतिहास, संस्कृति, पर्यावरण व समाज सभी समाहित है। ठीक इसी प्रकार वैश्वीकरण से प्रभावित केवल व्यापारिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य ही नहीं है अपितु सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी आदि सभी क्षेत्र प्रभावित है। भारतीय समाज एवं व्यक्ति के जीवन का प्रत्येक क्षेत्र सकारात्मक एवं नकारात्मक रुप से वैश्वीकरण से प्रभावित रहा है। इन प्रभावों को निम्न सन्दर्भो में समझा जा सकता है :-

धर्म पर प्रभाव :- वित्तीय पूंजी का स्वतंत्र आदान-प्रदान, उपभोक्ता समाज का निर्माण एवं संचार की आधुनिकतम प्रौद्योगिकी ने धार्मिक वैश्वीकरण को गति प्रदान की है। धार्मिक कार्यकर्त्ता एवं बुद्धिजीवी सभी ने अपने-अपने धर्म को वैश्विक धर्म सिद्ध करने का प्रयास किया है। धार्मिक नेता आधुनिक तकनीक के माध्यम से अपने अनुयायियों को सम्बोधित भी कर सकते है। और उनसे साक्षात्कार भी कर सकते है। भारत में विश्व हिन्दु परिषद द्वारा हिन्दु धर्म के लिए, मिशनरीज द्वारा ईसाईयत के प्रचार-प्रचार के लिए एवं तबलीगी जमात द्वारा इस्लाम के लिए किए जा रहे प्रयास धार्मिक वैश्वीकरण का उदाहरण है।[5]

लघु एवं कुटीर उद्योग धन्धों पर प्रभाव :- वैश्वीकरण के कारण भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा निर्मित माल मात्रात्मक रुप से अधिक एवं कीमतों की दृष्टि से अधिक सस्ता है जबकि लघु एवं कुटीर उद्योग द्वारा निर्मित माल मंहगा होता है। इस प्रतियोगिता में लघु उद्योगों का पतन हो गया है तथा बेरोजगारी बढ़ी है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने संचार की नूतन तकनीकों के माध्यम से उच्च एवं मध्यम वर्ग को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है जिससे रेहड़ी लगाने वाले एवं फेरी वाले लोग बेरोजगार हो गए है। सरकार द्वारा बनाई जाने वाली नीतियां भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की ही हितसाधक साबित हो रही है। गल्ली-मौहल्लों और फुटपाथ पर व्यवसाय करने वाले लोगों के सामने आजीविका चलाने की समस्या पैदा हो रही है। नगर पालिका, नगरनिगम एवं पुलिस विकास, सुरक्षा एवं सौन्दर्य के नाम पर इन्हें खदेड़ती रहती है। वैश्वीकरण के कारण यह वर्ग निरन्तर शोषण का शिकार होता जा रहा है।[6]

वैश्वीकरण एवं भ्रष्टाचार – वैश्वीकरण की मूल मान्यता विश्व स्तर पर प्रजातंत्र का प्रचार-प्रसार करना है। ताकि नीतियों और कानूनों को लागू करने में पूर्ण पारदर्शिता अपनाई जा सकें। लेकिन भारत में सार्वजनिक जीवन में जिस स्तर पर भ्रष्टाचार में वृद्धि हुई है। उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि यहां वैश्वीकरण को अंगीकार करते समय पारदर्शिता के मंत्र को नहीं अपनाया गया है। ट्रांसपेरेंसी इण्टरनेशल द्वारा प्रकाशित भ्रष्टाचार सूची में 2001 में भारत का स्थान 180 देशों में से 72 वां, 2007 में 73 वां और 2009 में 84 वां रहा है। तथा इसमें निरन्तर वृद्धि हो रही है। मावन जीवन का प्रत्येक क्षेत्र भ्रष्टाचार से ग्रस्त है। प्रशासन, पत्रकारिता, साहित्य, रक्षा तथा निजी

संस्थान ने सबसे ज्यादा किसानों, उपभोक्ताओं तथा आर्थिक रुप से कमजोर–लोगों को प्रताड़ित किया है। पैकेज पत्रकारिता , झूठे विज्ञापन, परम्परागत ज्ञान का कॉपीराइट, विकास के नाम पर विस्थापन आदि विभिन्न आयामों के माध्यम से भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया जा रहा है।[7]

आध्यात्मिक प्रवृति पर प्रभाव – आध्यत्मिकता भारतीय जीवन दर्शन का आधार रही है जो सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय की भावना पर आधारित है। इस दर्शन में अति उपभोग, अति संग्रहण तथा पूंजीवादी विचारधारा के लिए कोई स्थान नहीं है। जबकि वैश्वीकरण पूंजीवाद पर ही आधारित है। आज मानसिक तनाव, घरेलू हिंसा, अशान्ति, खण्डित समाजिक व्यवस्था, कुपोषण विभिन्न बीमारियां अवसाद, मोटापा, पारिवारिक बिखराव, बच्चों, युवाओं एवं वृद्धों की समस्याऐं आदि सभी पूंजीवादी वैश्वीकरण की ही देन है। पूंजीवाद व्यक्तिवादी प्रवृति को प्रोत्साहन देता है तथा गरीब व अमीर के मध्य खाई को बढ़ावा देता है। इसी कारण अति उपभोग से त्रस्त पश्चिमी जनता आध्यात्मिकता की ओर बढ़ रही है। जबकि भारतीय जनता नियन्त्रण मुक्त जीवन शैली अपनाने की ओर तीव्र गति से अग्रसर है। स्पष्ट है कि वैश्वीकरण ने भारत की आध्यात्मिक पहचान पर नकारात्मक प्रभाव डाला है।

युवाओं पर प्रभाव – युवा वर्ग वैश्वीकरण के कारण सबसे अधिक प्रभावित हुआ है। पश्चिमी व्यक्तिवादी संस्कृति एवं तकनीकी विकास ने परम्परागत तौर तरीकों में परिवर्तन ला दिया है। भारतीय युवा पश्चिमी युवा की तरह व्यक्तिवादी एवं स्वकेन्द्रित हो गया है। सूचना तकनीक एवं ज्ञान के क्षेत्र में युवा शक्ति के माध्यम से भारत ने अत्यधिक प्रगति की है। वैश्वीकरण ने युवा वर्ग के समक्ष आई.टी., अनुसंधान, विधि, शिक्षा, कम्प्यूटर, प्रबन्ध भाषा एवं कला, अन्तरिक्ष विज्ञान, समाज सेवा, रंगमंच, विनिर्माण, बहु राष्ट्रीय निगम, एवं कृषि आदि अनेक विकल्प प्रस्तुत किए है। जिनके माध्यम से वे अपनी योग्यता एवं आकांक्षा के अनुरूप उचित विकल्प का चयन कर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर रहे है।[8]

शहरों के स्वरूप में परिवर्तन – वैश्वीकरण के कारण भारत में शहरों के आकार एवं संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को शहरों में व्यवसाय हेतु अनुकूल परिस्थितियां उपलब्ध हो जाती है। जैसे विधुत, जल, सस्ता श्रम, सुरक्षा एवं संचार के साधन। इसके अतिरिक्त स्थानीय कम्पनियां, स्थानीय अभिजन प्रबन्धक तथा बाजार एवं उपभोक्ताओं की रूचि के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करने वाले विशेषज्ञों की सेवाऐं भी शहरों में आसानी से उपलब्ध हो जाती है। इन कारणों से शहरों के आकार एवं संख्या में वृद्धि हुई है। साथ ही गरीबों का जीवन यापन दुरुह हो गया है। क्योंकि स्वतंत्र व्यापार में उनका कोई स्थान नहीं है। साथ ही आधुनिकता के नाम पर इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर विस्थापित कर दिया जाता है। स्पष्ट है कि वैश्वीकरण के कारण पूंजीपतियों की स्थिति मजबूत हुई है। वहीं शहरी गरीबों का जीवन यापन मुश्किल हो गया है।[9]

महिला वर्ग की स्थिति पर प्रभाव – महिलाओं को वैश्वीकरण ने सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही रुपों में प्रभावित किया है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार विश्व में महिला जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश हैं भारत में वैश्वीकरण के कारण सकारात्मक रुप से व्यवसाय, बहुराष्ट्रीय निगमों में प्रबन्धकीय क्षमता, मॉडलिंग, संगीत, सौन्दर्य प्रतियोगिताऐं, नौकरी, फिल्में, राजनीति एवं प्रशासन आदि सभी क्षेत्रों में महिलाओं की सशक्त भूमिका उभर कर आई है। वैश्वीकरण ने महिलाओं के विकास के अनेक द्वार खोल दिए है। महिला शिक्षा पर खर्च बढ़ा है। विवाह की आयु में भी वृद्धि हुई है। वहीं दूसरी ओर वैश्वीकरण के कारण महिलाओं की स्थिति नकारात्मक रुप से भी बहुत अधिक प्रभावित हुई है। महिला विकास को ध्यान में रखते हुए अनेकों सरकारी योजनाऐं बनाई गई है। लेकिन व्यावहारिक स्थिति अलग ही तस्वीर स्पष्ट करती है। महिलाओं को मानवाधिकारों से वंचित किया जा रहा है। तथा वस्तु की भांति उनका क्रय विक्रय बढ़ा है। यौन शोषण आम बात हो गई है। सार्वजनिक स्थलों पर भी महिलाऐं सुरक्षित नहीं है। विभिन्न साइटों एवं उपग्रहीय चैनलों के माध्यम से महिलाओं की उत्तेजक छवि प्रस्तुत की जा रही है। समान कार्य के लिए समान वेतन के अधिकार से वंचित किया जा रहा है। साथ ही काम काजी महिलाओं की पूरी जिम्मेदारी उनके शोषण में वृद्धि कर रही है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के कारण महिलाओं की सकारात्मक व नकारात्मक दोनों स्थिति में अमूलचूल परिवर्तन आया है।[10]

शिक्षा पर प्रभाव – वैश्वीकरण ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था को बहुत अधिक प्रभावित किया है। आज सभी ओर अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा व्यवस्था का बोलबाला है। अभिभावक अपने बच्चों को मंहगे निजी विद्यालयों में प्रवेश दिला रहे है। जिससे सरकारी विद्यालय के स्तर में गिरावट आ रही है। केवल आर्थिक रुप से असमर्थ अभिभावक ही सरकारी विद्यालयों की ओर जा रहे है। सरकारी संस्थाओं में नवीन व्यावसायिक पाठ्यक्रमों एवं संसाधनों का पूर्णतः अभाव है। जबकि यह सुविधाऐं निजी संस्थाओं में उपलब्ध रहती है। लेकिन निजी संस्थाओं में मंहगी शिक्षा होने के कारण गरीब परिवारों के बच्चे वहां नहीं जा पाते है तथा अन्य निजी काम सीखना उपयुक्त समझते है। जिससे वे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। वैश्वीकरण ने शिक्षा का औद्योगिकीरण कर दिया है। एक तरफ सूचना प्रौद्योगिकी से समृद्ध भारत है तो दूसरी ओर मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए संघर्ष करता भारत। इस कारण सबको समान शिक्षा का उद्देश्य पीछे छूट गया है।[11]

ग्रामीण जन जीवन पर प्रभाव – वैश्वीकरण के कारण भारतीय ग्रामीण जीवन शैली भी दोनों ही रुपों में प्रभावित हुई। सकारात्मक रुप से नई तकनीक, नई फसलें, बैंक से आसान ऋण आदि ने गांव की तस्वीर बदल दी है। नकदी फसलें, संचार के उन्नत साधन, फव्वारा एवं बूंद–बूंद सिंचाई सड़क निर्माण, इंटरनेट, टीवी, कृषि की आधुनिक तकनीकें आदि ने गांव का स्वरूप बदल दिया है। साथ ही नई आर्थिक नीति ग्रामीण विकास पर बल देती है। तात्पर्य यह है कि भाषा, आवास, स्वच्छता, खान–पान, शिक्षा तथ अवसर की उपलब्धता आदि सभी ने ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन ला दिया है। साथ ही ग्रामीण जनता की आय बढ़ने से ग्रामीण क्षेत्र उपभोक्ता बाजार में परिवर्तित हो गए है। लेकिन उपरोक्त स्थितियों का लाभ केवल साधन सम्पन्न ग्रामीण जनता ही ले पा रही है। गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले लोग इन लाभों से वंचित है। जिससे गरीब अमीर के मध्य अन्तर ज्यादा बढ़ा है। महात्मा गांधी ने जिस ग्राम स्वराज्य का सपना देखा था, वह वैश्वीकरण में कहीं नहीं है।[12] स्पष्ट है कि भारत में वैश्वीकरण का लाभ कमजोर व वंचित वर्ग को नहीं मिला है। भारत में विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सुझावों की ही पालना की जा रही है। बिना किसी बाधा के स्थानीय संसाधनों का दोहन करने के लिए सस्ते श्रम की आवश्यकता होती है। परिणाम स्वरूप गरीब निरन्तर गरीब होता जा रहा है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है।[13]

पर्यावरण पर प्रभाव – वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारत जैसे देशों के पर्यावरण को अत्यधिक हानि पहुंचाई है। औद्योगीकरण की बढ़ती हुई प्रवृति ने परिस्थतिकीय असन्तुलन पैदा कर दिया है। शहरों का अनियन्त्रित विकास, अत्यधिक जल दोहन के कारण जलवायु एवं भूमि की विषाक्तता में वृद्धि, वनों का विनाश, रासायनिक खाद एवं कीटनाशकों के प्रयोग के कारण कृषि की उर्वरा शक्ति का क्षरण, गम्भीर बीमारियों में वृद्धि, जनता का पलायन, सामाजिक असन्तोष में वृद्धि, गरीबों की संख्या में वृद्धि आदि अनेकों दुष्प्रभाव है। जो प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण उत्पन्न हुए है।[14]

राष्ट्रीय हितों पर प्रभाव – गरीब व अमीर के बीच बढ़ती असमानता ने समाज में गम्भीर असन्तोष को जन्म दिया है। परिणाम स्वरूप विघटनकारी ताकतें सक्रिय हो गई है। जो राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए गम्भीर चुनौतियां उत्पन्न कर रही है। नवीनतम तकनीक और संचार साधनों का प्रयोग राष्ट्रीय सुरक्षा के विरूद्ध किया जा रहा है। लश्कर–ए–तैयबा, तालिबान, इण्डियन मुजाहिदीन, नक्सली संगठन आदि अनेकों ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है जो आधुनिक संचार सांधनों का प्रयोग कर विध्वंसकारी गतिविधियों के माध्यम से देश में अशान्ति फैलाना चाहते है। नकली मुद्रा का चलन, खाद्य पदार्थों में मिलावट, सूचनाओं का आदान–प्रदान आदि नकारात्मक प्रवृतियों को माध्यम बनाया जा रहा है। स्पष्ट है कि अप्रत्यक्ष रुप से वैश्वीकरण राष्ट्रीय सुरक्षा एवं राष्ट्रीय हितों के विरूद्ध भूमिका निभा रहा है। राष्ट्रविरोधी गतिविधियों में वृद्धि हुई है। हिसंक घटनाओं में वृद्धि हुई है। तथा प्रशासन के लिए कानून व्यवस्था बनाए रखना एक गम्भीर चुनौति बन गई है।[15]

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि भारत को वैश्वीकरण ने सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही रुपों से प्रभावित किया है। वैश्वीकरण से शहर एवं ग्रमीण दोनों क्षेत्रों का विकास हुआ है। वैश्वीकरण ने राष्ट्रीय वित्त बाजार को वैश्विक वित्तीय बाजार के रुप में परिवर्तित कर दिया है। तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं पर अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं का प्रभाव स्थापित कर दिया है।[16] लेकिन देश में आर्थिक असमानाताऐं बढ़ी है। भारतीय जीवन शैली

को विश्व में सर्वाधिक त्रुटिरहित जीवन शैली कहा जाता रहा है। लेकिन वैश्वीकरण ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक रुप से हमे कमजोर किया है। समरसतापूर्ण शांतिमय जीवन जीने के आधारों को क्षति पहुंचाई है। वैश्वीकरण का दर्शन हमारी "वसुदैव कुटुम्बकम" की शाश्वत व अद्वितीय मंगल कामना से पूर्णतः भिन्न है। प्राचीन भारतीय जीवन शैली में माननीय प्रतिष्ठा व गरिमामय जीविकोपार्जन को महत्व दिया गया है। वहां नैतिक मूल्यों को हानि पहुचा कर अर्जन करना मानव के लिए वर्जित है। विकास के परिणाम स्वरूप देश में नैतिक मूल्यों, स्वस्थ सामाजिक परम्पराओं व पारिवारिक मान्यताओं का ह्रास हुआ है। घरेलू कुटीर उद्योगों के विनाश एवं कृषि का प्रभाव होने से गरीबतम तबका अत्यधिक गरीब हुआ है।[17] तकनीकविदों व उच्च शिक्षितों के लिए वैश्वीकरण ने रोजगार के अवसर बढ़ाऐं है। जबकि श्रमिकों के समक्ष विकट समस्या उत्पन्न हो गई है। एक ओर वैश्वीकरण की आदर्श परिभाषा में स्वतंत्र आदान–प्रदान है वहीं दूसरी ओर महाशक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका वर्तमान वैश्वीकरण के केन्द्र के रूप में अपने हितों की पूर्ति के लिए इस प्रक्रिया का प्रयोग कर रहा है।

स्पष्ट है कि इस परिघटना ने भारतीय समाज के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया गया है। वैश्वीकरण के वर्तमान स्वरूप को देखते हुये भविष्य में यह प्रक्रिया क्रान्तिकारी परिर्वतनों को जन्म देने वाली सिद्ध हो सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *रजनी कोठारी – जनता के डरते अभिजन और कमजोर हुआ राष्ट्र–राज्य*
2. *ऐथनी गिडिंग्स – दी कॉन्सीक्वैसिज ऑफ मॉडर्निटी*
3. *एग्रीकल्चर ट्रेड – पॉलिसीज एण्ड इश्यूज, मार्च 2006*
4. *अविनाश झा – बैंक ग्राउण्ड टू ग्लोबलाइजेशन*
5. *अरविन्द कुमार महला – भारतीय समाज पर वैश्वीकरण का प्रभाव*
6. *उपरोक्त*
7. *सुरेन्द्र कटारिया, रविन्द्र शर्मा – वैश्वीकृत भारत – प्रभाव एवं बाधाऐं।*
8. *अरविन्द कुमार महला – भारतीय समाज पर वैश्वीकरण का प्रभाव*
9. *उपरोक्त*
10. *उपरोक्त*
11. *उपरोक्त*
12. *जनवरी, 2010 सुरेश तेंदुलकर समिति की रिपोर्ट*
13. *सुरेन्द्र कटारिया, रविन्द्र शर्मा – वैश्वीकरण भारत : प्रभाव व बाधाऐं।*
14. *उपरोक्त*
15. *उपरोक्त*
16. *जॉर्ज सोरोस – ऑन ग्लोबलाइजेशन*
17. *मानचन्द खण्डेला – वैश्वीकरण और भारतीय अर्थव्यवस्था*
18. *सुरेन्द्र कटारिया, रविन्द्र शर्मा – वैश्वीकृत भारत : प्रभाव व बाधाऐं।*

भारत में महिलाओं के संवैधानिक एवं कानूनी अधिकार

डॉ. वैशाली देवपुरा
सहायक आचार्य, राज. मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

किसी भी स्वस्थ एवं सशक्त लोकतांत्रिक समाज का निर्माण महिला एवं पुरूष की समान सहभागिता से ही संभव है। दुर्भाग्यवश विश्व की आधी आबादी अर्थात् महिलाएँ आज भी समानता के स्तर से कहीं दूर है। भारत के इतिहास के परिपेक्ष्य में यदि देखा जाए तो प्रत्येक कालखण्ड में महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आया है लेकिन यह भी सत्य है कि आज महिलाएँ समाज में वह स्थान प्राप्त नहीं कर सकी जिसकी वह हकदार है। इसका प्रमुख कारण भारतीय समाज की परम्परागत सोच, महिलाओं की आर्थिक पराधीनता एवं शिक्षा में कमी है। भारत का संविधान महिला एवं पुरूष दोनों को समान अधिकार देता है लेकिन बड़ी संख्या में महिलाएँ इस बात से भी अनजान है। उनमें जागरूकता का अभाव है। यद्यपि समय-समय पर विभिन्न सरकारों ने योजनाओं एवं अधिनियमों के माध्यम से महिला की स्थिति में सुधार के प्रयास किए है लेकिन बहुत कुछ किया जाना शेष है। प्रस्तुत आलेख भारत में महिलाओं के संवैधानिक एवं कानूनी अधिकारों के संक्षिप्त उल्लेख का प्रयास है।

संकेताक्षर : *महिला, संवैधानिक अधिकार, अधिनियम।*

इतिहास के प्रत्येक कालखण्ड में महिलाएँ समाज का अभिन्न अंग रही है परन्तु समाज का अभिन्न अंग होने के बावजूद पुरूष सतात्मक समाज में लिंग भेद की परंपरा सदैव विद्यमान रही है और इसी कारण से आज भी नारी की स्थिति द्वितीयक दर्जे की है। समाज में व्याप्त अनेक लिंग असमानताओं ने न केवल नारी का शोषण किया अपितु उन्हें अपने मूलभूत अधिकारों से भी वंचित किया है। यद्यपि यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि किसी भी स्वस्थ समाज के निर्माण एवं विकास में स्त्री एवं पुरूष दोनों की परस्पर समान सहभागिता होनी आवश्यक है। भारत में वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ थी जहाँ वे पुरूषों के साथ गुरूकुल में अध्ययन कर सकती थी, जीवन साथी का चयन कर सकती थी और पुरूषों के साथ कंधे से कंधे मिलाकर समाज में यथोचित योगदान दे सकती थी। परन्तु जैसे-जैसे समाज और काल में परिवर्तन हुआ महिलाओं की स्थिति में भी परिवर्तन आया। महिलाओं के अधिकारों में कमी होने लगी तथा महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों की संख्या में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। मुगल काल में महिलाओं की दशा में भारी गिरावट आयी एवं इसी काल में महिलाओं से संबंधित जितनी भी कुरीतियाँ है, वे सब स्पष्ट रूप से समाज में परिलक्षित होने लगी। यहाँ महिलाएँ केवल शोषण का साधन मात्र मानी जाने लगी। इसके पश्चात् कई समाज सुधारकों जैसे राममोहन राय, ईश्वर चंद विद्यासागर, स्वामी दयानंद सरस्वती, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी आदि ने महिलाओं की स्थिति को सुधारने हेतु प्रयास किये एवं उनके द्वारा स्त्री शिक्षा को भी बल दिया गया। इन समाज सुधारकों के द्वारा विधवा पुनर्विवाह का समर्थन, दहेज प्रथा पर रोक, पर्दा प्रथा का विरोध जैसे चिंतनीय मुद्दों को उठाया गया एवं महिलाओं के पुनजार्गरण एवं पुनरूत्थान के लिए प्रयास किये गये। भारत में स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् जब भारत का संविधान बना उसमें भारत के प्रत्येक नागरिक को चाहे वह महिला हो अथवा पुरूष, उन्हें सामाजिक न्याय, समानता एवं स्वतंत्रता, मानव गरिमा व सम्मान के साथ कुछ मूल भूत अधिकार दिये जाने की घोषणा की गयी।

भारतीय संविधान में कहा गया है कि राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान आदि के आधार पर भेद-भाव नहीं करेगा। इस प्रकार भारतीय संविधान महिला एवं पुरूष दोनों को समान अधिकार प्रदान

करता है। महिलाओं के लिए शिक्षा, व्यवसाय, राजनीति, समाज सेवा, चिकित्सा एवं अन्य सभी क्षेत्र पुरूषों के समान ही खुले हुए हैं। संविधान निर्माताओं ने महिलाओं को भी पुरूषों के ही समान सभी क्षेत्रों में समान अधिकार देने की बात को ध्यान में रखते हुए समान संवैधानिक अधिकारों की अवधारणा को ध्यान में रखा। महिलाएँ पुरूषों के समान ही सब प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिकृत की गयी।[1] लेकिन दुर्भाग्यवश कुछ पारंपरिक सामाजिक रूढ़ियों के चलते भारतीय समाज में महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं है। आम भारतीय महिलाएँ यह भी नहीं जानती है कि उन्हें संविधान द्वारा पुरूषों के समान ही अधिकार प्राप्त है एवं सरकारों द्वारा उनके विकास एवं कल्याण के लिए कई कानून विद्यमान है तथा योजनाओं के माध्यम से सरकारें महिलाओं के कल्याण हेतु प्रयासरत हैं। महिला को आज भी समाज में वह सम्मान एवं स्थान प्राप्त नहीं है जो उसे होना चाहिए। 1950 में, भारतीय संविधान अस्तित्व में आया। इस दस्तावेज के बनाये जाने के इतने वर्षों के बाद भी भारत वर्षों पुराने लैगिक मुद्दों में उलझा हुआ है। संसद में महिलाओं के लिए आरक्षण चर्चा का एक ज्वलंत मुद्दा है। ऐसे ही अन्य कई महिला पुरूष असमानता संबंधी सामाजिक मुद्दे व्याप्त है जिनके समाधान की आवश्यकता है।[2]

महिलाओं के विकास हेतु कानूनी अधिकारों के संबंध में कई अधिनियम भी बने हैं लेकिन अभी भी देश की आधी आबादी के जीवन स्तर, शिक्षा तथा आर्थिक स्वावलंबन की दिशा में बहुत कुछ किया जाना शेष हैं।

महिलाओं के संवैधानिक अधिकार

समाज के निर्माण में पुरूष एवं महिलाओं की समान भूमिका है। एक सभ्य समाज की कल्पना तभी संभव है जब लिंग भेद जड़ से समाप्त हो जाए और पुरूष महिला को अबला न मानकर सबला समझने का प्रयास करें। महिला समाज की जननी है। हमारे देश में हम सभी गर्व से भारत माता की जय का उद्‌बोधन करते है अर्थात् हमारी संस्कृति भी हमें महिलाओं को श्रेष्ठ मानने की प्रेरणा देती हैं[3] लेकिन भारतीय समाज एक पितृसत्तात्मक समाज है जहाँ महिला और पुरूष में उच्चता और निम्नता की स्थिति पायी जाती है। ऐसे में महिलाओं के अधिकारों के हनन को कम करने के लिए भारत के संविधान ने महिलाओं के लिए अधिकारों की व्यवस्था की है। इस दृष्टि से भारतीय संविधान के दो भाग महत्त्वपूर्ण है–

(अ) मौलिक अधिकार जिनका उल्लेख संविधान के भाग तीन में अनुच्छेद 12 से अनुच्छेद 35 तक में किया गया है।

(ब) राज्य के नीति निर्देशक तत्व, जिनका उल्लेख संविधान के भाग चार में अनुच्छेद 36 से अनुच्छेद 51 तक में किया गया है।

जहाँ मूल अधिकार को लागू करने के लिए सरकार बाध्य है वहीं नीति निर्देशक तत्व लागू करने के लिए सरकार बाध्य नहीं है। यह राज्य की इच्छा पर निर्भर करता हैं[4] किंतु लोक कल्याण की दृष्टि से राज्य के नीति निर्देशक तत्व समाज में ऐसी सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने की व्यवस्था करते हैं जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं में अनुप्राणित हो सकें तथा लोककल्याण की अभिवृद्धि के प्रयास किये जा सकें।

वैसे कहने को तो भारतीय संविधान में महिलाओं को पुरूषों के समान दर्जा एवं अधिकार प्राप्त है लेकिन दुर्भाग्यवश महिलाओं की स्थिति आज भी दोयम दर्जे की है। व्यवहार में विवाह, तलाक, काम, संपति में अधिकार, गुजारा भत्ता जैसे कई क्षेत्र है जहाँ महिलाओं को पुरूषों के समान नहीं माना जाता रहा है। इस स्थिति में सुधार लाने के लिए एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हमारे समाज में महिलाओं पर होने वाले अत्याचार, हिंसा और शोषण को रोकने के लिए संसद द्वारा समय–समय पर कई अधिनियम भी पारित किये गये हैं जिनके तहत महिलाएँ न्याय प्राप्त कर पुलिस का संरक्षण प्राप्त कर सकती है।

इस प्रकार महिलाओं की अस्मिता एवं गरिमा को बनाए रखने के लिए जहाँ संवैधानिक प्रावधानों की व्यवस्था संविधान में की गयी है वहीं समय–समय बनाए गये अधिनियमों की भी महिलाओं के हित में कानूनी दृष्टि से महती उपादेयता है।

संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान स्त्री और पुरूष को समान दर्जा देता है। इस हेतु संविधान में कई उपबंध उल्लेखित है जो इस प्रकार हैं–

अनुच्छेद 14 – इस अनुच्छेद के अन्तर्गत स्पष्ट प्रावधान है कि कानून के समक्ष सभी समान हैं, सभी को कानून के द्वारा समान सुरक्षा व संरक्षण प्राप्त होगा। किसी भी नागरिक को वर्ण, जाति, रंग, धर्म, लिंग, स्थान, भाषा आदि के आधार पर न तो विशेषाधिकार प्राप्त होगा और न ही उससे पूर्णतः वंचित किया जा सकता है।

अनुच्छेद 15 – राज्य किसी भी नागरिक के विरुद्ध किसी आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। कोई नागरिक केवल धर्म, वंश, जाति, लिंग के आधार पर किसी भी निर्योग्यता दायित्व या शर्त के अधीन नहीं होगा। अनुच्छेद का कोई भी प्रावधान राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशिष्ट प्रावधान बनाने से नहीं रोक सकता। इतना ही नहीं अनुच्छेद 15 का खण्ड तीन कहता है कि इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी[5] राज्य किसी नागरिक के साथ धर्म, लिंग, जाति, प्रजाति, जन्म स्थान, भाषा आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। दुकान, मकान, होटल, सार्वजनिक मनोरंजन स्थल, कुआं, तालाब, स्नान घाट, सड़क, जनता के ठहरने के स्थान, जो पूर्णतः या अंशतः सरकारी राशि से बने हों या जनता के उपयोग हेतु घोषित हो, के सन्दर्भ में किसी नागरिक को धर्म, जाति, नस्ल, लिंग, भाषा आदि के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा। राज्य को अधिकार है कि महिलाओं, बच्चों, अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति तथा सामान्य व शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गो के विकास हेतु विशिष्ट प्रावधान कर सकता है।

अनुच्छेद 16 – राज्य के अधीन किसी रोजगार या नियुक्ति के बाबत नागरिकों के लिंग, आयु, जाति, धर्म, वंश आदि के आधार पर अयोग्य घोषित नहीं किया जा सकता है। लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता से संबंधित यह अनुच्छेद समानता के अधिकार के अंतर्गत जाति विभेद के विरुद्ध रक्षा का उपाय तो है ही, साथ ही यह स्थानीय विभेद अथवा स्त्रियों के विरुद्ध विभेद से भी संरक्षण प्रदान करता है।[6]

अनुच्छेद 19 – भारतीय संविधान का यह अनुच्छेद राज्य के सभी नागरिकों को छह प्रकार की स्वतंत्रताएँ प्रदान करता है यथा वाक स्वातंयिं एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, निरायुध समेलन की स्वतंत्रता, संघ निर्माण की स्वतंत्रता, भारत के राज्य क्षेत्र में अबाध भ्रमण की स्वतंत्रता, निवास करने और बसने की स्वतंत्रता, आजीविका या व्यापार की स्वतंत्रता। किसी भी महिला को स्त्रीलिंग होने के कारण इनमें से किसी भी स्वतंत्रता से वंचित करना मौलिक अधिकारों का उलंघन है।

अनुच्छेद 21 – यह अनुच्छेद प्राण, दैहिक स्वतन्त्रता और संरक्षण के अधिकार की व्यवस्था करता है। यह अधिकार स्त्री–पुरुष को समान संरक्षण देता है।

अनुच्छेद 23 – शोषण के विरुद्ध मूल अधिकार के अंर्तगत यह अनुच्छेद मानव के दुर्व्यापार और बलपूर्वक श्रम का प्रतिषेध करता है।[7] मानव व्यापार, महिलाओं का अनैतिक देह व्यापार, बेगार या अन्य प्रकार की बन्धुआ मजदूरी को पूर्णतया निषेधित घोषित करता है। महिलाओं के विरुद्ध होने वाले शोषण को नारी गरिमा के लिए अनुपयुक्त मानते हुए महिलाओं की खरीद–बिक्री, जबरन वैश्यावृति, भीख मंगवाना आदि का यह अनुच्छेद निषेध करता है।

अनुच्छेद 39 – पुरुष और स्त्री, नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार है। पुरुष और स्त्रियां समान कार्य हेतु समान वेतन प्राप्त करने का अधिकार रखती हैं। अनुच्छेद 39 (क) को संविधान में 42 वें संशोधन अधिनियम (1976) के तहत शामिल किया गया। चूँकि 42 वें संशोधन अधिनियम से उद्देशिका के संशोधन द्वारा राज्य का उद्देश्य 'समाजवादी' बताया गया है। इसमें 'समाजवाद' का अर्थ सामाजिक–आर्थिक सुधारों द्वारा सबको समान अवसर उपलब्ध कराना माना गया।[8] इस अनुसरण में कानूनी सेवा प्रधिकरण, 1987 के अंतर्गत महिलाएँ निःशुल्क विधिक सहायता पाने की हकदार है। इसके लिए जिला, राज्य और राष्ट्र कानून सेवा प्राधिकरण गठित किए गए है। अनुच्छेद 39 (ई) स्त्री व पुरुष कर्मचारी के स्वास्थ्य और शक्ति का दुरुपयोग न हो की व्यवस्था करता है। स्त्रियों के लिए प्रसूतिकाल मे अवकाश की व्यवस्था की गई है।

अनुच्छेद 42 – भारत के संविधान का यह अनुच्छेद काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति साहित्य का उपबंध है। राज्य काम करने की न्यायपरक एवं मानवीय परिस्थितियां पैदा करेगा तथा मातृत्व लाभ देना सुनिश्चित करेगा। इस प्रकार गर्भवती एवं दूध पिलाने वाली महिलाओं के हितों की रक्षा करने का प्रावधान है।

अनुच्छेद 51 – संविधान के अनुच्छेद 51 (क) (ङ) में उल्लेख है कि प्रत्येक नागरिक हमारी संस्कृति की गौरवशाली परम्परा के महत्व को समझे तथा ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के विरुद्ध है।

अनुच्छेद 325 – निर्वाचक नामावली में महिला और पुरुषों को समान रूप से मत देने और चुने जाने का अधिकार देता है।[9] भारत में पुरुष एवं स्त्री को समान मतदान अधिकार दिए गए है।

महिला अधिकारों के सम्बन्ध में अधिनियम

- **सती प्रथा निषेध अधिनियम, 1829 तथा सती प्रथा निवारण अधिनियम, 1987 –** इन

अधिनियमों के तत्व सती होने अथवा सती होने के लिए बाध्य करने वाले के लिए कारावास जुर्माने की सजा का प्रावधान करते हैं। ऐसे कृत्य का महिमामंडन करना भी दण्डनीय अपराध है।

- **विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856 –** इसके अन्तर्गत विधवा स्त्री से पुनर्विवाह करने का अधिकार प्रदान किया गया है।
- **बाल विवाह निषेध अधिनियम, 1929 तथा संशोधित अधिनियम 1976 एवं 2006 –** बाल विवाह पूर्णतः निषेधित होगा, संशोधित अधिनियम 1976 के अन्तर्गत विवाह की आयु लड़के के लिए 21 तथा लड़की के लिए 18 कर दी गई। बाल विवाह अधिनियम 2006 में बाल विवाह पर रोक लगाने, पीड़ित को राहत और सुरक्षा देने का प्रावधान है। यह अधिनियम उन लोगों के लिए सजा में वृद्धि करता हैं जो ऐसे विवाह को बढ़ावा देते है।
- **न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 –** प्रत्येक कामगार के लिए सरकार ने न्यूनतम मजदूरी का प्रावधान किया है। साथ ही कार्य के निश्चित घण्टे तथा सप्ताह में एक दिन के अवकाश का प्रावधान भी किया गया है। महिलाओं से एक साथ पांच घण्टे से अधिक काम नहीं लिया जा सकता है तथा यह कार्य भी सुबह 6 बजे से सायं 7 बजे तक करवाया जा सकता है।
- **चलचित्र अधिनियम, 1952 –** इस अधिनियम में सेंसर बोर्ड के गठन का प्रावधान है जो ऐसी फिल्मों पर रोक लगाएगा जिसमें महिलाओं की मर्यादा भंग होती है।
- **हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955–** स्त्री, पति के पर स्त्रीगमन, दो वर्ष से पत्नी को छोड़कर अलग रहना, क्रूरता, शारीरिक, मानसिक अत्याचार, सात वर्ष से लापता होना, असाध्य रोग का शिकार होना, धर्म बदलना आदि के आधार पर तलाक की मांग भी कर सकती है आर्थिक स्थिति कमजोर होने की स्थिति में स्त्री पुरुष से भरण–पोषण की मांग भी कर सकती है।
- **हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति अधिकार अधिनियम, 1956 –** स्त्री को भी सम्पति में अधिकार प्रदान किया गया है। वह अपनी इच्छानुसार इसका उपयोग कर सकती है। पति की मृत्यु की स्थिति में मृत पति से मिली सम्पति पर उसका अपना अधिकार होता है। हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम 2005 की 2020 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुर्नव्याख्या की गयी और पुरूष उत्तराधिकार के समान ही महिलाओं के पैतृक संपति में उत्तराधिकार और सहदायक अधिकार का विस्तार किया गया।
- **अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956–** इसके अंनर्गत अनैतिक कार्यों के लिए स्त्री, पुरूष या बच्चों की खरीद व बिक्री करना अवैध दुर्व्यापार की श्रेणी में आता है। अनैतिक देह व्यापार से पीड़ित स्त्री 'संरक्षण', 'सुधार' व 'पुनर्वास' की अधिकारी है।
- **दहेज निवारण अधिनियम, 1961–** इसके अन्तर्गत दहेज लेने और देने के सन्दर्भ में दण्ड की व्यवस्था की गई है। दहेज का दण्डनीय अपराध की श्रेणी में रखा गया है।
- **प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961 –** यह अधिनियम प्रावधान करता है कि गर्भवती महिला को गर्भावस्था के दौरान प्रसूति प्रसुविधा प्रदान की जाएगी। यह सुविधा गर्भावस्था के समय प्रसूति से 6 सप्ताह पूर्व तथा 6 सप्ताह बाद तक दी जाती थी, वर्तमान में इसके तहत प्रसूता स्त्री को 180 दिन का सवेतनिक अवकाश प्रदान किया जाता है। यह अधिनियम प्रसूति काल में महिलाओं के रोजगार की रक्षा करता है और मातृत्व लाभ का हकदार बनाता है।
- **समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 –** इस कानून के तहत महिला और पुरुष का लगभग एक तरह के कार्य के लिए समान वेतन मिलना चाहिए, की व्यवस्था की गई है।
- **कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 –** विवाह तथा पारिवारिक विषय से सम्बन्ध रखने वाले विवाद अथवा विवादों का शीघ्र निपटारा करने के उददेश्य से इसकी स्थापना की गई।
- **स्त्री विशिष्ट रूपण (प्रतिबन्ध) अधिनियम, 1986 –** इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी

भी महिला को इस प्रकार चित्रित नहीं किया जा सकता है जिससे उसकी सार्वजनिक नैतिकता को आघात पहुंचे। समस्त विज्ञापन, आदि में अश्लीलता पर प्रतिबन्ध लगाया गया है।

- **73वां एवं 74वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1993–** इस अधिनियम के अन्तर्गत पंचायतों के त्रिस्तरीय ढांचे ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, पंचायत स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला स्तर पर जिला परिषद् में महिलाओं के लिए एक तिहाई आरक्षण का प्रावधान किया गया है।
- **प्रसव पूर्व निदान तकनीकी अधिनियम, 1994 –** इस अधिनियम द्वारा गर्भावस्था में बालिका भ्रूण की पहचान कराने पर रोक लगाई गई है।[10]
- **घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 –** इसका लक्ष्य संविधान के तहत महिलाओं के अधिकारों को सुरक्षा की गारंटी प्रदान करना है। यह परिवार के भीतर होने वाली किसी भी प्रकार की हिंसा के मामलों के लिए कड़ी सजा का प्रावधान करता है।
- **कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न निवारण एवं निषेध अधिनियम 2013 –** यह अधिनियम महिलाओं को उनके कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से बचाने के लिए बनाया गया। इसमें शारीरिक संपर्क, अश्लील टिप्पणी, अवांछनीय शारीरिक आचरण आदि को दण्डनीय अपराध की श्रेणी में रखा गया है।

इस प्रकार भारतीय संविधान द्वारा महिलाओं को समानता का दर्जा दिये जाने हेतु संविधान में कई प्रावधानों का समावेश किया गया। वहीं विविध सरकारों द्वारा समय–समय पर आवश्यकता अनुभव किये जाने पर महिला हित में कानून एवं योजनाएँ बनायी गयी। जैसे–जैसे समाज में चेतना एवं संवेदनशीलता जागृत हुई और महिलाएँ भी आगे आने लगी, उनका समग्र विकास भी प्रारम्भ हुआ। भारत की महिलाओं को सेना में समान अवसर, विवाहित पुत्री को अनुकंपा के आधार पर सरकारी नौकरी का अधिकार, महिलाओं के खिलाफ अपराधों में मुआवजे की व्यवस्था, निजी क्षेत्र में भी काम की समान दशाओं के पक्ष में समय–समय पर न्यायालय में वाद प्रस्तुत किए जाने की स्थिति में महिलाओं के हित में निर्णय भी दिए गए एवं उनके विकास का मार्ग भी प्रशस्त हुआ। यद्यपि मात्र कानूनों या संवैधानिक प्रावधानों के बूते पर महिलाओं की दुनिया को नही बदला जा सकता लेकिन यह भी सत्य है कि इन संवैधानिक और कानूनी प्रावाधानों ने महिला की काफी हद तक शोषण और हिंसा से रक्षा की है। यदि ये कानून नहीं होते तो हिंसा की घटनाओं में और अधिक वृद्धि होती। आज आवश्यकता स्त्री शिक्षा एवं जागरूकता को बढ़ावा देने की है जिससे कि वे अपने अधिकारों के प्रति सजग बने। समाज भी महिलाओं के प्रति संवेदनशील बने। महिलाओं का आर्थिक स्वावलंबन, जागरूकता एवं उनकी शिक्षा ऐसे महत्त्वपूर्ण मापदण्ड है जो उनकी स्थिति में सुधार ला सकते हैं। उन्हें समाज में वास्तविक रूप में समान दर्जा और सच्ची आजादी तभी हासिल होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *राधे श्याम गुप्ता, महिला और कानून, इशिका पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2016, पृ.सं. 55*
2. *प्रो. चन्द्रिका उकानि, भारतीय महिलाओं के संवैधानिक अधिकार, रावत प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. सं. 57*
3. *रामप्रसाद व्यास, भारतीय नारी : परिवर्तन एवं चुनौतियाँ, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2009, पृ. सं. 163*
4. *डॉ. आलोक कु. मीणा, डॉ. मीनाक्षी मीणा, मानवाधिकार उत्पति, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन, गौतम बुक कंपनी, जयपुर, 2013, पृ. सं. 126*
5. *डी.डी. बसु, भारत का संविधान – एक परिचय, लेक्सिस नेक्सिस पब्लिकेशंस, हरियाणा 2019, पृ. सं. 115*
6. *वहीं, पृ.सं. 118*
7. *डी.डी. बसु, भारत का संविधान – एक परिचय, लेक्सिस नेक्सिस पब्लिकेशंस, हरियाणा 2019, पृ. सं. 146*
8. *D.D. Basu, Constitution Law of India, Prentice Hall of India, 1991 Pg. 2-31*
9. *डॉ. आलोक कु. मीणा, डॉ. मीनाक्षी मीणा, मानवाधिकार उत्पति, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन, गौतम बुक कंपनी, जयपुर, 2013, पृ. सं. 127*
10. *डॉ. सविता, 21 वीं सदी की भारतीय महिलाएँ : सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक सरोकार, नीरज पब्लिशिंग हाऊस, 2014, पृ. सं. 154*

संत कवि तुरसीदास निरंजनी और उनका समाज दर्शन

डॉ. पूजा
व्याख्याता, राजकीय बालिका उच्च मा.वि., फतेहपोल, जोधपुर

SHODH SHREE
ISSN 2277-5587 RNI-RAJHIN02071/40531
shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

तुरसीदास निरंजनी ने अपनी वाणी में समाज-क्षेत्र में अनीति की आधारशिला पर आधारित समस्त रूढ़ियों, कुरीतियों का सुहानुभूति एवं उदारतापूर्वक विरोध करके समाज में अभिनव क्रान्ति लाने का प्रयास किया।उनके इस प्रयास से वे एक समाज सुधारक के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। साथ ही उन्होंने समाज के हर पहलू पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। विवेच्य कवि तुरसीदास निरंजनी ने अपनी वाणी के अन्तर्गत सामाजिक दर्शन का विस्तृत विवेचन किया है। इस विवेचन में तुरसी ने व्यंग्यात्मक शैली में बाह्य आडम्बरों का विरोध तथा बनावटी भक्तों को चेतावनी, नास्तिकों का विरोध करते हुए, मध्यम-मार्ग अपनाते हुये आत्मानुभव या अन्तःसाधना पर बल दिया है।

संकेताक्षर : *निरंजनी, तुरसीदास,समाज दर्शन, चितकपटी, अपारख, कामीनर, अपारख नारी के प्रति दृष्टिकोण, जाति-पाँति, मांसाहार का निषेध, मूर्तिपूजा का विरोध, मन की कलुषिता का विरोध, गृह-त्याग, वन-गमन।*

सम्यक् अजन्ति गच्छान्ति जनाः अस्मिन् इति समाज''[1] अर्थात् जिसमें सभी लोग अच्छी तरह से रहें, वह समाज है। समाज के मध्य में रहकर ही मानव अपनी मनुष्यता को प्रभावित करता है और उसकी भाँति समाज भी मनुष्य को प्रभावित करता है। संत सम्प्रदाय के पुरोधा संत कबीरदास ने अपनी साखियों-पदों के माध्यम से समाज में फैली कुरीतियों, बुराईयों तथा भेदभावों को दूर करने का भगीरथ प्रयास किया था। वे जाति-पाँति के सम्बन्ध में स्पष्ट कहते हैं-

जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।।[2]
जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया।
तो आन बाट काहे नहीं आया।।[3]

परन्तु कबीरादि निर्गुणों संतों की भाँति समाज को सुधारना, उसका नेतृत्व करना तुरसीदास जी का उद्देश्य नहीं था। उनका साधना रूपी महल त्याग और तपस्या की नींव पर आधारित था। अतः किसी की निन्दा-स्तुति करना अथवा किसी धर्म, जाति अथवा सम्प्रदाय की साधना पद्धति का खण्डन-मण्डन करना, उनकी आलोचना करना, उन पर व्यंग्य-बाणों का प्रहार करना उनका उद्देश्य नहीं था। जिस समाज में तुरसी उत्पन्न हुये थे, पले थे उसके प्रति कुछ ऋण अवश्य था। उस ऋण की पूर्त्ति तुरसी ने अपनी वाणी में सृर्जित सामाजिक-चेतना के माध्यम से की है। तुरसी का आगमन जिस समय के समाज-क्षेत्र में हुआ, उस समय समाज विशृंखल, अस्त-व्यस्त एवं विनाश की ओर अग्रसर था। जाति एवं वर्ण व्यवस्था अत्यधिक जकड़ी हुई थी। हिन्दू-मुसलमानों की आत्माओं में दरारें पड़ने लगी थी। कुप्रथाएँ, सामाजिक रूढ़ियाँ, बाह्य आडम्बर आदि से समाज रोग ग्रस्त था। वस्तुतः तुरसी ने अनीति की आधारशिला पर आधारित समस्त रूढ़ियों, कुरीतियों का सुहानुभूति एवं उदारतापूर्वक विरोध करके समाज में अभिनव क्रान्ति लाने का प्रयास किया, साथ ही उन्हें सत्य के मार्ग पर लाने का प्रयास किया। अतः तुरसी ने उस समय समाज में प्रचलित जिन कुरीतियों का विरोध किया, उनके इस प्रयास से वे एक समाज सुधारक के रूप में हमारे

सामने प्रस्तुत होते हैं। साथ ही उन्होंने समाज के हर पहलू पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, जिसका विवेचन हम प्रस्तुत कर रहे हैं।

चितकपटी

तुरसीदास निरंजनी ने अपनी वाणी में चितकपटी तथा दुराचारी का यर्थाथ चित्रण किया है। इनकी वाणी में 'चितकपटी कौ परिकरन' में उपर्युक्त विषय की अभिव्यक्ति हुई है। तुरसी ने ऐसे व्यक्तियों को 'दोहरे आचरण' करने वालों के समान बताया है–

मुख अग्र कथै ऐकता, अंतर बरतै आंन।
तुरसीदास मन क्रम बचन, लहै न पद नृबांन।।[4]

तुरसी के अनुसार ऐसे चितकपटी व्यक्ति कितना भी दिखावा कर ले, परन्तु भगवान उन पर कृपा नहीं करते हैं–

संत नांम बहु पावही, चलै असंत की चाल।
तुरसी बरतैं कपटता, क्यूं हरि हौंहि दयाल।।[5]

अपारख

निरंजनी संत तुरसीदास ने अपनी वाणी के अन्तर्गत जहाँ एक ओर राम नाम की महिमा का गुणगान कर समाज को आध्यात्मिक स्वरूप देने का प्रयास किया, वहीं दूसरी तरफ अपने नीति परक विचारों से समाज को नई राह दिखाने का प्रयत्न किया है। 'अपारख कौ परिकरन' के माध्यम से उन्होंने समाज में व्याप्त 'नासमझ' लोगों की स्थिति का स्वाभाविक तथा यथार्थ चित्रण किया है। तुरसी के अनुसार अपारख व्यक्ति को वस्तु के वास्तविक मूल्य की पहचान नहीं होती है–

तुरसी मोती पाऐ बितहर, सब संपति सुखदाइ।
कीमति बिहूंन किराटनिनि, किन किन दीऐ
खिंडाइ।।[6]

ऐसे अज्ञानी/अपारखी लोगों की दृष्टि पाखंड तथा दिखावे के जंत्र–मंत्र में रहती है। इस कारण वे ब्रह्म रूपी हीरे की परख करने में असफल सिद्ध होते हैं–

दृष्टि धात पाखंड मैं, जंत्र तंत्र के मांहि।
ते अग्यांन हरि हीर की, कैसे परख लहांहि।।[7]

पारख

तुरसीदास निरंजनी ने अपनी वाणी में जहाँ एक ओर 'अपारख कौ परिकरन' के अन्तर्गत 'नासमझ' प्रवृत्ति का स्वाभाविक चित्रण किया है, वहीं दूसरी ओर पारख अर्थात् समझदार व्यक्ति का भी निरूपण किया है, ये निरूपण 'पारख कौ परिकरन' के अन्तर्गत किया है।

तुरसी के अनुसार संत ही सच्चे पारखी होते हैं जो हरि रूपी नग को परख सकते हैं–

तुरसी हरि नग परखई, संत बबेकी कोइ।
केते पंडित पारखू, पचि पचि गऐ जु सोइ।।[8]

तुरसी ने पारखी संत के लक्षण बताते हुये कहा है कि–

जाके उर चक्षु खुले, उदयै आत्म ग्यांन।
तुरसीदास ता दास कूं तबै परख आसांन।।[9]

कामीनर

कामी कदे न हरि भजै, जपै न केसौ जाप।
राँम कह्या थै जलि भरै, को पूरिबला पाप।।[10]

संत कबीर की उपर्युक्त साखी में चित्रित हरि–विमुख 'कामी–पुरुष' के बारे में विवेच्य संतकवि तुरसीदास निरंजनी ने अपनी वाणी में कबीर की भाँति ही वर्णन किया है। 'कामीनर कौ परिकरन' में इन्हीं विचारों को अभिव्यक्ति मिलती है।

तुरसी ने अविद्या का मूल ही अकेले 'काम' को माना है। साथ ही काम को 'बली' बताते हुये कहा है कि इसने सभी जीवों को जीत कर उन्हें मार डाला है–

काम समांन कोउ नही, बली जु या संसार।
तुरसी सकल जीव जीति जिहि, मार मिलाऐ
छार।।[11]

तुरसी के अनुसार इसे केवल गुरु की कृपा से ही दूर किया जा सकता है–

काला मुख या कुटलज केरा,
जिहि जीव करि राख्या सब चेरा।
तुरसी उबरि न सक्या कोइ,
बिन सतगुर की कृपा सोइ।।[12]

जब भगवान (राम) अप्रसन्न होते हैं, तब काम का उदय होता है। भगवान की कृपा होते ही काम विलीन हो जाता है–

जावत अप्रछन रांमजी, तावत प्रगट कांम।
तुरसी कांम बिलीमानं होइ, जब प्रगटै मोरे
रांम।।[13]

नारी के प्रति दृष्टिकोण

जिस प्रकार सिक्के के दो पहलू होते हैं, उसी प्रकार संसार की प्रत्येक वस्तु के दो रूप है– एक सकारात्मक दूसरा नकारात्मक। मनुष्य के सज्जन और दुर्जन रूपों की भांति नारी के भी दो रूप हैं– एक सदाचारिणी

पतिव्रता और दूसरा व्यभिचारिणी कामिनी का। संत साहित्य में नारी के दोनों ही रूपों की चर्चा देखने को मिलती है। निर्गुण सन्त साहित्य के अन्तर्गत नारी को माया रूप में चित्रित करते हुए उसको विद्या तथा अविद्या रूप में विवेचित किया गया है। संतों ने नारी के कामिनी रूप को डाकिनी, नागिन, माया का रूप मानकर उसकी भरपूर निंदा की है। निर्गुण संत साहित्य के पुरोधा कबीरदास ने नारी के सम्बन्ध में अपने विचार रखते हुये कहा है कि –

नारि नसावैं तीनि सुख, जा नर पासैं होइ।
भगति मुकति निज ग्यान मैं,
पैंसि न सकई कोइ।।[14]

विवेच्य कवि तुरसी ने भी कबीर आदि संतों की भाँति नारी के कामिनी रूप की निंदा करते हुए उसे विभिन्न उपमान देते हुये वर्णन किया है कि भगवान महादेव का भी मत नारी के संशय व मोहिनी रूप ने डिगा दिया था–

महादेव का मता डिगाया,
ऐसी अप्रबल तेरी माया।।[15]

नारी का कामिनी रूप संशय का आवर्त तथा मनुष्य को विषय–वासनाओं में रत करने वाला है। अतः तुरसी नारी को ठगनी मानते हुये कहते हैं कि–

नारी नैंन न देखीऐ, सुनीऐ मन भाई।
तन मन चौंरै देखतां, ठगनी ठगि जाई।
नैंन बैंन करि बसि करै, रचि भेष बनावै।
षट दरसन जोगी जती, सब कूं मुसि खावै।।[16]

लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उन्होंने नारी की सर्वत्र निन्दा ही की है। अन्य संत कवियों के समान इन्होंने नारी के कामिनी रूप की निंदा की है, वही दूसरी ओर उसके पतिव्रता रूप की प्रशंसा भी की है। निर्गुण संत परम्परानुसार तुरसीदास के काव्य में भी पतिव्रता नारी को आध्यात्मिक संदर्भ में भक्त के प्रतीक रूप में देखा जा सकता है। तुरसीदास ने साधक या आत्मा को नारी रूप में तथा ब्रह्म या परमात्मा को पति रूप में चित्रित किया है। इस सन्दर्भ में डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल का यह कथन उल्लेखनीय है कि, ''निर्गुणी एकेश्वर के भक्त को आलंकारिक भाषा में पतिव्रता नारी कहते हैं।''[17]

जाति–पाँति

जाति–पाँति अथवा वर्ण व्यवस्था का खण्डन निर्गुण संतों को परम्परा से प्राप्त हुआ है। सिद्धों और नाथों में भी यह जाति–व्यवस्था की खंडन प्रवृत्ति दिखाई देती है। हिन्दी के प्रथम कवि सरहपा ने जाति–पाँति का विरोध करते हुए कहा है कि– ''ब्राह्मण ब्रह्म के मुख से उत्पन्न हुए थे, जब हुए थे तब हुए थे। इस समय तो वे भी दूसरे लोग जिस प्रकार पैदा होते हैं, वैसे ही पैदा होते हैं, तो फिर ब्राह्मण रहा कहा ? यदि कहो कि संस्कार से ब्राह्मण होता है तो चांडाल को भी संस्कार दो, वह भी ब्राह्मण हो जाए, यदि कहो कि वेद पढ़ने से कोइ ब्राह्मण होता है तो क्यों नहीं चांडालों को भी वेद पढ़ाकर ब्राह्मण हो जाने देते।''[18]

परन्तु तुरसी ने कबीरादि संतों की तरह जातिगत विरोध न करके वैदिक मतानुसार जाति व्यवस्था कुल के आधार पर न मानकर कर्म के आधार पर स्वीकार करते हैं। वे कर्म को प्रधान मानते हुये कहते हैं कि कर्मानुसार कुलीन व्यक्ति भी नीच और निम्न कुलोत्पन्न व्यक्ति भी अपने कर्म के अनुसार उच्च हो सकता है–

को ब्राह्मण को सूद, समझै नहीं अग्यान नर।
एको चांमर गूद, ऐक उद्र उतपनि भऐ।।[19]

सबमें एक ही तत्त्व है

ब्रह्म रूपी कुंभकार ने पंचतत्त्वों एवं तीन गुणों से मानव–शरीर का निर्माण किया है–

पंच तत गुन तीन का, कीया जु गारा सोइ।
ताही सूं उतपनि कीऐ, विधाता सब कोई।।[20]

कर्मानुसार जाति व्यवस्था ही न्याय संगत है –

वैदिककाल से ही वर्ण–व्यवस्था जन्मगत न होकर कर्म–प्रधान थी। परन्तु परिस्थितियों के बदलाव से मान्यताओं, सामाजिक विचारों व संस्कृतियों में परिवर्तन आने से कर्माश्रित जाति–व्यवस्था जन्माश्रित हो गई। तुरसी के मतानुसार जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है, उसी के अनुसार जाति का निर्धारण होना चाहिये–

जैसौ जैसौ कृत गह्यौ, तैसी तैसी जाति।
तैसौ ही नांव जु नीकस्यौ, परि गयौ क्रम
विभ्रांति।।[21]

तुरसी के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में वे ही उत्तम है, जो अनवरत हृदय में हरि का नाम स्मरण करते हैं–

स्वपच होह भल कुलीन कोउ,
राम भजन मांही तुलि दोऊं।

ज्यूं बगारी गंगा जल सोइ,
सागर मिले विभेद न कोई।।[22]

तुरसी ने अपने मत को स्पष्ट करने के लिए ग्रामीण उदाहरण प्रस्तुत किया है–

ज्यूं जल भरन गई जु मिलि, ऊँच नीच सब नार।
जल कै भेद कोउ नही, इह द्विज इह जु चमार।।[23]

मांसाहार का निषेध

सभी संतों और भक्तों ने मांसाहार का विरोध किया है।

तुरसी ने भी मांसाहार का प्रबल विरोध किया है–

जिह्वा स्वारथ कारनै, हतै पराई देह।
जब जम लेखा मांगि है, तब मुख परैगी खेह।।[24]

अर्थात् केवल अपने जिह्वा के आस्वादन के लिए पशुओं का वध करना, इस सामाजिक बुराई से तुरसी की आत्मा क्षुब्ध थी। इसलिए वे कहते हैं कि व्यक्ति को अपनी आत्मा के समान ही अन्य को समझना चाहिए। परन्तु व्यक्ति दूसरों को दुःखी करके स्वयं को सुखी अनुभव कराता है जो उसकी सबसे बड़ी भूल है–

जो अपनैं काटा चुभै, तौ पर्‌या पर्‌या बिललाइ।
प्रपीर ही जांनै नही, गला काटि कैं खाइ।।[25]

मूर्तिपूजा का विरोध

वैष्णव धर्म के प्रभाव के कारण लोगों में मूर्ति–पूजा के प्रति आस्था थी। परन्तु सन्तों की स्वानुभूति मूलक साधना में प्रतिमा–पूजन (मूर्ति–पूजा) का कोई स्थान नहीं है। तुरसी ने भी समाज में प्रचलित इस परम्परा का तर्क–वितर्क के साथ निरूपण किया, तथा अन्तिम निर्णय जनता पर ही छोड़ दिया। मूर्तिपूजा के प्रति अपनी अनास्था प्रकट करते हुये वे इस विषय में अपने तर्क देते हैं–

तावत कारिज ना सरै, जावत यह अग्यान।
चित्रकार तजि चित्र कूं, करि पूजै भगवान।।[26]
पाहन पूजि पूजि क्यु खीनां, तुरसी तोरि दुष दीया।
इहूं पूजा हरि कूं नहीं भावै,
जौ लौं चित नृविषयन कीया।।[27]

तुरसी शरीर को ही सच्चा मन्दिर/ देवल मानते हैं –

तुरसी द्वादस खंभ का, देवल बन्यां अनूप।
तहां वै रामं बिराज ही, अखण्ड जोति सरूप।।[28]

मन की कलुषिता का विरोध

व्यक्ति मुख से तो भगवान की आराधना करता है, परन्तु मन उसका चंचलवृत्ति व कलुषिता में रत रहता है। तुरसी के अनुसार जब तक व्यक्ति का मन निर्मल, निष्कपट नहीं होगा, तब तक वह राम को रिझाने में असफल ही रहता है। तुरसी ने इसे उदाहरण स्वरूप बताते हुये कहा है कि–

मन चित्त मनसा सुधि नही, तन मंजै का होइ।
कोठी दिन प्रति धोइऐ, तउ न उजल होइ।।[29]

समाज में प्रचलित जन्त्र–मन्त्र–तन्त्र आदि का विरोध

समाज में प्रचलित जन्त्र, मन्त्र, तन्त्र आदि कुरीतियों का चित्रण तुरसी ने कुछ इस प्रकार किया है–

केउ केउ जंत्र केउ मंत्र मैं, केउ बंदगी करांहि।
केउ धात पाखंड की, परे बहांवनि मांहि।।[30]

तुरसी ने उस समय समाज में प्रचलित सिद्धों व नाथों की साधना पद्धति का भी चित्रण किया है। नाथों व सिद्धों की तांत्रिक–साधना में छः प्रकार के अभिचारों का वर्णन मिलता है– (1) मारण (2) मोहन (3) स्तंभन (4) विद्वेषण (5) उच्चाटन (6) वशीकरण। इन गूढ़ पद्धतियों से जनता चमत्कृत हो उठती थी और उनके प्रभाव में आ जाती है। इसका चित्रण करते हुये तुरसी कहते हैं कि–

तुरसी केउ थामनि मोहननि मैं, केउ जोहनि जोहि।
केउ चाटनि मारननि मैं, रहे मुग्ध यूं मोहि।।[31]

गृह–त्याग, वन–गमन, तीर्थादि का विरोध

तुरसी के अनुसार तपस्या कहीं पर भी की जा सकती है, उसके लिए विशिष्ट स्थान का होना आवश्यक नहीं है। मन को केन्द्रित करना ही महान तपस्या है। अतः इस बात को तुरसी अपने इस अनुभवपूर्ण कथन से स्पष्ट करते हैं–

भावै सप्तपुरी बसौ, गृह बन तीरथ ठांइ।
भावै तुरसी गिर गुहा, मुक्ति न बिन हरि नाइ।।[32]

जब तक साधक भगवान के नाम से प्रीति नहीं करता तब तक उसके सभी प्रयास व्यर्थ है–

केऊ जटा भगवा करि बस्तर, तीर्थ कूं उठि धाऐ।
केऊ जरा पुरनि मैं वैसे, बहुतक कष्ट उपाऐ।
पावक मांही उरध पाइ करि, लै लै सीस झुलाऐ।
केऊ जाइ गुफा बन बासै, पै प्रीति बिनां
पछिताऐं।।[33]

वेशभूषा का विरोध

विवेच्य कवि तुरसीदास निरंजनी ने साधु वेश धारण कर

साधु कर्म से विरत रहने वाले ढोंगी साधुओं पर तीखा प्रहार किया है। 'भेष कौ परिकरन' में वे साधुओं पर तीखा प्रहार करते हैं–

ह्वै कपट मन कतरनी, तन हि सुरंगा भेष।
तुरसी ऐसे दुरबुधिन सूं, हूहौ दरस अलेख।।[34]

तुरसी के अनुसार जब तक काम, क्रोध, लोभ आदि मन के विकार दूर नहीं हो जाते, तब तक ह्रदय उज्ज्वल नहीं हो सकता –

का भयौ बहौ भेष जुकीऐ,
छाप तिलक अरू माला।
कांम क्रोध लोभादि तजे बिन,
होइ न उर उजियाला।।[35]

अन्तःसाधना पर बल

तुरसी ने समाज में प्रचलित साधना के बाह्य उपादानों, धर्म के नाम पर पूजा–पाठ सम्बन्धी कर्मकाण्डों का विरोध करते हुए अन्तःसाधना अथवा मानसिक उपासना पर अत्यधिक बल दिया, क्योंकि आन्तरिक साधना में गुण, इन्द्री सभी का विस्तार नहीं होकर, एकाग्र की भावना आ जाती है, जबकि बाहरी पूजा साधना में मन दसों दिशाओं में फैला रहता है–

अभिअंतरि पूजा इह भाव,
गुन इंद्रीन कौ होइ समटाव।
तुरसी बाहरि पूजा करै,
तौ मन फैलि दसौ दिस परै।।[36]

तुरसी के अनुसार ईश्वर का निवास व्यक्ति के अन्तःकरण में ही है, इसलिए उसे बाहर कहीं ढूंढने की आवश्यकता नहीं है–

अंतरजांमी रांम जी नख सखया काइ।
तुरसी व्यापक होइ रह्या, परमल पहुप सुभाइ।।[37]

विवेच्य कवि तुरसीदास निरंजनी ने अपनी वाणी के अन्तर्गत सामाजिक दर्शन का विस्तृत विवेचन किया है। इस विवेचन में तुरसी ने व्यंग्यात्मक शैली में बाह्य आडम्बरों का विरोध तथा बनावटी भक्तों को चेतावनी, नास्तिकों का विरोध करते हुए, मध्यम–मार्ग अपनाते हुये आत्मानुभव या अन्तःसाधना पर बल दिया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *संत काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, पृ. 19*
2. *कबीर, साखी सं. 162*
3. *कबीर : व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृ. 298*
4. *वही, चितकपटी कौ परिकरन, छं. सं. 2*
5. *वही, छं.सं. 17*
6. *वही, अपारख कौ परिकरन, छं.सं. 2*
7. *वही, छं.सं. 12*
8. *वही, पारख कौ परिकरन, छं.सं. 1*
9. *वही, छं.सं. 3*
10. *कबीर ग्रंथावली, कामीनर को अंग, साखी 22*
11. *वही, कामीनर कौ परिकरन, छं.सं. 3*
12. *वही, छं.सं. 4*
13. *वही, छं.सं. 73*
14. *कबीर ग्रंथावली, सं. श्यामसुन्दरदास, कामीनर को अंग, साखी सं 10, पृ.40*
15. *वही, राग आसावरी 23/3*
16. *वही, राग रामकली 25/2*
17. *हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ.सं. 151*
18. *हिन्दी–साहित्य की भूमिका – हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 43*
19. *वही, भरम विधूंस कौ परिकरन, छं.सं. 74*
20. *वही, भरम विधूंस कौ परिकरन, छं.सं. 79*
21. *वही, छं.सं. 80*
22. *वही, भरम विधूंस कौ परिकरन, छं.सं. 91*
23. *वही, छं.सं. 92*
24. *वही, कुदया कठोरता कौ परिकरन, छं. सं. 5*
25. *वही, छं.सं. 7*
26. *वही, भरम विधूंस कौ परिकरन, छं.सं. 15*
27. *वही, राग सोरठि 28/2*
28. *वही, अस्तुति महमा विधान, छं.सं. 23*
29. *वही, भरम विधूंस कौ परिकरन, छं.सं. 22*
30. *वही, छं.सं. 55*
31. *वही, छं.सं. 56*
32. *वही, छं.सं. 58*
33. *वही, राग धनाश्री 10/3*
34. *वही, भेष कौ परिकरन, छं.सं 25*
35. *वही, राग सोरठि 3/1*
36. *वही, अरचन विधान, छं.सं. 13*
37. *वही, कस्तुरी मृग कौ परिकरन, छं.सं. 15*

संघर्ष बनाम समन्वय – अंबेडकर के समाज दर्शन का एक तथ्यपरक मूल्यांकन

डॉ. मनोज अवस्थी
एसोसिएट प्रोफेसर, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

SHODH SHREE
ISSN 2277-5587 RNI-RAJHIN02011/40531
shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत के सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र के आकार ने सदैव ही शोधकर्ताओं को अपनी ओर आकर्षित किया है और उनका यह आकर्षण गलत भी नहीं है, क्योंकि इतनी विभिन्नताओं से सम्पन्न यह राष्ट्र बिखराव के स्थान पर एकता का प्रतीक अधिक रहा है। वास्तव में पाश्चात्य इतिहासकारों व समाजशास्त्रियों ने भारत को एक राष्ट्र के स्थान पर एक उप महाद्वीप की संज्ञा दी है जो कि इसकी भौगोलिक–सांस्कृतिक विराटता की एक आयामी व्याख्या प्रस्तुत तो करती है लेकिन दूसरी तरफ इसकी अनुगूंज यह भी कहती है कि यह एक राष्ट्र नहीं है। भारतीय समाज में इतिहास से वर्तमान तक अनेक ऐसे अवसर आये हैं जब आंतरिक स्तर पर टकराव मुखर हुआ है। अनेकों बार यह विद्यमान संस्कृतियों के मध्य हुआ है। तो वहीं दूसरी तरफ कई बार यह एक ही संस्कृति के बीच भी दिखाई दिया है। भारत की जातिवादी संरचना में यह टकराव अनेकों बार परिलक्षित हुआ है। जातिवादी दुराग्रहों व कुरीतियों के खिलाफ अनेक समाज सुधारकों ने गंभीर प्रयास किये और किसी हद तक सफल भी रहे। ब्रिटिश औपनिवेशिक अवधि में यह कार्य जितनी गहनता व गंभीरता से अम्बेडकर द्वारा किया गया उतना और किसी के द्वारा नहीं। हालाँकि इसका एक दूसरा पहलू भी है कि अनेक पूर्वाग्रही समाजशास्त्रियों, इतिहासकारों व टिप्पणीकारों ने अम्बेडकर के सम्पूर्ण जीवन, दर्शन व साहित्य को मात्र संघर्ष की कांटेदार रस्सियों में बांध दिया है और बड़ी सफाई से समन्वयकारी बिन्दु व विचारों को विलोपित कर दिया है। यथार्थ यह है कि उनके सम्पूर्ण संघर्षों में समन्वय समान्तर चला है।

संकेताक्षर : *सांस्कृतिक टकराव, समन्वयकारी बिन्दु, औपनिवेशिक अवधि, सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र, अनुगूंज।*

आज भारत में जाति व्यवस्था के प्रति असाधारण दिलचस्पी दिखायी जाती है, क्योंकि इस अस्वाभाविक संस्था से मुक्ति पाने के लिए निरंतर प्रयास किये जा रहे हैं। ऐसे प्रयासों के दौरान इसकी उत्पत्ति के संबंध में अनेक विवाद उठ खड़े हुए हैं।''[1]

साहित्य के क्षेत्र में एक वाक्य तमाम साहित्यों के मध्य स्थिरता के साथ विद्यमान है कि 'क्लासिक' बार–बार पढ़े जाते हैं और पढ़े जाने चाहिए। हर बार वह एक 'नई कहानी कहते' नजर आते हैं जो आपकी रुचि व विश्लेषण क्षमता दोनों को नवीन आयाम प्रदान करती है। ऐसा ही कुछ राजनीतिक क्षेत्र में भी किया जाता रहा है और आगे भी यह परंपरा जारी रहनी चाहिए। क्योंकि बदलता समय, परिस्थितियाँ वह आवश्यकताएं हैं जो 'क्लासिकल राजनीतिक विचारों और अवधारणाओं को पुनः परिभाषित' या मूल्यांकित करने के नवीन अवसर उपलब्ध कराती हैं। यदि उन अवधारणाओं और विचारों का वास्तविक लाभ लेना है या उनकी उपयोगिता और को प्रासंगिकता को आंकना है तो यह बड़ा अपरिहार्य हो जाता है। दरअसल समाज विज्ञान में राजनीति विज्ञान 'व्यक्ति पूजा की अवधारणा से प्रभावित' व प्रेरित रहा है। एक लेखक के नाते में इतना पूर्वाग्रही नहीं हूँ कि इस 'भावनात्मक समर्थन' की उपेक्षा करूं क्योंकि यह समाज की सहज अनुक्रिया होती है तथा इसमें कुछ गलत भी नहीं है। लेकिन इसके समांतर ही एक रेखा और चलती है समयानुकूल कसौटी की। वह भी उतनी ही आवश्यक है जितने की विचार। ऐसे में यह अतिआवश्यक हो जाता है कि व्यक्तित्व के विचारों को समय के संदर्भ में भी कसौटी पर कसा जाए और उन्हें मात्र भावानात्मक नहीं बल्कि वैचारिक व तार्किक समर्थन भी प्रदान किया जाए। व्यवहारवादी क्रांति के बाद उत्पन्न हुई

नवीन वैचारिकी व तकनीकों ने भी पुरानी व्यवस्थाओं के विश्लेषण के नवीन आयाम उपलब्ध कराए हैं। ''दूसरे विश्व युद्ध के बाद और 1950–60 के दशक में राजनीतिक व्यवहार शब्द एक दृष्टिकोण एवं एक चुनौती, एक अभिविन्यास एवं एक सुधार आंदोलन, एक प्रकार के अनुसंधान एवं आवाहन का द्योतक है। व्यवहारवादी तकनीकों और नीतियों के बारे में वाद–विवाद में अक्सर अत्यधिक निंदा तक की नौबत आ गई, क्योंकि चर्चाओं का उद्देश्य अक्सर अपने विरोधियों को हराना हो गया है ना कि मुद्दों को स्पष्ट करना।''[2] अंबेडकर के सामाजिक दर्शन के संदर्भ में भी यह कहा जा सकता है। उनके जीवन व विचारों में से मात्र संघर्ष के तत्व को विभिन्न लेखकों व आलोचकों द्वारा अधिक उभारा गया है, लेकिन इसका दुष्परिणाम यह निकला है कि उनकी छवि को एक 'विशिष्ट वर्गीय पसन्द' के रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत कर दिया गया है, जबकि वास्तविकता यह नहीं है। अपनी रणनीतियों, कार्य–योजना, विचारों व भविष्य की संभावनाओं में कहीं भी किसी भी बिंदु पर वह विध्वंसक प्रतीत नहीं होते। उनके विचारों में 'फीनिक्स पक्षी की झलक स्पष्ट दिखाई देती है जो जलने के बाद स्वयं अपनी राख से पुर्नजीवित होता है'। 1913 से 1926 तक का उनका शैक्षिक सफर मात्र पुस्तकों व विद्वानों के अध्ययन तक ही सीमित नहीं रहा। अपनी अध्ययन यात्राओं में जो तत्कालीन विश्व के दो महानतम् लोकतंत्रों में बीती, उन्होंने दर्शन व समाज के अंर्तसंबंधों को भली–भांति पहचाना था। अमेरिका व ब्रिटेन की मध्य बीती उनकी यह शैक्षिक यात्रा दरअसल उनकी विचारों को एक दिशा देने का कार्य कर रही थी। अध्ययन के समान्तर ही वह बड़ी बारीकी से सामाजिक–आर्थिक पर्यावरण को भी विश्लेषित कर पा रहे थे, और भारत के संदर्भ में उनका मूल्यांकन भी कर रहे थे। मनोविज्ञान की दृष्टि से देखें तो अंबेडकर का जीवन भी बड़ा दुर्लभ रहा है। महान मनोवैज्ञानिक सिगमंड फ्रायड के शब्दों में ''कारण यह है कि आज की परिस्थितियों में इसे जीवन कार्य के रूप में अपनाने वाला व्यक्ति विद्या के क्षेत्र में सफलता पाने के मौकों से तो वंचित हो ही जाएगा, और बाद में व्यवसाय के रूप में यह कार्य आरंभ करने पर उसे पता चलेगा कि वह एक ऐसे समाज के बीच रह रहा है, तो उसके लक्ष्यों और आशाओं को गलत रूप में समझता है, उसे संशय और शत्रुता की दृष्टि से देखता है, और उसे अपनी तमाम छुपी हुई दुष्टताओं से तंग करता है। परंतु सदा कुछ लोग ऐसे हुआ करते हैं जिन्हें ज्ञान वृद्धि का इतना प्रबल आकर्षण होता है कि वह ऐसी सब असुविधाएं झेल जाते हैं।''[3] उनके जीवन में दो तत्व जो परस्पर विरोधाभासी हैं, एक निश्चित अवधि के बाद आए हैं, जो कि सामान्यतः नहीं होता। उनका बचपन अत्यंत नकारात्मक सामाजिक पर्यावरण में और युवावस्था अध्ययन के क्षेत्र में स्वतंत्रता की पराकाष्ठा के मध्य बीता। ध्यान देने योग्य तत्व यह है कि उन्होंने अपने उन तमाम नकारात्मक अनुभवों को अपने अध्ययन पर प्रभावी नहीं होने दिया। वे लगातार इस दिशा में वैचारिक दृष्टि से सक्रिय रहे कि इस समस्या का समाधान कैसे निर्मित किया जाए ? यही 'वैचारिक दृढ़ता व अहिंसा के प्रति निरपेक्ष पूर्वाग्रह' उनकी सामाजिकी को औरों से बिल्कुल पृथक तथा ऊपर रख देता है। अपने ब्रिटेन तथा अमेरिकी प्रवास के दौरान उन्होंने 'रंगभेद तथा प्रजातीय श्रेष्ठता के अत्यंत विकृत' रूप देखे थे और भारत के समाज से उसकी तुलना की थी। अपने इस मानसिक शोध में वे इस निष्कर्ष तक पहुंचे थे कि 'अहिंसक संघर्ष व आत्म सुधार के माध्यम से' भारत का दलित समाज अपनी स्थिति को पुर्ननिर्मित तथा पुर्नपरिभाषित कर सकता है। भारत में उनके राजनीतिक जीवन की शुरुआत 'महाड सत्याग्रह–1927' से मानी जाती है, जहां 'पीने के पानी को लेकर दलितों के प्रति पूर्वाग्रह' के विरुद्ध उन्होंने एक सत्याग्रह प्रारंभ किया था। पूरे अधिकार से मैं यह लिख रहा हूँ कि डॉक्टर अंबेडकर का यह पहला कदम ही 'मानव गरिमा तथा प्राकृतिक अधिकारों के संरक्षण' के संदर्भ में मील का पत्थर था। यदि वे चाहते तथा हिंसक संघर्ष को बढ़ावा देने के पक्षधर होते तो इससे अच्छा अवसर उन्हें नहीं मिलता। मैं महाड़ सत्याग्रह के दौरान उनके द्वारा दिए गए एक मराठी भाषण का अनुवाद आप के समक्ष रखता हूँ जो अहिंसा के प्रति उनके आग्रह को स्पष्ट करता है। ''सत्याग्रह का अर्थ है जंग, लेकिन यह जंग तलवारों, बंदूको, तोपों और बमों से नहीं लड़ी जानी है। यह शस्त्रहीन जंग है। इस सत्याग्रह के दौरान सरकार हमें किसी अनुच्छेद के तहत शांति भंग करने के लिए गिरफ्तार भी कर सकती है। आपको जेल जाने के लिए भी तैयार रहना होगा। सत्याग्रह के लिए हमें साहसी एवं स्वाभिमानी व्यक्तियों की जरूरत है और केवल ऐसे बहादुर हृदय वाले लोग जो मानते हैं कि छुआछूत इस देश पर काला धब्बा है और जो इसे समाप्त करने के लिए दृढ़ संकल्पित हैं। केवल उन्हीं को सत्याग्रह अपने

हाथों में लेना चाहिए। मुझे यकीन है कि बहिष्कृत वर्गों में हमें पर्याप्त बहादुर हृदय के लोग मिल सकते हैं।''[4] अहिंसक सामाजिक संशोधनों के प्रति उनके पूर्वाग्रह पूर्णतः स्पष्ट थे। वे किसी भी स्थिति में दलितों को हिंसक होने का पाठ नहीं पढ़ा रहे थे। हालांकि उन्होंने अपने जीवन में अनेकों बार महात्मा गांधी की आलोचना की है, लेकिन यह आलोचना रणनीतिक स्तर पर है। वह दलितों के प्रति गांधी की रणनीतियों में वह दृढ़ता नहीं देखते थे जो उनकी निगाह में अपेक्षित थी। गांधी के प्रति उनका सम्मान स्पष्ट था। उन्हीं के शब्दों में ''महात्मा गांधी देश में एकमात्र ऐसे नेता थे जिन्होंने कहा कि इस तरह के अलगाव को खत्म करना सबसे अहम् है और हमें देश में सामाजिक अन्याय के खिलाफ लड़ना होगा। हर भारतीय को इस दिशा में अपनें मौलिक कर्तव्य का निर्वाह करना चाहिए। गांधी जी ने हमेशा कहा कि राजनीतिक और सामाजिक मसले समान हैं और यही वजह है कि उन्होंने हमेशा कहा कि हिंदू – मुस्लिम एकता और छुआछूत के मसले का हल निकाले बिना स्वराज हासिल नहीं किया जा सकता। निश्चित तौर पर गांधी और अस्पृश्यता में सूक्ष्म भेद है। उन्होंने छुआछूत मिटाने पर उतना जोर नहीं दिया जितना खादी के प्रचार और हिंदू मुस्लिम एकता पर। कोई बात नहीं, जब हर कोई हमसे किनारा कर रहा है ऐसे में गांधीजी की सहानुभूति कुछ कम नहीं।''[5] यही वह एतिहासिक बिंदु है जहां गांधी और अंबेडकर के मध्य एक अंतर उत्पन्न हुआ है। जैसा कि मैंने स्पष्ट किया गांधी की सदाशयता पर अंबेडकर को जरा भी संदेह नहीं है, और वह ऐसा स्वीकारते भी हैं। लेकिन वे राजनीतिक व सामाजिक समस्याओं को समान मानने के गांधी के दृष्टिकोण के विरुद्ध हैं। उनका मानना है कि राजनीतिक व सामाजिक समस्याएं अंतरसंबंधित तो हैं लेकिन किसी भी स्थिति में इन्हें एक नहीं माना जा सकता। उन्होंने इस तथ्य को ऐतिहासिक व विदेशी दोनों उदाहरणों के माध्यम से अनुभव किया था कि 'राजनैतिक समर्थन वह शक्ति संपन्नता के बगैर समाज सुधार के प्रयास' दिवास्वप्न ही साबित होंगे। अपने आगे के राजनीतिक जीवन और उनसे जुड़ी घटनाओं में भी उन्होंने कहीं भी 'अहिंसा के त्याग और हिंसा के समर्थन' का संदर्भ नहीं छोड़ा है। जो इस बात का स्पष्ट प्रतीक है कि उनके समाजशास्त्र में संघर्ष के स्थान पर समन्वय स्थायी केंद्रीय भूमिका में रहा है। सविनय अवज्ञा आंदोलन के पश्चात् ब्रिटेन से प्राप्त हुए गोलमेज सम्मेलनों के आमंत्रण में भारत के दलित समुदाय के प्रतिनिधि के रूप में उनकी उपस्थिति तथा भारतीय समाज में निश्चित तथा स्थायी संशोधनों के माध्यम से परिवर्तन की तलाश हम स्पष्ट देख सकते हैं। यहां एक तथ्य का जिक्र और आवश्यक होता है कि इस दौर में उन्हें गांधी व कांग्रेस विरोधी के रूप में प्रदर्शित किया जा रहा है जो औपनिवेशिक शासकों के लिए एक अच्छी खबर के रूप में देखा जा सकता है किंतु भारत के संदर्भ में यह एक तरफा मूल्यांकन ही कहा जाएगा। 14 अगस्त 1931 को मुंबई के मणि भवन में दूसरे गोलमेज सम्मेलन से पूर्व अंबेडकर और गांधी की पहली मुलाकात दो विलक्षण प्रोतभाओं के रणनीतिक स्तर पर पृथक होने का दस्तावेज मानी जा सकती है। इस मुलाकात में अनेक बातचीत हुई, जिससे दोनों के मध्य वैचारिक आग्रह, पूर्वाग्रह स्पष्ट हुए। इसी मुलाकात का एक अंश पाठकों के समक्ष विश्लेषण के लिए प्रस्तुत है। अंबेडकर नें कहा कि ''आप कहते हैं कि ब्रिटिश सरकार का हृदय परिवर्तन होता प्रतीत नहीं हो रहा है, मैं भी कहता हूँ कि हमारी समस्या पर हिंदुओं का हृदय परिवर्तन होता नहीं दिख रहा है। जब तक वह अपनी बात पर अड़े हैं तब तक हम ना कांग्रेस पर विश्वास करेंगे और ना हिंदुओं पर। हम अपनी मदद आप करने और आत्मसम्मान में विश्वास करते हैं। हम महान नेताओं और महात्माओं में विश्वास करने के लिए तैयार नहीं है।''[6] इसके बाद अन्य मुद्दों पर भी बातचीत हुई, जिसमें अंबेडकर गांधी को और गांधी अंबेडकर को अपने वैचारिक क्षेत्र में लाने में नाकामयाब रहे क्योंकि दोनों ही के साथ अपने अनुभव एवं रणनीतियां उपस्थित थी और वे उन पर किसी भी किस्म के समझौते को तैयार नहीं थे। बैठक के अंत में अम्बेडकर नें कहा कि ''सभी जानते हैं कि मुसलमान और सिख सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से अछूतों से काफी आगे हैं पहली गोलमेज परिषद ने मुसलमानों की आर्थिक मांगों को मान्यता दी है और उनके लिए राजनैतिक सुरक्षा के उपायों उनकी सिफारिश की है। कांग्रेस भी उनकी मांगों से सहमत है। पहली गोलमेज परिषद ने दलित वर्गों के राजनैतिक हकों को भी मान्यता दी है, और उनको राजनीतिक सुरक्षा तथा प्रतिनिधित्व देने की सिफारिश की है। हमारी राय में यह देश के के लिए लाभप्रद होगा आपकी क्या राय है ?''[7] अंबेडकर के इस निर्णयात्त्मक प्रश्न के उत्तर में महात्मा गांधी का जवाब ही इन दोनों के मध्य आने वाले संपूर्ण जीवन में एक स्थायी बाधा का कार्य करने

वाला रहा। गाँधी जी नें स्पष्टतः कहा कि ''मैं हिंदुओं से अछूतों के राजनीतिक अलगाव के खिलाफ हूँ यह पूरी तरह आत्मघाती होगा।''[8] गांधी जी को धन्यवाद देते हुए अंबेडकर ने कहा ''हमें पता तो लग गया कि हम कहां खड़े हैं।'' इसके बाद के अपने संपूर्ण राजनैतिक जीवन में अंबेडकर ने गांधी की अहिंसा वह सत्याग्रह को अपनी रणनीतियों में प्रयोग किया लेकिन सामाजिक–राजनीतिक प्रश्नों को एक समझने में उन्होंने कभी रुचि नहीं दिखायी। उन्होंने 'संघर्ष के स्थान पर समन्वय, को ही वरीयता दी और उस पर कायम भी रहे। किसी भी स्थिति में उन्होंने हिंसा व संघर्ष को प्रोत्साहन नहीं दिया, क्योंकि वह भली भांति जानते थे की हिंसक समाधान अल्पकालीन लाभ का प्रतीक हो सकते हैं, स्थायी समाधान कभी नहीं। भारत में अपना राजनीतिक जीवन प्रारंभ करते समय वे थोड़े वैचारिक आक्रमक अवश्य रहे पर वे इस सत्य को आत्मसात भी कर रहे थे कि भारत की सामाजिक संरचना में 'स्वयं को सिद्ध करना' ज्यादा स्वीकृत विकल्प है। उनसे पूर्व भी अनेकों बार अनेक हाशिये पर स्थित जातियों ने स्वयं को सम्मान का अधिकारी साबित किया था। दरअसल उनकी वैचारिकी व सामाजिकी दो केंद्रों पर आधारित थी, 'अहिंसा एवं आत्मसुधार'। वे इस तथ्य को भलीभांति जानते थे की समाज में दलित वर्ग की सकारात्मक पहचान तभी बन पाएगी जब वे प्रत्येक स्तर पर अपने आप को श्रेष्ठ साबित कर देंगे। इसके लिए उपकरण के रूप में वे संवैधानिक प्रावधानों व राजनीतिक प्रभावशीलता को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते थे। उनकी स्पष्ट धारणा थी कि राजनैतिक प्रभावशीलता के बगैर सामाजिक संशोधन अस्थायी तो हो सकते हैं पर स्थायी नहीं। यही वह कारण था कि उन्होंने मात्र राजनीतिक संरक्षण की ही मांग नहीं उठाई बल्कि सामाजिक स्तर पर दलितों को आत्ममूल्यांकन एवं आत्मग्लानि से मुक्त होने का संदेश भी दिया। उनके समाजशास्त्र में यह स्पष्ट है कि दलित समुदाय के प्रति उन्होंने कहीं भी कोई रियायत नहीं बरती। बड़ी सख्ती से उन्होंने अपनी कमियों को त्यागने, शिक्षित होने, कुरीतियों को छोड़ने तथा अच्छाइयों को ग्रहण करने के लिए निर्देश दिए हैं। उन्हीं के शब्दों में ''हम सब यहां इस मकसद से एक एकत्र हुए हैं कि बहिष्कृत वर्गों की तरक्की के रास्ते और उपाय खोजे जाएं। इसलिए यदि कोई शख्स हमारे विकास के रास्ते में आता है, चाहे वह बहिष्कृत वर्ग से हो या ऊँची जाति का, हिंदू हो या किसी ऐसे संगठन का से हो जो वर्तमान में हमारी भलाई के खिलाफ काम करता हो या अतीत में ऐसा करता रहा हो तो क्या हमें इसके प्रति अपना घोर विरोध व्यक्त नहीं करना चाहिए?''[9] अस्पृश्य वर्ग की मनःस्थिति को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अपने अनेक लेखों, पुस्तकों, व्याख्यानों में बड़ी स्पष्ट व अहिंसक व्याख्याऐं प्रस्तुत की है। जिनमें 'हिंसा का महिमामंडन' कहीं नहीं किया गया। तार्किक आधार पर उन्होंने सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों को पूरी निर्ममता के साथ प्रस्तुत किया है। कालाराम मंदिर में लगातार 5 वर्ष तक चला प्रवेश आंदोलन किसी भी स्थिति में हिंसक नहीं हुआ। जहां सवर्ण वर्ग द्वारा मंदिर प्रवेश प्रक्रिया में दलितों पर रोक के विषय में अंबेडकर नेतृत्व कर रहे थे। तत्कालीन सामाजिक संदर्भों एवं समानता के लिए उनके आग्रह उनकी रचना 'कांग्रेस और गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया' के प्रथम वाक्य से स्पष्ट होती है कि 'हमारा मालिक बने रहने में आपका हित हो सकता है, किंतु आपका दास बने रहने में हमारा क्या हित है'? – लुकिडिडेस। एक यूनानी नाटक से उद्यत यह टिप्पणी उनकी समाज सुधार के प्रति पूर्वाग्रही सोच की प्रतीक है। जिसमें वे 'पारलौकिक संशोधनों की तुलना में लौकिक यथार्थवादी बदलावों' को अधिक महत्व देते हैं। उनकी स्पष्ट धारणा थी कि अहिंसक पर संवैधानिक प्रावधान ही दलित समुदाय के विकास व भारत के समाज के विखंडन से बचाव दोनों का एक उपाय हो सकते हैं। दलितों को पृथक संवैधानिक संरक्षण के मुद्दे पर गांधी जी द्वारा किए गए आमरण अनशन के विषय में 19 सितंबर 1932 को डॉक्टर अंबेडकर द्वारा जारी बयान को एक दस्तावेज के रूप में यहां रखा जा सकता है जिसमें उन्होंने कहा कि ''यही कारण है कि मैं अपने लोगों की सुरक्षा की वैधानिक गारंटी चाहता हूँ। यदि गांधीजी सांप्रदायिक पंचाट में परिवर्तन करना चाहते हैं तो उन्हें चाहिए कि वह अपने ऐसे प्रस्ताव सामने लाएं और सिद्ध करें कि उनके प्रस्ताव दलितों को सांप्रदायिक पंचाट द्वारा दी गई गारंटी की अपेक्षा बेहतर गारंटी देते हैं। मुझे आशा है गांधीजी अतिवादी कदम उठाने का विचार छोड़ देंगे। जब हम पृथक निर्वाचन की मांग करते हैं, तो इसका अर्थ यह नहीं कि हम हिंदू समाज को हानि पहुंचाना चाहते हैं। हम पृथक निर्वाचन की मांग इसलिए करना चाहते हैं कि हमारी असहाय जनता सवर्ण हिंदुओं की दया पर ही निर्भर रहने के लिए ना छोड़ दी जाये।''[10] दलित समाज की 'आत्मशुद्धि तथा आत्ममुक्ति' के लिए भी अंबेडकर

उतने ही जिज्ञासु थे जितने की संवैधानिक उपचारों के प्रति गंभीर। उन्होंने इस तथ्य को स्पष्टतः अनुभव किया था की दलित समुदाय द्वारा अपनाए जाने वाले सामाजिक रीति रिवाज व क्रियाकलाप ही उन्हें औरों से अलग प्रदर्शित कर देते हैं। कालांतर में यही प्रदर्शन उनके लिए आत्मग्लानि व शारीरिक और मानसिक हिंसा को स्वीकार करने का सबसे प्रबल माध्यम बन जाता है। उन्हीं के शब्दों में ''मुझे बहुत खुशी है कि आप इस सभा में पधारी हैं। जिस तरह गृहस्थी में स्त्री पुरुष मिलकर समस्याओं को सुलझाते हैं, उसी तरह समाज की गृहस्थी की समस्या भी स्त्रियों और पुरुषों को मिलकर सुलझानी चाहिए। वास्तविक अर्थ में छुआछूत को हटाने का मुद्दा पुरुषों का नहीं बल्कि आप महिलाओं का है। आपने हम पुरूषों को जन्म दिया। एक और बात में आपको बताना चाहता हूँ कि आपको पुराने और घृणित रीति-रिवाजों और परंपराओं का त्याग कर देना चाहिए। वास्तव में अछूतों के माथे पर छुआछूत का ठप्पा तो नहीं लगा है, लेकिन जिन रीति रिवाजों और प्रथाओं का आप पालन करती हैं उससे दूसरों पर यही जाहिर होता है कि अमुक व्यक्ति अछूत है।''[11] स्त्री समर्थन व सहयोग को उन्होंने 'सामाजिक परिवर्तन की अनिवार्य स्थिति' के रूप में स्वीकार किया है। उनकी मान्यता थी कि सांस्कृतिक रीतियों व परंपराओं का पालन जितनी निष्ठा से महिलाओं द्वारा किया जाता है, कालांतर में वही उनका 'पहचान पत्र बनकर स्थापित हो जाता है।'

पिछले कुछ दशकों से अंबेडकर की सामाजिकी को हिंसक रंग में रंगने के प्रयास जारी है। पुस्तकों, आलेखों, विभिन्न प्रसारण माध्यमों के एकतरफा संवादों में हिंसा को महिमामंडित करने के आत्मघाती प्रयास अनवरत जारी हैं। दलित चेतना के नाम पर हिंसा का गीत गायन व प्रतिशोधात्मक वैचारिकी की स्थापना एक गंभीर चुनौती के रूप में सामने आ रही है। यहां यह स्पष्ट करना बेहद आवश्यक है कि अपने संपूर्ण जीवन में हिंसा के पक्ष में एक भी वाक्य जारी न करने वाले महान व्यक्तित्व के साथ ऐसी नाइंसाफी बर्दाश्त के बाहर है। अनेक नई संकल्पनाऐं गढ़ी गई हैं। मूल दर्शन हिंसक क्रांति का है। यही वह स्वघोषित व्याख्याकार हैं जो अंबेडकर व गांधी को दो पृथक ध्रुवों के रूप में प्रदर्शित करते रहे हैं। उन्होंने वह तत्व कभी नहीं प्रदर्शित किए जिन बिंदुओं पर अंबेडकर व गांधी एक साथ खड़े नजर आए हैं। उदाहरणार्थ साम्यवाद का विरोध तथा अहिंसा का सातत्य। यह पूरा आलेख तथा अंबेडकर और गाँधी का पूरा जीवन इस सत्य को प्रकट करता है कि 'अहिंसा के प्रति वह गांधी के समकक्ष थे।' किसी भी स्थिति व किसी भी बिंदु पर उन्होंने संवैधानिक साधनों के प्रयोग व अहिंसा के निषेध पर कोई समझौता नहीं किया है। दूसरी ओर उनके विचारों को हिंसक रंग में रंगने की प्रवृत्ति का उदाहरण जरा यूँ देखिए कि ''गोलमेज कांफ्रेंस के मौके पर गांधी ने आंबेडकर को अछूतों का प्रतिनिधि माननें से इनकार कर दिया था, लेकिन पूना पैक्ट के अवसर पर उन्होंने पैंतरा बदला और आंबेडकर को उनका प्रतिनिधि मानकर पैक्ट पर हस्ताक्षर कराने के लिए तुरंत राजी हो गए। गांधी ने स्वयं पैक्ट पर हस्ताक्षर नहीं किए लेकिन अन्य लोग जिनके हस्ताक्षर इस ऐतिहासिक दस्तावेज पर थे उनकी सूची रोचक है। जी डी बिड़ला, गांधी के उद्योगपति प्रायोजक – संरक्षक, पंडित मदन मोहन मालवीय रुढ़ीवादी ब्राह्मण नेता और दक्षिणपंथी हिंदू महासभा के संस्थापक वी. डी. सावरकर, पलवंकर बालू, एक अछूत क्रिकेट खिलाड़ी, और हाँ एम.सी. राजा।''[12] सुधी पाठक जरा इस पुस्तक की भाषा और उसमें किए जा रहे प्रहारों पर ध्यान दें। वही पुरानी रणनीति, वही हिंसक विचार, वही दो विचारों की पृथक पृथक मौजूदगी को मात्र एक दूसरे के खिलाफ देखना या देखने की वैचारिक मजबूरी। पूना पैक्ट पर जिन हस्ताक्षरकर्ताओं का जिक्र ऊपर व्यंग्य रूप में किया गया है दरअसल वे सभी कॉग्रेस के नवीन रूख, धुर परंपरावादी ब्राह्मणवादी सोच, दक्षिणपंथी हिंदू तथा एक प्रगतिशील दलित की मौजूदगी है जिसमें गांधी के विराट लोकतांत्रिक आयाम की झलक मिलती है। पाठक इसे और गंभीरता से सोचें कि इस बिंदु पर डॉ आंबेडकर ने कोई आपत्ति नहीं की, ना इन में से इसी अन्य व्यक्ति ने, लेकिन एक विशेष विचारधारा के प्रतिनिधियों को शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व पर आश्चर्य भी है और एतराज भी। दरअसल शांति के ''बंदूक की नाल से निकलने की हास्यास्पद कल्पना करने वाली सोच' जड़ता का प्रतीक होती है। संविधान निर्माण की प्रक्रिया के दौरान जब जवाहरलाल नेहरू और वल्लभ भाई पटेल द्वारा इस प्रक्रिया में किसी संविधान विशेषज्ञ की विशेषज्ञता प्राप्त करनी चाही गयी, जिस पर वे ब्रिटिश विद्वान सर आइवर जैनिंग्स के नाम पर सहमत थे। तब वे महात्मा गांधी थे जिन्होंने निसंकोच भीमराव अंबेडकर का नाम प्रस्तावित किया था। क्या इसे हम गांधी पर अंबेडकर के प्रभाव के रूप में रेखांकित नहीं

कर सकते? आधुनिक भारत का आधुनिक दलित चिंतन पूर्ण राष्ट्रवादी, संविधान के प्रति समर्पित, तथा सामाजिक समरसता के लिए प्रतिबद्ध है और यह अंबेडकर को सबसे बड़ी श्रद्धांजलि कही जा सकती है। संविधानवाद के विशेषज्ञ और संवैधानिक साधनों में दृढ़ विश्वास रखने वाले व्यक्तित्व को संपूर्णता में देखा जाना सर्वाधिक आवश्यक है। ''अतः वर्तमान भारत में दलित बौद्धिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सक्रियता एक अत्यधिक रुचिकर परिदृश्य का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें दलित वास्तविकता को एक अमूर्त सैद्धांतिक स्तर पर अर्थ प्रदान करने की तात्कालिक आवश्यकता महसूस की जा रही है। यह बौद्धिक प्रयास यह भी प्रदर्शित करते हैं कि भविष्य में दलित सिद्धांत एक व्यापक स्वरूप धारण कर सकता है।''[13] भारत के समाज का एक सदस्य होने के नाते मुझे लगता है की वह चिंतन सामने आ चुका है, तथा निरंतर शांतिपूर्ण तरीके से आगे बढ़ रहा है। अब इसमें पूर्वाग्रह व दुराग्रह नहीं है तथा इसके दोनों ही सिरे अब जुड़ कर भारत के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। वास्तव में स्वतंत्रता पूर्व तथा पश्चात् के भारत में चिंतन प्रक्रिया और सामाजिक परिवर्तनों में एक प्रभावशाली तालमेल उभरकर सामने आया है। अब 'जातीय जटिलताऐं' शिक्षा तथा राजनीतिक आधुनिकीकरण के कारण शिथिल होती जा रही है। विश्व के युवा सम्पन्न राष्ट्र की नई शैली में जातिवाद अपने पराभव की ओर है। तकनीकी उपलब्धियों में भी पारस्परिक संघर्ष को सामन्जस्य में हस्तांतरित किया है। यह बड़ा ही 'आशा सम्पन्न समय' है। इसी आशा से युक्त होकर आलेख का अंतिम भाग लिख रहा हूँ कि इस युवा पूर्वाग्रह मुक्त भारत में आपको अपने ही रचित संविधान को अग्नि समाधि देने का अवसर दोबारा प्राप्त नहीं होगा डॉ. साहब। समय लिया है इस देश ने खड़ा होने में पर लडखड़ाते हुए नहीं ठोस कदमों से आगे बड़ रहा है 'संविधानसम्मत सहमति के साथ'। मैं सही लिख रहा हूँ ना दोस्तो !

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *बौद्ध, शीलप्रिय, अनुवादक (2018), ''भारत में जातियाँ–उनकी संरचना, उत्पत्ति और विस्तार'' अंबेडकर के पहले अंग्रेजी शोध पत्र "Castes in India-their mechanism, Genesis and development" का हिन्दी अनुवाद, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 32*
2. *जौहरी जे.सी. (2011), ''समकालीन राजनीतिक सिद्धांत'', स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा. लि., नई दिल्ली, पृष्ठ सं.160*
3. *कुमार, देवेंद्र (1996), ''मनोविश्लेषण – सिगमंड फ्रायड की रचना'', ए जनरल इलेक्शन टू साइको एनालिसिस का हिंदी अनुवाद, राजपाल एंड संस दिल्ली, पृष्ठ सं. 12*
4. *अंबेडकर, डॉ. भीमराव (1927), 3 जुलाई 1927 को बहिष्कृत हितकारिणी सभा द्वारा महाड सत्याग्रह के लिए आयोजित बैठक में के भाषण का अंश।*
5. *अंबेडकर, डॉ. भीमराव (1925), 11 अप्रेल 1925 को मुंबई प्रांतीय बहिष्कृत वर्ग के सम्मेलन में डॉ. अंबेडकर के भाषण का अंश*
6. *मंत्री, गणेश (1999), ''गाँधी और अम्बेडकर'', प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ सं. 157*
7. *मंत्री, गणेश (1999), ''गाँधी और अम्बेडकर'', प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ सं. 158*
8. *मंत्री, गणेश (1999), ''गाँधी और अम्बेडकर'', प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ सं. 158*
9. *जाधव, नरेंद्र (2015), ''डॉ अंबेडकर – आत्मकथा एवं जनसंवाद'', प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ सं. 43*
10. *सत्यप्रकाश धम्माचारी (2013), ''कांग्रेस और गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया'', सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 303*
11. *जाधव, नरेंद्र (2015), ''डॉ अंबेडकर – आत्मकथा एवं जनसंवाद'', प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ सं. 75–76*
12. *राय, अरुँधति, यादव अनिल एवं लाल रतन (2019), ''एक था डाक्टर एक था संत'', राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 126*
13. *माइकल., एस. एम. (2015), ''आधुनिक भारत में दलित, दृष्टि एवं मूल्य'', सेज भाषा प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 3*

भारतीय विदेश नीतिः ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. कन्हैया लाल मीना
सह. आचार्य, राजकीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय, थानागाजी (अलवर)

SHODH SHREE
ISSN 2277-5587 RNI-RAJHIN02011/40537
shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

किसी भी देश की विदेश नीति के निर्धारक तत्वों में देश की भौगोलिक स्थिति, इतिहास, परम्पराएँ, संस्कृति, आर्थिक विकास का स्तर, सैनिक बल तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ आदि तत्व गिने जाते है। भारत की विदेश नीति के निर्माताओं के समझ प्राचीन विद्वान कौटिल्य एक यथार्थवादी राजनेता था जो क युद्ध को शक्ति एवं आदेश नीति का प्रमुख समाधान मानता था। सम्राट अशोक ने शांति, स्वतंत्रता तथा समानता के मूल्यों पर बल दिया था। नेहरू ने सम्राट अशोक के आदर्शो पर चलने का निश्चय किया और अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा विवादों के शांति पूर्ण समाधान जैसे मूल्यों को संविधान के भाग चार मे उल्लेखित राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों मे भी शामिल करवाया। भारत के विदेश नीति मूल रूप से गांधीजी के दर्शन, हमारे स्वतंत्रता संग्राम के आदर्शो तथा भारतीय परम्परा के मौलिक सिद्धान्त 'वसुधैव कुटुम्बकम' पर आधारित है।[1] इसके साथ-साथ वर्तमान समय मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भूमिका व स्वतंत्रता आंदोलन के अनुभवों को भी आज की विदेश नीति की मुख्य पृष्ठभूमि माना जाता है। पंडित नेहरू जी ने उचित कहा है कि यह नही समझना चाहिए कि भारत ने एकदम नये राष्ट्र के रूप में कार्य करना शुरू कर दिया है अपितु भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है।[2]

जिस नीति या कार्यक्रम द्वारा कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों और सम्मेलनों मे अपने विचारों एवं संकल्पो को प्रस्तुत करता है, युद्ध और शांति के प्रश्नों मे अपनी भूमिका निभाता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय समाज में सर्वश्रेष्ठ सम्भाव्य स्थान प्राप्त करने का प्रयास करता है, उसे उस राष्ट्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, भौगोलिक स्थिति और आर्थिक दुर्बलता व सुदृढ़ता पर आधारित होती है। यह राष्ट्रीय हितों से प्रेरित एवं प्रभावित होती है और निरन्तर परिवर्तित होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से प्रभावित होती रहती है। किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति से, अन्य राष्ट्रो के संदर्भ मे उसका मार्ग निर्धारित होता है। यह एक कार्यक्रम है और इसका उद्देश्य है शांतिपूर्वक या युद्धोत्तर उपायों द्वारा राष्ट्र के लिए सर्वश्रेष्ठ सम्भाव्य स्थिति प्राप्त करना। इसके उद्देश्य होते है प्राकृतिक अखण्डता की सुरक्षा, राजनीतिक स्वतंत्रता की रक्षा तथा लोगो के लिए समुचित जीवन स्तर की वृद्धि।

संकेताक्षर : *ऐतिहासिक, अन्तर्राष्ट्रीय, विचारधारा, शांति, सह-अस्तित्व, राष्ट्रदूतों, विदेशनीति, तटस्थता, गुटनिरपेक्षता, शांतियुद्ध, यर्थाथवादी, तीसरी दुनिया, कूटनीतिक, पड़ौसियों।*

एक राज्य अन्य राज्यों से किस प्रकार के संबंध रखकर अपना राष्ट्रीय हित प्राप्त कर सकता है। यही विदेश नीति का मुख्य प्रयोजन होता है। दूसरे राज्यों से अपने संबंधो के स्वरूप को स्थिर करने के निर्णयों का कार्यान्वयन ही विदेश नीति है। जे.आर. चाइल्डयाजा ने इसे ''वैदेशिक संबंधो का सारभूत तत्व माना है और राजनय को विदेश नीति को क्रियान्वित करने की प्रक्रिया कहा है।''

श्लाचर के शब्दों में ''अपने एक व्यापक अर्थ मे विदेशी नीति उन उद्देश्यों, योजनाओं तथा क्रियाओं का सामूहित रूप है जो एक राज्य अपने बाह्य संबंधो को संचालित करने के लिए करता है।''

प्रो. हिल के अनुसार ''विदेशी नीति अन्य देशों के साथ अपने हितो को बढ़ाने के लिए किए जाने वाले किसी राष्ट्र के प्रयासो का समुच्चय है।''

फेलिक्स ग्रॉस के शब्दों में ''अपने क्रियात्मक रूप मे विदेश नीति एक सरकार की दूसरी सरकार के प्रति, एक राज्य द्वारा दूसर राज्य के प्रति अथवा एक सरकार के द्वारा एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ के प्रति अपनाई गई विशिष्ट क्रिया पद्धति है।''

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि विदेश नीति राज्यों की गतिविधियों का एक व्यवस्थित रूप है जिनका विकास दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर राज्य द्वारा किया जाता है और जिसका उद्देश्य दूसरे राज्यों के व्यवहार अथवा आचरण को अपने हितों के अनुरूप परिवर्तित करना है और यदि संभव न हो तो अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का आकलन करते हुए स्वयं अपने व्यवहार में ऐसा परिवर्तन लाना है, जिससे अन्य राज्यों के व्यवहार अथवा क्रियाकलापों के साथ तालमेल बैठ सके।

इस तरह हम कह सकते है कि विदेश नीति सिद्धान्तो तथा साधनों का एक समूह है, जो राष्ट्र द्वारा राष्ट्रीय हित को परिभाषित करने, अपने उद्देश्यों का औचित्य सिद्ध करने तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए अपनाये जाते है। जैसा कि डॉ. महेन्द्र कुमार लिखते है, ''विदेशी नीति कार्यो की सोची-समझी दिशा है जिससे राष्ट्रीय हित की विचारधारा के अनुसार विदेशी संबंधो मे उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है।[3]

भारतीय विदेश नीति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत की विदेश नीति के प्रमुख उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों को सही दिशा मे समझने हेतु इसके ऐतिहासिक संदर्भ का अध्यन करना अनिवार्य है, क्योंकि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विदेश नीति निर्माण पर गहरा प्रभाव होता है। इस संदर्भ पर टिप्पणी करते हुए नेहरू जी ने उचित ही कहा था कि ''यह नही समझना चाहिए कि भारत ने एकदम नए राज्य के रूप में कार्य प्रारंभ किया है। इसकी नीतियां हमारे भूत व वर्तमान इतिहास तथा राष्ट्रीय आंदोलन के विकास तथा इसके द्वारा अभिव्यक्त विभिन्न आदर्शो पर आधारित है''।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करते हुए कई विशेषज्ञ उसकी उत्पत्ति भारतीय संस्कृति में प्रचलित दो विचारधाराओं से मानते है। ये दो महत्वपूर्ण परंपराये है - एक विचारधारा है - मित्रता, सहयोग, शांति, विश्व बन्धुत्व व अहिंसा का जिसका विकास अशोक, महात्मा बुद्ध व गांधी के विचारो के रूप मे हुआ है। जहाँ साध्य के साथ-साथ साधनों की पवित्रता पर बल दिया गया है। दूसरी विचारधारा पाश्चात्य विचार को विशेषकर मैकियावली की विचारधारा से मेल खाती हुई, कौटिल्य की परम्परा रही है जहाँ यथार्थवाद व शक्ति के महत्व पर बल देते हुए केवल अंतिम साध्य की प्राप्ति हेतु किसी भी साधन के औचित्य को स्थापित किया गया है। इस तर्क को मानने वाले विशेषज्ञो का मत है कि भारत ने प्रथम को अपनाया है इसके अनुरूप ही विदेश नीति के उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों का विकास हुआ है।[4]

भारतीय परंपराओं के ऐतिहासिक अनुभवों ने भारतीय विदेश नीति को प्रभावित किया है। भारत की विदेश नीति पर भारतीय दर्शन की नीति विषयक मान्यताओ एवं सामाजिक तत्वों, बौद्धधर्म, जैनधर्म, इस्लाम, क्रिश्यिनिटी तथा पश्चिमी की औद्योगिक सभ्यता का प्रभाव नजर आता है, हिंदु एंव जैन धर्म मे बतलाया गया है कि विश्व की सभी मान्यताओं मे सभ्यता के तत्व मौजूद है। लेकिन कोई धर्म, सिद्धान्त व मत पूर्ण नही है, अर्थात सभी सिद्धान्तों एवं मत-मतान्तरों को सहभाव से रहने का अधिकार है।

विश्व राजनीति मे सभी राज्य सदैव अपनी शक्ति को दूसरे राज्यों की तुलना मे यथापूर्वक बनाए रखने और बढ़ाने का निरंतर प्रयास करते रहते है। इस कारण प्रत्येक राज्य के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अन्य देशो का सहयोग प्राप्त करे तथा अन्य राज्यों मे आवश्यक सहायता पाने के समझौते व कार्यक्रम बनाये और अपने राजदूतो के माध्यम से इनकी पूर्ति का प्रयास करें। ये सब कार्य अपने राष्ट्रीय हित का अभिप्राय अपने देश की विदेशी आक्रमणों से सुरक्षा प्रादेशिक अखण्डता, देशवासियों के जीवन स्तर का ऊँचा उठाना औद्योगिक उन्नति, आर्थिक समृद्धि तथा सर्वागीण उत्कर्ष है। इन हितों को दृष्टि मे रखते हुए अन्य देशो से संपर्क स्थापित करने के लिए सभी कार्यकलापों का समावेश विदेश नीति मे होता है। यह नीति विदेश विभाग द्वारा शासन के उच्चतम अधिकारियों के निर्देशन और नियंत्रण मे निश्चत की जाती है और इस नीति के अनुसार अन्य देशों से संबंध स्थापित किए जाते है। ''इस प्रकार विदेशी नीति अन्य देशों के साथ राष्ट्रीय हित की पुष्टि से किये जाने वाले कार्यकलापों का समुच्चय है।''[5]

भारतीय विदेश नीति का ऐतिहासिक विकास

भारतीय विदेश नीति का निर्धारित सन 1858 लंदन मे स्थापित इंडिया हाउस में होता है परंतु इससे पहले भारत में दूसरे देशो के साथ संबंधों का निर्धारित प्राचीन

राजाओं के माध्यम से अपने राष्ट्रदूतो के माध्यम से निर्धारण किए जाते थे। लेकिन ब्रिटेन के शासन के बाद भारत की विदेश नीति ब्रिटिश सरकार के माध्यम से बनाई जाती थी। परंतु फिर भी भारत अन्तर्राष्ट्रीय कानून के रूप मे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के व्यक्ति का प्रश्न है वहाँ पर भारत ने राष्ट्रसंघ के मसौदो पर प्रारंभिक सदस्यता के रूप में हस्ताक्षर करने से स्पष्ट हो जाती है। भारत ने प्रथम विश्व युद्ध में अग्रेजों की भरपूर सहायता की थी क्योंकि भारत अपनी विदेश नीति के निर्धारण मे शामिल होना चाहता था। जिससे 1919 के औपनिवेशिक सम्मेलन मे भारत के शामिल होने के माँग भारत की स्वीकार कर ली गई। भारत ने इम्पीरियल सम्मेलन में प्रतिनिधित्व के आधार पर पेरिस शक्ति अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने भारत का विरोध किया परंतु कनाडा के दबाव के कारण भारत को पेरिस शान्ति सम्मेलन मे शामिल किया गया। पेरिस शांति सम्मेलन मे भाग लेकर भारत ने वारसा की संधि व समझौता पर हस्ताक्षर किया और राष्ट्रसंघ का प्रारंभिक सदस्य बन गया।[6] सन् 1945 मं सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन म भारत ने भाग लेकर राष्ट्र चार्टर पर हस्ताक्षर करके राष्ट्र संघ की प्रारंभिक सदस्यता प्राप्त की इसलिए कह सकते है कि भारत स्वतंत्रता से पर्व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यक्तित्व प्राप्त कर चुका था।[7]

भारत की विदेश नीति का निरंतर विकास हुआ है। यह एक गतिहीन विदेश नीति न होकर गतिशील विदेश नीति है। जैसे–जैसे भारत के राष्ट्रीय हितों मे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन आया, विदेश नीति का स्वरूप भी बदलता गया। पं. नेहरू के समय भारत 'तटस्थता और गुटनिरपेक्षता' को अत्यधिक महत्व देता या तो श्रीमती इंदिरा गांधी के समय भारत ने सोवियत संघ से संधि करना उचित समझा। श्री राजीव गांधी के समय भारतीय नीति सेना को भेजकर विदेश नीति को नवीन आयाम प्रदान किया। पी.वी. नरसिंहराव ने नैतिकता तथा मूल्यों पर आधारित नीति पर आधारित नीति पर अधिक बल न देकर आर्थिक पहलू पर आर्थिक ध्यान देने की चेष्टा की।

भारत की विदेश नीति का उद्धव स्पष्ट करना एक कठिन कार्य है और उसका वास्तविक मूल्यांकन करने के लिए भारतीय विदेश नीति के विकास पर दृष्टिपात करना अत्यंत आवश्यक है। रिचार्ड पार्क ने लिखा है कि भारत की विदेश नीति की गतिशीलता को समझने के लिए ऐतिहासिक तत्वों का सावधानी पूर्वक विवेचन आवश्यक है। भारतीय विदेश नीति के विकास को निम्न दौरो में बांटा जा सकता है।

(1) भारतीय विदेश नीति के विकास का प्रथम दौर (1885–1919) अन्तर्राष्ट्रीय चेतना का विकास :–

हम पर शासन करने वाले लोग दूर, बहुत दूर, विलायत से आये थे। यह अनुभूति ही प्रबुद्ध भारतीयों के मन मे इंग्लैण्ड और उसके आस–पास के देशों के प्रति उत्सुकता जाग्रत करने के लिए पर्याप्त थी और जब हमे यह पता लगा कि भारत में कोई महत्वपूर्ण सुधार लंदन की स्वीकृति के बिना नही हो सकता तो लंदन के प्रति भारत की उत्सुकता एक विवशता में बदल गई।

2. भारतीय विदेश नीति के विकास का दूसरा दौर (1919 ये 1927)

प्रथम महायुद्ध तक विश्व की घटनाओं के प्रति भारतीय जन मानस मे रूचि का विकास हो चुका था। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रति भारतीय नेताओ की पकड़ मजबूत होने लगी थी और कांग्रेस के प्रस्तावों मे विश्व की घटनाओं के संबंध में विचार व्यक्त किये जाने लगे थे। कांग्रेस की विदेश नीति अंकुरित होने लगी थी।

प्रथम विश्व युद्ध समाप्त होने पर पेरिस मे शांति वार्ताए हुई। इन शांति वार्ताओं में भारत को भी प्रतिनिधित्व दिया गया। परंतु भारत की और से जो लोग प्रतिनिधित्व करने गये थे वे भारत के नेता नही थे। कांग्रेस चाहती थी कि इस सम्मेलन मे भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी और हसन इमाम को भेजा जाए लेकिन भेजे गए भारतीय सचिव मांटेग्यू उप सचिव एस.पी. सिन्हा तथा बीकानेर के महाराजा। भारत में इससे बड़ा रोष उत्पन्न हुआ।

इस अवसर पर लोकमान्य तिलक ने पेरिस शांति सम्मेलन के अध्यक्ष क्लेमंशो को एक पत्र लिखा। यह एक ऐतिहासिक पत्र था। इसमें पहली बार भारत की विदेश नीति के संबंध में लिखित रूप से अपना मत प्रतिपादित किया गया था। इसलिए इस पत्र को भारतीय विदेश नीति का महत्वपूर्ण दस्तावेज कहा जा सकता है। लोकमान्य तिलक ने लिखा ''सभी दृष्टियों मे भारत एक समानयुक्त और स्वावलंबी देश है और संसार के किसी देश की भूमि पर कोई दावा नही है अपने विशाल भू भाग, अपरिमित साधन और अपार

जनसंख्या के आधार पर भारत–विश्व की महान शक्ति बनने की आकांक्षा रखता है। इस परिस्थिति में पूर्वीय गोलार्द्ध शांति बनाए रखने के काम मे एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। प्रस्तावित राष्ट्रसंघ का प्रबल समर्थक हो सकता है।''[8] इस पत्र में तिलक ने यह भी लिखा है कि युद्ध के दौरान यह वायदा किया गया था कि उपनिवेशो को आत्म निर्णय का अधिकार दिया जाये।

इस पत्र से स्पष्ट हो गया कि अंग्रेजो द्वारा संचालित भारत की विदेश नीति भारतीय जनता की इच्छाओं का प्रतिनिधित्व नही करती। भारत की जनता की विदेश नीति का प्रतिनिधित्व कांग्रेस करती है। यही से कांग्रेस की विदेश नीति आरंभ हुई जो बाद मे स्वतंत्र भारत की विदेश नीति के रूप में प्रस्फुटित हुई।

अमेरिकी सीनेट में भारत के आत्मनिर्णय का प्रश्न

पेरिस मे हुए शांति सम्मेलन में यह निर्णय किया गया था कि विश्व में शांति स्थापित करने के लिए राष्ट्रसंघ की स्थापना की जाए। अमेरिका भी वर्साय की संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देशों मे से एक था। परंतु अमेरिकी संविधान के अनुसार अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा दी गई प्रत्येक संधि पर सीनेट की पुष्टि आवश्यक है। अतः वर्साय की संधि पर भी सीनेट मे वाद–विवाद हुआ।

अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने यह कहा था कि युद्ध के बाद भारत को आत्मनिर्णय का प्रावधान नही किया गया था, इसलिए भारतीयो को इस पर स्वाभाविक रूप मे रोष था। कांग्रेस ने चाहा था कि अमेरिका की सीनेट मे भी वर्साय की संधि पर बहस के समय यह बात उठाई जाये। अतः अमेरिका मे रहने वाले भारतीयों का इस संबंध में लिखा गया। उन्होने अमेरीकी सीनेटरों से संपर्क साधा। 29 अगस्त 1919 को अमेरिका के सीनेटर डडले फील्ड मेलोन ने सीनेट की विदेशी मामलो की समिति के सम्मुख इन प्रश्नों को उठाया। मेलोन ने कहा कि क्योंकि राष्ट्रपति विल्सन के बायर्ड को संधि में स्थान नही दिया गया है, इसलिए वर्साय संधि को अस्वीकार कर दिया जाये। उन्होंने यह भी कहा कि भारत को तुरंत स्वतंत्र किया जाये।

अमेरीका की सीनेट मे भारतीय स्वतंत्रता के लिए प्रश्न उठाया गया, इसी से स्पष्ट है कि कांग्रेस विदेश नीति के प्रति कितनी सचेत थी। विदेश नीति के क्षेत्र मे कांग्रेस के द्वारा चलाया गया यह पहला सफल कूटनीतिक अभियान था।

राष्ट्रसंघ मे भारत :– वर्साय संधि के अनुरूप 1919 में राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई थी। भारत को भी राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाया गया था। राष्ट्रसंघ में भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए जिन लोगो के चुना जाता वे वास्तव मे भारतीय मानस का नही, ब्रिटिश हितों का प्रतिनिधित्व करने थे। इस प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व एक अंग्रेज करता था।

भारतीय विदेश नीति के विकास का तीसरा दौर (1927–1946)

अब तक कांगेस की विदेश नीति संबंधी गतिविधियों का केन्द्र भारत ही था, परंतु विदेश नीति के विकास के तीसरे दौर मे भारत ने विश्वमंच पर प्रवेश किया। पं. नेहरू कांग्रेस मे आ चुके थे और कांग्रेस में आते ही उन्हे अग्रिम पंक्ति मे स्थान मिला था। आरंभ मे ही विश्व राजनीति के प्रति उन्हे गहरी रूचि थी और इस क्षेत्र में वे अत्यंत सक्रिय भी थे। 10 फरवरी 1927 को बेल्जियम के एक नगर ब्रुसेल्स मे विश्वके पद दलित राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ। जिसमें भारतीय कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप पं. नेहरू ने भाग लिया। इस सम्मेलन का आयोजन साम्राज्यवाद विरोधी संघ ने किया था। इसमें 175 प्रतिनिधि मंडलों ने भाग लिया था। सम्मेलन के पीछे जो शक्तियां काम कर रही थी, उनमे मुख्य थे ब्रिटेन का श्रमिक दल तथा जर्मनी, रूस व पश्चिमी यूरोपीय देशों के साम्यवादी दल। इस सम्मेलन मे पं. नेहरू ने बहुत खूबसूरती से और बहुत प्रभावशाली ढंग से भारत का प्रतिनिधित्व किया। इन्होंने कहा कि ''हमारे लिए भारत की स्वतंत्रता आवश्यक है, लेकिन हमारी स्वतंत्रता आपके लिए भी कम महत्वपूर्ण नही है। हमारी पराधीनता आपकी स्वतंत्रता के लिए सबसे बड़ी बाधक है। अतः हम आपसे अनुरोध करते है कि आप हमारी मदद कीजिए इसमें आपका का भी कल्याण है।''

ब्रुसेल्स सम्मेलन मे श्री नेहरू ने भारत का जोरदार प्रतिनिधित्व तो किया, साथ ही उन्होंने विश्व के अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों से व्यक्तिगत संबंध भी स्थापित किए। बाद मे जब पं. नेहरू भारत के प्रधानमंत्री बने और उन्होंने विदेश नीति का संचालन किया, उस समय यह संबंध बहुत काम आये।

चीन के अतिरिक्त श्री नेहरू ने मिश्र और लंका की यात्रा की। वे एशियाई देशो की समस्याओं के प्रति इतने संवेदनशील हो गए कि उन्होंने एशियाई राष्ट्रों का एक संघ तक बनाने की कल्पना व्यक्त की। एशियाई

देशों के प्रति बढ़ती हुई सद्भावना के परिणामस्वरूप भारत ने मिश्र, सीरिया, फिलीस्तीन, ईराक और चीन के राष्ट्रवादी नेताओ को उनके स्वतंत्रता संग्राम की सफलता के प्रति शुभकामनाएं भेजी। श्री नेहरू ने कह दिया था, भविष्य मे विश्व राजनीति में भारत सहित एशिया एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा।

सभी राष्ट्रों से मैत्रीपूर्ण संबंध

भारत की विदेश नीति हमेशा सभी राष्ट्रो के साथ मित्रतापूर्ण संबंधों की पक्षधर रही है। पं. नेहरू ने कहा था 'देश की सुरक्षा हेतु अन्य साधनों के बजाय सभी राष्ट्रों के साथ मित्रतापूर्ण संबंधों की नीति जानबूझकर अपनाई गई है।[९] इंदिरा गांधी ने भी एक सेमीनार भाषण मे 31 अगस्त 1970 को कहा था वैमनस्यपूर्ण स्थिति को मित्रता द्वारा सुधारा जा सकता है। सभी से मित्रतापूर्ण संबंध का अर्थ किसी भी दूसरे देश पर आश्रित होना कतई नही रहा है। इसके अतिरिक्त जहाँ तक सभी से मित्रता का प्रश्न है वह सैन्य गठबन्धनों के रूप मे न रहकर केवल आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि संबंधों के क्षेत्रो मे होगे।

इस संदर्भ मे दूसरी महत्वपूर्ण नीति भारत द्वारा अन्य राष्ट्रो के साथ विचारधाराओं के आधार पर पक्षपात या वरीयता न अपनाने की है। प्रारंभ मे ही जवाहर लाल नेहरू ने दक्षिण–पूर्व एशिया मे 'शांति क्षेत्र' से शुरूआत करके सम्पूर्ण विश्व मे शांति की कल्पना की है। अपने 7 सितम्बर 1946 के प्रथम रेडियो प्रसारण मे भारत की विदेश नीति की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए नेहरू ने साम्यवाद, पूंजीवाद व अन्य देशों के बीच समन्वय व सौहार्द्र के आधार पर 'एक विश्व' की कल्पना की थी।

भारतीय विदेश नीति के विमान का चौथा दौर (1946 से अब तक)

संन् 1959 के पश्चात् नेहरू द्वारा इन्हे पूर्व परिस्थितियों से निपट लेने के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में एक प्रभावी भूमिका प्रदान कर चुके थे अतः 1959 तक चीन और पाकिस्तान से भय रहा है जो कि भारतीय विदेश नीति को प्रभावित करता रहा है, उन्हे सफलतापूर्वक सीमित कर दिया गया था, 1959 के पश्चात् नेहरू द्वारा इन भयपूर्ण परिस्थितियों से निपट लेने के परिणामस्वरूम अन्तर्राष्ट्रीय संबंधो मे एक प्रभावी भूमिका अदा कर चुके थे। ऐसे मे तनाव न केवल चीन के स्तर पर ही विकसित होता वरन् उसके प्रभाव सोवियत रूस भारत संबंधो पर भी स्पष्ट रूप से नजर आते थे। लेकिन क्या पाकिस्तान और चीन के साथ संघर्ष नेहरू के अन्तर्राष्ट्रीय शांति को ऐतिहासिक योगदान के महत्व को कम करते है ? जबकि विश्व में अनेक तनाव थे, तरीकों मे क्रांतिकारी परिवर्तन आ चुके थे और साथ ही साथ विश्व स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय समाज के विकास के लिए भी दबाव था।

उपरोक्त विश्लेषण से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि पाकिस्तान और चीन के साथ संघर्ष भारत की नीति के व्यवस्थापक रूप के विकास के लिए स्वाभाविक थे और अन्तर्राष्ट्रीय शांतिपूर्ण व्यवस्था के लिए नेहरू की योजना की सफलता के लिए परिचायक है, नेहरू की शांति नीतियों के लिए इसमे अधिक स्पष्टीकरण आवश्यक नही है।

किन्तु यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि पाकिस्तान और चीन के साथ संघर्ष के बने रहते नेहरू की नीतियां उन पर विजय प्राप्त नही कर सकी। यदि हम इन असफलताओं का उनकी नीतियों की व्यवस्थागत सफलताओं के साथ स्पष्ट करना चाहे तो एक प्रश्न उठाया जा सकता है कि यदि नेहरू की व्यवस्थात्मक नीतियां असफल हो जाती तो उसका भारत और विकासशील, दुनियाँ के लिए अधिक महत्व होता, यदि वह भारत और चीन के साथ संघर्ष मे सफल होते। इसे इस तरह भी कहा जा सकता है कि पहले (नीतियों) असफलता का दूसरे की (चीन–पाकिस्तान के संघर्ष में) सफलता पर बहुत कम प्रभाव पड़ता। ऐसे मे दक्षिण एशिया की शांति का कोई अर्थ नही होता और वह शीघ्र ही शीतयुद्ध के साथ अपने आप ही समाप्त कर लिया जाता। यदि भारत की नीति असफल हो जाती तो शीतयुद्ध को इस क्षेत्र मे रोकना उन वर्षो मे असंभव था।

अन्तर्राष्ट्रीय संबंधो में नेहरू कालीन उपलब्धियां कम महत्वपूर्ण नही थी वैसे कई बार मे विरोधात्मक स्वभाव की दृष्टिगोचर होती थी। राजनैतिक दूरदर्शिता ने इन नीतियों को निर्देशित किया था और इतिहास ने उनकी उपयोगिता और उनमें निहित कल्पनाशीलता को स्वीकार किया।

उपर्युक्त चुनौतियों को भारत का क्या जवाब था ? नेहरू ने न तो कश्मीर खोया, न ही असंलग्नता का परित्याग किया। बल्कि उन्होंने असंलग्नता को इस प्रकार क्रियान्वित किया कि उससे राजनैतिक क्षमताओं में इतनी प्रभावशीलता आ गयी कि उसका गहरा प्रभाव अमेरिका के 1954–1959 के नाजुक समय पर पड़ा

जब वह पाकिस्तान के साथ जुड़ा तो सही किन्तु उस निकटता का कोई भी लाभ भारत के विरूद्ध पाकिस्तान नही प्राप्त कर सका। पाकिस्तान के साथ संघर्ष नेहरू के विचारों व प्रयासों से विपरीत होने पर भी अन्तर्राष्ट्रीय शांति और व्यवस्था के क्षेत्र में विस्तार ही हुआ।[10]

अन्ततः यही कहेंगे कि नेहरू निश्चित रूप से अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता को परिवर्तित करने मे सफल नही हुए, न ही इस प्रकार का कोई दावा किया गया है, किंतु शांति की नीति का अनुसरण करने में चाहे उनके प्रयास कितने ही कमजोर क्यों न रहे हो। फिर भी नेहरू ने अपने तरीके से भारतीय विदेश नीति के संचालन को प्रभावित किया।

भारतीय विदेश नीति के विश्लेषण की दृष्टि से इंदिरा गांधी के काल खण्ड को भारतीय विदेश नीति को यथार्थवादी स्वभाव के विकास का कालखण्ड कहकर संबोधित किया जाता है। 1971 में बांग्लादेश के मुक्ति आंदोलन मे सकारात्मक भूमिका और 1974 में पोकरण मे अणु विस्फोट जैसी महत्वपूर्ण घटनाओं के लिए विशेष रूप से याद किया जाता है। इंदिरा गांधी सर्वप्रथम महाशक्तियों की राजनीति को समझते हुए इस बात को नजरअंदाज करती रही कि भारत–सोवियंत संघ मे पारस्परिक मैत्री संबंध होने के बावजूद सोवियत संघ का झुकाव पाकिस्तान की और बढ़ रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि सोवियत संघ ने पाकिस्तान के समर्थन मे भारत को कश्मीर के संदर्भ मे अपना समर्थन देना बंद कर दिया। सोवियंत संघ ने पाकिस्तान के साथ आर्थिक और व्यापारिक समझौते ही नही किये वरन् 1968 मे पाकिस्तान को सैन्य सहायता देने का निर्णय भी लिया।[11] इसका भारत ने विरोध किया लेकिन इंदिरा गांधी ने धैर्य से काम लेते हुए केवल अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए सोवियत संघ को संदेश पहुँचाते हुए कहा–भारत सोवियत संघ के निर्णय सेबंस खुश नही है। फिर भी इसमें भारत की विदेश नीति में कोई परिवर्तन नही होगा।[12] 1968 में ही सोवियत संघ ने चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण कर दिया जिसकी विश्व स्तर पर प्रतिक्रिया हुई एवं सुरक्षा परिषद मे निन्दा प्रस्ताव रखा गया। उसमें भारत ने मतदान का बहिस्कार किया। स्पष्ट है कि भारत ने सोवियत संघ–पाकिस्तान संबंधो की निकटता के बाद भी भारत मैत्री को सामान्य बनाए रखा।

अन्ततः भारत ने 18 मई 1974 को पोखरण मे अणु विस्फोट परीक्षण किया। जिसको लेकर विश्व स्तर पर काफी प्रतिक्रियाएँ हुई। लेकिन इंदिरा गांधी की स्पष्ट नीति थी कि किसी भी देश के लिये सर्वोच्च प्राथमिकता उसका राष्ट्रीय हित है और भारतीय अणु परीक्षण भारत भारत के लिये एक बड़ी उपलब्धि है।

जनवरी 1980 मे लोकसभा चुनाव हुए और इंदिरा गांधी पुनः सत्ता में आ गयी। 1977 मे छोड़ी गई विदेशी नीति को अपने आधारों पर क्रियान्वित करना प्रारम्भ कर दिया। इस कार्यकाल में इंदिरा गांधी न अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत की भूमिका को और अधिक गतिशील रूप प्रदान किया। भारत–सोवियत संघ मैत्रीपूर्ण संबंधों मे प्रगाढ़ता दिखाई देने लगी, यद्यपि पूर्ववर्ती जनता शासन की विदेश नीति के दौरान अच्छे संबंध रहे थे लेकिन अफगानिस्तान की समस्या एवं कम्पूचिया के प्रश्न पर जनता दल का सोवियत संघ के प्रति स्पष्ट रवैया रहा जिसमें सामान्य संबंधों के बावजूद प्रगाढ़ता नही आ पायी। लेकिन इंदिरा गांधी के पुनः सत्तारूढ़ होने पर अफगान एवं कम्पूचिया के संबंध में सोच परिवर्तित हो गया।

इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्रीत्व काल (1980–1984) में भारत की विदेश नीति के बुनियादी सिद्धान्त यथावत बने रहे परंतु तेजी से बदलती अन्तर्राष्ट्रीय एंव क्षेत्रीय परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में भारत की विदेश नीति के सिद्धान्तों ने 'वस्तुतः एक नई अर्थ प्रासंगिकता' ग्रहण कर ली। 1981–1982 की विदेश मंत्रालय की रिपोर्ट में इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्रीय काल में जो विदेश नीति सिद्धान्त अपनाये गये थे, वे इस प्रकार है :–

- अन्तर्राष्ट्रीय शांति और स्थायित्व को संबंधित करना;
- विश्व में तनाव को कम करना और न्याय तथा ईमानदारी के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के लिए अधिकाधिक न्यायोचित ढाँचा तैयार करना।[13]

मूल्यांकन के तौर पर, इंदिरा गांधी प्रशासन मे भारत की विदेश नीति एवं संबंधों को लेकर भारत की छवि में निखार आया। विशेष रूप से दक्षिण एशिया में भारत की पहचान एक महान क्षेत्रीय शक्ति के रूप में उभरी। श्रीमती गांधी ने अन्तर्राष्ट्रीय मंचो पर तीसरी दुनिया, असंलग्न आन्दोलन तथा जी–77 के समक्ष आर्थिक व्यापारिक एवं वाणिज्यिक समस्याओं की बड़ी जोरदार पैरवी की। तीसरी दुनिया के देश उनके नेतृत्व को

सराहते थे। परंतु पश्चिमी दुनिया मं उनकी छवि सोवियत संघ के प्रति झुकाव की थी जिसमे भारत को दक्षिण एशिया एवं द्विपक्षीय मुद्दो पर पश्चिम का समर्थन नही मिल पाया।

बांग्लादेश की स्वतंत्रता मे भारत की अहम् भूमिका को लेकर भारत व पाकिस्तान के बीच वैमनस्यता व शत्रुता की जड़ें और गहरी होती गयी। पाकिस्तान के विभाजन मे भारत का प्रत्यक्ष हाथ होने से पाकिस्तानी नेताओं ने भारत को कमजोर एवं अस्थिर करने के लिए छद्म युद्ध का सहारा लिया। दिसम्बर 1971 के युद्ध मे भारत के हाथों हुई हार व बांग्लादेश के एक स्वतंत्र एंव सम्प्रभु राष्ट्र के रूप मे उदय से हताश होकर पाकिस्तानी शासको ने भारत से प्रतिशोध लेने के लिए आतंकवाद को अपनी विदेश नीति को एक प्रमुख साधन बना लिया। भारत को बांग्लादेश की स्वतंत्रता से क्या मिला ? बांग्लादेश के भारत विरोधी रवैये से सभी परिचित है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो श्रीमती गांधी जी की यह सोच गलत साबित हुई कि बांग्लादेश के निर्माण से बांग्लादेश न केवल भारत के प्रति सदैव ऋणी रहेगा बल्कि इसमे भारत की सीमाएँ भी सुरक्षित रहेंगी।

संक्षेप में इंदिरा गांधी प्रशासन में भारत की विदेश नीति एवं राजनय में दूरदृष्टि का अभाव था। श्रीमती गांधी और उनके सलाहकार अनेक भ्रांतियों ग्रस्त थे जिसका परिणाम यह रहा कि पड़ौसी देश भारत को अविश्वास व संदेह की दृष्टि से देखने लगे। भारत की छवि अन्यत्र जगत मे एक क्षेत्रीय प्रभुत्ववादी शक्ति के रूप मे जानी जाने लगी।

राजीव गांधी के शासन की कूटनीतिक विशेषता रही है–अधिक से अधिक तनावों के कम करना एवं तनाव को सामान्य करने के प्रयास करना। राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और क्षेत्रीय आवश्यकताओं को समान रूप प्रदान करना। इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में पड़ौसी राष्ट्रों के साथ संबंधों को सुधारने के महत्वपूर्ण प्रयास लगातार किए, क्योंकि अपने पड़ौसी राष्ट्रों के साथ सबंधों को सामान्य किए बिना अन्तर्राष्ट्रीय मामलों मे तालमेल बनाना एक मुश्किल कार्य है।

राजीव गांधी कालीन विदेश नीति मूलतः दो संदर्भो मे अधिक स्पष्ट संकेत देती है। पहले के अन्तर्गत यह आधुनिकता के अर्थो मे भारतीय विदेश नीति को रेखांकित करती है साथ ही साथ बदले हुए नेतृत्व मे भी संकेत इस काल मे देखा जा सकता है। क्षेत्रीय संतुलन और दक्षिण एशिया में अधिक प्रभावी भूमिका और उसके लिये व्यापक सहमति इस काल खण्ड की मुख्य उपलब्धि नजर आती है।

गुजराल सिद्धान्त के संबंध मे स्वयं गुजराल अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुए कहते है; ''मेरा यह सिद्धान्त कोई नया नही है। मैं अपने सिद्धान्त मे नेहरू व गांधी की आत्मा को देखता हूँ। हमारे पूर्वजो ने विरासत मे हमे जो लक्ष्य दिए, मैं उन्हे पूरा करने का प्रयास कर रहा हूँ।[14]

''गुजराल सिद्धान्त'' सही मायने मे भारत के विभिन्न देशों के साथ मधुर राजनयिक संबंधों की सैद्धान्तिक व्याख्या है। वैसे तो गुजराता का यह अल्पकाल उनकी कई उपलब्धियों के लिए जाना जाता है। मगर उनकी विशेष उपलब्धि रही अपने पड़ौसियों से संबंध सुधारने के सक्रिय प्रयास। इसी सक्रियता के परिणाम स्वरूप भारत का बांग्लादेश के साथ गंगाजल बंटवारा समझौता हुआ एवं शरणार्थियों की समस्या का हल निकाला गया। इसी समझौते के साथ भारत एवं बांग्लादेश के बीच लम्बे समय से चले आ रहे विवाद का अंत हो गया। नेपाल के साथ पुराने संबंधों का बनाए रखने के लिए प्रगतिशील कदम उठाए गए एवं महाकाली नदी जैसे समझौते सम्पन्न किये। श्री लंका एंव चीन जैसे पड़ौसी देशो के साथ मधुर संबंध बनाने के प्रयास सफल रहे। इन उपलब्धियों के बावजूद विदेश नीति के विशेषज्ञ ''गुजराल सिद्धान्त'' को इतना सफल नही मानते है, क्योंकि विदेश नीति की कसौटी पर भारत का सबसे कठिन पक्ष पाकिस्तान के साथ मधुर संबंधो को स्थापित करना है और इन संबंधो का ''गुजराल सिद्धान्त'' मात्र एक प्रयास रहा है। गुजरालकालीन विदेश नीति अपनी क्षेत्रीय भूमिका के लिए विशेष रूप से याद जी जायेगी।

भारतीय विदेश नीति मे परिवर्तन के व्यवहारिक संकेत उस समय मिले जब 11 एवं 12 मई 1998 को भारत द्वारा किये गये परमाणु परीक्षणों से उभरे घटनाक्रम ने आज कि व्यवहारिक राजनैतिक विश्व मे भारत की छवि में एक बड़ा परिवर्तन किया। परमाणु परीक्षण के पूर्व तक भारत के संबंधो में जिस तरह से सोचा जाता उस सोच व मूल धारणाओं पर पुर्नविचार करने के लिए मजबूर कर दिया है। भारत की सीधी–साधी नाराज न होने वाली छवि के विपरीत वह राष्ट्रीय हितों साधने के लिए ठोस फैसले करने मे सक्षम सरकार की नई नीति के नियंता जसवंत सिंह ने

कहा ''यह नैतिकवाद से यथार्थवाद में रूपान्तरण है। दुनिया की आबादी का छठा हिस्सा बड़ी ताकतों से अपना वाजिब स्थान मांग रहा है।''[15] पूर्व प्रधानमंत्री इन्द्र कुमार गुजराल के 'लेने से ज्यादा देन' के सिद्धान्त को खत्म कर दिया है। सी.वी. नरसिंह राव की 'सिर्फ अर्थव्यवस्था देखो' की नीति के संबंध के बारे में भरत कर्नाड कहते है, ''अब भारत अधिक आत्म-केन्द्रित देश के तौर पर उभर रहा है जो अमूर्त विश्वजननी लक्ष्यों के बजाए एकनिष्ठ रूप में अपने राष्ट्रीय हितों को साधनों में लगा है।[16]

इस तरह अटल बिहारी वाजपेयी ने भारतीय विदेश नीति में परिवर्तन करते हुए भारत को एक अणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रो की श्रेणी में ला खड़ा किया है। अटल बिहारी वाजपेयी ने परमाणु परीक्षण स्थल पर ''वी'' अक्षर के संकेत द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि भारत एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया है। इस संदर्भ में हेनरी किसिंजर ने कहा है कि कूटनीति की दुनिया में मारक हथियार शब्दों में ज्यादा ताकत रखते है।[17]

डॉ. मनमोहन सिंह मई 2004 में अनेक दलों की मिली जुली सरकार के नेता के रूप में प्रधानमंत्री बने। उन्होंने विदेश मंत्रालय का कार्यभार श्री नटवर सिंह को सौपा लेकिन 2005 में ईराकी तेल घोटाले मे आरोपित होने के कारण मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया। 1991 के बाद प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के काल मे सर्वाधिक महत्व विदेश नीति पर दिया गया। मनमोहन सिंह 1991 में वित्तमंत्री के पद पर भी कार्यरत थे उन्हें अर्थव्यवस्था मे विशेष रूचि थी लेकिन सभी मामलों पर ध्यान दिया। कश्मीर समस्या को सुलझाने के भी भरपूर प्रयास किए गए। सभी देशो के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाने के प्रयास किए 2004-2014 तक लगभग सभी देशों से मधुर संबंध बनाने के लिए वार्तालाप तथा समझौते किए गए।

2014 के आम चुनाव में कांग्रेस को हार का सामना करना पड़ा तथा 1991 के बाद कोई दल स्पष्ट बहुमत के साथ सरकार बनाने मे सफल हुआ। श्री नरेन्द्र मोदी प्रधानमंत्री बने। उन्होंने भारत को विश्व पटल समृद्ध बनाने के लिए विदेशों के दौरे किए। भारत सरकार के पड़ौसी देशों, सार्क देशों, आसियन तथा अन्य देशों के साथ संबंधो को मजबूती प्रदान की। भारत-चीन डोकलास विवाद का शांतिपूर्ण हल करने का प्रयास किया गया। बांग्लादेश के साथ 'चार बीघा कोरियर' की समस्या को भी हल कर लिया गया। छोटे देशों जैसे नेपाल, भूटान को आर्थिक सहायता प्रदान करके संबंध सुदृढ़ बनाए गए। कश्मीर समस्या के स्थायी हल का प्रयास किया गया परंतु पाकिस्तान के सहयोग के बिना इसे हल नही किया जा सका। इस काल मे भारत ने अमेरिका, रूस तथा फ्रांस से भी अपने रिश्ते मजबूज बना लिए। आतंकवाद के मुद्दे को भी विश्व स्तर पर हल करने का प्रयास किया।

अगले जी-20 सम्मेलन (सितम्बर 2023) की अध्यक्षता भारत जरूर करेगा, लेकिन इसका मसला उसका सिरदर्द बना रहेगा। दुनिया के सभी महत्वपूर्ण राष्ट्र या तो रूस के साथ है या विरूद्ध है। ''शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद यह पहला अवसर है जबकि विश्व राजनीति दोबारा दो खेमों में बंटती दिखाई पड़ रही है। एक अमेरीकी खेमा दूसरा रूसी-चीनी खेमा लेकिन भारत की खूबी यह है कि जैसे नेहरू काल मे वह दोनो गुटों से अलग रहकर गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों का नेतृत्व करता रहा है, आज कल वह वैसे ही दोनों संभावित गुटो से अलग रहकर भी दोनों से जुड़ा रह रहा है। इसे मोदी काल की गुट सापेक्षता की नीति कह सकते है।''[18]

निष्कर्ष :- एक देश की विदेश नीति को सिद्धान्तों हितों और उद्देश्यों के एक समुच्चय के रूप मे परिभाषित किया जा सकता जिसके द्वारा एक देश अन्य देशों के साथ अपने संबंधो को चलाता है ताकि अन्य देशों के व्यवहार को प्रभावित करने और बदलने के साथ-साथ अपने खुद के व्यवहार को ठीक किया जा सके। भारत के लिए अपने विदेश नीति को तराशने का सिद्धान्त हमेशा से ही विभिन्न कारकों का पारम्परिक प्रभाव रहा है, इन कारकों में विशेष रूप से वे चार बुनियादी निर्धारक शामिल है जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अखाडे में भारत के चाल-चलन को संचालित करते है। ये चार निर्धारक है :-

1. भारत के पारस्परिक और दार्शनिक आधार जो मूल्यों और अन्य देशो के साथ अन्तर्राष्ट्रीय शांति, सह-अस्तित्व और मित्रता की नैतिकता को दर्शाता है।
2. उसका भूगोल जो अब तक के सबसे महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक है जो न केवल भारत के भौगोलिक भू-भाग की और बल्कि ग्लोब में उसकी स्थिति की और भी इशारा करता है।

3. राष्ट्रीय हित में वह शामिल है जिसमें भारत अपना हित समझता है चाहे वह सुरक्षा की दृष्टि से हो, आर्थिक दृष्टि से हो या एक तीसरी दुनिया के मसीहा के रूप में हो।

4. मूल रूप से गतिशील अन्तर्राष्ट्रीय माहौल की और इशारा करने वाला अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश जो निश्चित रूप से भारत की विदेश नीति के निर्माण को प्रभावित करेगा।

भारत विदेश नीति के बदलते स्वरूप में भारत ने विशेष गति से विकास किया है। गुटनिरपेक्षता की नीति भारत की विदेश नीति का एक अहम् हिस्सा रहा है। जो न केवल दो गुटों में शामिल होने से बचाता है बल्कि सभी देशों से एक समान व्यवहार करने का मार्ग प्रशस्त करता है। भारतीय विदेश नीति शांति बनाए रखने पर अधिक विश्वास करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अग्रवाल, मीनाः राजीव गांधी, डायमण्ड पॉकेट बुक नई दिल्ली 2004।*
2. *यादव, आर.एस. डैंज इन दी स्टडी ऑफ इंडियाज फॉरेन पॉलिसी।*
3. *घई, यू.आर. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, सिद्धान्त और व्यवहार, न्यू एकेडेमिक पब्लिसिंग कम्पनी, जालन्धर 2018।*
4. *अप्पादोराई, ए. एसेज इन इंडियन पालिटिक्स एण्ड फॉरेन पालिसीज, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.ए नई दिल्ली, 1991।*
5. *कुमार, सतीश (सम्पादित): ईयर बुक आन इंडियाज फॉरेन पालिसी, (1990–1991) नई दिल्ली, 1991।*
6. *राजन, एम.एस. इंडियाज फॉरेन रिलेशंस इयूटिंग नेहरू ईराः सम स्टडीज नई दिल्ली 1976।*
7. *अप्पादोराय व राजन, पाद टिप्पणी संख्या 21 पृ. 44।*
8. *ग्रोवर, बी.एल. भारतीय स्वंतत्रता संग्राम तथा सवैधानिक विकास, एस. चन्द्र कं. नई दिल्ली।*
9. *अप्पादोराई, ए. (सम्पादित) सलेक्ट डाक्यूमेन्टस आन इंडियाज फारेन पालिसी एण्ड रिलेशंस 1947–1972 आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस नई दिल्ली 1985।*
10. *25 जनवरी 1966, टाईम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली।*
11. *अयूब, मोहम्मद, ''सोवियत आर्म्स टू पाकिस्तान'' (लेख) इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली 19 अक्टूबर 1968।*
12. *22 अगस्त 1968, द टाईम्स ऑफ इण्डिया।*
13. *वार्षिक रिपोर्ट 1981–82, नई दिल्ली, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, प्रस्तावना पृष्ठ 2।*
14. *चौधरी, राहुल राय ''स्ट्रेटेजिक ट्रेण्डस इन इंडियन ऑशियन'' स्ट्रेटजिक एनालिसिस सितम्बर 1996।*
15. *चेंगप्पा राज और जोशी मनोज, ''ताल ठोकता भारत (लेख) इंडिया टुडे 3 जून 1998 पृ. 14।*
16. *चेंगप्पा राज और जोशी मनोज, ''ताल ठोकता भारत (लेख) इंडिया टुडे 3 जून 1998 पृ. 14।*
17. *चेंगप्पा राज और जोशी मनोज, ''ताल ठोकता भारत (लेटड) इंडिया टुडे 3 जून 1998 पृ. 14।*
18. *वैदिक, डॉ वेदप्रताप, भारतीय विदेश नीति परिषद के अध्यक्ष, जी–20 में भारत की अध्यक्षता विश्व राजनीति को दिशा देगी (लेख) दैनिक भास्कर, 17 नवम्बर 2022।*

दादूपंथ का सम्यक अनुशीलन

डॉ. दीपाली शर्मा
सहायक आचार्य, सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर

SHODH SHREE
ISSN 2277-5587 RNI-RAJHIN02071/40531
shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

दादूपंथ के प्रवर्त्तक, समाजसुधारक, धर्म सुधारक और रहान्यावादी कवि दादूदयाल का जन्म 1601 संवत् में गुजरात में हुआ धुनिया जाति, गृहस्थाश्रम को व्यतीत करते हुए वृद्धानंद नाम गुरु से दीक्षित, स्वयं अशिक्षित होते हुए भी 'ब्रह्म संप्रदाय' की स्थापना करने वाले दादू दयाल ने अपने प्रमुख 52 शिष्यों की सहायता से दादूपंथ की स्थापना की और इस पंथ के कवियों ने श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओं का निर्माण किया। सहज समाज से परमतत्त्व की स्थिति, जातिपांति का विरोध, सतगुरु की महिमा हिन्दु-मुस्लिम एकता, संसारकी अनित्यता आदि का प्रतिपादन दादूपंथ के सिद्धान्तो में हुआ। दादूपंथ की विचारधारा पर कबीर पंथ उपनिषद दर्शन एवं सूफी दर्शन का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

संकेताक्षर : *दादू, अनुशीलन, पंथ, सम्यक, रहस्यवाद, सुधारक, कवि।*

दादू पंथ के प्रवर्तक दादू दयाल समाज सुधारक, धर्म सुधारक और रहस्यवादी कवि थे। इनका जन्म 1601 संवत में गुजरात के अहमदाबाद नगर में और मृत्यु संवत् 1660 में जयपुर के नराणा नामक स्थान पर हुई। कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण तो कुछ धुनिया जाति का बताते हैं। कबीर के समान गृहस्थ और बाल बच्चे वाले थे। इन्होंने भ्रमण भी खूब किया था। दादू पंथियों के अनुसार इन्होंने बुड्ढन बाबा या वृद्धानन्द नामक गुरु से दीक्षा ली थी। सन 1573 ईसवी से दादू 'सांभर' नामक स्थान पर निवास करने लगे। इसी समय इन्होंने पंथ की स्थापना के संबंध में विचार प्रकट किया फलतः नियमित रूप से श्रद्धालु एवं आस्थावान अनुयायियों का सत्संग होने लगा यह स्थान 'अलख दरीबो' से प्रसिद्ध हुआ। जहां से क्रमशः 'ब्रह्म संप्रदाय' आकार ग्रहण करने लगा। भविष्य में यही परब्रह्म संप्रदाय के रूप में प्रख्यात हुआ और कालांतर में इसी को 'दादू पंथ' की संज्ञा प्राप्त हुई। दादू के प्रमुख शिष्यों की संख्या 52 है जिनमें सुंदरदास, रज्जब गरीबदास, जगजीवन, वषनाजी, मिस्किन दास, वाजिद, फकीरदास आदि अपनी विशेष काव्य प्रतिभा एवं साधना के कारण अत्यंत प्रसिद्ध हुए।

दादू पंथ में जितने कवियों का आविर्भाव हुआ इतने निर्गुण धारा के किसी संप्रदाय में नहीं हुआ। दादू ने स्वयं सहस्र पद, साखियों और वाणियों की रचना की। दादू के शिष्य संतदास एवं जगन्नाथ दास ने 'हरदेवाणी' नाम से एक काव्य संग्रह लिखा। जनगोपाल ने 'जीवनपरची' की रचना की। रज्जब ने 5352 छंदों में 'वाणी' और 'सर्वांगी' नामक दो प्रमुख ग्रंथों की रचना की। सुंदर दास ने 42 ग्रंथों की रचना की जिनमें 'ज्ञानसमुद्र' और 'सर्वागयोगदीपिका' श्रेष्ठ ग्रंथ है। गरीब दास ने 23,000 छंदों की रचना की जिन्हें उन्होंने 15 ग्रंथों में समाहित किया। राधोदास दादू के प्रमुख शिष्य थे। इनका 'भक्तमाल' प्रसिद्ध ग्रंथ है। साधु निश्चल दास के 'विचार सागर' में वेदांत और योग का प्रतिपादन हुआ है। सुंदरदास इस पंथ के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। ये भाषा और व्याकरण के पंडित थे। दादू पंथ की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य एवं आदर्श सांसारिक बंधनों से मुक्त हो सहज समाज सेवा करते हुए ईश्वर की आराधना करना था–

''भाई रे ऐसा पंथ हमारा।
द्वेपष रहित पंथ गहि पूरा, आवरण एक अधारा।
वाद विवाद काहू सौं नाहीं, माही जग थै न्यारा
समदृष्टि सुभाई सहज में, आपहि आप विचारा।

मैं तै मेरी यहु मति नाहीं, निवैरी निरकार।
पूरण सबदे पिया आपणा निरालंब निर्धारा॥
काम कल्पना कदे ना कीजै, पूरण ब्रह्म पियारा
इही पंथी पहुँचि परगटि दादू, सोतत सहजि संभारा

दादू पंथ की विचारधारा पर कबीर पंथ, सोफी दर्शन तथा उपनिषद साहित्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। बादशाह अकबर, अबुल फजल, राजा भगवंत सिंह, बीरबल, बुलंद खान, जयमल, माधव दास आदि दादू पंथ के उच्च आदर्शो से प्रभावित है। दादू दयाल के निधन के पश्चात अच्छे प्रचारक और संगठन कर्ताओं के अभाव में दादू पंथ का विकास कई संप्रदायों में हो गया। महंत जैतराम के समय में इस पंथ के अंतर्गत उप संप्रदायों का विकास हुआ। खालसा, नागा, उत्तरगढी, विरक्त, खाकी यह प्रमुख उप संप्रदाय हुए। 'खालसा' संप्रदाय का केंद्र 'नरैना' (जयपुर) है। नागा संप्रदाय के प्रवर्त्तक बड़े सुंदर दास थे। उत्तरगढी के संस्थापक बनारसीदास थे। विरक्त संप्रदाय के अनुयायी घूम घूम के दादू के उपदेशों का प्रचार करते थे। खाकी भी विरक्तो के समान भ्रमणशील हैं।

संत दादू दयाल द्वारा स्थापित 'परम ब्रह्म संप्रदाय' को ही कालांतर में दादूपंथ या दादू संप्रदाय के नाम से प्रचारित किया गया। दादूपंथी साहित्य में परम तत्व या परम पद, निर्वाण, शून्य, सहज, सत्य आदि नामों से अभिहित हुआ है। परम तत्व अनिर्वचनीय और प्रेम का प्रदर्शक है। वह जगन्मय और जगत ब्रह्म मय में हैं। ब्रह्म जगत का निमित्त और उपादान है।

पहली किया आप तैं, उत्पत्ति औंकार
औंकार ते उपजें, पंच तत्व आकार।
पंच तत्व तैं घट भया, बहु विधि सब विस्तारा॥
दादू घर तै उपजै। मैं तैं वरण विकार।

ब्रह्म सहज और शून्य हैं। इसी सहज सुन्न से सूर्य, आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि उत्पन्न हुए। उस ब्रह्म ने रहस्यमय विनोद के लिए संसार की रचना की है। सृष्टि का कारण ओंकार है। सब घटों में एक आत्मा व्याप्त है। वह परम तत्व संसार का सर्वश्रेष्ठ सेवक है। वह वासना रहित होकर सबकी समान रूप से सेवा करता है। वायु, सूर्य, चंद्रमा आदि उसी के सेवा भाव का अनुकरण करते हैं। साधक को इंद्रलोक, सत्य लोक, शिवलोक, परमपद इसी जीवन में प्राप्त हो जाता है जिस शरीर के अंश नष्ट हो गए हैं वही जीवनमुक्त है। ब्रह्माडंबर त्याज्य और माया है। दादू की काव्य रचना के विषय कबीर के समान ही हैं जिनमें ईश्वर की व्यापकता, सतगुरु की महिमा, जाति–पाति का निराकरण, हिंदू मुस्लिम एकता, संसार की अनित्यता, नाम महिमा आदि का प्रतिपादन हुआ है परंतु डॉ. दयानंद श्रीवास्तव के अनुसार कबीर आत्म प्रत्यय में विश्वास करते हैं और दादू आत्मसमर्पण में। इन दोनों में दूसरा अंतर यह है कि उन्होंने कबीर के समान सामाजिक अन्याय,जाति–पाति, मूर्ति पूजा, ब्रह्माडंबर आदि का खंडन उग्र भाषा में नहीं किया उनमें समाज का विरोध करने का भाव कबीर की अपेक्षा कम मिलता है। विरोध यदि करते भी हैं तो उग्र न होकर विनम्र और स्नेह शील बने रहते हैं। उनकी इसी विनम्रता और स्नेहिल स्वभाव ने उन्हें लोकप्रिय बनाया था।''

वस्तुतः दादू एक सरल निरीह स्नेहिल स्वभाव वाले भक्त थे। सम्राट अकबर ने भी इन्हें सीकरी में बुलाकर 40 दिन तक सत्संग किया था। इनके पदों की भाषा राजस्थानी है किंतु गुजराती एवं पंजाबी में भी उनके कुछ पद मिलते हैं। दादू ने भी कबीर के ही समान पंथ की उपेक्षा की परंतु उनके शिष्यों ने गुरु के विचारों को 'दादू पंथ' नाम से प्रचारित किया।

दादू पंथ सहज बोधगम्य मध्यम मार्ग को लेकर चला। दादू ने लगभग 34 वर्ष तक पंथ की विचारधारा को प्रचारित किया। तुलसी के समान शिक्षित एवं साहित्यिक दृष्टि से विद्वान संत सुंदरदास उन्हें शिष्य के रूप में मिले। जिन्होंने दादू के जीवनकाल में ही दादू पंथ को विशालकाय स्वरूप में न केवल पूरे राजस्थान में फैला दिया बल्कि स्वयं यह यायावर होकर मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब आदि राज्यों तक फैला दिया।

दादू पंथ का गठन रामानंदी परंपरा के समान ही माना जाता है यह पंथ अपने प्रारंभिक काल में अत्यंत व्यवस्थित और सुगठित पंथ रहा परंतु, अपनी विशालता के कारण कालांतर में यह चार उपभेदों में विभक्त हो गया।

1. **खालसा पंथ –** दादू की आचार्य परंपरा में गरीब दास और मस्कीनदास इसके आचार्य बने। विशुद्ध दाई पंथी माने जाते हैं। इनका केंद्र नरेना है। कान तक टोपी, चोला ओकारी वस्त्र इनकी पोशाक है। इस पंथ में सैकड़ों साधु है जो जोधपुर, बीकानेर ,किशनगढ़, जयपुर, अलवर में अपना स्थान बनाए हुए हैं।

2. **विरक्त पंथ –** यह भ्रमण शील साधुओं का पंथ है

और स्थानों पर घूम घूमकर दादू पंथ का प्रचार करते हैं साधारण वस्त्र जल पात्र व पुस्तके इनकी संपत्ति है। भिक्षाटन से जीवन निर्वहन होता है इसलिए विरक्त कहलाते हैं।

3. उत्तराधा – दादू पंथ की शिष्य परंपरा में जो राजस्थान को छोड़कर उत्तर की ओर बढ़ गए और उधर ही दादू पंथ का प्रचार प्रसार करते हैं वे उत्तराधा कहलाए। इस शाखा का मुख्य पीठ 'रसिया हिसार' में है। जिसकी स्थापना बनारसी दास ने की थी इसकी दूसरी भीड़ झुंझुनू के निकट ढाणी नामक स्थान पर मानी जाती है। आज उत्तराधों के 20 थांबे पूरे राजस्थान में फैले हुए है।

4. नागा – उप संप्रदाय के प्रवर्तक बड़े सुंदर दास थे जयपुर व जोधपुर के शस्त्रधारी नागा जमात की दशनामी अखाड़ों में गणना की जाती थी। इस परंपरा में प्रहलाद दास मंगल दास भक्तमाल और राघव दास का विशेष रूप से उल्लेख है सशस्त्र होने के कारण उज्जैन और नासिक के कुंभ मेलों में इनमें आपस में लड़ाई भी हो जाया करती थी। जयपुर राजनीति में इनकी सक्रिय भागीदारी थी। जयपुर राज्य की ओर से आर्थिक सहायता दी जाती थी इस प्रकार दादू पंथ संवत् 1626 से लेकर आज तक अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं और इस पंथ में दादू दयाल के अतिरिक्त अनेक महान योगी त्यागी तपस्वी सिद्ध परोपकारी शूरवीर तथा साहित्य सेवी संतों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने समाज की विभिन्न तरीकों से सेवा की अपनी वाणी और पदों से साहित्य भंडार को भरा और समाज को दिशा प्रदान की।

संदर्भ ग्रथं सूची

1. *श्री दादूवाणी लेखक रज्जब।*
2. *श्री दादूवाणी सार लेखक श्री रामेश्वर प्रसाद शर्मा*
3. *प्राचीन काव्य– संपादक सत्यनारायण शर्मा*
4. *हिन्दी साहित्य का इतिकास – डॉ. नगेन्द्र*
5. *हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास– डॉ. गणपति चंद्र गुप्ता*
6. *हिन्दी साहित्य का इतिहास– डॉ. रामचन्द्र शुक्ल*
7. *ज्ञान समुद्र लेखक सुन्दरदास*
8. *सर्वांगयोग दीपिका लेखक सुन्दर दास*
9. *हरदेववाणी लेखक जगन्नाथ दास*
10. *जीवन परची लेखक जनगोपाल*
11. *भक्तमाल लेखक जनगोपाल*
12. *विचारसागर साधु निश्चलदास*

भारत में प्लेग और मिशनरी समुदाय

मिथलेश सोलंकी
शोधार्थी, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्रस्तुत पेपर भारत में 1896–98 और 1899–1901 के दौरान अकाल, महामारी की दोहरी त्रासदी का वर्णन करने के साथ में स्वैच्छिक रूप से की गई मिशनरियों कि मानवीय सेवा, चिकित्सा सेवा, अकाल राहत कार्य, रोजगार हेतु प्रयास व ईसाई प्रसार का वर्णन करता है। प्रस्तुत पेपर में मिशनरियों के वास्तविक उद्देश्यों को जानने के प्रयास के साथ ही तत्कालीन भारतीय स्थिति का वर्णन करने का प्रयास है। इस दौरान मानवीय और व्यवहारिक चिंताओं के परिणाम स्वरुप हस्तक्षेपवादी नीति को बढ़ावा मिला। इसमें मिशनरीज गतिविधियों की वृद्धि में सहायता मिली। अकाल राहत,अनाथालयों के निमार्ण कार्यों, दवाईयों की उपलब्धता सुनिश्चित करने में, लोककल्याणकारी योजनाएं, चिकित्सालयों की स्थापना आदि कार्यों को करने के पीछे उनकी मंशा, सही समय की तलाश और परिस्थितियों की उपलब्धता ने मिशनरी समुदाय को भारत में अपने पैर फैलाने का उचित मौका दिया। धर्म परिवर्तन का प्रलोभन इच्छा या अनिच्छा,अकालवश, मजबूर बेरोजगार, निर्धन या निम्न जाति वर्ग को अपनी और आकर्षित करने में सफल होता गया।

सर्केताक्षर : *मिशनरी समुदाय, अकाल, महामारी, अनाथालय, चिकित्सालय, राहत कार्य।*

भारत में प्लेग अपने चरम पर था तब अंग्रेजी सरकार ने इसे रोकने की कोशिश की। हिंदुओं को यह बताने के लिए सैनिकों को भेजा गया कि वह खुद को और अपने घरों को साफ रखें। जब सैनिक, इसाई घरों में गए तो उन्होंने उन्हें अन्य जातियों की तुलना में इतना साफ पाया कि अगली बार घरों की जांच करने के बजाय सैनिकों ने दरवाजे पर दस्तक दी और पूछा क्या आप इसाई हैं ? यदि उत्तर हां तो सैनिक संतुष्ट हो गए और वापस चले गए। सैनिक महामारी से सुरक्षा के लिए ईसाइयों के पास रहने लगे। प्लेग के अंतिम प्रकोप के दौरान तीन बार ईसाइयों ने एक जुलूस निकाला और क्रॉस और बैनर के साथ अन्य जातियों की सड़कों पर चले। भगवान से प्रार्थना करते हुए और उस समय से प्लेग रुकना शुरू हो गया।''

उक्त कथन से मिशनरी समुदाय यह बताने की कोशिश करते हैं कि, ईसाई समाज हिंदू समाज की तुलना में साफ सुथरा रहता था। उन्हीं के धर्म की वजह से प्लेग रुकना शुरू हुआ। चिकित्सा मिशनरी कार्य भारत के लिए नया नहीं था। 1780 के दशक में मालदा में थॉमस और 1805 में मद्रास में लंदन मिशनरी सोसायटी मिशनरी टेलर स्वीकृत अग्रणी थे और चिकित्सा मिशनों की स्थापना और समर्थन अमेरिकी मिशनरी प्रयास द्वारा किया गया था। दक्षिण भारत में 1830 और 1840 के दशक से 1880 के दशक में चिकित्सा राहत कार्य और भी महत्वपूर्ण हो गया क्योंकि सदी के अंत में बार–बार अकाल और प्लेग आए।1905 तक आते–आते भारत में चिकित्सा मिशनरी कार्य तेजी से प्रमुखता के दौर में था। मिशनरियों की देखभाल में 313 अस्पताल और औषधालय थे, जो सालाना 20 लाख से अधिक रोगियों का इलाज करते थे।

यहां पर एक प्रश्न लाजमी है कि ईसाई धर्म में ऐसे लोगों का निर्माण स्वतः कैसे हुआ ? क्या ऐसे लोगों ने धार्मिक विद्धता को देखते हुए ईसा मसीह की सच्ची शिक्षा और वास्तविक भावनाओं को समझा ? क्या धर्म मस्तिष्क का खेल था ? या सिद्धान्तों का विश्लेषण करने के लिए एक उपकरण ? या क्या धर्म एक जीवित व्यक्ति था, जिसे जरूरतमंदों उपेक्षितों और अज्ञानियों की सेवा की आवश्यकता थी। ऐसे कई सारे प्रश्न हैं जिन पर मंथन किया जाना बाकी है।

28 जुलाई, 1897 को कोलकाता के क्राइस्टचर्च स्कूल में आयोजित महिला मिशनरी सम्मेलन में एक मेडिकल मिशनरी ने पेपर लिखा जिसमें लेखक, मेडिकल मिशन के बारे में कहते हैं कि–

''हमें केवल यह जानने के लिए सुसमाचार की ओर मुड़ना है कि हमारे प्रभु ने सिखाया और उपदेश दिया की हमें स्वच्छता हेतु प्रेरित करना है। सही स्वच्छता करना उनके काम का उतना ही हिस्सा था जितना कि शिक्षण और उपदेश। उनके अद्‌भुत कार्य मानव जाति के लिए उनकी दया और प्रेम का प्रतीक था। यहां तक कि उनके शरीर भी। इसके अलावा उसने अपने अनुयायियों को स्वच्छता करने के लिए नियुक्त किया और उन्हें ऐसा करने की शक्ति दी और यह शक्ति उनके स्वर्गारोहण के बाद भी जारी रहेगी''

चिकित्सामिशनरी संचालन करने की एक विधि या तरीका था। सही तो यह था कि चिकित्सा मिशन एक एंजेलवादी एजेंसी थी और एक मेडिकल मिशन एक एंजेलवादी एजेंट था। एक चिकित्सा मिशनरी का कार्य तीन प्रकार का होता था–

- औषधालय के बाह्य रोगियों की देखभाल
- अस्पताल में रोगियों की देखभाल
- मिशनरी परिसर के बाहर काम करना जैसे व्यक्तिगत मामलों का दौरा या यात्रा संबंधी कार्य।

बाह्यरोगी कार्य समझने के लिए सबसे पहले इसमें बीज बोया जाता है। कई रोगी केवल एक बार अस्पताल आते हैं। इन पर प्रभाव गहरा नहीं होता इसके लिए पहला नियम – एंजेलवादी,की सभी रोगियों को उपदेश दिया जाए। इसके लिए नियम बनाना आवश्यक था कि मरीजों को एक निश्चित घंटों के लिए अस्पताल में भर्ती किया जाए। उसके बाद अस्पताल का द्वार बंद कर दिया जाए। किसी भी रोगी के उपचार से पहले एकत्रित रोगियों को उपदेश (ईसाई धर्मसन्देश) दिया जाएगा। जिस औषधालय में स्त्री पुरुष दोनों का इलाज होता था, वहां के नियम इस प्रकार थे।

स्त्री पुरुषों को अलग–अलग बरामदों में बिठाया जाता था। महिलाओं को सुबह 9:00 से 10:00 तक प्रचारित (उपदेशित) किया जाता था। उसके बाद उनका इलाज किया जाता था और सुबह 10:00 से 11:00 पुरुषों का इलाज किया जाता था और उन्हें 1 घंटे अच्छे से स्थाई उपदेश सुनाया जाता था ताकि मोक्ष के मार्ग की पूरी व्याख्या की जा सके। डॉक्टर, नर्स द्वारा उपदेश दिए जाते थे। इनके पीछे उद्देश्य यह था की अस्पताल से वह घर को संदेश लेकर जाएंगे इससे उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ेगी। ऐसा उनका मानना था। साथ ही घर के अन्य सदस्यों को भीवोलोग धर्म का प्रचार करेंगे। एक संदेश इस प्रकार है–

''भगवान ने इस समय भारत को दोहरी पीड़ा की अनुमति क्यों दी है यह हम नहीं बता सकते लेकिन हम जानते हैं कि यह इस देश के लिए प्यार है इसलिए आइए हम सुसमाचार का प्रचार करने में और लोगों के दिलों को उनके उद्धारकर्ता की ओर निर्देशित करने में अधिक गंभीर हो। हिंदुओं व मुस्लिमों के अनुसार यह कष्ट इसलिए आए हैं क्योंकि पुरुषों ने भगवान के खिलाफ पाप किया है।

पुणे में प्लेग के भयंकर प्रकोप के साथ द स्टार इन द ईस्ट में केवल पत्र्च हाउस मिशन से लेखा–जोखा अंतर्निहित उद्देश्य था। अभिशाप को समझना प्लेग और अकाल के प्रकोप को समझने के प्रयास में ज्ञानोदय समाचार पत्र लिखता है कि– भगवान ने इस समय भारत को इस दोहरी पीड़ा की अनुमति क्यों दी है यह हम नहीं बता सकते लेकिन हम जानते हैं कि प्लेग को ईश्वर का निर्णय कहा जाता था। प्लेग से पीड़ित लोगों के भोलेपन को एक अजीबोगरीब कहानी के माध्यम से संदर्भित किया गया था। कई मनगढ़ंत कहानियां बनाई गई थी जैसे एक प्रकरण में हम देखते हैं कि–

चोर द्वारा आधी रात को घर पर खटखटाने पर पूछा गया कौन है ? चोरों ने गंभीर स्वर में बोला– खोलो खोलो में ताउन हुन (प्लेग का प्रकार) जवाब न मिलने पर चोरों ने पिछले दरवाजे से चोरी की। रात पेड़ पर बिताई, खाना खाया और सुबह चले गए। घर के लोगों ने देखा कि सामान सारा चला गया कोई नहीं जान तो बची खैर हमारा जीवन प्रभु द्वारा बख्शा गया है।

मिशनरी समुदाय ने पिस्सू और प्लेग के प्रसार के बीच घनिष्ठ संबंध की संभावना में बढ़ते धार्मिक विश्वास की चर्चा की। पेरिस के पोश्चर इंस्टिट्यूट के सीमोंड ने जिस सिद्धांत पर पहली बार चर्चा की वह प्लेग आयोग के साथ बहस करने में विफल रहा। उसके बाद फिर से कैप्टन डब्ल्यू ग्लेनलिस्टन ने इसको अपनाया जिन्होंने परेल में प्लेग रिसर्च लैबोरेट्री में अपनी जांच की। सेंट जॉन सोसाइटी का मिशन था की चूहों को कैसे मारा जाए ? अनाज के गोदामों में कीटनाशकों का प्रयोग

कैसे किया जाए ? मृत् चूहों को संभालने के लिए लंबे चिमटे का प्रयोग करना। मृत् चूहों से सतर्कता,साथ ही भंडारण वाले इलाकों में रह रहे लोगों के बीच में जागरूकता फैलाना। अगर चूहों पर दया दिखाई तो वह समाज के लिए खतरे का स्रोत बन जाएंगे।

चिकित्सा मिशन अपनी चाल चल रहा था। पंच हाउस पुणे में सेंट जॉन्स हॉस्पिटल और डिस्पेंसरी ने प्लेग वर्षों के दौरान अपनी सेवाएं दी लेकिन अस्पताल में उपस्थिति को हीथेन और ईसाई में वर्गीकृत किया गया। औषधालय की कामकाज की रिपोर्ट पर बहुत से खुलासे हो रहे थे कि, हर सुबह इन जगहों पर रोगियों की भीड़ जमा होती है। कोई भी शायद यह सोच सकता है कि इन पीड़ित बीमार, गरीब लोगों को स्वस्थ करने व दान देने के पीछे ईसाई धर्म की ओर इनको आकर्षित करना इस सोसाइटी का उद्देश्य हो सकता है। यह केवल तभी होता है जब उन्हें स्वयं ज्ञात हो कि ईसाई धर्म एक वास्तविक खोज है वह इसके लिए तरस जाएंगे। ससून अस्पताल में यूरोपीय बीमारों के लिए अलग से अस्थाई प्लेग वार्ड थे और बाद में उन्हें धार्मिक प्रसार हेतु हटा दिया गया था।

सेंट जॉन्स मेडिकल मिशन उमरखड़ी मुंबई के प्रभारी डॉ ब्रेडली ने प्लेग के वर्षों के दौरान अथक प्रयास किया, जब शहर के कई परिवार इस बीमारी के कहर में बह गए थे। प्लेग का एकमात्र लाभ चिकित्सा मिशनरियों के स्वागत करने के लिए द्वार खोलना था जो अब तक बंद थे। डॉक्टर ब्रेडली ने कहा कि प्लेग से पहले कभी भी हिंदुओं और मुसलमानों के बीच उनका इतना दिल से स्वागत नहीं किया गया था। ब्रेडली ने एक डिस्पेंसरी में अपनी सेवाएं दी जहां डॉक्टर हर दिन 20 से 30 मरीजों का इलाज करते थे, जबकि वर्ष के दौरान हर पंथ और जाति के लगभग 5000 मरीज इसाई, हिंदू, मुस्लिम, पारसी और अन्य अक्सर आते रहते थे। रोगियों में धनी पर्दे वाली महिलाएं व गरीब महिलाएं दोनों ही शामिल थी और उनका निशुल्क इलाज किया जाता था। एक डॉक्टर के रूप में निश्चित तौर पर शुल्क लिया जाना चाहिए था, लेकिन एक मिशनरी के रूप में बिना कीमत के सुसमाचार इसाई संदेश दिया जाना था। काफी दिनों तक यह एक बहस का मुद्दा रहा कि चिकित्सा मिशनरियों को चिकित्सा विशेषज्ञ के रूप में मामलों को देखना था कि एक मिशनरी के रूप में। अगर उन्होंने शुल्क ले लिया तो डॉक्टर एक निश्चित सीमा तक एक वेतनभोगी नौकर बन जाएगा। चिकित्सा उपचार दिया जाएगा और समकक्ष वापस कर दिया जाएगा इसलिए सदन के लोगों को कहने का अधिकार होगा।

''हम आपकी दवा चाहते हैं जिसके लिए हमने भुगतान किया है लेकिन हम आप का उपदेश नहीं चाहते।''

प्लेग के टीके के विभिन्न प्रयोगों के डॉक्टर हाफकिन के वर्णन का हवाला देते हुए ज्ञानोदय ने निश्चित रूप से घोषित किया कि टीकाकरण के 2 फायदे क्या है–

1. 75–90% तक इसने प्लेग के हमले को कम कर दिया।
2. यदि प्लेग का हमला होता है तो रोंग गंभीर नहीं होगाऔर जिसने टीका लगवाया है वों कम से कम आधे ठीक हो जाएगे। जिन्होंने टीका नहीं लगवाया है वह कुछ ही ठीक हो पाएंगे।

डॉ हाफकिन ने स्वच्छता संबंधी सावधानी की आवश्यक शर्तों पर भी जोर दिया। सभी अस्वच्छकर परिस्थितियों ने प्लेग को बढ़ावा दिया है। डॉक्टर हाफकिन जैसे वैज्ञानिक पुरुषों के प्रयासों की सराहना करते हुए समुदाय से अनुरोध किया गया कि बीमारी को कम करने और ठीक करने के लिए उनके पास जो साधन उपलब्ध है उनका बुद्धिमानी से उपयोग करें।

पुणे के मिशन स्टेशन पर कावली फादर्स एंड वांटेज सिस्टर्स द्वारा काम किया गया। सिस्टर एग्नेश हेनरी एटा ने एस गेब्रियल स्कूल के उन बच्चों के बारे में लिखा जो इस बीमारी के शिकार हो गए थे और लगभग सभी बच्चों के टीकाकरण के बारे में लिखा। बच्चों के अनुभव प्लेग अस्पताल से भी साझा किए गए। पुना मिशन ने प्लेग मेमोरियल फंड के लिए क्रिसमस कार्ड की बिक्री द्वारा 19.4 पाउंड एकत्र किए। सड़कों पर जुलूस निकाले गए, प्रार्थनाएं की गई कि ईश्वर इस संकट को डाल दें, लेकिन सड़क के एक जगह पर मिशनरियों पर भी हमला किया गया लेकिन फिर भी ग्रामीण व शहरी इलाकों में सुसमाचार प्रदान करना प्लेग की वजह से बाधित नहीं हुआ। प्रचारको द्वारा संक्रमण से सुरक्षित रहने के तरीकों को चौकस श्रोताओं को बताया जाता था।

मुंबई में मिट्टी के तेल के थोक भंडार में लगे कामगारों जिनके शरीर पर हमेशा तेल लगा रहता था, उनमें प्लेग प्रतिरोधी क्षमता थी। इसकी वजह यह हो सकती है कि शायद पिस्सु तेल की गंध से दूर रहते हो। गोदामों में एक ही कंपनी द्वारा नियोजित बहुत से

लोगों को इकट्ठा काम करना पड़ता था। इसलिए मिशन ने सुझाव दिया कि जिनको प्लेग का जोखिम है उन्हें तेल से नहलाया जाना चाहिए। जो त्वचा के लिए हानिकारक भी नहीं है यह भी माना गया कि संक्रमित घरों में फर्श पर मिट्टी का तेल छिड़कना भी उपयोगी होगा।

सरकार ने विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों की राय द्वारा ही प्लेग उपायोंको अपनाया था। उस समय की तत्कालीन परिस्थितियों में जनता को बचाने के वही तरीके थे ।सरकार को लगा की जनता उनका स्वागत करेगी परन्तु ऐसा होना संभव नहीं था। सरकार की कार्यवाहियों के पीछे कई सारे कारण भी थे। अधिकाश जनता जिसमे गरीब व सम्पन्न दोनों शामिल थे, उन्होंने इनका जबरदस्त विरोध किया। इसके पीछे का कारण था कि मिशनरियों ने स्थानीय धर्म की परवाह न करते हुए, धार्मिक विश्वासों और पूर्वाग्रहों की अवहेलना करते हुए प्लेग दूर करने के लिए उपाय खोजे थे। इन उपायों में सामान्य समझ व आम जनता की भावनाओं को देखते हुए कार्य करना था जो की उन्होंने नहीं किया। मिशनरियों का मानना था कि यदि खोज कम आक्रमक होती और गलतियों से बचने के लिए सावधानियां बरती गई होती तो लोग उनको अपनाते। अधिकांश वर्ग के लोगोंको निम्न वर्ग के प्रति तीव्र जलन होना लाजमी था। वह प्लेग उपायों की उपयोगिता को नहीं समझ सके। गरीब व्यक्ति अपने सामान, वस्त्रों, कपड़ों के प्रति लगाव महसूस करते थे। उन्हें स्वच्छता समझाना बड़ा टेढ़ा काम था। उनके सामान कीटाणुओं से भरे होते थे, जिनको वह छोड़ना नहीं चाहते थे। गरीबों के लिए सरकारी प्रयास सफाई के जुल्म थे, अत्याचार थे। ऐसा मिशनरियों का मानना था। इस समस्या को सबसे जटिल मानते हुए सहानुभूति पूर्वक वैज्ञानिक तरीकों को उन तक पहुंचाना तर्कसंगत लोगों के साथ मैत्रीपूर्ण परामर्श लेकर और अज्ञानी लोगों के साथ बच्चों जैसा प्यार दुलार करके समझाना होता था।

चर्च ऑफ़ इंग्लैंड के धर्माध्यक्षों ने समाज के सभी वर्गों को एक संबोधन जारी किया था। इस पत्र में इसाई भावना निहित थी। जिसमें धर्म अध्यक्षों का मत था कि धर्म के मामलों में सरकार को सख्त निष्पक्षता बनाए रखनी चाहिए जिसकी अपेक्षा की गई थी और फादर इलियट याद करते हैं कि कैसे जब प्लेग अपने चरम पर था तब उन्होंने अयोध्या के सभी बड़े मंदिरों का दौरा किया। जहां के पुजारियों द्वारा उनसे अनुरोध किया गया कि प्लेग को समाप्त करने के लिए सरकार के साथ उनकी ओर से कहें। लोग घरों को छोड़कर भाग रहे थे। मंदिरों को छोड़ रहे थे। उन्होंने पुजारियों से उनके देवताओं के बारे में सवाल किया कि आप अपने देवी देवता से अपनी इच्छाओं के बारे में क्यों नहीं कहते ? पुजारियों ने कहा कि देवता तो सुनते ही नहीं है इस दिन इलियट बहुत खुश हुए उसे लगा कि मिशनरी आज्ञाओं को प्रचार करने का अच्छा मौका है। उसकी बातें चुपचाप श्रद्धा से सुनी गई।

असल में यह सारे वृतांत ब्रिटिश लेखको के थे। ईसाई मिशनरियों द्वारा अपने धर्म को सर्वोच्च साबित करने हेतु उन्होंने इन घटनाओ को बढ़ा–चढ़ा कर लिखा। इस लेखन में मिशनरियों की उन बातों को भी बताने का प्रयास किया गया है जो उनके द्वारा रची गयी थी। भारतीय वर्ग उस समय महामारियों से, अकाल से जुंझ रहा था। साथ ही उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया ने यहाँ की समृद्धि को बर्बाद कर दिया था। मनुष्य का सबसे पहला कर्तव्य होता है अपने को बचाना एवं अपने परिवार की रक्षा करना। ऐसे मे बहुत से वर्गो ने जाने अनजाने में, महामारी से निज़ात पाने के लिए, भूख मिटाने के लिए मिशनरियों की सेवाए लेना जरुरी समझा।

मिशनरियों द्वारा प्लेग के वर्षों में जरूरतमंदों की मदद करने की इच्छा के बजाय ईसाई धर्म के प्रसार का सुअवसर ज्यादा लगता है। अस्पतालों में अनाथ बच्चे जिनके माता–पिता प्लेग से मर गए थे, वे भीख मांगते थे। इनको सेंट निकोलस के घर लाया गया। ईसाई धर्म में उन्हें शिक्षित किया गया। उनकी इच्छा के विरुद्ध एडवर्ड ने धर्म परिवर्तन कराने में उनकी बहुत मदद की। अनाथ बच्चों ने घर पर भोजन ग्रहण किया और उन्हें बपतिस्मा दिलाया गया।

इस तरीके के बहुत से उदाहरण है। ऐसे ही एक छोटे लड़के को जिनके माता–पिता की प्लेग से मृत्यु हो गई थी। उसे ससून अस्पताल से प्लेग अस्पताल लाया गया। वहा उसका बपतिस्मा हुआ और अंतत उसे सेंट पेन्क्रास बॉयज होम भेज दिया गया। प्लेग बढ़ने के फलस्वरुप भारी मात्रा में लोग पूना शहर से आसपास के गांव की ओर पलायन कर गए थे। इससे मिशनरियों को ग्रामीण लोगों में पहुंचने का जरिया प्राप्त हुआ।

निष्कर्ष

चिकित्सा कार्य में मिशनरियों की भागीदारी का औचित्य केवल मानवीय प्रेरणा नहीं बल्कि जरूरतमंद लोगों की मदद करने की इच्छा, साथ ही धर्म प्रचार का सुअवसर था। जिसको उन्होंने बखूबी निभाया। इस दोरान भारत में मिशनरियों की बाढ़ सी आ गयी। मिशनरियों ने स्कूलों, अस्पतालों, अनाथालयों की स्थापना की। संस्थाओं द्वारा मानवता की सेवा का उद्देश्य रखा गया। अकाल व प्लेग की भयावहता के बीच लोगों (गरीब व असहायों) को प्यार, सहानुभूति व देखभाल की आवश्यकता थी, जो इन मिशनरियों ने उपलब्ध करवाई। उद्देश्य जो भी रहा हो उस वक्त निम्नवर्गीय, अकाल ग्रसित समाज को भूख और प्यास, आश्रय की तलाश के बीच मिशनरी समुदाय उनकी सेवा के लिए आगे आए, तब अधिकांश भारतीय वर्ग समुदाय ने उन्हें हेय दृष्टि से देखा था। यह भी एक कारण उनकी ओर झुकाव का हो सकता है। ऐसे समय जब सब अपनी जान बचाने महामारी के प्रकोप से डर के एक दूसरे को शंका की दृष्टि से देखते थे। ईसाई मिशनरियों द्वारा उन्ही संक्रमितों के बीच आकर राहत कार्य किए गए। अस्पतालों में निशुल्क भोजन व उनका निर्धारित उपचार किया गया। काफी प्रतिरोध का सामना स्थानीय समुदाय द्वारा उन्हें झेलना पड़ा। पश्चिमी चिकित्सा पद्धति व इसाईकरण का प्रचार करने की उनकी प्रबलता का प्रसार हुआ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *स्टार इन द ईस्ट, नंबर 91, वॉल्यूम. 4, जुलाई, 1900, पृ. 154*
2. *इंडियन चर्च मैन, वॉल्यूम. 3, नंबर 9, सितम्बर 1897, कोलकाता, पृ.162*
3. *वही*
4. *ज्ञानोदय, 7 जनवरी ,1897*
5. *न्यू बोल्ट .ऐ. डब्लू, पादरी एलियट ऑफ़ फेजाबाद : अ मेमोरियल, (लंदनः चार्ली एच केली,1906), पृ. 257*
6. *रिपोर्ट ऑफ़ द मिशन ऑफ़ द सोसाइटी ऑफ़ सेंट जॉन द इवेंजलिस्ट इन द बॉम्बे फॉर 1903, सेंट पीटर्स चर्च मजगावं, पृ. 69*
7. *मिशनरी एसोसिएशन ऑफ़ एस एस मैरी एंड जोन्स, एनुअल रिपोर्ट फॉर 1900, पृ. 29*
8. *रिपोर्ट ऑफ़ द मिशन ऑफ़ द सोसाइटी ऑफ़ सेंट जॉन द इवेंजलिस्ट इन द बॉम्बे फॉर 1902, सेंट पीटर्स चर्च मजगावं ,पृ. 22–23*
9. *इंडियन चर्च मैन, वॉल्यूम. 3, नंबर 9, सितम्बर 1897, कोलकाता, पृ. 163*
10. *ज्ञानोदय, 27 जुलाई,1899*
11. *रिपोर्ट ऑफ़ द मिशन ऑफ़ द सोसाइटी ऑफ़ सेंट जॉन द इवेंजलिस्ट इन द बॉम्बे फॉर 1903, सेंट पीटर्स चर्च मजगावं, पृ. 70*
12. *न्यू बोल्ट. ऐ. डब्लू, पादरी एलियट ऑफ़ फेजाबाद : अ मेमोरियल, (लंदनःचार्ली एच केली, 1906), पृ.259–260*
13. *कावले एवंगेलिस्ट , लेटर्स फ्रॉम फादर्स एल्विन, 1899, पृ. 12–13*
14. *मिशनरी एसोसिएशन ऑफ़ एस एस मैरी एंड जोन्स, एनुअल रिपोर्ट फॉर 1904, पृ. 23*

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण चेतना के चित्रण की परम्परा–एक साधना

डॉ हिमा गुप्ता
सहायक आचार्य, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पर्यावरण चेतना के चित्रण की परम्परा सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होती हैं। जल, तेज, वायु, आकाश नामक पंचमहाभूत, वनस्पति, औषधि, सभी प्रकार के जीव जन्तु एवं निसर्ग वस्तुएँ समष्टि रूप में प्रकृति या पर्यावरण में समाविष्ट हैं। प्रकृति के अनुशासन में किसी भी प्रकार का अवांछनीय परिवर्तन इस संतुलन को नष्ट करने में सक्षम है और समस्त प्रकृति के लिये हानिकारक है। अपनी लिप्साओं के वशीभूत होकर मनुष्य ने प्रकृति को नष्ट किया है इसे ही पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं। प्रदूषणों के निवारण के लिये पर्यावरण संरक्षण की महती आवश्यकता है। भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से ही प्राकृतिक स्रोतों की सतत रक्षा की परम्परा चलायमान है। वैदिक ऋषियों के अनुसार समस्त संसार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से निर्मित है। इनमें देवत्व का आरोप करके वन्दनीय बनाकर ऋषियों ने इनके संरक्षण को अनिवार्य बना दिया है। प्रकृति की मूल व्यवस्था पर कुठाराघात करते चले जाने पर किसी प्रकार स्वास्थ्य और जीवन प्राप्त नहीं होगा। आवश्यक है कि प्रकृति के उपासक बन कर समग्र सृष्टि में चैतन्य भाव को देखते हुए सौहार्द्र की भावना के साथ सबकी उन्नति की कामना करें और प्राकृत नियमों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें।

संकेताक्षर : *पर्यावरण, चराचरात्मक जगत्, प्रकृति, संरक्षण, प्रदूषण, स्वास्थ्यवर्धक, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अग्निहोत्र, हरितिमा, विश्वबन्धुत्व, लोककल्याण, कुठाराघात, उपासक।*

पर्यावरण चेतना के चित्रण की परम्परा सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होती हैं। वर्तमान में 'पर्यावरण' शब्द मुख्यतः आंग्लभाषा के ENVIRONMENT शब्द का समानार्थक है। परि तथा आङ् उपसर्गपूर्वक वरणार्थक वृङ् तथा वृञ् धातुओं से 'ल्युट्' प्रत्यय के योग से पर्यावरण शब्द निष्पन्न होता है। इससे प्राप्त – ''परितः आवृणोतीति पर्यावरणम्'' व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी यही है, जो चारों ओर से घेरता है, इसका पारिभाषिक तात्पर्य यह है कि वह आवरण जो मनुष्य के चतुर्दिक व्याप्त होकर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उससे संपृक्त होता है। इसके आधार पर कह सकते हैं कि जीव विभिन्न तत्त्वों से चारों ओर से घिरा रहता है, उन तत्त्वों की समष्टि को पर्यावरण या ENVIRONMENT कहा जाता है।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश नामक पंचमहाभूत, वनस्पति, औषधि, सभी प्रकार के जीव जन्तु एवं निसर्ग वस्तुएँ समष्टि रूप में प्रकृति या पर्यावरण समाविष्ट हैं। वस्तुतः पर्यावरण की सीधा संबंध प्रकृति से ही है और यह प्रकृति जब तक पृथ्वी, जल, वृक्ष, पर्वत, वन आदि में सुरक्षित और संवर्धित होगी, तब तक मानव संतति का पालन–पोषण करती रहेगी। भारतीय चिन्तन धारा के अनुसार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पाँच प्रमुख तत्त्व हैं, जिनसे सकल चराचरात्मक जगत् का निर्माण हुआ है। इन्हीं से निर्मित सभी जीव, इन्हीं के मध्य विचरण करते हैं। इस आधार पर पर्यावरण की तात्विक अवधारणा सनातन है। भारतीय संदर्भों में प्रचलित शब्द 'प्रकृति' है जो अधिक सटीक प्रतीत होता है। वेदमंत्रों में पर्यावरण के लिए परिधि, परिभूतः, छन्दस्, आच्छातकः आदि पदों का प्रयोग प्राप्त होता है–

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनायकम्।।[1]

पर्यावरण को ''पारिस्थितिकी'' अथवा ECOLOGY भी कहा जाता है। परि+स्था+क्तिन् से परिस्थिति शब्द निष्पन्न होता है। मनुष्य के चारों ओर व्याप्त आवरण या वातावरण परिस्थिति कहलाता है। परिस्थिति से भाव अर्थ में पारिस्थितिकी, यह पारिभाषिक शब्द निष्पन्न होता है, इसका अर्थ है–''जीवों के पर्यावरण से संबन्धित अध्ययन''। प्रकृति के अनुशासन में किसी भी प्रकार का अवांछनीय परिवर्तन इस संतुलन को नष्ट करने में सक्षम है और समस्त प्रकृति के लिये हानिकारक है। अपनी लिप्साओं के वशीभूत होकर मनुष्य ने प्रकृति को नष्ट किया है इसे ही पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं। औद्योगिक विकास, परमाणु परीक्षण, आधुनिकीकरण, जनसंख्यावृद्धि, वनों की अत्यधिक कटाई, संसाधनों का निर्मम दोहन इत्यादि कारणों से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। इन प्रदूषणों के निवारण के लिये पर्यावरण संरक्षण की महती आवश्यकता है। भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से ही प्राकृतिक स्रोतों की सतत रक्षा की परम्परा चलायमान है। वैदिक ऋषियों के अनुसार समस्त संसार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से निर्मित है। इनमें देवत्व का आरोप करके वन्दनीय बनाकर ऋषियों ने इनके संरक्षण को अनिवार्य बना दिया है।

'शब्दगुणकमाकाशम्'[2] के द्वारा आकाश के गुण शब्द अर्थात् 'ध्वनि' का उल्लेख किया गया है। आकाश में किये गये किसी भी प्रतिकूल आचार से उसका गुण 'ध्वनि' प्रभावित होता है और ध्वनि प्रदूषण का रूप ले लेता है। वैदिक ऋषि इस तथ्य को सम्यक्तया जानते थे अतः उन्होनें ईश्वर से प्रार्थना की कि हम कल्याणकारी ध्वनि का ही श्रवण करें–

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः।[3]

प्रदूषण रहित शुद्ध पवित्र वायु ही स्वास्थ्यवर्धक और जीवनाधायक है। यह वैज्ञानिक तथ्य वैदिक ऋषियों को सुविदित था अतः वेद के एक मंत्र में सम्पूर्ण जगत् के लिए भेषज (औषधियुक्त) प्राण वायु प्रवाहित करने की प्रार्थना की गई है–

आ वातं वाहि भेषजं विवात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।।[4]

वायु प्रकृति की पोषक है। इसी से जीव जीवित रहते हैं। इसी से वृष्टि होती है। यह जीवनाधायक तत्त्व है–

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो, यथा वंश चरति देव एषः।
घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं, तस्मै वाताय हविषा विधेम।।[5]

प्राचीन भारतीय ऋषियों को उनके अनुसंधान में ज्ञात हो गया था कि पर्यावरण शुद्धि का महत्वपूर्ण साधन अग्निहोत्र या यज्ञ है। यज्ञ की प्रज्जवलित अग्नि में दी गई आहूति, जो घृत एवं हव्य सामग्रियों से प्रदेय होती हैं, उससे पर्यावरण शुद्ध, पवित्र, प्राणदायक एवं स्वास्थ्यवर्धक बनता है। सामवेद में यज्ञ द्वारा वायुमण्डल के परिष्कार की प्रेरणा दी गई है–

आजुहोता हविषा मर्जयध्वम्।[6]

यज्ञ की प्रधानभूत सामग्री घृत वायुमण्डलीय विष का नाशक है–

घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथाम्।[7]

यज्ञकुण्ड में अर्पित हव्य सामग्री के गुणों से युक्त होकर उठता हुआ धूम सम्पूर्ण वातावरण में प्रवाहित होता हुआ सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करता है, अतः यज्ञ को कल्याणकारी बताया गया है–

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म एवं च अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः।[8]

जब हवनकुण्ड में हव्य सामग्री का अर्पण होता है, वह वैदिक मंत्रों के उच्चारण पूर्वक तथा श्रद्धापूर्वक अग्निदेव के लिए होता है, इस विधि में विश्वबन्धुत्व और लोककल्याण की भावना सन्निहित है–

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अश्वरः।
भद्रा उत प्रशस्तयः।[9]

वैदिक ऋषि आपः अर्थात् जल की देवता और मातृ रूप में वन्दना करता है–

शन्नो देवीरभिष्ट्य आपो भवन्तु पीतये।[10]

तथा–

आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु।[11]

जल को अमृत और भेषज भी कहा गया है–

अप्स्वन्तरमृतं अप्सु भेषजम्।[12]

ऋषि की अभिलाषा है कि जल सदैव शुद्ध रूप में उपलब्ध रहे–

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु।[13]

नदी के जल में प्रदूषण को वैदिक ऋषि विषरूप मानते हुए प्रार्थना करता है कि नदियाँ विष से रहित हो जायें–

यन्नदीषु परिजायते विषम् विश्वे देवा निरिस्तत् सुवन्तु

सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु।[14]

पृथ्वी जल और मल का निक्षेपण करती है, अतः पृथ्वी की हिंसा का निषेध भी वैदिक मंत्रों में वर्णित है–

पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसी।[15]

कीटनाशकों का अतिशय प्रयोग, उद्योगों का अपशिष्ट, बृहदाकार बहुमंजिलें भवनों का निर्माण, वनों की कटाई आदि अनेक कारणों से पृथ्वी की उर्वरा शक्ति नष्ट हो रही है। पृथ्वी के साथ किसी भी प्रकार हिंसापूर्ण व्यवहार का वैदिक ऋषि निषेध करते हैं, साथ ही पृथ्वी के मर्म पर प्रहार को सर्वथा अनुचित मानते हैं–

यत् ते भूमे विश्वनाभि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पितम्।।[16]

हरितिमा पृथिवी के लिए संजीवनी है। वह न केवल पृथिवी की शोभा को विस्तार देती है अपितु जीवों के लिए अमृतरूपा है–

माध्वीर्नः सन्त्वौषधी।[17]

वर्तमान में भी वैज्ञानिकों ने प्रदूषण निवारण के लिए वृक्ष एवं वनों का महत्व स्वीकार किया है। वृक्षादि वनस्पति दूषित वायु को आत्मसात् करके जीवनदायक एवं सुखकारक वायु का संचार करते हैं। इस तथ्य को वैदिक ऋषि जानते थे। उन्होंने वृक्ष एवं वनों को सत्यप्रमाण मानकर श्रद्धापूर्वक प्रणाम अर्पित किया है–

नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः, वनानां पतये नमः।
औषधीनां पतये नमः, वृक्षाणां पतये नमः।
अरण्याणां पतये नमः।।[18]

ऋग्वेद के दशम मण्डल का एक सम्पूर्ण सूक्त ही वन देवता के लिए प्रस्तुत किया गया है, यह सूक्त अरण्यानी सूक्त (10.146) के नाम से प्रसिद्ध है। इस सूक्त में अरण्यानी को पृथ्वी मण्डल के सब जीवों की माता के रूप में वर्णित किया है–

आञ्जनगन्धि सुरभिबह्वन्नामकृषीवलाम्।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यामनिशंसिषम्।।[19]

मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने इस तथ्य को सम्यक्तया उद्घाटित किया है कि वन, वृक्ष, वनस्पति, लता आदि प्रदूषण को दूर करते हैं। वायु को शुद्ध रूप में प्रवाहित होने में सहायक हैं। मेघों की उत्पत्ति के कारक है, अतः ये मधुमय, हितसंवर्धनकारी और शान्तिप्रदायक हों, इसकी कामना भी वेदमंत्रों में अभिव्यक्त है–

सुमित्रिया न आपः औषधयः सन्तु।[20]

वृक्षादि न केवल पर्यावरण के संरक्षण का कार्य करते हैं, अपितु धरा के सभी जीवों के लिए जीवनयापन के लिए सामग्री भी उपलब्ध कराते हैं। अतः नवीन वृक्षों का रोपण निरन्तर करना चाहिये। इसका उल्लेख ऋषि ने इस प्रकार किया है–

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम्।[21]

वैदिक कालीन ऋषि मनुष्य–समाज में पर्यावरण को शुद्ध, संरक्षित और परिवर्धित रखने की बारम्बार प्रार्थना करता है। वेद हमें आज्ञा देते हैं कि प्रकृति के इन मूल तत्वों को जितना अधिक हम पोषित रखेंगे उतना ही वह स्वच्छ एवं निर्मल रहेगी और इसके विपरीत प्रकृति अथवा पर्यावरण के मूलरूप को विकृत करेंगे तो पर्यावरण में असंतुलन की समस्या उत्पन्न हो जायेगी जो अन्ततः जीवों के विनाश का कारक सिद्ध होगी। वर्तमान में प्रकृति में असंतुलन की समस्या विश्वव्यापी हो चुकी है। इस समस्या की गंभीरता को विश्व के वैज्ञानिकों ने पहचाना और ब्राजील के रियो डी जेनेरियो में जून, 1992 में 'पृथ्वी सम्मेलन' का आयोजन किया गया, जिसमें विश्व के 178 देशों के प्रतिनिधियों ने विश्व में बढ़ रहे पर्यावरण असंतुलन के कारण सम्भावित विनाश की चिन्ताओं को साझा किया। परन्तु विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वैदिक संहिताओं के अध्ययन से विदित हो जाता है कि वर्तमान में विश्व जिस प्राकृतिक असंतुलन के संकट का सामना कर रहा है, उसका आभास वैदिक कालीन ऋषि–मुनियों को उस काल में ही था जबकि पृथ्वी पर सस्य सम्पदा की कोई कमी नहीं थी, औद्योगिक अथवा नगरीय अपशिष्टों अथवा किसी भी प्रकार के प्रकृति के लिए हानिकारक तत्वों की उपस्थिति नहीं थी। प्राचीन मंत्रद्रष्टा प्रकृति के प्रति सचेत थे। वे कहते हैं–

माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या।[22]

परन्तु आधुनिक युग में चिन्तनीय यह है कि मानव जाति ने भूमि, वन, नदी, पर्वत, खनिज एवं अन्य प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया है और इस कारण पर्यावरण असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गई है। विश्व के किसी भी क्षेत्र का प्राकृतिक असंतुलन विश्व के अन्य क्षेत्र को भी प्रभावित करता है। प्राकृतिक प्रदूषण का स्तर जिस गति से बढ़ रहा है, यदि इसकी रोकथाम नहीं की गई तो निश्चित ही इस

धरा पर जीवों का जीवन नारकीय हो जायेगा। जीवों की अनेक प्रजातियाँ लुप्त हो चुकी हैं, यही क्रम चलता रहा तो मानव जीवन का अस्तित्व भी संकट में आ जायेगा वर्तमान में आवश्यकता है कि मनुष्य जाति प्रकृति के प्रति अपने दायित्व को समझे। वैदिक ऋषियों से प्रेरणा लेकर प्राकृतिक विरासत की सुरक्षा करे। मानवीय तृष्णाओं पर अंकुश लगाकर ही पर्यावरण को बचाया जा सकता है। मनुष्य को चाहिये कि प्राकृतिक संतुलन स्थापित करने के लिए प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करे। जब सृष्टि का निर्माण पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश इन पाँच तत्वों से हुआ है तो इन तत्त्वों से समन्वय स्थापित करना ही मानव जीवन की शान्ति का आधार है।

इस प्रकार वेदों के अध्ययन से प्रमाणित होता है कि मंत्रद्रष्टा ऋषि प्रकृति और मानव के मध्य संतुलन बनाये रखने के लिए कृतसंकल्प था। प्रदूषण के निवारण और पर्यावरण के संरक्षण के लिए हरसंभव उपाय और साधनों का उल्लेख भी वेदों में बताया गया है। सतत उपयोगी, सार्थक, व्यवहारिक और वैज्ञानिक वैदिक उपाय जो प्रकृति के संवर्धन में उपयोगी हैं, उन्हें अपनाने का प्रयत्न करना चाहिये। उनके द्वारा निर्देशित मार्ग का अनुसरण करने पर ही प्रकृति और मानव जाति का आस्तित्व बच सकता है। किन्तु वर्तमान में मनुष्य स्वार्थसाधना में लीन है जबकि आवश्यकता इस चिन्तन की है कि हम प्रकृति के प्रति अपने धर्म को जाने तथा मानवीय मूल्यों एवं आदर्शों को पुनः प्रकृति के अनुकूल बनाकर उनकी स्थापना करें। साथ ही इस तथ्य को जाने की प्राकृतिक असंतुलन के प्रवृद्ध हो जाने पर मानव सभ्यता भी शेष नहीं रहेगी। अतः पर्यावरण प्रदूषण या असंतुलन से भविष्य में प्राप्त होने वाले खतरे को समझकर सार्थक दिशा में अग्रसर होने के लिए सामूहिक प्रयत्न करें। पर्यावरण की स्वाभाविकता को यथावत बनाए रखें क्योंकि प्रकृति की मूल व्यवस्था पर कुठाराघात करते चले जाने पर किसी प्रकार स्वास्थ्य और जीवन प्राप्त नहीं होगा। आवश्यक है कि प्रकृति के उपासक बन कर समग्र सृष्टि में चैतन्य भाव को देखते हुए सौहार्द की भावना के साथ सबकी उन्नति की कामना करें और प्राकृत नियमों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अथर्ववेद, 8.2.25*
2. *अन्नं भट्ट, तर्कसंग्रह*
3. *ऋग्वेद, 1.89.8*
4. *ऋग्वेद, 10.137.3*
5. *ऋग्वेद, 10.168.4*
6. *सामवेद, 1.7.1*
7. *यजुर्वेद 5.28*
8. *शतपथ ब्राह्मण, 1.7.3.5*
9. *ऋग्वेद, 8.19.19*
10. *यजुर्वेद 36.12*
11. *ऋग्वेद 10.17.10*
12. *ऋग्वेद 1.130.19*
13. *अथर्ववेद 12.130*
14. *ऋग्वेद, 7.50.34*
15. *यजुर्वेद, 13.18*
16. *अथर्ववेद 12.1.35*
17. *यजुर्वेद 13.7*
18. *यजुर्वेद, 16.17.20*
19. *ऋग्वेद 10.146.6*
20. *यजुर्वेद 36.23*
21. *ऋग्वेद 10.101.11*
22. *अथर्ववेद, 12.1.12*

जैन धर्म में पर्यावरण संरक्षण का संदेश

डॉ. मंजु जैन
सह–आचार्य, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पर्यावरण सरंक्षण एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में आज विश्व में विद्यमान है, जैन धर्म प्रारम्भ से ही पर्यावरण की शुद्धता बनाये रखने में सचेष्ट और संवेदनशील रहा है। मनुष्य पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित होकर प्रकृति का अत्यधिक दोहन कर रहा है जिसके कारण पर्यावरण बिगड़ रहा है, परिणामस्वरूप पृथ्वी पर अतिवृष्टि, अनावृष्टि प्रचंड गर्मी एवं ठण्डक आदि नवीन समस्याएँ सामने आ रही है। पर्यावरण समस्याओं के मूल में मानव प्रवृतिगत दोष ही है जिसका परिष्कार ही इसके समाधान का मार्ग प्रशस्त करता है।

संकेताक्षर : *संरक्षण, स्थावर, त्रस, अपरिग्रह।*

पर्यावरण सरंक्षण एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में आज विश्व में विद्यमान है, वस्तुतः पर्यावरण संस्कृति, परम्परा, कला, अर्थशास्त्र, राजनीति, वाणिज्य एवं समाज ही नहीं बल्कि विश्व के प्रत्येक प्राणी मात्र के अस्तित्व से सम्बन्ध रखता है। विश्व की अनेक संस्कृतियों के प्रबुद्ध चिन्तकों ने इस विषय पर गम्भीरता से विचार किया है। भारतीय संस्कृति में विशेषकर जैन संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण पर चिन्तन ही नहीं किया गया अपितु मानव जीवन में व्यवहार में मूर्त रूप में उसे प्रतिष्ठापित करने का सार्थक प्रयास किया गया है। जैन धर्म प्रारम्भ से ही पर्यावरण की शुद्धता बनाये रखने में सचेष्ट और संवेदनशील रहा है।

परि+आवरण के संयोग से निर्मित पर्यावरण शब्द चारों ओर से आवृत करने का अर्थ देता है। व्यापक अर्थ में जैन धर्म में सजीव प्राणी, सौरमण्डल, भूगर्भ और आस–पास का वातावरण सभी कुछ इसमें समाहित हो जाते हैं।

जैन धर्म के सन्दर्भ में पर्यावरण प्रदूषण के कारकों पर विचार किया जाए तो प्रमुखतः दो प्रकार के प्रदूषण कारक दृष्टिगत होते है।

1. भौतिक प्रदूषण कारक 2. अभौतिक प्रदूषण कारक। भौतिक प्रदूषण कारकों में वायु, जल, भूमि, खाद्य, ध्वनि तथा अंतरिक्ष को प्रदूषित करने वाले समस्त कारकों का समावेश किया जा सकता है। अभौतिक प्रदूषण कारकों में मानसिक प्रदूषण कारक जैसे हिंसा असत्य, राग–द्वेष, ममत्व भाव, पदार्थों के संचय का भाव आदि सम्मिलित होते हैं।

जैन धर्म अहिंसा पर सबसे अधिक बल देता है।

जैन दर्शन के अनुसार

'ते चामनस्का द्विविधाः, त्रसस्थावरभेदात्।
तत्र द्वीन्द्रियादयः शङ्ख गण्डोलकप्रभृतयः चतुर्विधास्त्रसाः।
पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः।।[1]

संज्ञा से रहित अमनस्क जीवों के दो भेद है त्रस और स्थावर। उनमें दो इन्द्रियों से युक्त शंखादि से लेकर पंचेन्द्रिय तक चार प्रकार के त्रस है और पृथिवी, जल, तेज, वायु और वनस्पति स्थावर है। हमें इन चरों और स्थावरों के प्राणों का विनाश प्रमादवश भी नहीं करना है यहीं अंहिसा है।

न यत्प्रमादयोगेन जीवितव्य परोपणम्।
चराणां स्थावराणां च तदहिंसाव्रतं मतम्।।[2]

इस प्रकार जैनधर्म पशु–पक्षी मानव ही नहीं वनस्पतिकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों की रक्षा का भी पक्षधर है। मनुष्य और प्रकृति दोनों जन्म लेते हैं, वृद्धि को प्राप्त होते है, वायु व जल ग्रहण करते हैं। यही कारण है कि जैन धर्म में वनस्पति काय की हिंसा का भी निषेध है।

जैन धर्म मानवता की गहराई और उसकी क्रियान्विति पर बल देता है। यही अहिंसा का मर्म है और यही संस्कृति का मूल । अहिंसा ही पर्यावरण का आधार है। संयम, समता, करूणा आदि मूल्य पर्यावरण के संरक्षक के लिए उपयोगी है। अहिंसा का प्रतिष्ठापक जैन धर्म एवं जीवन पद्धति में सर्वोपरि है। जैन संस्कृति ही पर्यावरण की समग्रता को समाहित किये हुये हैं और उसके पोषण करने में सहभागी बनी हुई है।

पर्यावरण और प्रकृति की सुरक्षा में स्थावर जीवों की रक्षा का महत्त्व तो है ही पर महावीर ने उसे अहिंसा व्रत से जोड़कर यह मौलिक प्रस्थापना की है कि स्थावर मे भी जीव का अस्तित्व है और उसके साथ भी अहिंसा व्रत की भावना रखनी चाहिएं। विज्ञान की नई खोज ने भी इस परिकल्पना को संपुष्ट कर दिया है।[3]

जैन धर्म में 'अपरिग्रहवाद' मूल सिद्धान्त है, जो पृथ्वी, वायुमण्डल के साथ ही आत्मा को भी प्रदूषित होने से बचाता है। पदार्थो में इच्छा का त्याग ही अपरिग्रह है। 'सर्वभावेषु मूर्च्छायास्त्यागः स्यापरिग्रहः।'[4] जैन धर्म वस्तुओं का सीमित उपभोग करना अर्थात् आय की अपेक्षा व्यय कम करने को कहता है, ताकि पर्यावरण शुद्ध और संरक्षित रहे। जैसे स्नान के लिए यदि हमें एक बाल्टी पानी की आवश्यकता है तो नल खोलकर पानी बहाना क्या जल प्रदूषण का कारक नहीं हैं ? इसी प्रकार एक पृष्ठ पर दो लाइन लिखकर बाकी पृष्ठ खाली छोड़ देना क्या मृदा प्रदूषण नहीं हैं ? कितने पेड़ कटते है तब कागज बनता है इन बातों को ध्यान में रखकर ही भगवान महावीर ने कहा था कि चेतन या अचेतन सबकी स्वतंत्र सत्ता है, सबमें जीवन है। इसलिए छोटे से छोटे जीवन के अस्तित्व को भी स्वीकार करना चाहिए, उसे बचाना चाहिए तभी हम अपने अस्तित्व को बचा पाएंगे।

जैन संस्कृति 'आहार' के क्षेत्र में भी शाकाहार पर बल देती है तथा मांसाहार को हेय मानती है। मांसाहार में पशु–पक्षियों की हत्या होती है जो कि पर्यावरण को शुद्ध और संरक्षित रखते है। शाकाहार को महत्व देने के पीछे पर्यावरण चेतना की यह भावना भी छिपी है।

जैन संस्कृति में मानसिक प्रदूषण को सबसे बड़ा प्रदूषण बताया गया है। मानसिक विकारों यथा राग द्वेष, हिंसा, असहिष्णुता, लोभ, ईर्ष्यादि के निवारण हेतु अणुव्रत[5] महाव्रत[6] समिति[7] गुप्ति[8] प्रतिक्रमण[9] उपवासादि नियमों का पालन करना आवश्यक माना गया है। मनुष्य पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित होकर प्रकृति का अत्यधिक दोहन कर रहा है जिसके कारण पर्यावरण बिगड़ रहा है, परिणामस्वरूप पृथ्वी पर अतिवृष्टि, अनावृष्टि प्रचंड गर्मी एवं ठण्डक आदि नवीन समस्याएँ सामने आ रही है। प्राणी मात्र को प्रकृति संरक्षण एवं पर्यावरण संतुलन की दिशा में प्रयास करना चाहिये।

उपसंहार

पर्यावरण समस्याओं के मूल में मानव प्रवृतिगत दोष ही है जिसका परिष्कार ही इसके समाधान का मार्ग प्रशस्त करता है। पर्यावरण का अत्यन्त महत्वपूर्ण चेतन अंग होने के कारण मानव के विचार एवं व्यवहार का समस्य अन्य पर्यावरण विषयक तत्वों पर प्रभाव पड़ता है। अतः पर्यावरण चेतना को जागृत करना आवश्यक है, जिससे कि वह अपने क्रिया–कलापों के भविष्य में होने वाले दुष्परिणामों का पूर्वज्ञान प्राप्त कर सके और पर्यावरण संतुलन और सरंक्षण की दिशा में अपना दायित्व निभा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *सर्वदर्शन संग्रह, प्रो. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी' संस्करण 200 पृ.30*
2. *वही पृ. 122*
3. *जैन धर्म और पर्यावरण, प्रो. भागचन्द्र जैन 'भास्कर'/प्रकाशन न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन संस्करण 2019 पृ. 111*
4. *सर्व दर्शन संग्रह, प्रो. उमाशंकर शर्मा, ऋषि प्रकाशन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ. 122*
5. *तत्वार्थ सूत्र 7/19*
6. *तत्वार्थ सूत्र 7/20*
7. *तत्वार्थ सूत्र 9/21*
8. *तत्वार्थ सूत्र 9/15*
9. *तत्वार्थ सूत्र 9/22*

Diaspora and the Voice of the Lesbian in the Poems of Suniti Namjoshi

Dr Jagriti Upadhyaya
Asst. Professor, Sardar Patel University of Police,
Security and Criminal Justice, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

The oeuvre of Suniti Namjoshi as a lesbian writer of the diaspora, is an articulation of the hereto taboo and fraught issues, particularly of same- sex love that tends to disrupt and explode heterosexist normative gender dualism. To be a lesbian and a migrant, that too from a third world country is to be minoritised in myriads of contexts. Lesbians as Patricia White states are seen as 'grotesque aberrations' because they challenge what Michael Warner terms 'heteronormativity' and subvert the normal and the ideal discourse of patriarchy; the gendered role of women; their biological role of reproduction; man-woman relationships, particularly sexual, and the universality of heterosexual binaries. Shalmalee Palekar in her article states,"Suniti Namjoshi, is an Indian lesbian-feminist author, who articulates through her work, the fraught issues of having to inhabit all these subjectivities. To critique her world from that margin is to wrestle with contradictions and surrounding issues of identity and self-hood, of self- representation, and agency. The concept of positionality is central to Namjoshi's narratives. Her characters interrogate stereotypes of race, sexuality and gender and the dominant majority's collusion in producing these.'(Palekar https://research-repository.uwa.edu.au/en/publications/un-sacred-cows-and-protean-beings-suniti-namjoshis-re-writing-of-post-colonial-lesbian- bodies).

Keywords: *Hybridity, Subjectivity, Lesbian, Heteronormativity, Ethnicity, Patriarchy.*

Hybridity is never a comfortable"given"; hence there are in her work, deliberate contradictions and provocative position statements on patriarchy, lesbian identity, feminist theory and 'Indianness'. Through a foregrounding of split subjectivities and selves, she is able to theorise/ make visible/legitimise a particular sort of hybrid self, through subversions of institutionalised and systemic erasures."(Palekar https://research-repository.uwa.edu.au/en/publications/un-sacred-cows-and-protean-beings-suniti-namjoshis-re-writing-of-post-colonial-lesbian- bodies).

As Avtar Brah puts it in' Cartographies of Diaspora: Contesting Identities' distinct diaspora communities are created out of the 'confluence of narratives' of different journeys from the 'old country' to the new which create the sense of a shared history. Yet we must not forget that 'all diasporas are differentiated, heterogeneous, contested spaces, even as they are implicated in the construction of a common 'we'. Differences of gender, 'race', class, religion and language (as well as generational differences) make diaspora spaces dynamic and shifting, open to repeated construction and reconstruction."(McLeod, 2010, p.207)

Salman Rushdie is of the opinion that since the migrant sees the reality of his displacement and place vis-a vis his homeland in 'broken mirrors' he or she comes to treasure a partial, plural view of the world because all representations of the worlds are incomplete. As Rushdie puts in, "meaning is a shaky edifice we build out of scraps, dogmas, childhood injuries, newspaper articles, chance remarks, old films, small

victories, people hated, people loved; perhaps it is because our sense of what is the case is constructed from such inadequate materials that we defend it so fiercely, even to the death."(McLeod, 2010,p.214)

John McLeod, commenting on Rushdie, argues, "The migrant seems in a better position than others to realise that all systems of knowledge, all views of the world, are never totalising, whole or pure, but incomplete, muddled and hybrid. To live as a migrant may well evoke the pain of loss and of not being firmly rooted in a secure place; but it is also to live in a world of immense possibility with the realisation that new knowledges and ways of seeing can be constructed out of the myriad combinations of the 'scraps' which Rushdie describes- knowledges which challenge the authority of older ideas of rootedness and fixity."(McLeod, p. 215).

And therefore for Namjoshi inhabiting this space of in- between opens up a place of immense creativity and possibility as a lesbian. In her oeuvre she explores the different facets of lesbian desire and identity as a third world diaspora writer and it is specifically the freedom that the liberated West gives her that she is able to articulate and vocalize her innermost urges and proclivities.

In an interview with Christine Cryoden she narrates her mother's disapproval of her sexual preferences "She has never been particularly happy about that I'm a writer, or, a lesbian feminist. She sees these as notoriety, tarnishing the good name of the family…" But Namjoshi rejects social taboos and institutionalized authority by rejecting the conventional and accepted heterosexual mores.

In 'Because of India', she writes, "One aspect of culture shock is that one is not recognised- in both senses of the word. In India I was inescapably my grandfather's granddaughter, one member of a particular family located for hundreds of years in a particular region, with a particular place in a particular system." (Namjoshi, 1989,p.14)

In 1973 the concept of 'woman identified woman' was an important lesbian concept which focused on the lesbian as one who believed in the primacy of women and saw the lesbian as a source of an alternative model of female identity and not simply a choice of sexual activity. Says Peter Barry in ' Lesbian/ gay criticism in Beginning Theory' , "The lesbian feminist position identified in this essay makes lesbianism central to feminism, since lesbianism turns away from various forms of collusion with patriarchal exploitation and instead consists of relationships among women which, by definition, constitute a form of resistance to, and a radical reorganising of, existing forms of social relations."(Barry 2010, 136).

Monique Witting in 'One is Not Born A Woman' writes, "A lesbian consciousness should always remember and acknowledge how 'unnatural', compelling, and totally oppressive, and destructive being 'woman' was for us in the old days before the women's liberation movement."(Gilbert and Gubar, 2007, p. 546.) And it's perhaps the articulation of the supposedly inarticulate norms of the body politics in gay and lesbian liberation movements in the 1970s after the famous Stonewall riots that the orbit of homosexual desire and Adrienne Rich's famous notion of a 'lesbian continuum' became part of 'what has never been' as Bonnie Zimmerman says.

Lucy Irigaray finds that lesbianism opposes the constructions imposed by heterosexuality and represents an alternative sexual discourse while some lesbian theorists define it politically, equating it with strength, independence, and resistance to patriarchy.

In 'The Straight Mind and Other Essays' Monique Wittig does not consider lesbians as women because for her the word' woman' carries with it too many constructions and associations. She states, "Lesbianism is the only concept I know of which is beyond the categories of sex (woman and man), because the designated subject

(lesbian) is not a woman, either economically, or politically, or ideologically. For what makes a woman is a specific social relation to a man, a relation that we have previously called servitude, a relation which implies a personal and physical obligation as well as economic obligation… a relation which lesbians escape by refusing to become or to stay heterosexual.'(Witting, 1992,p.32)

Judith Butler in 'Imitation and Gender Insubordination' troubled by normative definitions, states, "I'm permanently troubled by identity categories, consider them to be invariable stumbling- blocks, and understand them, even promote them, as sites of necessary trouble."(Gilbert and Gubar, 2007,p.709). She finds that to install oneself in an identity category necessarily undermines the sexuality that a particular category purports to describe and it is the instability of those categories that frees the eroticism they tend to control. Stressing upon the derivativeness of lesbian sexuality she states, "Is it not possible that lesbian sexuality is a process that reinscribes the power domains that it resists, that it is constituted in part from the very heterosexual matrix that it seeks to displace, and that its specificity is to be established not outside or beyond that reinscription or reiteration, but in the very modality and effects of that reinscription."(Gilbert and Gubar, 2007, p.712)

Of the modern feminist Indian writers Suniti Namjoshi expresses the lesbian voice and lesbian identity with unparalleled candour and attempts to construct an alternative universe in textuality.

C, Vijayshee in Suniti Namjoshi : The Artful Transgressor' quotes, "A lesbian is the rage of all women condensed to the point of explosion. She is the woman who, often beginning at an extremely early age, acts in accordance with her inner compulsion to be a more complete and freer human being than her society- perhaps then, but certainly later- cares to allow her. These needs and actions, over a period of years, bring her into painful conflict with people, situations, the accepted ways of thinking, feeling and behaving until she is in a state of continual war with everything around her and usually with herself."(Vijayshree, 2001,p.72). In her poem' And She Wrote Her Poems, in the collection, 'The Jackass and the Lady', Namjoshi articulates why she chooses to write as a lesbian poet, rejecting the male- centered, essentialist universe at large,

"And she wrote her poems because muteness
terrified her,
seeing, as she did, in the level lake water
an upside down swan."(Namjoshi, 1989, p.31).

One of the most pervasive themes in lesbian criticism is how lesbian writers, like Angela Weld Grimke, a black writer, or Willa Cather, for instance, silenced by a homophobic and mysogynistic society were forced to adopt coded or 'slanted truth'; but lesbian works have emerged not only as tropes of feminist discourses but also as part of queer writings that examine and undermine the continued denials and invalidation of the lesbian experience.

Namjoshi rejects the traditional sex roles and heterosexuality when she expresses her intimacy with her bosom friend and lover, Gillian Hanscombe. The woman- identified- woman lesbianism is manifest in her work 'Flesh and Paper'. According to Namjoshi the poems in 'Flesh and Paper' are records of her lesbian same-sex love and experiences with Gillian Hanscombe.

In Namjoshi's own words, "Many were taken out of the letters between us, and woven into an interconnecting text. It's not just that our identities as lesbians, our political awareness and our literary backgrounds corresponded; the structures of our imagination also corresponded, and this despite the fact that Gill grew up in Australia and I grew up in India." (Namjoshi 1986, p.112) The following lines are expressive of the solace and sensual gratification in the arms of her beloved,

"and I fell in love with a woman so tall that

When I looked at her eyes I had to go star-gazing."

Or

"One day she picked me up from the floor and set

me on her nipple. I tried to ride, but consider my

position- indubitably tricky.

To sleep forever in my fair love's arms,

to make of her body my home and habitation…

She keeps me about like her personal warm.

She is not squeamish."….(Namjoshi- from The Travels of Gulliver 1-2, 15-21)

According to her, in Flesh and Paper the two voices 'shape a universe in which the lesbian consciousness is central; what is unusual in the sequence is the sense of equality and partnership, so that traditional barriers between speaker and listener, poet and audience, dissolve.'

Bonnie Zimmerman is of the opinion that many critics think that to consider lesbianism as an exclusively sexual phenomenon is not an adequate construction of the lesbian experience historically as well. Zimmerman in her essay 'What Has Never Been: An Overview of Lesbian Feminist Criticism' compares two perspectives on lesbianism –one that insists on desire and carnality as a prerequisite and the other with an expanded meaning, its major proponent being Adrienne Rich, who states Zimmerman, offers a compelling inclusive definition of lesbianism: " I mean the term lesbian continuum to include a range – through each woman's life and throughout history- of woman- identified experience; not simply the fact that a woman has had or consciously desired genital experience with another woman. If we expand it to embrace many more forms of primary intensity between and among women, including the sharing of a rich inner life, the bonding against male tyranny, the giving and receiving of practical and political support….. we begin to grasp breadths of female history and psychology which have lain out of reach as a consequence of limited, mostly clinical, definition of 'lesbianism'.(Gilbert and Gubar 2007,552). Zimmerman also traces the problem of defining lesbianism as it cannot draw a distinction between lesbian relationships and non-lesbian female friendships or between lesbian identity and female- centered identity.

In the following lines from 'The Jackass and the Lady' we can trace the dynamics of friendship between the two figures,

"Climb up here on this ready- made mountain,

sit beside me, and watch the two women

walking on the beach, observe their relation,

mood and emotion, each connected to each." (Namjoshi

A woman who lives beneath the façade of male derived identity has no value of her own as her entire value is derived from his. She is a woman who is invisible, pathetic, inauthentic and unreal. But Namjoshi feels emancipated from the shackles of heterosexuality when she expresses herself thus,

"We can

-I/you can- press dreams and theories, bellies,

Breasts, hair, hips, lips: and words: all

Plaited now, until tomorrow. (Namjoshi, Because of india,ll 12-15).

Judith Butler in 'Gender Trouble' questions the 'heterosexual matrix, that' grid of cultural intelligibility through which bodies, genders and desires are naturalized.'(Waugh, 2010,p. 430). Tony Purvis traces how Butler poses a number of question. "Can we refer to a 'given' sex or 'given' gender without first inquiring into how sex and /or gender is given..? And what is 'sex' anyway? Is it natural, anatomical, chromosomal, or hormonal? Does sex have a history? Does each sex have a different history, or histories? (Waugh, 2010,p 430). Butler proposes that we understand 'sex' and 'gender' as citational repetitions. She is of the opinion that, "The sex/gender distinction and the category of sex itself appears to pre-suppose a generalization of 'the body' that preexists the acquisition of its

sexed significance. This body often appears to be a passive medium that is signified by an inscription from a cultural source figured as 'external' to that body. Any theory of the culturally constructed body, however, ought to question 'the body' as a construct of suspect generality when it is figured as passive and prior to discourse."(Leitch, 2018,p. 2378). Power functions pervasively through gendered roles. Boys learn not to cry; girls are told certain behaviors make her a tomboy. Butler believes identity is a trap, a hardening into rigid, binarized categories of much more heterogeneous possibilities.

The cost of identity's straitjacket, Butler believes are high. The Deviants – those with non-heterosexual desires like, bisexuals, homosexuals, hermaphrodites, so labeled pay an exorbitant price in the form of internalized guilt and external sanctions. But non-heterosexual desires and acts cannot be erased. Therefore Butler calls for a loosening of the categories, a relaxation of our fixation on identity. She calls for actions that will 'resignify' our received meanings- actions that will lead to a 'proliferation' of the 'constitutive categories' into which all selves are now constrained to fit. Michael Warner coined the term 'heteronormativity' in the early 1990's which prescribes both certain sex acts and 'many practices that are not sex,' such as family, romance, citizenship, national character and says that as part of the hegemonic order it projects a 'monoculture' that dominates all alternative sexual cultures or groups, is determinative of one's social life and isolates and demonizes 'others'. Warner states, "A complex cluster of sexual practices gets confused, in heterosexual culture, with the love plot of intimacy and familialism that signifies belonging to society in a deep and normal way. Community is imagined through scenes of intimacy, coupling, and kinship. And a historical relation to futurity is restricted to generational narrative and reproduction. A whole field of social relations becomes intelligible as heterosexuality, and this privatized sexual culture bestows on its sexual practices a tacit sense of rightness and normalcy. This sense of rightness- embedded in things and not just in sex- is what we call heteronormativity."(Leitch, 1018, p. 2457-58).

Namjoshi's more explicit lesbian eroticism can be seen in 'I Give her the Rose' in which she uses the imagery of the rose to convey lesbian sexuality as natural as heterosexuality:

I give her the rose with unfurled petals.

She smiles

And crosses her legs.

I give her the shell with the swollen lip.

She laughs. I bite ll

And nuzzle her breasts.

I tell her, "Feed me on flowers

with wide open mouths.'

And slowly,

She pulls down my head."(Namjoshi, 1989, p 32)

Another explicit and overt example that expresses with unusual boldness and chutzpah the carnal desire of the narrator for her friend is seen in' Well, Then Let Slip the Masks',

" The curve of your breast is like the curve

of a wave; look, held, caught, each instant

caught, the wave tipping over and we in our bower,

the two of us sheltered, my hands on your thighs,

your body, your back, my mouth on your mouth.

and in the hollows of your jaws and your head

nuzzling my breasts. (Namjoshi- Well…ll.7-13)

This poem, articulating her lesbian desire, is not only counter hegemonic but also challenges taxonomical boundaries of gender and heteronormative values. In the 1992 edition of 'Between Men: English Literature and Male Homosocial Desire' Eve Sedgwick writes about how the new paradigm in queer theory owes itself to 'the gorgeous generativity, the speculative generosity and daring, the

permeability, and the activism that have long been lodged in the multiple histories of queer reading. 'Sedgwick in her iconic work' Epistemology of the Closet' uses the metaphor of 'the closet' to symbolise a regime of contradictory and constraining rules about privacy and disclosure, public and private and how values and epistemology have been conceived and addressed in queer subcultures and Western societies. But Namjoshi's poem, with an overt eroticism convey very strongly how she breaks the closeted space to declare her sexual orientation. In 'Feminist Fables: Conversations of Cow' comments on how because of the dominant majority and authority of a heterosexist and sexist culture of marriage and bourgeois family that lesbians become 'nebulous unpersons'. These tropes translate love and desire into a lesbian textual practice that produces lesbian identification. 'In this Kind Country' she demonstrates how because of a heterosexist society she had to permanently settle outside India to live the life of her chosen sexual orientation.

"And in mine, [my country, India]

The word is so raw it bleeds; and from

fury of pain, it attacks; and would

maim us daily. We can compose ourselves;

but it's our bodies, not our passports,

fit so uncommonly well."(Namjoshi, 1989, p.122)

The poem traces the cultural polarity that exists between the East and the West and places Namjoshi in a third space, as a diasporic subject with a lesbian identity.

But more than this, lesbianism also becomes aporetic as it also has resistance from society built into its very normativity. Adrienne rich says, "It has of course included isolation, self-hatred, breakdown, alcoholism, suicide and intrawoman violence; we romanticize at our peril what it means to love and act against the grain, and under heavy penalties; and lesbian existence has been lived without access to any knowledge of a tradition, continuity, a social underpinning.(Rich, 1994,p.26)

Judith Butler in 'Gender trouble: Feminism and the Subversion of Identity' argues that sex male/ female is seen to cause gender which she classifies as masculine/ feminine which leads to the arousal of desire towards the other gender. She rejects the idea of any connections between gender and desire and finds them flexible and free floating. She says, "There is no gender identity behind the expression of gender.... Identity is performatively constituted by the very 'expressions' that are said to be its results."(Butler,2007,p 25)

Kathleen Kerr in 'Race, nation and ethnicity aptly remarks, "Modern identities are increasingly liminal and hybrid, given the historical 'overlapping of diasporas' and a globalizing process in which capital,commodities, information, technologies,images, and ideologemes circulate across borders."(Waugh, 2010, p.364)

Another example from 'Well, then let slip the masks', she in a powerful outburst of passion, expresses same –sex love like an impassioned lover,

"Will you

Take to the sea, my darling? Will you let me caress you?

The tips of your feet, your legs, your sex?

Will you let my tongue caress you? Will you lie in my arms will you rest? (Namjoshi- Well, Then Let Slip the Masks,ll. 14-18)

These poems liberate the writer from what Eve Sedgwick calls the 'closet' and celebrates the 'coming out' of Namjoshi as a lesbian, diaspora writer of colour in the West. As Akshaya K. Rath expresses her opinion thus, "Breaking away from patriarchal and patrilineal boundaries, Namjoshi opens up discussions concerning postcolonial sexuality and reveals how difficult it is to have a sexual identity in India. The poem(s) projects the theme of breaking away from the boundaries of home, family and society and coming out of the closet after a period of

repression."(Rath, Akshyay K.- The Upside-Down Swan: Suniti Namjoshi Rupkatha Journal on Interdisciplinary Studies in Humanities E-ISSN 0975-2935 http://rupkatha.com/suniti-namjoshi-extract/

Lillian Faderman in her iconic overview, 'Surpassing the Love of Man: Romantic Friendship and Love Between Women From the Renaissance to the Present' gives a definition that lies between the inclusive and exclusive definitions of lesbianism. In her words, "Lesbian describes a relationship in which two women's strongest emotions and affections are directed towards each other. Sexual contact may be a part of the relationship to a greater or lesser degree, or it may be entirely absent. By preference the two women spend most of their time together and share most aspects of their lives with each other."(Faderman 1981, 17-18).

Bertha Harris considers the lesbian to be a prototype of the monster and the quintessence of all that is female; and female enraged… a lesbian is … that which has been unspeakable about women. Harris offers this monstrous lesbian as a female archetype who subverts traditional notions of female submissiveness, passivity and virtue.

In the 'Apparitional Lesbian' Terry Castle quotes Violet Trefusis writing to Vita Sackville West from Cornwall at the height of their turbulent love affair in the summer of 1919, speaks of being possessed by her, as though she were present,

"O mercy," she exclaims (as if incanting)"the things I want to write!"-

"You remember the caresses…

It seems I have never wanted you as I do now-

When I think of your mouth…

When I think of … other things, all the blood rushes to my head,

and I can almost imagine……"(Gilbert and Gubar, 2007, p 764).

Charlotte Bunch explains, "The lesbian rejects male sexual/ political domination; she defies his world, his social organization, and his definition of her as inferior. Lesbianism puts women first while the society declares the male supreme. Lesbianism threatens male supremacy at its core. When politically conscious and organized, it is central to destroying our sexist, racist, capitalist, imperialist system."(Bunch, 2003,p.83).

Judith Butler in 'Gender trouble: Feminism and the Subversion of Identity' argues that sex male/ female is seen to cause gender which she classifies as masculine/ feminine which leads to the arousal of desire towards the other gender. She rejects the idea of any connections between gender and desire and finds them flexible and free floating. She says, "there is no gender identity behind the expression of gender…. Identity is performatively constituted by the very 'expressions' that are said to be its results."…

Does a diasporic writer, with 'one foot here and a couple of toes there, like Namjoshi figure in the ' derogatory' or the 'celebratory' category of lesbian writer because the body, in the words of anthropologist Mary Douglas operates as a powerful metaphor for culture and is sexuality and what Foucault calls the ' docile body' to be regulated by norms of cultural life?

Underscoring our tenebrous existence in times of porous borders and forging of new identities Homi Bhabha in the 'Introduction' of his iconic work 'The Location of Culture' states, "The move away from the singularities of 'class' or 'gender' as primary conceptual and organizational categories, has resulted in the awareness of the subject positions- of race, gender, generation, institutional location, geopolitical locale, sexual orientation- that inhabit any claim to identity in the modern world. (Bhabha, 2017, p. 2).

Harveen S. Mann in 'Suniti Namjoshi: Diasporic, Lesbian Feminism and the Textual Politics of Transnationality' aptly remarks, "As Namjoshi crosses or erases borders- national, cultural, gender and narratologicall- and proffers a transgressive, even subversive, commentary on mainstream traditions both Eastern and

Western, she unsettles much on both sides. Failing –here construed as positive- to achieve any idealized sense of belonging to one (essentialized) culture, nation, or group, or, conversely, to arrive at (an even more problematic0 'universal' state, Namjoshi occupies instead a 'third space', an interstitial location between nations and cultures, as theorized by Homi Bhabha.."(Mann, 1997, p.98)

Kathleen Kerr in 'Race, nation and ethnicity aptly remarks, "Modern identities are increasingly liminal and hybrid, given the historical 'overlapping of diasporas' and a globalizing process in which capital, commodities, information, technologies, images, and ideologemes circulate across borders."(Waugh, 2010, p.364)

Jill Johnston is of the opinion that the word lesbian has expanded so much through political definition that it should no longer refer exclusively to a woman simply in sexual relation to another woman; the word is now a generic term signifying activism and resistance and the envisioned goal of a woman committed state.

References

1. *Berlant, Lauren and Michael Warner- from Sex in Public in The Norton Anthology of Theory and Criticism, Ed. Leitch, Vincent B. and others, W.W Norton & Company, New York, 2018.*
2. *Bhabha, Homi – The Location of Culture, Routledge Classics, New York, 2017).*
3. *Bunch, Charlotte-from Lesbians as Revolt in The Feminist Theory Reader: Local and Global Perspectives. Ed. McCann, Carole R. and Seung-kyung Kim. Routledge, New York, 2007.*
4. *Butler, Judith- from Gender Trouble in The Norton Anthology of Theory and Criticism, Ed. Leitch, Vincent B. and others, W.W Norton & Company, New York, 2018.*
5. *Croyden, Christine- Interview with Suniti Namjoshi. Hecate's Australian Women's Book Review. Ed. Brook, Barbara. 15th May 2015. http://www.emsah.uq.edu.au/awsr/recent/8.html.*
6. *Mann, H.S.- Suniti Namjoshi: Diasporic, Lesbian Feminism and the Textual Politics of Transnationality. The Journal of Midwest Modern Language Association, 30(1/2), Borders, 1997, 97-113.*
7. *Mcleod, John- Beginning Postcolonialism, Viva Books, New Delhi, 2010.*
8. *Namjoshi, Suniti- Because of India: Selected Poems and Fables, Only Women Press, London, 1989.*
9. *Namjoshi, Suniti- The Jackass and the Lady, Writers Workshop, Calcutta, 1980.*
10. *Namjoshi, Suniti- Flesh and Paper (with Gillian Hanscombe), Jezebal Tapes and Books, Ragweed Press, UK, 1986.*
11. *Palekar, Shalmalee-.Un-sacred Cows and Protean Beings: Suniti Namjoshi's- Re-writing of Postcolonial Lesbian Bodies. School of Humanities. Researchoutput: https://research-repository.uwa.edu.au/en/publications/un-sacred-cows-and-protean-beings-suniti-namjoshis-re-writing-of-post-colonial-lesbian-bodies.*
12. *Purvis, Tony- from Sexualities in Literary Theory and Criticism, Ed. Waugh, Patricia, Oxford University Press, New Delhi, 2010.*
13. *Rath, Akshyay K.- The Upside- Down Swan: Suniti Namjoshi -Rupkatha Journal on Interdisciplinary Studies in Humanities E-ISSN 0975-2935 http://rupkatha.com/suniti-namjoshi-extract/*
14. *Rich, Adrienne- from Compulsory Heterosexuality and Lesbian Existence,Feminist Literary Theory : A Reader. Ed. Eagleton, Mary, Blackwell, UK, 1994.*
15. *Sedgwick, Eve Kosofsky- from Epistemology of the Closet in Feminist Literary Theory and Criticism, A Norton Reader,Ed. Gilbert, Sandra M and Susan Gubar, W.W Norton & Company, New York, 2007.*
16. *Sedgwick, Eve Kosofsky- from Epistemology of the Closet in The Norton Anthology of Theory and Criticism, Ed. Leitch, Vincent B. and others, W.W Norton & Company, New York, 2018.*
17. *Vijayshree, C- Suniti Namjoshi: The Artful Transgressor. Series:Writers of the Indian Diaspora, Ed. Jain, Jasbir, Rawat Publications, Jaipur, 2001.*
18. *Wittig, Monique- The Straight Mind and Other Essays, Becon, Boston, 1992.*

Conceptualization of Good and Bad: A Critical Analysis of Works of Amish Tripathi

Sunayana Pandey
Research Scholar, Govt. Dungar College, Bikaner

shodhshree@gmail.com

Abstract

The concept of good and bad has always been an enigma to human beings and will always continue to remain forever. Deciding something good or bad involves comparison with socially constructed norms. The process of assessment suffers from subjectivity and biasedness; thus mostly correct inferences cannot be drawn. In every era, there exists societies following dissimilar ways of life, considering themselves good while others as bad; leading to a struggle. Amish has endeavoured to conceptualize good and bad and devolves a message that it is useless to get lost in the fantasy of Utopian world, with only good. He portrays that richness of our society comes from its diversity and one must learn to live in it. The paper also aims at exploring main agents, viz., greed, attachment and self-centeredness responsible for turning a good into bad.

Keywords: *Attachment, Bad & Good, Evil, Vision.*

Just as a coin has two sides, abstract concepts are also mostly dual and co-exist as good and bad; it seems logical and true. In the absence of bad or evil, good cannot be identified. While using these simplistic terms for persons, 'good' means lack of self-centeredness and practicing empathy with others with a compassionate heart. A good person sees beyond superficial difference of caste, colour, gender, race and nationality and relates to a common human essence beneath them. In contrast to 'good', 'bad' or 'evil' people are self-absorbed, lack empathy with other people and are narcissistic; giving paramount importance to their own desires, even at the cost of others. As far as an act is concerned, it is said 'good' when it is an act of morality; deserving of esteem and respect, while 'bad' is defined as the opposite of 'good', i.e., which is morally reprehensible. Deciding something as 'good' or 'bad' involves evaluation and finally a decision based on comparison against a standard of 'good' and 'bad', which are usually socially constructed. Good and bad act as a tool of social conformance and any deviation from it leads to criticism. But where self-judgement comes, subjectivity and biasedness appear; one person, thing or act may be 'bad' from our perception but it may be 'good' from others' point of view. One may overlook the good and highlight the small bad in a person, thing or an act.

In *Shiva Trilogy*, Daksha appears to be biased towards Chandravanshi way of life making himself restless all the time and creating unnecessary troubles for the persons around him. He gravitates to the negatives but overlooks positives of Chandravanshis. Every time negative keeps forcing its way into his attention making him lose unbiased perspective. This flaw in his thinking leads to a war causing great loss of human lives and tremendous destruction. Vasudev Pandit rightly speaks to Shiva, "In every era there exists societies following dissimilar ways of life and considering themselves as good and right while bad and evil to others, and they see their fight with the other as the eternal struggle between good and evil" (IM 395). Even a neutral and un-biased person fails to decide good and evil as Pandit says to Shiva, "You can't drop from the sky knowing everything, can you? You would have to enter the equation from one

side or the other. And whichever side you entered from, you would obviously be coloured by their ways, while viewing the other side as evil" (IM 396). Great visionary, Sadhguru, Padma Vibhushan awardee by the Government of India also says in his book *Flowers on the path*, "Who is good and who is bad all depends on which side of the border you are on. Is India good or is Pakistan good? You are on this side of border, so obviously Indians are good; Pakistanis are evil. If you were on the other side of the border, you would be arguing for the other side" (70).

Many times people appear evil but actually they are not so; it is one's biasedness which justifies another as evil. Vasudev Pandit blames circumstances which make one appear or act as evil. Pandit emphasizes his point of view to Shiva by taking example of Nagas. "The Nagas are obviously the people who are evil, right? Almost everyone seems to agree. And yet, the Nagas helped a man in need, in the interest of justice. That is not how evil is supposed to be" (SN 258). Everyone has his/her 'goods' and 'bads' depending on one's thinking. It is very rightly said that it is the man's vision that interprets 'good' and 'bad'. In this regard, famous American philosopher Ralph Waldo Emerson says, "People see only what they are prepared to see" (Sonkia 221). The ordinary paradigm "Mine is good" is very harmful for society. The moment one identifies something as good or bad leads to dividing the world; once one divides it by this narrow ideology, the concept of inclusion stands nowhere. Attitude of looking persons or acts as 'all good' or 'all bad' creates a split that is not based on reality and cannot stand the test of time and real life. The flawed perspective of 'good' and 'bad' is the root cause of all conflicts and wars. Pandit of Ramjanmabhoomi further clears to Shiva about ever presence of war between good and evil by saying, "Many wars have been fought amongst men', said the Pandit. And many more will be fought in the future. That is the way of the world" (IM 397).

It is a commonly observed fact that everyone requires 'perfection' from his/her point of view; if it is not perfect, it is taken as 'all bad'. Indeed, 'good' and 'bad' are mostly according to one's ego requirements. One famous saint says, "Life has perfection and imperfection - let this be your vision of life. Let the beauty be in inclusive rather than exclusive" (Sukhabodhananda 229). If persons or things are not up to one's expectations, it leads to mental chaos, frustration, agony, hatred and ultimately to conflict. It is dangerous over simplification to believe a person innately 'good' and to other innately 'bad' or 'evil'. This is a misleading concept as in human beings, 'good' and 'evil' are fluid because human nature is infinitely complex. Most of the people are combination of 'good' and 'bad'. It is seen that a very good person may behave very brutally at certain point while a bad person may reflect compassion and altruism at the same point.

During discussion between Major Nandi and General Parvateshwar, there comes a point that out of two persons, who are polar opposites, one must be wrong as it is generally believed that opposite of truth has to be untruth. Parvateshwar quotes words of Anandmayi, "There is your truth and there is my truth. As for the universal truth it does not exist.The universal truth does exist, though it has always been an enigma to human beings', smiled Parshuram. And it will continue to remain an enigma for as long as we are bound to this mortal body" (OV 196). For an unbiased decision, it is better to judge people by heart, not by brain. Judgement taken from an attitude involving all aspects into consideration may lead to an almost right conclusion. Once, during conversation with Shiva, Vasudev Pandit speaks, "But you have the heart. You have the mind, Keep them open and evil will appear before you" (IM 397).

It is a common received wisdom that people reflecting weakness in their character are not noble and good. During a healthy discussion between Sita's mother Sunaina and Sita, Sunaina speaks, "But we should not be blind and assume

that all poor are noble. Not everyone has the spirit to keep their character strong when their stomachs are empty" (SWM 36).Sunaina clarifies Sita, "Do not assume that the powerful are always bad or that the powerless are always good. There is good and bad in everyone" (SWM 36). In an interview, Amish clears about demonization of Raavan and deification of Ram by saying, "The idea of Raavan being a purely demented evil demon is, again, relatively modern. In the traditional Indian concept, there is not pure good and pure evil; it did not exist at all" (Immortal India 44). Amish also mentions that Lord Ram asked his younger brother Laskhman to approach Raavan and learn from great intellectual, his positive attributes.

Decisively, it can be said that universal definition for good and bad cannot be framed. The main point is how to live with each other, rather than thinking to change each other. The effort to change someone develops resistance as everyone has a legitimate explanation for his/her righteousness. One must resolve to work on changing oneself before seeking to change others. We have to live with good and bad. It is useless to get lost in the fantasy of a world without evil. One has to leave the concept of Utopian creation of Universe with only 'good'. One must learn to negotiate life very well and find a way to live in a world that has both. If we can't exist with good and bad, we will have a hard time living in this world. "To live a happier and more peaceful life, begin to see that the richness of our society comes from its diversity and without this world would be a pretty boring place" (Sharma 161). After discussing on 'good' and 'evil' one question still remains unanswered that when good turns into evil. Mostly a thing or technology or invention is not good or bad but it's use or misuse which makes it "Good' or 'Evil'. Throughout *Shiva Trilogy*, Amish puts emphasis on this aspect of ideology and tries to convey a message that what is needed is to raise the consciousness for judicious use of things and inventions in the larger interest of the society.

During first meeting between Daksha and Shiva at Devagiri, Shiva finds Daksha looking almost thirty years old chap with full of energy and enthusiasm. Shiva was stunned to know that Daksha's biological age is one hundred and eighty four years. Daksha explains Shiva that it is all due to Somras, the drink of the gods, prepared by their eminent scientists. Daksha further lets Shiva know that, "Taking the Somras at defined times not only postpones our death considerably but it also allows us to live our entire lives as if we are in the prime of our youth mentally and physically" (IM 83). Brahaspati is the chief Meluhan scientist who leads the team of Somras manufacturing for the entire country. Actually, Somras helps imparting people sound health and providing opportunity to intellectuals to contribute their maximum towards the welfare of the society. Somras appears to be the greatest good of that time; conversation between Shiva and Sati about Kartikeya also confirms it, "Shiva Smiled. It's been just six months, but he looks like a two year old!" (SN 144). Sati further adds, "I have never seen a baby who could walk at six months" (SN 144). Ayurvati also mentions that Kartik never fell ill after first time taking the dose of Somras. If scientific researches are not tackled wisely, then they are bound to turn evil; the best example is Somras. Brahaspati during his conversation with Shiva accepts, "That the Somras has been the greatest Good of our age is pretty obvious. It has shaped our age. Hence, it is equally obvious that someday it will become the greatest Evil. The key question is when would the transformation occur" (OV 11). Guru Brahaspati also accepts, "Any great invention has both positive and negative effects. As long as the positive overweighs the negative, one can safely continue to use it" (OV 11).

After lots of discussion with Bhagirath, Brahaspati, Parvateshwar and Kali, Shiva realises that plague in Branga, the birth of the Nagas- the persons with deformity and slow depletion of Saraswati river, all are linked to the Somras and Somras is the Evil. He also feels that Meluhans have abused its usage and has made it

an Evil. He then speaks to Bhagirath, "If I decide the Somras is Evil then no one will use it. No one. Bhagirath kept silent. Is that clear? asked Shiva. Of course, my Lord" (OV 65). On reviewing all the facts, Shiva issues a proclamation declaring Somras, an Evil. He delivers a long impressive speech referring Lord Manu, "He told us Good and Evil are two sides of the same coin. That one day the greatest Good will transform into the greatest Evil. He was right. Our greed in extracting more and more from Good turns it into Evil. It is time to stop its use, before the power of its Evil destroys us all" (OV 119).

As it is a well-known fact that every good may turn into evil if its use is harvested brutally, so it is not the thing which is evil but its un-intelligent use which makes the thing evil. Wisdom lies in mindful use of the thing, rather than eradicating that thing or technique from the root level. The best example in this direction is of nuclear power which when geared judiciously serves a greater purpose for the welfare of society but its idiotic use may lead to great devastation as in Hiroshima and Nagasaki. In Meluha, after long discussion, it is decided to take Somras out of the equation rather than destroying completely with the aim of keeping its knowledge alive for future. Kartik also favours the idea of preserving the technology of the Somras production. He manages to protect Maharishi Bhrigu and about three hundred people, knowing the secrets of the Somras, so that a 'good' which has now turned 'evil' may be protected for later use in future judiciously.

Like persons and things, *karma* (actions) may also be classified as good and bad. The *Bhagwad Gita* frequently uses the word *karma.* For the too long, this word has either been oversimplified or needlessly mystified. The word *karma* literally means action or work or deed. The *Bhagwad Gita* extol action; one cannot remain inactive even for a second. Everyone is helplessly driven to action. Actions are flowing out from every living being until s/he dies. One can get rid of the enigma of good action and bad action, simply by renunciation of action but *Bhagwad Gita* elaborates very well on *karma* and asserts that abstention from action is just not possible as nature is at work on a constant basis.

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तष्ठित्यकर्मकृत् |
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतजैर्गुणैः ||
(Chapter 3, Verse-5)

It translates as-surely, none can ever remain inactive even for a moment; for, everyone is helplessly driven to action by modes of *Prakarti* (nature-born qualities) (Goyandka 147).

Lord Krishna considers action superior to inaction and says-

नयितं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः |
शरीरयात्रापि च ते न प्रसद्धिध्येदकर्मणः ||
(Chapter-3, verse-8)

It translates as, therefore perform your duty; for action is superior to inaction. Abstaining from action, you cannot even maintain your body (Goyandka 150).

Action does not essentially refer to what one do in the outside world, whether they are works of altruism, charity, pity or villainy. Actually, *karma* occurs on three levels; body, mind and energy. Whatever one do on these levels, leaves a certain remnant which impacts the doer. Everyone collects data through five senses from the outside world, every moment of one's life. In fact, everyone is bombarded with lots of stimuli every second. Overtime, these sense impressions make distinctive pattern within oneself and shape into a behavioural tendency. A cluster of tendencies hardens into 'personality' or 'true' nature of a person. This becomes one's *karma*, which has developed in oneself in relative unawareness. Sadhguru Jaggi Vasudev says, "*Karma* is internal cycle generated by you. At every place, one experiences the same cycle, the same internal oscillations, the same behavioural shifts, the same mental reactions, the same psychological tendencies" (10).

Karma may broadly be divided into three types: *Nityam Karma, Kamya Karma* and *Nishiddha*

karma. *Nityam karma* incorporates obligatory duties and is considered as the best quality of action. We all owe duties to our family, society, country and to ourselves. All are supposed to do these obligatory duties. It is the desire which takes one away from oneself's duties. Most of the persons stray into *kamya karma* i.e., desire-driven activity. When desires reach to unsustainable levels and are not fulfilled by ethical methods, one crosses the line and performs *nishiddha karma,* actions prohibited by our own conscience. *Nityam karma* comes under the category of good *karma* while *kamya karma* and *nishiddha karma* are included in bad *karma*.

In *Shiva Trilogy and Ram Chandra Series,* Shiva, Sati, Kanakhala- the prime minister of Meluha, Ayurvati- the chief of medicine at Meluha, Parvateshwar- head of Meluhan army, Ram-son of Emperor Daksha, Sita- wife of Ram, Lakshman- younger brother of Ram, Hanuman- a member of the Vayuputra tribe, Bharat- Ram's half brother, Sunaina- mother of Sita, Urmila- wife of Lakshman, all have been presented as deeply engrossed in performing *nityam karma* according to their *swadharma*. In contrast to these virtuous characters, Daksha- Emperor of Suryavanshi Empire of Meluha, Kaikeyi- wife of Dashrath and mother of Bharat, Raavan- king of Lanka, all are shown to be engaged in acts which are opposite to *dharma* and comes in the category of bad *karma*.

Amish has very beautifully portrayed desire-driven *kamya karma* of highly ambitious and selfish Kaikeyi. This fact is revealed in *kopa bhavan* conversation when kaikayi blackmails Dashrath through her pseudo-love. Kaikayi speaks to Dashrath "you may not love me anymore, Dashrath, but I still love you. Dashrath replies, oh, I know you love me. But you love yourself more" (SI 307).Kaikayi's selfish act comes in the category of bad *karma*.

Thorough analysis of *karma* infers an important conclusion that behind all actions, there are thought and intention which make action good or bad. One question, here arises: "Are all right acts justifiably right?" The Quran states, "Your actions will be judged by your intentions. The action of charity is good but charity done for the sake of name and fame, will not earn credits for good *karma* account" (qtd. in Jain 12). Mohan Das Karam Chand Gandhi was only a Barrister-at-Law. He would have been a successful house-holder if he had only looked after his family. He was inspired by the noble ideal of his country's freedom so he fought for this ideal throughout his life and earned the status of Mahatma and Father of the Nation. Significance of intention behind any action can well be understood by answering a question: "Do good intentions justify bad action?" The answer is, "Yes it is so"; if a rapist kidnaps someone's daughter and her father hits and kills the rapist, it will be counted as good *karma* and even court of law will take this fact into consideration while imparting punishment to that fellow. Similarly, parents punish their children for their better future; this punishment cannot be said as bad *karma*.

In *Shiva Trilogy*, Shiva is seen regularly fighting for eradicating the greatest Evil of that time i.e. Somras in the larger interest of populace of Meluha. Finally, he demolishes the city of Devagiri and all places of Somras manufacturing. On prima facie, it appears to be a bad *karma* but his good intention behind it to relieve all populace from the menace of harmful effects of Somras, makes it a good *karma*. In contrast to this, Daksha's attack on Chandravanshis for the sake of providing them superior way of life cannot be called as a good *karma* as it snatches freedom of a nation and his hidden desire was to colonize swadweep, so this act is accounted as bad *karma*. Genuinely, good karmas are based on morals and ethics. Morals are the codes of behaviour that one can, and indeed, must apply to oneself. Ethics are the codes of conduct and behaviour that one applies to others. Ethics tell what is morally right or wrong, just or unjust. Swami Kriyananda, founder of spiritual movement 'Ananda' and author of 150 books describes, "Good *karma* as anything that brings us closer to God and bad *karma* as anything that

takes us further away from him" (qtd. in Jyotish 10).

Performing good *karma* is not a matter of any loss because God has set the law of *Karma* which is akin to Newton's third law of motion that every action has an equal and opposite reaction. In the same manner law of *karma* says, whatever thoughts or energy one puts out, one gets back- good or bad. Only human beings are gifted with choice of action with *purushartha* i.e., with human pursuit, one can choose one's action. Free will is the key to emancipation. One can choose to be better and nobler by performing good *karma*s. The *Bhagwad Gita* in chapter 13 talks about 'Shaucham', cleanliness- both internal and external, as one of the values to be cultivated if a person wants to evolve and perform good *karma*s. Righteousness cannot be thrust on anyone; one has to find the goodness that is already within and permit that goodness to emerge and permeate one's thoughts, words and deeds. Also, no one is good by accident; virtue has to be learnt which comes through the path of spirituality.

Throughout *Shiva Trilogy*, it is well evident that self-centeredness, greed and attachment, impart a person biased-vision and attitude which deviates a person from the path of truth. Emperor Daksha and Maharishi Bhrigu are too attached to Somras that they refuse to accept all bad effects of Somras and fight to their last to protect this Evil. Amish very well remarks, "It is attachment that makes people forget not only their moral duties but even who they really are" (OV 129). Amish also concludes that, "Primary source of Evil is human greed. It is our greed to extract more and more from Good that turns it into Evil" (OV 133).

Thus, through *Shiva Trilogy,* Amish makes an analytical study of "Good' and 'Evil' and analyse the reasons behind turning 'Good' into Evil. Amish suggests to make a conscious choice between 'Good' and 'Evil' and proper balance to safeguard 'Good' being turning into 'Evil' before it completely destroys the system. Shiva, the chief protagonist keeps on fighting the Evil throughout his life and succeeds in removing Evil from the society for the ultimate good of society at large.

References

1. *Abrams, M.H. A Glossary of Literary Terms. Cengage Learning India Private Limited, 2017.*
2. *Goyandka, Jayadayal. Srimadbhagwad Gita: Tattvavivecani (English commentary). Gita Press Gorakhapur, 2018.*
3. *Jain, Geetika. "Doing Right for the Right Reason". The Times of India, 10 November 2017, p.12.*
4. *Jyotish, Nayaswamis and Devi. "Keys to changing your Karma". The Times of India, 29 March, 2019, p.10.*
5. *Sadhguru. Flowers on the Path. Panguin Random House India Pvt. Ltd., 2019.*
6. *Sharma, Robin. Who will Cry When You Die? Jaico Publishing House, 2017.*
7. *Sonkia, G.D. 100 Lessons to Live Life Blooming. Pustak Mahal, 2012.*
8. *Sukhabodhananda, Swami. Oh, Life Relax Please! Prasanna Trust, 2002.*
9. *Tripathi, Amish. Immortal India. Westland Publications Ltd., 2017.*
10. *Tripathi, Amish. The Immortals of Meluha. Westland Publications Ltd., 2017.*
11. *Tripathi, Amish. The Oath of the Vayuputras. Westland Publications Ltd., 2013.*
12. *Tripathi, Amish. The Secret of the Nagas. Westland Publications Ltd., 2012.*
13. *Vasudev, Sadhguru, jaggi. "You may be unaware, But Karma Cycles on". The Times of India, 18 December 2019, p. 10.*

Endnote

1. *The Book 'The Immortals of Meluha' is abbreviated as 'IM'*
2. *The Book 'The Secret of the Nagas' is abbreviated as 'SN'*
3. *The Book 'The Oath of the Vayuputras' is abbreviated as 'OV'*
4. *The Book 'Sita - warrior of Mithila' is abbreviated as 'SWM'*
5. *The Book 'Seion of Ikshmaku' is abbreviated as 'SI'*

SAI India International Cooperation

Dr. Supriya Sharma
Post-Doctoral Fellow, ICSSR, New Delhi

shodhshree@gmail.com

Abstract

Supreme Audit Institutions (SAI) *are public sector organizations independent of government and accountable to the national /state legislature, responsible for auditing the government financial operation. In the Indian system of governance the task of ensuring financial accountability and transparency is performed by the constitutional figure Comptroller and Auditor General. The Comptroller and Auditor General of India is the head of the Indian Audit and Account Department. The Department is also known as* ***"Supreme Audit Institution of India".*** *SAI India is holding prominent position in international audit fraternity. It is playing leading role in capacity development of public auditors and knowledge sharing. Because of the quality service provided by SAI India to its international client it has successfully secured largest portfolio in UNO for auditing in 2015. Contribution Supreme Audit Institution of India making to international audit fraternity is the main content of the article.*

Keywords *: Supreme Audit Institution, International Organization of Supreme Audit Institution, Asian Organization of Supreme Audit Institution, International Audit, Knowledge Sharing Committee.*

Supreme Audit Institutions (SAIs) are the key institutions which are playing a vital role in good governance. Supreme Audit Institutions are public sector organizations independent of government and accountable to the national /state legislature, responsible for auditing thegovernment financial operation. In the Indian system of governance the task of ensuring financial accountability and transparency is performed by the constitutional figure called Comptroller and Auditor General. The Comptroller and Auditor General of India is the head of the Indian Audit and Account Department. The Department is also known as **"Supreme Audit Institution of India".**

"SAI India has a history of over one hundred and fifty years and is regarded as one of the key pillars of India's democratic political system. It has been recognized as one of the most professionally accomplished Supreme Audit Institution in the world. Supreme Audit Institution of India is the largest Supreme Audit Institution in the world, with a large human resource which is professionally qualified in diverse fields".[1] SAI India is highly regarded in the international audit fraternity. It is the permanent and prominent member of Vienna based "International Organization of Supreme Audit Institution" (INTOSAI). INTOSAI is an umbrella association of Supreme Audit Institutions.

The Comptroller and Auditor General of India entered the arena of International Audit in 1992 when he was elected to the UN Board of Auditors (BOA) in the elections held in the UN General Assembly in New York in 1992. Former CAG Somiah have been credited for India's entry as Auditor to the United Nations. Supreme Audit Institution of India entered UN Board of Auditor in 1993[2]

"International Cooperation in the field of audit generally includes the sharing of information and experience in an effective manner to held the Supreme Audit Institutions in accomplishing their tasks. It includes sharing of lessons learnt as well as the training of auditors and advice on audit methods is included in it. Such cooperation facilitate the use of experience gained by others as basis for drawing conclusions about potential improvements in one's own country and better arrangements for exercising one's own audit functions"[3]. Such cooperation is quiet helpful for auditor as it familiarize them with new working methods.

International Relation Division of SAI India is functioning as the external affairs division. This division is the focal point for bilateral and multilateral interaction of SAI India with the international audit fraternity. The international cooperation SAI India extends to five areas[4]-

(1) Bilateral Relations with other SAIs.

(2) International Organization of Supreme Audit Institution.

(3) Asian Organization of Supreme Audit Institution.

(4) Audit of International Organizations and

(5) Global Audit Leadership forum.

Bilateral Relations of Supreme Audit Institution of India

SAIs are engaged in public sector auditing .They are entrusted with task of ensuring economy, efficiency and effectiveness of spending done through National/State/Local government exchequers. SAIs which are functionally independent and well equipped with man and material resources can play important role identifying that financial controls are operating upto the mark and can also identify waste and suggest ways and methods in which government organization can operate in best manner.

Role of SAIs is quiet contributory in their respective national development, controlling fraud and reducing poverty .However the SAIs of many nations are not well equipped, lack authority, skills and are not able to report the results freely without fear. Therefore Supreme Audit Institutions through Bilateral and Multilateral relations are providing development cooperation for strengthening the capacity of SAIs. Such cooperation facilitates exchange of ideas and knowledge, strengthening their mutual ability to promote good governance

Methods of International Cooperation Among SAIs–[6]

1**) Hosting Bilateral Exchanges**: In it auditors from one SAI visits another SAI to learn about its operations and audit approaches. This involves the host SAI providing specialized workshops or seminars.

(2**) Formal Training Programmes**: Many SAIs run training and fellowship programmes for other SAIs which can vary in length from one week to several months, on the job training as well as classroom based learning are also provided.

(3) **Secondments or Longer Term Placement**: Some of the SAIs call for staff from other SAIs to work within their institution for one or more year to learn about all aspects of audit work.

(4)**Peer Reviews**: Supreme Audit Institutions invites other SAIs to conduct peer reviews. These can involve review of organizational aspects and reviews of specific audit activities.

In the recent year there is considerable increase in bilateral and regional cooperation among SAIs. Such Cooperation among SAIs is putting into practice the motto of INTO SAI which is **"**Mutual Experience Benefits All**"** (Experiential Mutual Omnibus Prodest). Currently SAI India have MOUS with 16 Supreme Audit Institutions of Afghanistan, Poland, Cambodia, Vietnam, Iran, Russia, Ukraine, Bhutan, China, Oman, Mongolia, South Africa, Brazil, Kuwaitand Venezuela. SAIs have agreed to cooperate in upgrading professional knowledge andskills, professional methodologies, exchange of research outcomes, conferences and seminar[7]. In 2017 SAI India has

signed an agreement with Bangladesh SAI for cooperation in the field of revenue, environment and revenue audit. Training programs, secondment programs, workshops etc has been hold with the SAIs of China, Kuwait and Poland in the recent past. SAI India is active participant of seminars and conferences organized by BRICS SAIs. In 2017 it participated in seminar on "Audit of large infrastructure projects" held in Johannesburg.

Involvement of Supreme Audit Institution of India with INTOSAI.

International Organization of Supreme Audit Institution was born in 1953. It is the permanent, autonomous, nonpolitical professional organization of 192 Supreme Audit Institutions (member states of UNO and its specialized agencies).CAG India is the active member of INTOSAI. This global body is involved in promoting good governance, enhancing transparency, capacity building and knowledge sharing in the field of public audit. UN General Assembly Resolution A/66/209 of 22 December, 2011 has appreciated the work of INTOSAI in promoting efficiency, accountability, effectiveness, transparency in the use of public resources through public sector audit.[8]

Supreme Audit Institution of India is one of the founder member of INTOSAI. CAG of India is playing a leading role in the INTOSAI. SAI India is involved with INTOSAI at INTOSAI governing board meeting, knowledge sharing committee and INTOSAI Congress (INCOSAI). SAI India chairs Knowledge Sharing Committee. Knowledge Sharing Committee is responsible for encouraging cooperation and collaboration among SAIs. The purpose is continuous improvement through knowledge sharing and performing research on issues of common interest and benefits. CAG as head of knowledge sharing committee assisting working groups in exchange of information, making annual report of INTOSAI governing board. The CAG of India is also maintaining website of Knowledge Sharing Committee. The website is facilitating interaction among the working groups of knowledge sharing committee. CAG also chairs the working group on Information Technology Audit. This group is supporting member SAIs in developing their skills in the use of information technology based audit .Group facilitates exchange of knowledge, experience and encouraging bilateral and regional cooperation among SAIs. SAI India as member of group is also participating in projects related to cloud computing, virtualization and green IT.

Asian Organization of Supreme Audit Institution (ASOSAI).

Asian Organization of Supreme Audit Institution (ASOSAI) is the regional organization of INTOSAI. It was established in 1979 with 11 members. Currently it consist of 46 members. Basic objectives of establishment of ASOSAI is (a) exchange of idea and experiences in the field of public audit, (b) to provide facilities for training for government auditors to improve quality and performance (c)to serve as center of information and as a regional link with institutions in other parts of the world.

CAG India has been actively involved in ASOSAI since its inception in 1979.He has been on the Governing Board of ASOSAI continuously since 1979. The Asian Journal of Government Audit is an official document of ASOSAI. SAI India is bringing out this journal which started its journey in 1983.The objective is to provide ASOSAI members with forum for sharing of experience in different areas of state audit.

Audit of International Institution.

Promoting sound financial management and accountability is the prominent role of SAIs worldwide. SAIs are also indulge in ensuring transparency, accountability and effectiveness of international institutions .The "International Institution are the organization which are established by two or more government to achieve cooperation in dealing with socio economic, technical ,cultural, environmental and cultural issues. These institutions are basically funded by the contribution from different

member states. These funds are the part of nationalbudget".[9] Therefore SAIs have interest in financial accountability and transparency of the international institution.

Independent and well organized audit system is considered necessary for better and transparent control over international institution. Audit of International Institution is done by external audit. "External Audit generally refers to audit carried out by a body that is external to and independent of the organization being audited and has direct reporting responsibility to the relevant governing body".[10]

Supreme Audit Institution of various nations are playing role of external auditors of UNO and its specialized agencies. As external auditors SAIs are quiet helpful in strengthening confidence in the overall financial management. UNO and its specialized agencies like WHO, WFP, WIPO etc. and IAEA are annually audited by independent external auditors (who are the head of supreme audit institution of respective nation). United Nation Board of Auditor is one of the key oversight body of UNO. Audit reports of this board forms the base of policy making within the UNO. UNO Board of Audit is consist of three auditor general of member states. It provides external audit service to UNO and its funds and programs. SAI India is the member of UN Board of Auditor till june2020.

By auditing International Institutions SAIs gains professional developments and it improves the skills of employees of SAIs by giving them exposure to international auditing and accounting practices. Moreover member states get deeper insight into institutions receiving contribution from the national budget.[11]

Supreme Audit Institution of India Participation and Contribution In International Audit

As member state of UNO SAI India participate in UN election for appointment in UN Board of Audit .Neither the constitution of India nor the CAG DPC act of 1971 restricts CAG from playing role of external auditor to UN and its agencies .However it is only after the consent of government of India CAG India participates in the selection procedure of external auditor of UN and its specialized agencies.

Supreme Audit Institution of India has longer association with UN and its agencies. It was in1993 SAI entered the arena of UN audit. During its first tenure SAI India was made responsible for audit of United Nation Headquarter, United High Commissioner for Refugees, Peace Keeping Mission, United Nation University and United Nation Environment Programme. As the external auditor of an international institution SAI India is playing important role in assessing and pointing the improper utilization of fund and also reports on managerial deficiencies to governing body.

CAG India was appointed as the external auditor of International Atomic Energy Agency and World Intellectual Property Organization in 2011.[12]So far there has been the stronghold of the European SAIs in these institutions .It was for the first time that SAI outside Europe successfully made it to such prestigious position.[13]In last few decades there has been tremendous increase in number of international audit by SAI India.

A new set of accounting standard called International Public Sector Accounting Standards has been issued for public sector entities for preparation of financial statement. Idea behind introduction of this set of accounting standard is to improve the quality of general financial reporting. These accounting standards are based on international financial reporting issued by the international accounting standard board. These accounting standards are not used by government business enterprises but are used by inter-governmental organization. SAI India has successfully facilitated World Health Organization and International Maritime Organization transition to international public sector accounting standard. 200 audit professionals of SAI India have gained expertise in International Public Sector Accounting

Standard .These audit professional have successfully conducted the audit of international public sector accounting standard related issues in World Health Organization, International Maritime Organization, World Food Programme and World Intellectual Property Organization.

SAI India expertise in information technology based audit has gained recognition in global audit fraternity. Preparedness to manage Y2K problem was the most appreciable. It is proficiency in information technology based audit the information system audit of International Thermal Nuclear Experiment Reactive (ITER) was outsourced from SAI India. It is because of the quality services provided by SAI India to international client which has made it to secure largest portfolio inUNO for auditing in 2015.

Past International Audit Experience.

The Comptroller and Auditor General of India has been the external auditor following UN Bodies in the past.[14]

S. No.	Organization	Period
1	World Health Organization	2004-2012
2	International Maritime Organization	2000-2012
3	International Center for Genetic Engineering and Biotechnology	1996-2004
4	Food and Agriculture Organization	2000-2008
5	Organization for Prohibition of Chemical Weapon	1997-2003
6	UN World Tourism Organization	2000-2015
7	World Food Programme	2010-2016
8	International Atomic Energy Agency	2010-2016
9	International Organization of Migration	2010-2016
10	World Intellectual Property Organization	2012 -2017

Currently CAG India is the external auditor of Food and Agriculture Organization 2020-2025 and World Health Organization 2020-2023. SAI India have 330 officers who have experience of UN Audit. As external auditor of WHO, IMO, WIPO, IAEA, IOM and UN SAI India has audited their transition to International Public Sector Accounting Standard. India has more than 750 trained International Public Sector Accounting Standard audit professional. CAG is currently on the Board of Auditor of the United Nations and Vice Chair of the UN Panel of External Auditors.

Global Audit Leadership Forum

This is the forum for informal discussion on current and emerging issues in the field of financial administration. It consist of 23 Auditor Generals. Through this forum information on various issues and lesson learned are shared.15

SAI India is holding prominent position in International Audit Fraternity. It is playing leading role in capacity development of public auditor and knowledge sharing. In past years it has conducted several training programmes for other SAIs at its International Training Institutions based in Noida and Jaipur. SAI India has conducted short term training courses for SAIs of Bhutan, Bangladesh, Afghanistan and Oman.16SAI India has assisted SAI Bhutan in designing guidelines for audit. For ensuring continuous improvement in audit quality SAI India has conducted peer reviews and SAIs performance measurement framework reviews

of SAI Nepal and Bangladesh. It has assisted other SAIs in areas of IT Audit, Environment Audit, Sustainable Development Goals and Revenue Audit.

SAI India holds chair of knowledge sharing committee of INTOSAI .This Committee is indulge in task of encouraging cooperation between SAIs producing audit guidance material, and performing research on issues of mutual interest. Number of working groups are functioning under this committee they are developing various international standards for Supreme Audit Institutions so that they can contribute their best for promoting good governance in their respective nations. SAI India is an active participant of various research project of ASOSAI. The purpose of such project is to develop specific knowledge and guidelines for specific field of audit. The purpose is basically to promote effective and efficient audit outcomes. Some of the research projects are –audit quality management system, conducting environment audit, audit to detect fraud and corruption, evaluation and improvement of international audit system and the relationship between the internal audit units and SAIs. As members of ASOSAI, SAI India has participated in various seminars organized on issues of interest for its member. These seminars are forum for rich interaction and sharing of experience. SAI India itself has conducted various Bilateral seminars with SAIs of China, Kuwait and Poland on topics of common interest Experience of SAIs concerning to specific audit area are shared here which is mutually beneficial for all.

Quality services which SAI India is providing to United Nation and its agencies are due to excellent professional skills of its staff members. Staff members are holding professional degrees in the field of Chartered Accountancy, Cost and Work Accountancy, Certified Information System Auditor (CISA), Certified Information Security Manager (CISM).

Information Technology based audit is the strength of SAI India. International Centre for Information System and Audit of SAI India possess recognition in International community of Supreme Audit Institution. Staff of SAI India is extensively trained in accounts, audit, and administration and information technology. Individual staff member is getting 8 to 10 days training annual. Participation in International Audit activity does not bring any financial burden to SAI India as the cost of such audit is 100% reimbursable.

For familiarizing and gaining knowledge of international trends and practices is auditing field Supreme Audit Institution of India is deputing its staff for training programmes in abroad for example training programmes conducted by International Organization of Supreme Audit Institution, Asian Organization of Supreme Audit Institution of India and other Supreme Audit Institutions like the Government Accountability office of the USA, National Audit office of UK, Office of the Auditor General of Canada, Lee Kuan Yeu School of Public Policy, Singapore, officials are also deputed for training to Australia, Japan and UK under the cooperation programme. Every year number of officers are sent abroad for training. Office of Auditor General, Canada and National Audit Office UK provides conceptual as well as in depth training in skill building. Since 1979, the United State Government Accountability office invites the members of the INTOSAI, for international auditor fellowship programme, an intensive study course of 4 to 6 months, including field office placement. It is middle to senior level officers who participate in the programme. The entire expenditure of the GAO Programme is funded by the government of India. The Indian Audit and Account Service officers also participate in the short terms training courses conducted and sponsored by the INTOSAI and ASOSAI.

Conclusion:

Supreme Audit Institution of India has longer association with United Nation and its agencies. Institution is giving its best to international audit

fraternity .Because of the quality service provided by SAI India to its international client it has successfully secured largest portfolio in UNO for auditing in 2015. SAI India is closely working with various international organization and is playing vital role in ensuring accountability and transparency of respective organization. Institution has successfully implemented International Public Sector Accounting Standard in WHO &IMO. It means those organization are presenting their accounts on an accrual rather than a cash basis. SAI India is managing public funds globally on full cost recovery basis. By participating in International Audit work SAI India is keeping its staff updated with the recent development in the field of auditing .It has developed a pool of talented officials who are experts of International Public Sector Accounting Standards as well as have professional qualification for Information Technology based audit. Capacity development of individual auditor is also the prominent outcome of International Audit. During these assignments auditors come to know about best practices and manifest their own hidden skills. It not only gives international exposure to the staff but also increase the international reputation of the country.

SAI India is also working to strengthen the audit offices and parliamentary oversight bodies of the neighboring nations of India for example Bhutan and Afghanistan. By working at such global level the SAI India is able to share best practices and lessons learn from international organization and its counterparts in the world which assist its own national audit work. SAI India is playing the vital role in holding international and national government to account for the stewardship of public funds.

References

1. *Press Information Bureau Govt. of India, CAG of India take over as member of UN Board of Auditor, July 25, 2014*
2. *Kumar, Vijay, The Comptroller and Auditor General of India, A Thematic History 1990-2007, Volume II APH Publication Corporation, New Delhi 2007, pg. 801.*
3. *INTOSAI, Guide for Cooperative Audit Programme Between Supreme Audit Institution, 2004, pg.13.*
4. *www.saiindia.com*
5. *OECD, Good Practices in Supporting Supreme Audit Institution, pg. 11, available at www.aecd.org*
6. *ibid, pg.18.*
7. *CAG Performance Report, 2017-2018, pg.119 INTOSAI*
8. *Guide for Cooperative Audit Programs, 2004, pg.7*
9. *INTOSAI, Audit of International Institutions Guidance for Supreme Audit Institution, 2004, pg.3*
10. *Audit Functions in UN System Joint Inspection Unit, 2010, pg.29.*
11. *Audit of International Institution Guidance for SAI, 2004, pg.14.*
12. *Press Information Bureau of India, CAG of India Appointed External Auditor of IAEA AND WIPO, 30 Sept. 2011.*
13. *ibid.*
14. *www.saiindia.com.*
15. *ibid.*
16. *INTOSAI Capability Statement: SAI INDIA. www.sai india.com*

NEP- 2020 and Youth Empowerment

Prof. A. P. Singh
HOD, Sri Dev Suman University, Rishikesh (Uttarakhand)

Dr. Ram Singh Samant
Assistant Professor, Mahayogi Gurugorakhnath Govt. Degree College,
Bithyani, Yamkeshwar, Pauri (Uttarakhand)

shodhshree@gmail.com

Abstract

"We cannot always build the future for our youth, but we can build our youth for the future."

Franklin

India is a young country because we have the largest number of young population in the world. The high proportion of youths in India's population is a major advantage for the country. This segment of the population helps in development and the growth of every country. These young people have to be empowered in all spheres i.e., socially, economically, and morally. An empowered youth is boon for the society. Societies or countries having such population are able to achieve greatness in every field. The New Education Policy - 2020 also envisages youth empowerment at school and higher education institutions. This research paper tries to study the meaning of youth empowerment and its importance in development of the youths and the society as well along with the role of NEP-2020 in empowerment of youths.

Keywords: *Youth Empowerment, Social, Moral, NEP- 2020, Higher Education Institutions.*

Youth empowerment may be seen as a process whereby children and young people are encouraged to take decisions of their lives and take control of it. They are able to achieve this aim by addressing their situation and then take action in order to improve their access to resources and transform their consciousness through their beliefs, values, and attitudes. Through youth empowerment, the quality of the lives of the concerned youths can be improved. The concept of youth empowerment came into being with the belief that people of younger ages have capability to perform incredible things. When young minds are exposed to new and inspiring ideas with enormous opportunities and when they are given right direction to build their confidence – sky becomes the limit for their imaginations and they fare very well in achieving their goals.

An young person when empowered starts to recognize his or her capabilities and worth. They become more comfortable with trying newer things. They start using their own opinion and develop to have the confidence to take risks in their lives. They give importance to social values in all their deeds. They develop self-empowerment in the times of struggle and failure.

Importance of Youth Empowerment for the Society: Youth empowerment is very important, if any society or a country wants to achieve greatness. It provides the young people to foster the courage to believe in themselves and to rely on their dreams, work hard, and achieve their goals. Youth empowerment develops curiosity amongst them for fulfilling their dreams. They also get space to think about themselves, about their dreams, and also get the freedom to choose the ways or tools for achieving their goals. They learn to policy of honesty by working honestly. Youth empowerment also help them to trust their ability as leaders.

The life of a citizen can be very satisfying in the society in which the youths are empowered. It is very well said that "Empower the youth, Transform the lives of society, and make the difference." An empowered youth is always an asset not only for the family but also for the society at large. Talking about the importance of youth empowerment Nidda Rohaila opines that poverty can be eradicated from the society when youths of the society are empowered. As a result the rate of crimes occurring in the society can be minimized. The education system in the society will improve and lift up to a higher standard. And most importantly the youth empowerment will definitely lead to creation of employment. There are many benefits of youth empowerment in the life of the youths. It helps them to become financially independent because they learn to earn more while pursuing their interest. Being an empowered youths they always search for opportunities to improve their standard of life. They start valuing their time and being empowered means they are able to empower others also.

Empowered youths also have a high moral character. They become aware as to what is morally right and what is wrong. M. C. Otto argues that "Unless the entire school economy is designed to further the moral education of youth little can be accomplished. This means that the prevalent conception of morality as conformity to catalogue virtues must be replaced by a very different one, a conception which appeals to the greatest moral force at our disposal, namely, the ambition of every normal human being to make something of his life."

Moral uprightness must be taught in schools and colleges, because that is the actual time when the young minds have deep impact on their personality. Shobhaa and Kalab argue that "The study on value education as an initiative towards empowerment of youth is an attempt to understand the role of value education in making a positive difference in the personality of students and their present and future lives. The study has revealed that exposure gained by students through the value-education workshops have helped them to understand the value of discipline and moral uprightness. They have developed a greater team spirit, enhanced their levels of confidence, improved the power of concentration and built better interpersonal relationships. This has helped them develop into sensitive human beings and equipped them to effectively face the challenges of life."

Shek and Ma also confines to this and states that in order for the school-based program to be successful in helping students to increase their moral and prosocial behaviors and reduce their antisocial behaviors, the program should be based on all-round or whole-person development

New Education Policy – 2020 and Youth Empowerment: The New Education Policy – 2020 also has included many aspects for youth empowerment in its draft, be it in schools or higher educational institutes. It has taken into consideration both holistic and multidisciplinary education for youths. NEP-2020 focuses on interests as well as aptitude-oriented education for youths. It also focuses on equity and inclusion in higher education to bring the marginalized youths in the mainstream education system to help them in employability and career growth.

Apart from employability, NEP – 2020 document also focuses on developing holistic individuals, by identifying various set of skills and values which will be incorporated at different stage of learning, right from pre-school to higher education. NEP-2020 also expects that higher education institutes must enable the development of an enlightened, socially conscious, knowledgeable, and skilled nation that can find and implement robust solutions to its own problems which eventually will result in a more vibrant, socially engaged, cooperative communities and a happier, cohesive, cultured, productive, innovative, progressive, and prosperous nation.

Making the young students morally strong is also one of the main focus of NEP-2020 as it states that young students will be taught the importance of "doing what's right", which in turn will give them a logical framework for making ethical decisions. Over the coming years, the young students will come to know about the pros and cons of cheating, violence, plagiarism, littering, tolerance, equality, empathy, etc., with a view to enabling children to embrace moral/ethical values in conducting one's life, formulate a position/argument about an ethical issue from multiple perspectives, and use ethical practices in all work. As consequences of such basic ethical reasoning, traditional Indian values and all basic human and Constitutional values such as Non-violence (Ahimsa), Service (Seva), Cleanliness (Swachchhata), Truth (Satya), Selflessness (Nishkam Karma), Peace (Shanti), Sacrifice, Tolerance, Diversity, Pluralism, Righteous Conduct, Gender Sensitivity, Respecting Elders, Respect for all people and their inherent capabilities regardless of background, Respect for Environment, Helpfulness, Courtesy, Patience, Forgiveness, Empathy, Compassion, Patriotism, Democratic Outlook, Integrity, Responsibility, Justice, Liberty, Equality, and Fraternity will be developed in all students. Children will have the opportunity to read and learn from the original stories of the Panchatantra, Jataka, Hitopadesh, and other fun fables and inspiring tales from the Indian tradition and learn about their influences on global literature. Excerpts from the Indian Constitution will also be considered essential reading for all students. Basic training in health, including preventive health, mental health, good nutrition, personal and public hygiene, disaster response and first-aid will also be included in the curriculum, as well as scientific explanations of the detrimental and damaging effects of alcohol, tobacco, and other drugs.

Impact of NEP – 2020 on Empowerment of Youths in India: New Education Policy - 2020, expects that youths will be empowered which will make India, a self-reliant and a developed nation. The various reforms due to new education policy will help the students in enhancing their potentials and becoming responsible citizens of the society. The following positive outcomes may be expected due to these reforms:

Improved Moral Values: Due to the inclusion of moral topics or subjects in their curriculum, youths will be aware of what is right and what is wrong. They can take their own decision for their deeds. Thus their actions will is expected to go towards right direction.

Enhancing Scientific Temperament: Youths will be able to develop a scientific bent of mind. Having a scientific temperament is most essential for the society to make it a better place to live in. New job opportunities based on scientific temperament will come into existence and students will be able to grab them according to their interests.

Improving Unity of India: New Education Policy - 2020, has given importance to imparting education in the local languages or mother tongue of the students. This will result in strengthening the Indian local languages. The youths will be empowered as they will be able to understand better in their mother tongue which in turn will also increase the unity of the nation.

Interest Based Study: New Education Policy – 2020, focuses on the selection of the subjects based on their ability and interests. By doing so, youths will be able to realize their potential and will be able improve their talents incredibly. Once the youths are empowered in this manner, they will not only be able to create job opportunities for themselves but will also be able to generate jobs for others also.

Conclusion: New Education Policy - 2020 will not only pave the way for better education opportunities but also will help the youths to become socially responsible citizens of India. Youths will become morally strong. They will be able to understand the problems of the opposite sex and elders thus they will develop a sense of respect for them. Youths will be empowered in

all spheres of their lives, be it economically, socially or morally. Such empowered youths are a treasure for the family, society and the country. A country with empowered youths is an empowered country in itself.

References

1. *Rohaila, Nidda, Importance and Benefits of Youth Empowerment to Society, Times of India, August 18, 2022 https://niddarohaila.com/importance-benefits-youth-empowerment-to-society/, retrieved on 10/10/2022*
2. *Otto, M. C., The moral education of youth, International Journal of Ethics, Pages 52-67, University of Wisconsin*
3. *Shobhaa, Sundaresan and Kalab, Nandakumar, Value Education Towards Empowerment Of Youth-A Holistic Approach, Global Conference on Business & Social Science-2014, GCBSS-2014, 15th & 16th December, Kuala Lumpur, ScienceDirect*
4. *Shek, D. T. L. and Ma, H. K., Design of a positive youth development program in Hong Kong, Positive Youth Development: Development of a Pioneering Program in a Chinese Context, Freund Publishing House, London, UK, 2007*
5. *Press Information Bureau, Government of India, https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1742342, Retrieved on 09/10/2022*
6. *Wikipedia*

Spatial Pattern of Basic House hold Amenities in Rajasthan: A Geographical perspective

Dr. Shagufta Saify
Assistant Professor, SMB Government College Nathdwara, Rajsamand

shodhshree@gmail.com

Abstract

House is the only place where a good portion of one's time is spent; a place of shelter where one may seek refuge from the tensions and worries of the outside world. Now a days, it becomes not only the status symbol of a better standard of living but also the symbol of regional development. A minimum standard of comfortable living requires the availability of these basic amenities including drinking water, sanitation, and electricity. The availability of modern household amenities has a great significance in human life because it is conventionally believed that housing conditions, availability of drinking water, sanitation facilities, etc. might contribute to the health improvement of the people and determine the quality of life of the society But, still even after more than 70 years of Independence, majority of Indian people have been deprived of standard housing without access to basic minimum facilities of drinking water, sanitation, and public hygiene, etc., which required urgent attention. This paper attempts to study the Spatial pattern of household amenities in all 33 districts of Rajasthan; comprising both urban and rural areas. The paper is based on secondary data collected from the census of India 2011,NSS, the District census handbook, and various other sources. Z score has been calculated for 8 variables and the thereafter composite index has been calculated. All the districts were grouped into 5 categories namely Very Good, Good, Moderate and Poor, Very poor house conditions. A high composite score indicates better housing conditionsin terms of basic amenities. Attribute maps have been generated using composite values in QGIS. The main findings of the paper are that in Census 2011,most of the houses are counted under livable and in good condition But the quality of houses is Very poor in terms of basic amenities. There is a huge gap between rural and urban housing amenities conditions. The condition of houses was good (51%) whereas 45 % of houses were livable, and the proportion of dilapidated houses in Rajasthan was 3.3%.Whereas only 32% of houses have treated tap water to drink, and 35% of houses having sanitation facilities, in a rural area, only 19% of houses have a latrine, 67% of houses have electricity, and 37 % have a bathroom. etc.

Keywords: *Amenities, Quality of life, Z-score, Deprived, Sanitation, Rajasthan, Rural-Urban.*

House is the only place where a good portion of one's time is spent; a place of shelter where one may seek refuge from the tensions and worries of the outside world. Now a days, it becomes not only the status symbol of a better standard of living but also the symbol of regional development. A minimum standard of comfortable living requires the availability of these basic amenities including drinking water, sanitation, and electricity. The availability of modern household amenities has a great significance in human life because it is conventionally believed that housing conditions, availability of drinking water, sanitation facilities, etc. might contribute to the health improvement of the people and determine the quality of life of the society . But, still even after more than

70 years of Independence, majority of Indian people have been deprived of standard housing without access to basic minimum facilities of drinking water, sanitation, and public hygiene, etc., which required urgent attention. Demand-supply gap, lack of financial aids, political interests, the inefficiency of institutions, a low socio-economic status of the people, lack of awareness, etc. lead to the absence or inadequacy of these facilities in any region. (Dreze and Murthi, 2007)[1].

According to census of India , Rajasthan 2011 The condition of houses was good (51%) whereas 45 % of houses were livable, and the proportion of dilapidated houses in Rajasthan was 3.3%.Whereas only 32% of houses have treated tap water to drink, and 35% of houses having sanitation facilities, in a rural area, only 19% of houses have a latrine, 67% of houses have electricity, and 37 % have a bathroom. etc. Most of the houses are built in an eco-friendly manner using local materials, But the quality of houses is very poor in terms of basic amenities. There is a huge gap between rural and urban housing amenities conditions.

Objective: The present study aims to examine the spatial patterns of availability of household amenities in term of rural, urban and total housing in the state of Rajasthan.

Review of Literature: Indongo, N. (2015)[2] concluded that the quality of housing is considered as households having basic amenities and assets which are meant to be necessary for living. Lack of quality of housing, without basic amenities, is a major rising problem across India in both rural and urban areas, because of low incomes, poverty and unemployment. Quality housing and availability of household amenities like electricity, drinking water, toilet facility and clean fuel is considered to be the critical determinants of quality of life as well as socio-economic status. The amenities like electricity, water, sanitation and clean fuel are the critical determinants of living conditions and health of the urban people.

Kumar, D. S., Thakur, D. B., & Kumar, D. M (2022)[3] purported to investigate the quality of living among the Indian households at state and district level from 2001 to 2011. The quality of living has been examined in terms of 5 main dimensions i.e. (i) housing quality, (ii) basic amenities like health, sanitation and cleanliness, electrification, fuel consumption, (iii) banking (iv) information and communication and assets ownerships covering 14 indicators. The spatial variations in quality of living have been portrayed and discussed with the help of composite index. The study shows positive relationship between quality of living and urbanization (0.77), literacy (0.71) and per capita income (0.68) while negative correlation with poverty (-0.80) and population growth.

Surender Singh(2018)[4] focused on regional variations in the quality of life in Gujarat, Punjab, Uttar Pradesh and Haryana based on representative indicators. Composite index have been used to arrive at the quality of living space. It has mentioned that the quality of living space has an impact on the overall health, productivity, well-being education and socio-economic status of the people. He suggested that specific and immediate action be taken to improve access to drinking water, sanitation facilities, and drainage arrangements, with a greater emphasis on rural regions. The level of inequality was highest in tribal regions, agriculturally poor areas, climatically arid and semi-arid regions as well as areas with lowest levels of urbanizations

Nayyar (1997)[5]examined the housing amenities and health improvement in India and found that that " housing conditions, availability of drinking water, sanitation, availability of drinking water, sanitation facilities etc. might contribute to health improvement of people and determine quality of life of people live in the society". All these indicators provide a description of people's living standard as measured by the basic amenities such as access to water, sanitation, fuel and electricity.

Bhagat (2011)[6] assessed urbanization and

access to basic amenities in India and analyzed that the lack of drinking water, sanitation, toilet facilities is more eminent in rural areas and also in small, medium towns/streets in the urban areas. He also observed that lack of drinking water; sanitation and toilet facilities make people susceptible to various types of disease.

Ghosh, P., Hossain, M., & Alam, A. (2022)[7] presented a geospatial assessment of drinking water, sanitation, and hygiene (WASH) poverty among Indian districts. They find out the spatial dependence and heterogeneity using Moran's I statistics. The results showed moderate to very high spatial dependence of every dimension of WASH poverty among Indian districts. The study suggests more government initiatives and investments for improving WASH conditions in central and eastern Indian districts to fulfill SDG 06 and reduce spatial inequality within the country (SDG 10)

Data and Methodology: The present research work is entirely based on secondary sources of data collected from H- Series ,Census of India publications, 2011, New Delhi In this study, a set of eight indicators of basic amenities like houses having facilities of drinking water, availability of treated water electricity, latrine, kitchen inside, closed drainage, Use of LPG, and bathroom within the premises taken into account to determine their levels of development in respect of availability of these facilities in the districts of Rajasthan.

1. All the raw data for each variable which determines the areal variation of levels of household amenities have been computed into standard score. It is generally known as Z value or Z-score. The score quantifies the departure of individual observations, expressed in a comparable form. This means it becomes a linear transformation of the original data (Smith, 1973)[8] . It may be expressed as: have been computed into standard score

$$Zij = \frac{Xij - \overline{Xi}}{si}$$

Where, Zij = Standardized value of the variable i in district j.

Xij = Actual value of variable i in district j.

Xi = Mean value of variable i in all districts.

σi = Standard deviation of variable i in all districts.

2. Z-scores of all variables have been added district wise and the average has been taken out for these variables which may be called as composite score (CS) for each district and may be algebraically expressed as:

$$CS = \sum Zij / N$$

Where, CS is composite score,

N refers to the number of indicators (variables),

∑Zij indicates zscores of all variables i in district j.

The positive values relating to the Z-score of a district explain high level of development in respect household amenities and negative values show the low level of development in these aspects. All the calculations have been done in Ms Excel.

3. Attribute maps have been generated using composite values in QGIS to show the spatial patterns of availability of total, rural and urban household amenities among the districts of Rajasthan through maps.

Study Area: Rajasthan is the largest state of India by area (342,239 square kilometers or 10.4% of India's total area). It is situated in the north-western part of India and lies between 23 ° 3'and 30 °12' N and 69 ° 30' and 78 ° 17'E. The Aravali mountain ranges that run from Delhi to Gujarat cut through the State almost vertically. The Aravali ranges divide the State through south-east and north-west. The north-west region covering two-thirds of the state consist mostly of a series of sand dunes. The south-eastern region has large fertile tracts. According

to Census 2011, Rajasthan has the total population of 68548437, out of which 24.87% of the population lived in urban areas and 75.13% in rural areas. The literacy rate of state is 67.06% (80.51% male and 52.66% female) which is below the national average of 74.04%. Around 29.46% Population is living below poverty line which is higher to national rate. Rajasthan has the highest unemployment rate as of now in the list by witnessing 29.8 per cent unemployment.

Basic Household amenities in Rajasthan: The term 'basic amenities', refers to drinking water supply, sanitation, electricity and so on.[5] There is unequal distribution of housing conditions and access to basic amenities in rural as well as in urban areas. Improvement of health and quality of the society depend significantly on the availability of modern household amenities like drinking water, sanitation facilities etc.[5.] The premise of basic amenities includes drinking water, sanitation, and electricity. Availability of modern household amenities has a great significance in the human life because it is conventionally believed that housing conditions, availability of drinking water, sanitation facilities, etc. might contribute to the health improvement of the people and determine the quality of life of the society .[12]

Table -1

S. No.	Basic amenities	% distribution in Rural areas	% distribution in Urban areas	difference
1	Tap water from treated source	17.9	75.40	57.50
2	Within premises	32	78.20	46.20
3	Electricity	58.3	93.90	35.60
4	latrine facility within the premises	19.6	82.00	62.40
5	bathing facility within the premises	23	79.30	56.30
6	Closed drainage	3	34.40	31.40
7	LPG/PNG	10.7	69.40	58.70
8	Has Kitchen	37.2	74.50	37.30

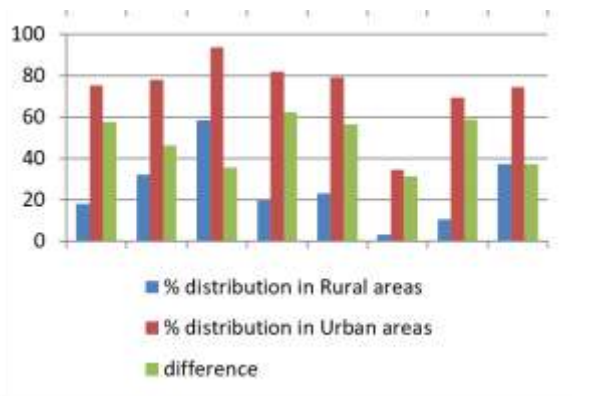

The condition of availability of basic household amenities in Rajasthan is very pathetic. As compared to urban areas, the basic facilities are very less in rural areas. The availability of all facilities other than electricity is less than 50%., even the drainage condition is in the worst condition. Only one third houses have separate kitchen. Although, the condition of toilet facilities has improved due to swachch Barat mission. The percentage of houses having access to drinking water within premises is only 46%.

Table -2

S. No.	District Name	Composite Score_Urban	Composite Score_Rural	Composite Score_Total
1	Ganganagar	0.42	1.35	1.12
2	Hanumangarh	0.40	1.42	1.08
3	Bikaner	0.98	0.30	0.96
4	Churu	0.54	0.82	0.84
5	Jhunjhunun	0.33	1.54	0.92
6	Alwar	0.22	0.03	0.02
7	Bharatpur	-0.41	-0.54	-0.47
8	Dhaulpur	-0.81	-0.87	-0.81
9	Karauli	-0.96	-0.76	-0.88
10	Sawai Madhopur	-0.27	-0.66	-0.60
11	Dausa	-0.07	-0.47	-0.62
12	Jaipur	1.05	0.36	1.85
13	Sikar	0.44	1.14	0.77
14	Nagaur	0.04	0.33	0.13
15	Jodhpur	1.29	0.16	0.98
16	Jaisalmer	-0.34	-0.45	-0.54
17	Jalor	-0.20	-0.05	-0.48
18	Sirohi	-0.11	0.26	0.01
19	Pali	0.04	0.59	0.27
20	Ajmer	0.81	0.11	0.84
21	Tonk	-0.45	-0.54	-0.54
22	Bundi	-0.38	-0.46	-0.52
23	Bhilwara	0.30	0.25	0.04
24	Rajsamand	0.19	0.23	-0.10
25	Dungarpur	-0.09	-0.57	-0.88
26	Banswara	0.46	-0.87	-1.07
27	Chittaurgarh	0.19	0.42	0.00
28	Kota	0.36	0.10	1.40
29	Baran	-0.78	-0.45	-0.54
30	Jhalawar	-0.23	-0.30	-0.45
31	Udaipur	0.78	-0.46	-0.22
32	Pratapgarh	0.12	-0.80	-1.02
33	Barmer	-3.89	-1.17	-1.50

Table 2 depicts the composite mean z-score of availability of housing and modern household amenities among the districts of Rajasthan state. The analysis of Table 2 reveals that there is a wide range of variations in level of development in respect of household amenities in the districts of Rajasthan. It varies from – 3.89 score in the district of Barmer to 1.29 score in the district of Jodhpur. The entire range of variations may be arranged into five categories i.e., very high (above 1 score), high (0.5to 1 score) medium (0.5 to 0), low (0 to-0.5) and very low (below -0.5score).

Result and Discussion

Rural household amenities: The entire array of variation in term of rural household amenities varies from-1.17in Barmer to 1.54score in Jhunjhunu. An examination of data given in table-2 exhibits that four north-east district Sikar, Ganganagar, Hanumangarh, Jhunjhunun falls under the very high level of household amenities in rural area. There are eleven districts which have medium category of household amenities in rural areas while a huge number of districts come under low to very low level of household amenities. Barmer, Banswara, Dhaulpur, Pratapgarh, Karauli, Sawai Madhopur , Dungarpur, Bharatpur, Tonk comprises of Western, Southern and eastern region ,have low to very low level of household amenities in Rural Rajasthan.

Table-2

S. No.	Category	Composite Score	No. of District	Percentage of Total District	Name of the District
1	Very High	Above 1 score	4	12.12	Sikar, Ganganagar , Hanumangarh, Jhunjhunun
2	High	0.5 to 1	2	6.06	Pali, Churu
3	Medium	0 to 0.5	11	33.33	Alwar, Kota, Ajmer , Jodhpur, Rajsamand, Bhilwara, Sirohi, Bikaner, Nagaur, Jaipur, Chittaurgarh
4	Low	(-0.5) to 0	7	21.21	Dausa, Bundi, Udaipur, Baran , Jaisalmer, Jhalawar, Jalor
5	Very Low	below (-0.5)	9	27.27	Barmer, Banswara, Dhaulpur, Pratapgarh, Karauli, Sawai Madhopur , Dungarpur, Bharatpur, Tonk

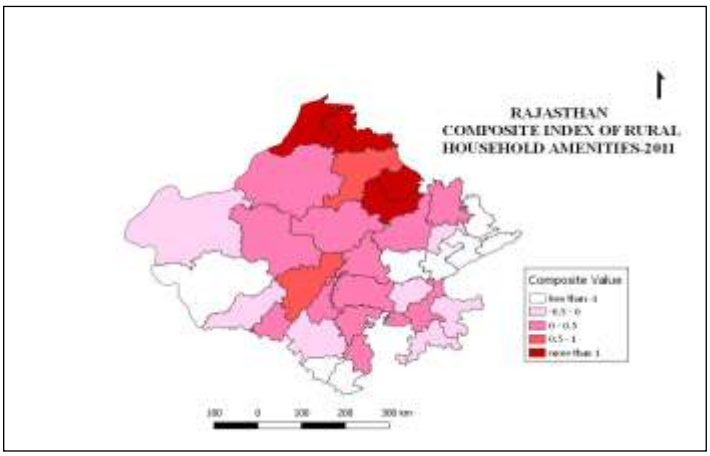

Figure-1

Urban Household Amenities: Distribution of composite score of household amenities in urban areas of Rajasthan has been categorically shown in Table 3. According to figure-2 ,only two districts namely Jodhpur and Jaipur have more than 1 composite score for household amenities in urban area. Districts attached to Gujarat and M.P. Border namely Barmer, Dhaulpur, Karauli, Baran have very low level of household amenities. Along with ten districts namely Tonk, Bharatpur, Sawai Madhopur, Sirohi, Dausa, Dungarpur, Bundi Jaisalmer, Jhalawar, Jalor shows low level of household amenities. The reason behind is that these region is neither cultivable nor industrialized and the poverty rate is quite higher in these district.

Table-2

S. No.	Category	Composite Score	No. of District	Percentage of Total District	Name of the District
1	Very High	Above 1 score	2	6.06	Jaipur, Jodhpur
2	High	0.5 to 1	4	12.12	Churu, Udaipur, Ajmer, Bikaner
3	Medium	0 to 0.5	13	39.39	Alwar, Kota , Rajsamand, Bhilwara, Nagaur, Pali, Pratapgarh, Chittaurgarh , Jhunjhunun, Sikar, Ganganagar , Hanumangarh, Banswara
4	Low	(-0.5) to 0	10	30.30	Tonk, Bharatpur , Sawai Madhopur , Sirohi, Dausa, Dungarpur, Bundi, Jaisalmer, Jhalawar, Jalor
5	Very Low	below (-0.5)	4	12.12	Barmer, Dhaulpur, Karauli , Baran

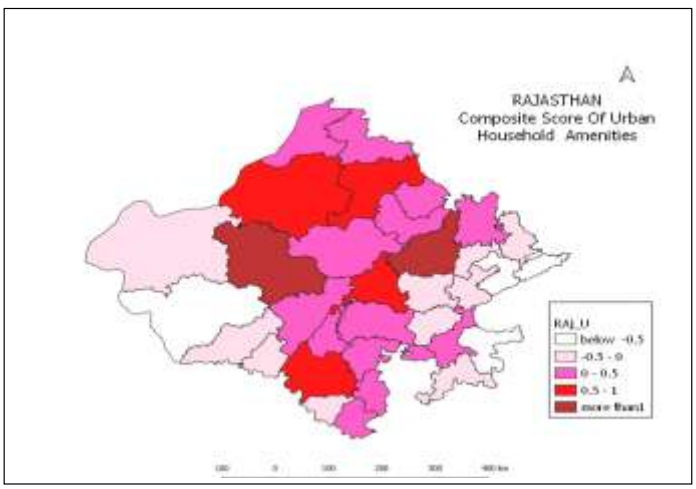

Figure-2

The middle category is comprised of 13 districts i.e. Alwar, Kota , Rajsamand, Bhilwara, Nagaur, Pali, Pratapgarh, Chittaurgarh, Jhunjhunun, Sikar, Ganganagar, Hanumangarh, Banswara constituting around 40% of the total Urban areas. Barmer, Dhaulpur, Karauli, Baran districts have very low level of household amenities.

Total Household Amenities: District wise total household amenities of Rajasthan state is presented in table-4 and Figure 3 represents its patterns of distribution. The northern and central districts Ganganagar , Hanumangarh, Churu ,Sikar , Jhunjhunu,Bikaner show very high to high level of distribution of household amenities whereas southern districts show the

low to very low level of household amenities. Jaipur Score highest composite value due to the capital and historic reasons whereas the lowest score is calculated for Barmer district which is due to its dry desert geographic location.

Table-4

S. No.	Category	Composite Score	No. of District	Percentage of Total District	Name of the District
1	Very High	Above 1 score	4	12.12	Kota, Ganganagar, Hanumangarh, Jaipur
2	High	0.5 to 1	6	18.18	Ajmer, Churu, Sikar , Jhunjhunu, Bikaner, Jodhpur
3	Medium	0 to 0.5	5	15.15	Alwar, Bhilwara, Sirohi, Pali, Nagaur
4	Low	(-0.5) to 0	7	30.30	Rajsamand, Udaipur, Jhalawar, Jalor, Bharatpur, Pratapgarh Chittaurgarh
5	Very Low	below (-0.5)	11	24.24	Barmer, Jaisalmer, Banswara, Dhaulpur, Karauli, Sawai Madhopur, Bundi, Tonk Dungarpur, Dausa, Baran

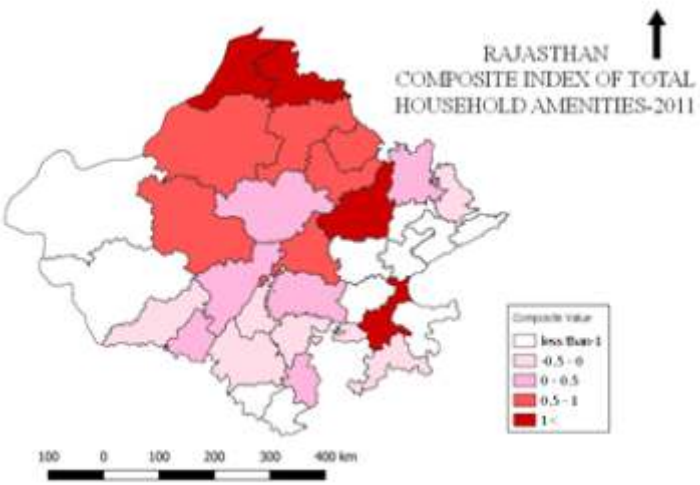

Figure-3

There are four districts in the very high category and six in the high category, 5 in medium category, seven in low and peripherically situated eleven district in very low category of total household amenities.

Conclusion: The overall spatial pattern for Rural, Urban and total household amenities has a huge gap in term of composite score. The spatial pattern of rural and urban distribution is not similar. The GIS mapping gives us a spatial understanding of states and concluded that the level of household amenities is high in the Northern and Central Rajasthan, Moderate in central Rajasthan, while it is comparatively low in the Western and Southern Rajasthan. This analysis suggests that access to basic amenities, such as drinking water and sanitation is highly

correlated with the economic status of households. Economic and social backgrounds of the household are major determinants of housing conditions in both rural and urban Rajasthan. The spatial variations in the quality of living space may be attributed to increasing population, poor economic conditions, low level of social development and varying geographical conditions in the country Despite the existing various schemes for rural development such as PURA (provision of urban amenities to rural area), Pradhan Mantri Adarsh Gram Yojana, Sansad Adarsh Gram Yojana (SAGY) and Shyama Prasad Mukherji rurban mission (SPMRM), rural-urban gap in terms of housing and basic amenities remains high. At present, lack of proper policy funding, corruption within the programmes at different levels, lack of people's involvement hinders the completion of any programmes in India

References

1. *Dreze, J. and Murthi, M. (2001). 'Fertility, Education and Development: Evidence from India', Population and Development Review. Vol. 27, No. 1, pp. 33-63.*
2. *Indongo, N. (2015). The Effect of Urbanisation on Housing Conditions in Namibia, International Journal of Humanities Social Sciences and Education, Volume 2, Issue 7, pp. 1-.*
3. *Kumar, D. S., Thakur, D. B., & Kumar, D. M(2022). Quality of living in India: a household level analysis. International Journal of Development Research, 12(01), 53347-53354.*
4. *Singh, S(2018). Regional Variations in the Quality of Living Space in Gujarat, Punjab, Uttar Pradesh and Haryana. © Universal Research Reports | Refereed | Peer Reviewed ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 05 , Issue : 04 | January - March 2018*
5. *Nayar, K. R. (1997): Housing Amenities and Health Improvement: Some Findings, Economic and Political Weekly, Vol. 32, No. 22 (May 31 - Jun. 6, 1997), pp. 1275-1279.*
6. *Bhagat, R.B (2002, october12). "Urbanization and Access to Basic Amenities in India", Urban India, Economic and Political Weekly, Volume 48(1), retrieved from www.research.net/publication/234242344*
7. *Ghosh, P., Hossain, M., & Alam, A. (2022). Water, Sanitation, and Hygiene (WASH) poverty in India: A district-level geospatial assessment. Regional Science Policy & Practice, 14(2), 396-416.*
8. *Smith, D.M. (1973) The Geography of Social Well-Being in the United States, Mc Graw-Hill, New York, pp. 71-85.*
9 *Ghosh, M., & Roy, D. (2022). Assessing the level of household Quality of Living (QoL) of Berhampore Town (City) in Murshidabad District, West Bengal, India. On the W@ terfront, 64(6), 3-26.*
10. *Singh, S. (2022). Housing and Unfree Labour: A Village Case Study from Rajasthan, India. Agrarian South: Journal of Political Economy, 22779760221101335*
11. *Census of India (2011); "Primary Census Abstract Censes of India 2011".HH- Tables.*
12. *Shaw, A. Basic Amenities in Urban India: Analysis at State and Town Level, Indian Institute of Management Calcutta, WPS No. 616 – Available at : http://www.iimcal.ac.in/res/upd/WPS%20616.pdf. 2007.*

Development of Calligraphy in Rajasthan from Epigraphical point of View

Dr. Indrajeet Bhattacharya
Researcher, Echos of India, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Ever since mankind came to existence, they have made significant inventions which led to the overall development of their civilizations all across the world. One of them is the mode of communication. In the initial stages of development, the communication occurred with the help of expressions and sound made by various kind of postures and voices respectively. Gradually, over a period of time as human being learned the art of drawing, the mode of communication shifted to expression through various figures and pictures. Further pictures led to the emergence of symbols and let to the development of phonetic scripts. The development of phonetic script was an important milestone. Most of these scripts were scientifically derived from the symbols. The development of script laid the foundation of language and grammar lately, and for the first-time mankind realised the true power of expression through language which could be written as well as spoken. However, the evolution of spoken and written language continued with time and space which resulted in many kinds of developments, such as: emergence of new scripts, emergence of new languages, emergence of dialects and lastly but not least, the introduction of art in writing that resulted in the development of Calligraphy. This paper starts with a brief account about the development of language(s) across the world followed by development of popular scripts and languages in India. The paper then focuses on a study about the development of calligraphy in Rajasthan from epigraphical point of view across the different periods. The topic shall certainly draw the attention of epigraphist and calligraphers with respect to the development of calligraphy in Rajasthan area and shall open the doors of further studies and research.

Keywords: *Logography, Hieroglyphic, Cuneiform, Language, Phonetic, Dialects, Epigraphy, Calligraphy, Rajasthan.*

Dr. Indrajeet Bhattacharya is an independent researcher and founder of 'Echos of India', an initiative to bring forward the unattended, unfocused & abandoned aspects of Indian Civilization. He has completed his Ph.D. in Museology & Conservation from Univ. of Rajasthan, Jaipur. His research work was on *Scientific Technology - Relevance and Role of 'Internet of Things' (IoT) in Museum*. His areas of research interest are: *IoT implementations in Museums*, *Automation in Museums & Artefact Conservation, Monumental Architecture and its interpretations, New historical theories based on new archaeological findings, Ancient Indian History, Science in Ancient India*. He has worked on a project for 2 months with INTACH titled "Dictionary of Monuments with old wall paintings in Jaipur old city". He is Masters in Museology & Conservation and successfully cleared UGC-NET for the same. He holds proficiency in Brāhmi, Shāradā, Simhalā & Jain Nāgari script. He is a science graduate and holds Masters in Computer Application with Microsoft Certification (2005). He has an experience of 25 years in Information Technology industry.

Introduction

Among the other inventions made by mankind, the invention to communicate was one of the most significant one. These inventions which were related to communication, occurred mostly in a sequential manner as observed from the discovery details. Sequential manner means, at the initial stages of mankind the communication occurred with the help of expressions and sound made by various kind of postures and voices respectively. Then humans learned to make engraved figures (figure-1) and pictures (figure-2) on hard surfaces like rocks and bones.

Figure 1 - Eddakal Caves, Ambukuthi hills

Figure 2 - A reindeer bone engraved with two reindeer, part of the ice age art show at the British Museum.

With the invention of writing medium such as dyes and ink that were derived from natural resources and minerals, the art of drawing took a giant leap and soon humans learned that the figures can also be 'drawn' on the rock surface or cave walls (figure-3).

Figure 3 - Cave drawings at Bhimbetka

These drawing were symbolic and represented human and animal figures and various kind of objects like weapons, tools etc. Thus, the mode of expression shifted to drawing and painted structures. The practise of drawing and painting as a mode of easy expression continued for a long period until the emergence of Logograms. Logogram or Logograph is a symbolic written

character which in most cases is derived from the pictorial representation of an object, place and activity. It represents a word or morpheme. The best example of logograms can be seen in the form of Chinese characters (figure-4), Egyptian hieroglyphic (figure-5) and Sumerian cuneiform characters (figure-6). The writing system that is based on logograms is called a logography or logographic system and it is also associated with some phonetic system (figure-7).

Figure 4 - Chinese logograms

Figure 5 - Egyptian hieroglyphic

Figure 6 – Sumerian cuneiform

It was logography which eventually gave birth to the scripts (alphabets with phonetic sounds) that were scientifically derived from the logos in use. For example, an ox head (alp) was 'a', a house (bet) was b (figure-7). The development of script across the different civilizations in different timelines was an important milestone in the history of mankind which also laid the foundation for the birth of languages and the development of grammar.

PROTO-CANAANITE	EARLY LETTER NAMES AND MEANINGS
	alp oxhead
	bêt house
	gaml throwstick
	dgg fish
	hô(?) man calling
	wô (waw) mace

Figure 7 - Logos and their meanings expressed through phonetic sounds.

Thus, the knowledge and practice of scripts through languages, differentiated mankind from animals with language as an important tool for communication. Further, these languages underwent evolution with time and space, that resulted in the emergence of new scripts, new languages, new dialects and lastly but not the least – the introduction of art in writing that resulted in the development of Calligraphy.

Epigraphy and Calligraphy

Epigraphy (figure-8) is a study of old inscriptions which had been engraved on hard and durable surface. This engraving could be in the form of scratches, symbols or letters over rocks, metals or bones. The main objective of epigraphy is the study of inscriptions as writing; clarifying their meanings, classifying their uses according to dates and cultural contexts, and drawing conclusions about the writing and the writers.

Calligraphy (figure-9) on the other hand is the amalgamation of art with writing, resulting in the formation of various styles in alphabets of any script. It is an artistic hand-writing done with the help of pen or brush as writing instrument and ink as writing material. It can be done on hard (stone and metals) as well as soft surfaces (paper, parchment, cloth etc.). The words and sentences so formed depict pictorial expressions.

Figure 8 - Inscriptions on hard surface

Figure 9 - Calligraphy on paper

The Indian Scenario

Like other parts of the world, proof of communication in the form of lines and structures engraved on rocks (figure-1) and stone-age cave paintings (figure-3) have also been discovered at various places in India like: Eddakal Caves (Ambukuthi hills), Bhimbetka (Madhya Pradesh), Padiyendhal, Alampadi, Kombaikadu, Kilvalai, Settavarai and Nehanurpatti (all Tamil Nadu), Gudahandi and Yogimatha in Odisha, Hiregudda in Karnataka etc. Besides the above-mentioned Palaeolithic art, there are cave paintings from early medieval period also which could be found at – Ajanta & Ellora (Maharashtra), Bagh caves (Madhya Pradesh), Sittanavasal (Tamil Nadu). However, these later paintings were made basically as a representation of amusing art either dedicated to some deity or as display of power and opulence, and their work was mostly summoned by the kings, ministers, rich merchants and the noble class of the society.

Talking in terms of ancient India, Brahmi and Kharosthi are two main scripts that have being recognized on the basis of epigraphical proofs. These epigraphical proofs include inscriptions engraved on stone slabs and pillar, and metallic plates that are made up of bronze, copper and gold etc, which have been discovered from various regions of undivided India. Brahmi was deciphered by James Prinsep, the secretary of the Asiatic Society of Bengal, in 1834 while Kharosthi was deciphered by James Prinsep, Christian Lassen, C.L. Grotefend and Edwin Norris. Compared to Kharosthi, the Brahmi script and its variants were used in the bigger part of ancient India and also dominated the timeline. The usage of Kharosthi was mostly found in Northwest Pakistan, East Afghanistan, East Turkmenistan and Central Asia.

Besides the aforesaid scripts, there were many scripts which were prevalent. According to the Jain primary sources of Samvayang sutra, Pannvana sutra and Bhagwati sutra there were 18 scripts whereas the Buddhist text – Lalitvistar mentions the existence of 64 scripts. Unfortunately, except Brahmi and Kharosthi, the traces of remaining other scripts were completely lost. These scripts have been further classified on the basis of various factors. Among this classification, one of the factors which is relevant to the context of this paper's topic is – Stylistic script ('Shailiparak lipi' in Hindi). The stylistic script is further classified into five sub-categories:

(i) Up-protrusion script ('Utkshep lipi' in Hindi): strokes of the letters are upwards.

(ii) Down-protrusion script ('Nikshep lipi' in Hindi): strokes of the letters are downwards.

(iii) Ubiquitarian script ('Vikshep lipi' in

Hindi): strokes of the letters are in all directions.

(iv) Interpolation script ('Prakshep lipi' in Hindi): insertion of strokes in front of the letters to give a distinct (beautiful) look.

(v) Mid-letter expanded script ('Madhykshar Vistar lipi' in Hindi): a script whose middle part of each letter has been expanded for the purpose of beautification.

The aforesaid classification suggests that the concept of beautification of scripts in various forms was prevalent and in practise. This could be understood by studying the evolution of Brahmi script through the timeline of different dynasties like - pre-Mauryan to Mauryan then to Kushan and then to Gupta. This evolution resulted in bringing change in the way of writing letters with many different styles introduced at different stages. A comparative analysis is presented here, depicting change in style of writing a letter across the time period.

Evolution of Brahmi syllable through Mauryan, Kushan and Gupta period			
Devanagari Script	Aśokan Brahmi Script	Kushan Brahmi Script	Gupta Brahmi Script
अ			

The study of scripts revealed that the aforesaid periods can be further be classified on the basis of the evolution of scripts. For example, the Gupta Brahmi script acquired two distinct forms:

1) Gupta Script ('Gupt-lipi' in Hindi): also called as east-Lichhavi (4th century).

2) Kutil Script ('Kutil-lipi' in Hindi): also called as north-Lichhavi (6th century).

Two different forms of Gupta Brahmi script		
Devanagari Script	Gupt-lipi (east-Lichhavi)	Kutil-lipi (north-Lichhavi)
अ		

Brahmi script developed under the Gupta rulers. Due to the development and use of stylus and ink, the formation of Brahmi letters improved and obtained new shape. In Gupt-lipi the short head-lines became lengthier and the sign of vowels acquired new styles. Similarly, in Kutil-lipi the vowels started showing curvature and the straight lines of the letters, became bent towards the left at the bottom. Despite of the availability of paper from China, the Indian scholars preferred using Bhojpatra (Birch-bark) and Tādpatra (Palm-leaf) etc. as a primary choice because the formation of letters on them using ink-stylus was better as compared to the paper which was available that time. The stylus (pen) was used to be made up of either thin bamboo sticks sharpened at the writing end or bird feather and was called 'Lékhnī' (quill). It is made up primary wing feather of a large bird like swan or goose. The ink is derived from various kind of plant and flowers and also from minerals.

The development of Calligraphy in ancient India dates back to post Mauryan age. As per the discoveries made, the use of calligraphy could be observed in the inscriptions of Ikshvaku kings of Andhra. The Siddhamātrika script (figure-10) is a calligraphic form of Brahmi script. The inscriptions of Sri Harsha (457 BCE) (figure-11) have beautiful calligraphy. The box-headed script of Brahmi (figure-12) was also a calligraphy evolved in central India. Calligraphy was called as "Akshara-Lalitya".

Figure 10 - Siddhamātrika script

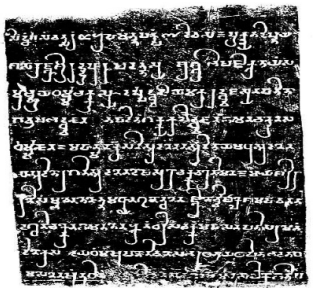

Figure 11 - Sri Harsha inscriptions

Figure 12 - Box-headed script of Brahmi

While the priests of the Buddhist monasteries summoned the work of Buddhist manuscript writing in simple and calligraphic form, the Jain merchants summoned the same kind of work dedicated to their 'Munis' (sages). In addition, many Hindu manuscripts were being copied into many forms including depiction with pictures as well as calligraphy. This development gave rise to what is known as Indic-calligraphy and is different from Islamic calligraphy. Thus, it can be said that a kind of calligraphy did exist in the undivided India before the arrival of Islam.

With the arrival of Islam, Islamic-calligraphy arrived in India which not only dominated the art of writing but also made a marked change in Indic-calligraphy. At initial stages it was said to be Arabic calligraphy which was simple in nature without any noticeable style. However, it was Mughals, who changed the dimensions of Islamic-calligraphy in India. The first Mughal emperor Babur encouraged the use of papers by setting up paper-manufacturing units at various places in the conquered territories in India. The second Mughal emperor Humayun, invited the calligraphers from the Persian court and this marked the development of Islamic-calligraphy in India.

Figure 13 - Arabic inscriptions

Figure 14 - Persian inscriptions

Islamic calligraphy in Rajasthan was introduced by the Mughals, but its development took momentum in the reign of Aurangzeb. He sent artisans and calligraphers in Rajasthan to settle and develop the art of calligraphy through copying of the holy Islamic books like Quran and Hadith. Soon calligraphy centres were established at various states of Rajputana (now Rajasthan). These centres not only continued the work of copying and translation but also trained new calligraphers. These calligraphers, involved in the work of copying and translation of Quran and Hadith were respectfully looked upon by the then society and peoples as this was considered to be a work of great sanctity, nobleness, ritualistic and welfare. Many of such

calligraphers found their place in royal courts at the position of court-calligraphers and earned respect, name and property.

The Islamic-calligraphy continued to flourish during medieval India and was practised on various kind of stones especially marbles, ivory, cloth, parchment and papers etc. The gate of many mosques was decorated by exquisite calligraphic work. Proof of one such wonderful work could be seen on the gates of Hazrat Sufi Hamiduddin Nagauri's dargah in Nagaur (Rajasthan) where the verses of Quran have been inscribed on it. Compared to Indic-calligraphy, the Islamic-calligraphy took a higher flight of development because in Islam, drawing of pictures, images etc. is completely prohibited, so the depiction of these prohibited subjects are imitated in the form of calligraphy.

In the later period more artisans and calligraphers migrated from Multan and Sindh and settled in the various regions of Rajasthan thus making the region rich in the art of calligraphic craftsmanship. Alwar, Ajmer and Nagaur were also a centre of calligraphy. The nawab of Tonk, Nawab Muhammad Amir Khanin promoted the art of calligraphy in 18th century, and since then Tonk has been an important hub of calligraphy. The Saeedia library which was established during the time of Tonk state housed a massive collection on 3064 manuscripts and 133 rare books. This collection was later transferred to the Branch office of the Rajasthan Oriental Research Institute in 1961 under the stewardship of a single man staff Shri Shaukat Ali Khan. This branch office was later elevated by the state government to a full-fledged Institute for Arabic and Persian Research Centre in December, 1978. Lately, this centre has been named as Maulana Abul Kalam Azad Arabic and Persian Research Institute. The institute now also conduct digital classes on calligraphy and manuscriptology. Currently it is undergoing the prodigious project of digitization.

The Europeans brought their style of calligraphy in India. Though, the Britishers dominated the phase of colonial India, yet it should not be forgotten that the other European powers like French, Portuguese and Dutch also left their influence in India and on its culture which includes 'writing'. So, the traces of calligraphic writing of European establishments in India could be easily traced out in various heritage houses, museums and churches. In context of Rajasthan, which was primarily under the British influence, various official documents like letter of appreciation, letter of grant, summons, invitation, orders etc written or printed in calligraphic English could be seen in various museums and are preserved in state archives for records. These official documents represent the communication between the then British rulers the local state governments. The style of English writing in colonial India was found mostly in the calligraphic style. The writing medium and instrument changed with the quality of paper improved and the quill getting replaced by metal nibs which started getting manufactured in the 19th century. The quality of ink improved and dyed inks came to use.

Figure 15 - Front cover of passport issued at Bombay Castle in 1858 to Lewis Pelly, East India Company officer and British diplomat.

Figure 16 - Minutes of the East India Company Court of Directors 20 February 1662-63.

Figure 17 - Bond between Patrick Laws, Commander of the ship Loco in the service of the East India Company, bound to Madras and China, and Richard Lowe, a banker of Covent Garden, Middlesex, 22nd December 1780.

Conclusion

The journey of scripts, languages, writing and calligraphy in the history of mankind and India is a very interesting study. It provides a valuable information about the various stages of evolution in writing which ultimately lead to the development of calligraphy. This amalgamation of art with writing was a very unique development as it introduced a wide variety of styles in writing. It was a reflection of human creativity which does not have any sort of restrictions on thoughts and imagination and therefore it developed and flourished.

However, in the last few decades with the increase in the use of electronic media, the art of calligraphy is being adversely affected. The once upon charm and popularity of calligraphy has phenomenally gone down. Gone down is the popularity and respect of the calligraphers as in the current Indian scenario, they are being looked upon as simple writers or painters. To make the matter worse, the digital calligraphy is further destroying the creativity in calligraphic writing. Afterall one must understand that a machine with artificial intelligence cannot produce the same kind of creativity as a human being does. Keeping the aforesaid concerns in view, a concrete action must be rolled out and implemented with immediate effect so as to revive the dying art of calligraphy before it perishes completely.

References

1. *पाण्डेय रा. (२ १८). भारतीय पुरालिपि. इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन*
2. *ओझा गौ ही. (१९५९). भारतीय प्राचीन लिपिमाला. दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल*
3. *दाश अनिर्बाण. (२ १६). इयं धम्म लिपि. नाशिकः बौद्ध साहित्य प्रसारक मंडल*
4. *Kahn C, Osborne K. (2005). World History: Societies of the Past. Winnipeg, Canada: Portage & Main Press*
5. *Massoudy H. (2020). Calligraphies of the Desert. London: Saqi Books*
6. *Salomon, R. (1998). Indian Epigraphy. Oxford: Oxford University Press.*
7. *KHWAJA, G. S. (2011). Arabic and Persian Epigraphs: Recent Discoveries. ARABIC AND PERSIAN EPIGRAPHS: RECENT DISCOVERIES, 1(1), 293–315.*

   https://asi.nic.in/Ancient_India/recent_issues/new_series_1/article_11.pdf
8. *British Library. (n.d.). The British Library. Retrieved August 28, 2021, from https://www.bl.uk/history-of-writing/articles/a-short-history-of-calligraphy-and-typography*
9. *Wikipedia contributors. (2021, April 13). Indian calligraphy. Wikipedia.*

https://en.wikipedia.org/wiki/Indian_calligraphy

10. Wikipedia contributors. (2021, August 29). Islamic calligraphy. Wikipedia. https://en.wikipedia.org/wiki/Islamic_calligraphy
11. Ali, A., & Hassan, A. S. (2017). Arabic Calligraphy on Mughal Monuments of North India. JOURNAL OF ARCHITECTURE, PLANNING & CONSTRUCTION MANAGEMENT, 1(7), 39–47. https://www.researchgate.net/publication/325718178_Arabic_Calligraphy_on_Mughal_Monuments_of_North_India
12. van Berkel, M., Duindam, J. F. J., & van Berkel, M. (2018). Prince, Pen, and Sword (Vol. 15). Brill. https://doi.org/10.1163/9789004315716_006
13. The Prehistoric Paintings of the Pachmarhi Hills. (n.d.). Bradshaw Foundation. Retrieved August 21, 2021, from https://www.bradshawfoundation.com/india/pachmarhi/index.php
14. Rock Art (Part-1). (n.d.). Drishti IAS. Retrieved September 3, 2021, from https://www.drishtiias.com/to-the-points/paper1/rock-art-part-1
15. Khan, Z. (2021, September 23). Rock Art History of Madhya Pradesh: Adamgarh & Nagori. World History Encyclopedia. https://www.worldhistory.org/article/1525/rock-art-history-of-madhya-pradesh-adamgarh--nagor/
16. Tylén, K. (2020, March 3). The evolution of early symbolic behavior in Homo sapiens. PNAS. https://www.pnas.org/content/117/9/4578
17. Kiger, P. J. (2019, August 1). 9 Ancient Sumerian Inventions That Changed the World. HISTORY. https://www.history.com/news/sumerians-inventions mesopotamia#section_2+"Cuneiform+script,+developed+by+the+Sumerians.
18. Wikipedia contributors. (2021, September 25). Chinese characters. Wikipedia. https://en.wikipedia.org/wiki/Chinese_characters#/media/File:Hanzi.svg
19. Image. (n.d.). [Photograph]. Hieroglyphs from the Tomb of Seti. https://en.wikipedia.org/wiki/File:Hieroglyphs_from_the_tomb_of_Seti_I.jpg
20. Rare Books Society of India. (n.d.). Rare Book Society of India. Retrieved September 26, 2021, from https://rarebooksocietyofindia.org/grid-layout.php?t=26
21. Jhanjh, D. K. (2020, February 20). Indian Epigraphy. Sahapedia. https://www.sahapedia.org/indian-epigraphy
22. Wikipedia contributors. (2021, August 26). Siddhaṃ script. Wikipedia. https://en.wikipedia.org/wiki/Siddha%E1%B9%83_script
23. Teller, B. M. (2014, October 22). Tales from the India Office. BBC News. https://www.bbc.com/news/magazine-29702694
24. Decorating the East India Company's records. (2019, July 25). Untold Lives Blog. https://blogs.bl.uk/untoldlives/2019/07/decorating-the-east-india-companys-records.html
25. Gust, O. (2017, July 8). Threads of Empire: rule and resistance in colonial India. History Workshop. https://www.historyworkshop.org.uk/threads-of-empire-rule-and-resistance-in-colonial-india/
26. Arya, V. (2017, February 25). RBSI - Calligraphy in Ancient India By Vedveer Arya ITIHASA Ancient Indians had developed the art of Calligraphy around post-Mauryan era. Ikshvaku kings of Andhra were probably the first who used calligraph. Rare Books Society of India. https://rarebooksocietyofindia.org/postDetail.php?id=196174216674_10154865900601675

Acknowledgements

1. Prof. Vibha Upadhyaya (Retd. HOD, Department of History & Indian Culture & Director, Centre for Museology & Conservation, University of Rajasthan)
2. Late Dr. Chandramani Singh (Chandramani Singh is a scholar of art history, sculpture and museology and author of many books)
3. Dr. S. K. Sharma (Retd. Archaeologist, Archaeological Survey of India)
4. Dr. Anirban Dash (Assistant Professor at Department of Pali, Savitribai Phule Pune University) and his famous book 'Ean Dhamm Lipi'
5. Dr. A. Lateef Usta (Nodal Officer IT & Curator/Prog. Officer (Visual Art), Jawahar Kala Kendra, Jaipur)
6. Mr. Murlidhar Arora (Maulana Abul Kalam Azad Arabic Persian Research Institute, Tonk, Rajasthan, India)

Geriatric Care In India: An Important Dimension

Dr. Shruti Tandon
Assistant Professor, Govt. Meera Girls College, Udaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Demographic ageing is a global phenomenon. World Population Report (2017 Revision) state that the number of older persons is to double by 2050 and will triple in 2100, globally increasing from 920 million in 2017 to 2.1 billion in 2050 and 3.1 billion in 2100. According to Population Census, 2001, there are nearly 104 million elderly persons (aged 60 years or above) in India which includes 53 million females and 51 million males and it is projected to triple in number by 2050. In the contrast of the chronological milestones which mark life stages in the developed world, old age in many developing countries is seen to begin at the point when active contribution is no longer possible. Thus, it is important to tap the experience and expertise of the elder and utilize it for benefiting the younger generation of the community, which in turn will help in reducing the existing generation gap, and as well provide social recognition and economic security for the elderly.

Keywords : *Old age, Elderly, Geriatric Care, Problems, Recommendations.*

For generations Joint Family was regarded as the key feature of the Indian society. In the tradition of joint family the position of senior person of the family KARTA was very important. All the important decisions regarding socio, familial, economic matters were taken by him and was accepted by family members. Gradually, due to the processes of urbanization, globalization, increasing dominance of market values and money, fading of the joint family system, started. As a result, the conditions of the elderly got changed. They face not only health issues but also socio-economic and psychological problems. The cases of Elder abuses are also increasing. The number of old age homes is increasing where children leave their parents as they have no time to look after them. These issues require serious attention to be addressed. Thus, the scope of Gerontology (the study of the aging process) and Geriatrics (Care of ageing people) has widened now. Traditionally speaking, geriatric care has been defined as the medical care of older people. But now the scope includes not just medical needs but also the psychological and social needs of people in the old age. More than ever before, geriatric care encompasses a holistic approach to coping with ageing and its effects.

As we know demographic ageing is a global phenomenon. World Population Report (2017 Revision) state that the number of older persons is to double by 2050 and will triple in 2100, globally increasing from 920 million in 2017 to 2.1 billion in 2050 and 3.1 billion in 2100. According to Population Census, 2001, there are nearly 104 million elderly persons (aged 60 years or above) in India which includes 53 million females and 51 million males and it is projected to triple in number by 2050. A report released by the United Nations Population Fund and Help Age India suggests that the number of elderly persons is expected to grow to 173 million by 2026. Owing to success of public health measures over the past few decades, we are witnessing a remarkable increase in human longevity globally, allowing a greater share to older people in the population (Goel and Kaur, 2022). With the increasing elderly population, it

becomes significant to give emphasis on ageing issues for strengthening and improving their lives. Thus, Geriatric Care is an important dimension of life.

It is an indisputable fact that ageing is a process that almost results in physical, social, psychological and economic changes for the persons. Generally, in old age, physical strength deteriorates, mental stability diminishes, money power becomes bleak and eyesight suffers a setback. It is only for a blessed few, old age may prove to be a stage of contentment and satisfaction. But for a large number of people it may actually become a period of disappointment, rejection, disease, repentance and loneliness (Chouhan, 2017). The final period of life is old age. Physiologically, old age may be said to have arrived to an individual when general declines have resulted in extreme disablement. Physiologically, the mental processes have slowed down and individuals turn to self-contemplate, retrospection and concern over the meaning of life. People go through different experiences during their old age, some may try to get detached from the society, some may try their best to be engaged always, some people may turn towards religion or resort etc. Only a few make compromises and try to equip them to sail along with the currents of life. Thoughts and cognitions are different for different people. In the contrast of the chronological milestones which mark life stages in the developed world, old age in many developing countries is seen to begin at the point when active contribution is no longer possible (Hiremath, 2012). Thus, it is important to tap the experience and expertise of the elder and utilize it for benefiting the younger generation of the community, which in turn will help in reducing the existing generation gap, and as well provide social recognition and economic security for the elderly.

Definitions

Old age refers to age nearing the life expectancy of human beings, and merely it's the last phase of human life cycle. Terms like 'elderly', 'elders', 'older adults', 'seniors' and 'senior citizens' are the alternative words used in different cultures of the world for denoting the old age peoples. Despite the frequency with which the terms are used, the definition of exactly what 'old age' is problematic. Four main approaches to the definition of old age are biological age, chronology, the political economy approach and a stage in the lifecycle whatever definition of old age is used the term usually implies (implicitly or explicitly) some notion of decline and deterioration in health, vitality, social usefulness and independence (Saikiran, 2018).

The standard age for old age is difficult to describe as it differs from time to time and from country to country. The United Nations labels people aged 65 as elderly. Nevertheless, the World Health Organization also accepts that developing nations defined old age, not by years, but by new roles, loss of previous roles, or inability to make active contributions to society.

1. Age group 60-69 years – Young old

2. Age group 70-79 years – Old Old

3. Age group 80 years and over – Older old or very old

Legally in India, it is 60 years. The Government of India adopted 'National Policy on Older Persons' in January, 1999 wherein 'senior citizen' or 'elderly' is defined as a person who is 60 years of age or above (National Policy for older persons year1999. Ministry of Social Justice and Empowerment. GOI)

According to Shiva (2002), some people use their chronological age as a criterion for their own aging whereas others use such physical symptoms as failing eye-sight or hearing, tendency to increase fatigue, decline in sexual potency etc. Still others assess their aging in terms of their capacity to work, their output in relation to standards set in earlier years, their lack of interest in completing with others, lack of motivation to do things or tendency to reminisce and turn their thoughts to the past rather than

dwell on the present or the future.

Erik Erikson labeled the old age "integrity or despair" as the developmental task. People in this state are inclined to reflect their lives and attainments. They experience satisfaction if they believe their life was rewarding and purposeful. If, however, they reflect missed chances and unresolved problems, they experience despair (Ashford, LeCory and Lortie, 1997). Hence, the need to sustain quality of life in elderly becomes an increasingly important concept.

Significance of The Study

All that is born must age and decay is the law of nature that applies to plants, animals and equally to human beings. To this extent aging is a normal and mundane process (Gangrade, 2000). Hence, it is a subject of lesser importance. Recent decades have registered a widespread attention regarding the phenomenon of aging in the context of human being for its far reaching implications. The aging of the population has many profound social and economical implications. The process of aging affects all social groups, and indeed every type of social relationships in all societies.

We know that every age group of life has its own issues and concerns. The youth is occupied with enhancing their career opportunities, middle aged people are engaged in their jobs and earning their livelihood and the aged individuals are leading retired lives (Kapur, 2018). Aging is both a biological and a sociological process. Age is not merely a biological function of the number of years one has lived, or of the physiological changes the body goes through during the life course. It is also a product of the social norms and expectations that apply to each stage of life (Saikiran, 2018). As an individual grows older, he/she shed their previous roles and assumes new roles, situations and to behave as per requirement, they require both learning and revised self-definition. So is with the old age people.

In the present scenario due to urbanization, industrialization, globalization, modernization, money oriented minds, inflation etc., children have not time to look after their parents, elders because of their busy schedule and as a consequence of this situation, they are getting neglected. On going life styles, dominance of individualistic values, demanding jobs, excessive use of social media platforms, a shift to nuclear family structure from joint family structure and redefined priorities have led to increased discontentment among elders in the families and communities. The major adjustment to be made includes adjustment to physical changes, retirement, loss of spouse and post-child rearing period (empty nest syndrome)

Problems related to the elderly include financial instability, poverty, victimization, isolation, dependency, lack of access to appropriate health care and inadequate housing (Shenoy, 2014) are very common. Older adults are forced to shift to old age homes because they have experienced abuse, neglect and disrespect from their children and relatives which can result in emotional disturbance in elders characterized by symptoms of depression and anxiety. The need and problems of the elderly vary significantly according to their age, socio-economic status, health, living status and other such background characteristics (Mane, 2016). While majority of the elderly are still living with their children in India, about one fifth either live alone or only with the spouse and hence have to manage their material and physical needs on their own. Overall, it appears that elderly still depend greatly on their earnings to support themselves and their family. It is important to pay attention and find out solutions for the elderly problems.

It can be seen very clearly that despite the significant elderly population and their fast increasing clout at almost all levels- family, society, economy and polity, an older-friendly environment is hardly seen in the country as a result, majority of older people are confined to remain marginalized, isolated and neglected as well. Huge human resources in form of experienced, knowledgeable and wiser older

people remains unexplored, untapped and underestimated as well. Major problems of elderly are as follows:

Social Problems

Sociologically, aging marks a form of transition from one set of social roles to another and such roles are difficult (Prasad, 2017). As a social being old age people also want to lead a happy social life with their family, friends, relatives and community. But in the present fast-paced life, it is commonly seen that their near and dear ones don't spend much time with them. They don't share their lives with them. They feel neglected in their circle. Due to the changes in the family structure and the value system, respect, honour, status and authority, which the elderly used to enjoy in traditional society, has gradually started declining, and in the process the elderly are relegated to an insignificant place in our society (Niharika, 2001). They feel more sad as they lost their decision – making power in the family . When aged people are unaware of usages of technology, they may encounter problems in communicating with people at distant places by sending messages, pictures and videos. Rigidity for traditional perspectives towards attributes of social life also impose problems for them. Disappointment also occurs, when due to youngsters' migration, they left behind alone and sometimes adjustment issues also arises when they move to new places.

Economic Problems

It is generally believed that the elderly are a burden on the family and the nation as they do not contribute to the family and national income. For medical and health care, social or religious work pursuit, managing household work, money is required. Particularly in rural areas, families suffer from economic crises, as their occupations do not produce income throughout the year. Inadequate income is a major problem of the elderly in India. Vulnerable groups like the women, disabled, fragile older persons and those who work outside the organised sector like landless agricultural workers, small and marginal farmers, artisans in the informal sector, unskilled labourers on daily, casual or contract basis, migrant labourers, informal self-employed or wage workers in the urban sector and domestic workers deserve mention here. (Siva Raju, 2002).The economic problems among the aged people have taken place also due to fast hanging socio-economic conditions, ongoing open market policies and liberalization of economy (Financial Status of Older People in India, 2011). The financial status of the aged people is directly connected with their financial independence.

Psychological Problems

Those individuals who have been engaged in employment throughout their life, when reach retirement age and have to sit at home, they usually feel depressed. When old aged people are not able to make use of their skills, and abilities, then boredom is a major problem for them. The psychological problems among the aged people emerge from loneliness, isolation, powerlessness and meaninglessness. Anxiety and phobias also add to these problems among the aged people. Due to loss of job opportunities, absence of anyone to interact with them results in psychological as well as health problems.

Health Problems

The health of the aged people gets affected by the environmental conditions and biological conditions. Older individuals may live longer but they may get prone to illness and diseases. Inappropriate dietary intake is regarded as one of the apparent causes of health problems and illness among the aged. When aged people are not acknowledged but treated as burden, not communicated in an appropriate manner by other family members, they feel neglected which affect adversely their mental health. When individuals do not go for morning walks or get engaged in any kind of physical activities and stays at home, then they usually experience depression and it has a negative impact on their health conditions.

Elderly Abuse and Crimes Against The Aged People

Incidences of verbal and physical abuses and crime against the old aged are increasing day by day. Within the households, conflicting situations and violence can take place among family members or between helpers and employers. In the case of occurrence of domestic violence, individuals may experience various forms of abuse. The aged people are usually financially exploited by fraudulent acts, lying and cheating. The crimes that are most frequent committed against them are, theft, robbery, burglary, cheating, verbal and physical abuse, physical assault, rape and murder (Pali, 2001).

The doers of these crimes, usually have two aims. These are, either they aim to obtain money and wealth or they impose harm upon them with the feeling of hostility. There are family members and caregivers, who regard them as a burden and mistreat them. In 2013, the main causes that were analyzed for crime against the aged people are lack of adjustment, economic dependence of the abused and increased longevity. In 2015, the reasons that were found include financial matters and property disputes. Within the society, attitudinal and relationship issues are stated as aspects that also led to prevalence of crime against the aged people (Solanki, 2017). Data from various reports reveal that the large proportion of elderly population is facing one or the other above-mentioned problems. In absence of a proper and adequate social security system and effective implementation of policies, elderly population is facing a great challenge.

Recommendations

- Health is of utmost significance for the aged people. Proper care, facilities and awareness must be provided to them in the form of proper diet, regular check ups, clean environment even in rural areas. Effective implementation of national programme for the health care of elderly.
- The aged people feel insecure due to number of aspects like theft, robbery, physical and verbal abuse, financial exploitation. Measures to provide safety and security to them by family members, strangers must be in their approach.
- Elder people in the families must be encouraged to participate in various activities and functions which help them to alleviate their loneliness, isolation, depression. Extra-curricular activities help them to make use of their skills, make them feel contended and pleased.
- Financial security is important for them. If their health condition allows them, they should get engaged in part time jobs. The pension scheme is also beneficial to the individuals, who are particularly in a destitute condition.
- Problem of residence for elders must be addressed in a proper way.
- There should be establishment of day care centres by NGOs where the old age people can meet and mingle with their peers and spend their time in a socially meaningful manner.
- Elderly self-help groups must be promoted at all levels to empower older people.
- Government schemes for the welfare of aged people must be properly monitored and implemented.
- Role of family members and community cannot be ignored. Respect and concern must be given to them by the members of family and community.

Conclusion

Old age is a stage of life that every human being ultimately reaches and it is inevitable. Increased life expectancy, rapid urbanization and lifestyle changes have led to an emergence of varied problems for elderly in India. Along with family,

community, government and NGOs efforts, measures are drawn to solve their problems. Many laws and policies are working in this direction. But the real solutions are not with laws and provisions, the real solution lies with the people themselves. Integrative and responsive system along with the awareness of elders can ensure life with dignity for the elderly. There is an urgent need to devise elder friendly environment in the society, where people can lead a more active, healthier and empowered life in old age.

References

1. *Chauhan, A (2017), A Psychological Study of Adjustment among Institutionalized and Non Institutionalized Senior Citizens, International Journal of Indian Psychology, Vol. 4(3).*
2. *Elderly in India-Problems & Prospects (2018), Chennai, Today Publisher.*
3. *GoI. (2016), Elderly in India, Ministry of Statistics and Programme Implementation, Statistical Division, GoI*
4. *Heslop, A. a. (2002), Chronic Poverty and Older People in the Developing World (CPRC Working Paper No. 10. January), Help Age International, Chronic Poverty Research Centre.*
5. *Hiremath, SS (2012), "The Health Status of Rural Elderly Women in India: A Case Study", International Journal of Criminology and Sociological Theory, 5.*
6. *India Ageing Report (2017), New Delhi, United Nations Publication Fund.*
7. *Kapur, Radhika (2018), "Problems of the Aged People in India".*
8. *Mane, A.B. (2016), "Ageing in India: Some Social Challenges to Elderly Case", J. Gernotol Geriatr Res 5: e136. doi:10.4172/2167-7182.1000c136*
9. *Pali, P. Arun (2001), "Care of the Elderly in India: Changing Configurations", Shimla, Indian Institute of Advanced Studies.*
10. *Prasad, R. (2017), "Problems of Senior Citizen in India", International Journal of Humanities and Social Science Research, Vol.3 Issue 1.*
11. *Saikiran (2018), "Elderly in India: Problems & Prospects", Chennai, Today Publishers.*
12. *Shenoy, A.S. (2014), "Social Protection and Social Welfare of Elders", South Asia Regional Co-operation Newsletter.*
13. *Shiva, R. (2002), "Status of Urban Elderly: A Micro Socio Study", New Delhi, B.R. Publications.*
14. *Solanki, V.N. (2017), A Comparative Study of Mental Health among Old People, International Journal of Indian Psychology, Vol. 5, (1).*

Revenue System In The Ramayana

Dr. Tofique Hussain
Associate Professor, Govt. Girls (PG) College, Chomu

shodhshree@gmail.com

Abstract

According to Valmiki a King should give equal weightage to dharma arth & kaam. Amongst the seven elements of state, hanuman has imparted first place to treasory. The kings themselves were also specialists of justifiable means to raise finances for the state. The king was also guided not to supposes its people to collect finances, a king who collects taxes more then those justified by shastras earns adhrama.

Keywords *: Dharma , Arth, Kaam , Treasury, Bali.*

The prosperity and stability of a state depends on the strength of its economic status. This principle was very well known to the ancient Indian political thinkers. Therefore, they have considered treasury in the state's seven elements and state that the economic weakness of treasury is a great threat to the state.[1] According to Valmiki a king should give equal weightage to dharma, Arth and Kaam (trivarg)[2]. In the management of a state only arth dosen't matters, dharma and Kaam are equally important, That's why king Rama asks Bharat of he harms dharma from arth or arth from dharma or creates hindrance in execution of dharam and arth in passion and greed form of kaam[3]? And hey Bharat, "Do you appropriately distribute time according to the dharma, arth & Kamm[4]"? Here, an effort has been made to make clear that in trivarg it was essential for a king to consider arth as equal as dharma and kaam[5].

Amongst the seven elements (Swami, amatya, Janapada, durga, Kosa, danda and Mitra) of state, Hanuman has imparted first place to treasury and stated -- a king whose treasury (Kota), army (danda), friends (Mitra) and his own body - all these are equally under his control[6], he nourishes and enjoys a large state. King Rama has also suggested Nishadraj Guha to be alert towards his army, treasury, fort and state. Vishwamittra too enquired king Dashratha about his treasury and other oleparments[7].

All aforesaid evidences unequivocally state that treasury or finance collection was utmost necessary to keeps the interests of the state intact. The ministers of the state were also taught to collect finances for the state[8]. The kings themselves were also specialists of justifiable means to raise finances for the state[9]. It was expected from them to think deeply about the ways of acquiring money during the last quarter of the night[10]. This suggestion given to the king is of great importance that if he whishes to make his state and its people prosperous, then he should pay attention to the means of income of the state so as to maximize the earnings and minimize the expenses[11]. The king was also guided not to supposes its people to collect finances, A king who collects taxes more then those justified by shastras earns adharma[12].

Taxation

The Ramayana has termed tax as bali[13]. The tax collected by the king from its people was a type of protection tax charged for the security services provided by the king[14]. Since the king used to protect the

people of all the varnas of his state, it can be easily guessed that all the four varns would have been paying tax. Vaisyas Varne who used to earns its living by agriculture, cattle rearing and business, would have been vested with a greater responsibility for paying taxes. It is supposed that the Brahmans, rishis, muacis (Saints) and taposvis would not have been paying tax in the monetary terms. Rama had saved saints from the devils (rakshasas) so the saints must have positively paid tax inturn, but that tax would not have been in money from. A statement on AranyaKanda is worth mentioning that whatever the saints earned through religious ceremonies, one fourth of that worth to the king who guarded his subjects[15]. The shudra-varga would have paid tax in the form of labour[16]. The kashtriyas guarded the citizens and therefore they would have been exempted from paying tax[17]. Therefore it is clear that the major responsibility of paying tax bestowed on vaishya varga.

Ministers used to collect the taxes[18]. Besides this, Ashtadashtirtha also mentions about treasurer[19], who with the help of his aides gathered one sixth part of income of the subjects as tax[20]. Ramayana has also directed the king either to accumulate taxes forcefully nor more than 1/6 part of the total earning, otherwise he might be gathering disrespect for himself[21].

Taxation rules clearly stated that the subjects should not be levied with unbearably heavy taxes. An evidence given in AyodhyaKanda clearly stated about how much tax to be charged on the subjects for state's income[22]. At that time people used to earn money by moral means[23]. The UttraKandaa has related the situation of an unsuccessful king or its people with the taxes[24].

The king used to maintain a balance between the income and expenses[25]. The king received 1/6 part of the income in exchange of deference services provided to the subjects[26].

Sources of Income

The rule of 1/6 part of production going to the king is prevailing from the very beginning. Therefore, Ramayana has also followed this law. It has also been stated as the balisht part. But along with this the king was bestowed upon with the responsibility to defend its subjects failing which he was considered bad. Bharat vows before Kaushalya, the person with whose permission Lord Rama went to jungle would suffer from same curse as a king who fails to protect its subject even after receiving 1/6 part of their as tax[27].

Besides tax, the kings received many gifts which used to enrich their treasure. These included elephants, carpets, deer hides big dogs, gold coins, horses and large amounts of money[28]. In addition taxed from subordinate Feudal (Samants)[29], gifts from friend kings, money and precious stones[30], from sea traders and gifts from PaurJanpadas also added to the treasure[31]. Since the state had control over all the forests & mines within its territory, so they were also the sources of income[32]. 1/6 part of the income of citizens and monetary penalties were also source of income[33].

Heads of Expenditure

Ayodhyakanda elaborates that Rama was an authority on sources of income and its justified expenditure[34]. King was taught to increase his income and limit expenses and to be alert about his treasure going in wrong hends[35]. Ramayana states about the following heads of expenditure:-

1. To project the state from enemies, repair of forts, renovation, construction of new forts, prospering them with food & money, equipping them with weapons, establishing machineries for the protection of fort, paying to sculptors and archers[36].
2. Expenditure on God, hold ancestors, Brahmins, guests warriors & friends[37].
3. Salaries & allowances of others employees & soldiers[38].
4. Beautification of national highways, sprinkling water on them, construction of dams and rivers for irrigation[39].
5. Religious acts like Yajans[40].

Thus the money was used for certain specified and necessary works- The king was the sole authority to decide about

income and expenses. The fiscal policy of the State remained practically unchanged in the age of the Ramayana. The state derived revenue from different sources. Probably the normal rate of taxation was 1/6th of the gross produce. It was supplemented by the tribute from the feudatories and income from the mines, which yielded gems. The labouring class paid their Share in the from compulsory labour. Therefore if explicitly distinguishes in between compulsory labour and ordinary paid labour (Karmantika)41. Further the Merchants importing foreign goods of superior or inferior avability either by land route or by sea route paid king's share in the form of some portion of the merchandise[42]. Thus from the Ramayana, it does not appear that these was any substantial change in the financial precept and practice. However, at may be infreed here that is the Ramayana the power of king was established and the scope of revenue was raised. Consequently, the treasury would have become considerably rich this time. However, a well organized revenue system is not noticed.

References

1 *Ramayana I, Balkanda, 6/5 Ayodhya Kanda 1/27.*
2 *Ibid, I Ayodhya Kanda 100/62.*
3 *Ibid, I Ayodhya Kanda 100/63.*
4 *Kiskindha Kanda 29/11*
5 *Ayodhya Kanda 52/72.*
6 *BalKanda 18/45*
7 *BalKanda 7/11.*
8 *Ayodhya Kanda 1/26.*
9 *Ayodhya Kanda 100/7.*
10 *Ayodhya Kanda 100/54.*
11 *Aranaya Kanda 6/11., Ibid Ayodhya Kanda75/25.*
12 *Bal Kanda 5/14, Ibid, Ayodhya Kanda 75/25.*
13 *Aranya Kanda 6/14.*
14 *Aranya Kanda 6/14.*
15 *Aranya Kanda 82/20.*
16 *Aranya Kanda 10/03.*
17 *Bal Kanda 7/18.*
18 *Aranya Kanda 100/36 Foot Note.*
19 *11, UttaraKanda 74/32.*
20 *Aranya Kanda 100/28.*
21 *Aranya Kanda Serga 100, Verse 54.*
22 *Ibid 32 Verse 44.*
23 *Aranya Kandaa Sarga 6, verse 11, 14.*
24 *Uttar Kanda, Sarga 14, Vese 30.*
25 *Ibid, Sarga 74 Verse 31.*
26 *Aranya Kanda Sarga 75, Verse 25.*
27 *Aranya Kanda 70/19-21, 23 Ibid 11 Uttarakanda 39/8-10*
28 *Bal Kanda 5/14*
29 *Aranya Kanda 82/8*
30 *Aranya Kanda 15/45*
31 *Aranya Kanda 34/56, 10/45*
32 *Aranya Kanda 100/56*
33 *Aranya Kanda 1/26*
34 *Aranya Kanda 100/54.*
35 *Aranya Kanda 100/53*
36 *Aranya Kanda 100/55*
37 *Aranya Kanda 100/32-33.*
38 *Bal Kanda 5/7-8*
39 *Aranya Kanda 80/10-11.*
40 *Bal Kanda Sarga, 8.*
41 *Aranya Kanda, Sarga 82*
42 *Aranya Kanda, Sarga 72.*

Gleanings in Corporate Life of Ancient Haryana from Seals

Dr. Yasvir Singh
Principal, JVMGRR College, Ch. Dadri (Haryana)

shodhshree@gmail.com

Abstract

Seals and sealings are very important sources of history which helps us in reconstructing the past. These are important primary sources of history and Culture of a country or a region. Seals recovered from various parts of Haryana throw welcome light on the corporate life of ancient Haryana. Seals found from various parts of Haryana have legends like dasakumbhakarsya, mulavapanam, srimahijan, bhutinikaya, etc. throw light on various corporate organizations and helps us in understanding the present corporate organizations.

Keywords: *Seals, Sealings, Bhutinikaya, Mulavapanam, Srimahijan.*

Seals and sealings are very important source of history which helps us to reconstruct the history of past. A seal is an engraved stamp bearing, singly or collectively a device, or letters pertaining to the owner in negative and the sealing is an impression of seal on material such as paper, cloth, clay and wax.[1] Seals and sealings constitute an important primary source of history and culture of a country or region. Besides furnishing historical information's they throw welcome light on art, iconography and the religious beliefs of the past, trade and commerce, system of education and educational institutions and on the chronology of the kings and general administration.[2] For obvious reason seals are scare and sealings abundant. These are generally found at important centres of administration, religion, trade and Commerce. Generally seals would be found where the seal owner lived and the sealing where the seal owner lived and the sealing where the letter or parcel was dispatched, which may be within the locality or outside it.[3] A good collection of seals and sealings recovered from various parts of Haryana are preserved in Gurukul Museum Jhajjar which throw valuable light on the various aspects of people of ancient Haryana particulary before and after the beginning of Christian era. In the present paper an attempt has been made to throw light on corporate life of ancient Haryana from seals and sealings.

Guilds or *srenis* played an important role in the corporate economic life in India and these were the association of merchants, artisans etc.[4] They acted as bankers and trustees, accepting deposits and doing charitable works in accordance with the wishes of the donee depositer with the interest of the sum deposited with them and also performed charitable and pious works on their own behalf. While the sreni comp arised persons following different vocations[5] with a larger organization, its members following different vocations. Guilds have there own coins, seals and sealings to transect business. Guilds were found at Rajghara, Ujjain, Kaushambhi, Vassili, Bhita, Kumrhare and Ahichhatre etc.[6]

A terracotta seal from Naurangabad Bamla bearing *Brahmi* legend dasakumbhakrsya[7] refers to guild of potters. Swami Omanand Saraswati illustrated another seal from Ahichhatra.[8] Both of these seals indicate that potters had their guilds in order to safeguard their professional interests.

A seal yielded from the excavation of Khokharaket is of great importance. It bears the legend in *Brahmi*

character of 2nd-1st century B.C. reading mulavapanam.[9] The meaning of the legend is *mula* (root) and vapanan (growers) i.e. The seal of the guild of root growers. Kautilya refers to mulam along with *pushpamns, phalam* and *saka* (leafy vegetables) etc.[10] In the category of roots we may include potatos, sweet potatoes, radish, carrots. Sugar beats etc. Ginger and termeric may be included in this category. Man Mohan Kumar opnies that *mulavapanam* refers to the guild of gingers and turmeric.[11] Hence the above mensioned seal throw new light on the increasing number of guilds in ancient India in general and Haryana in particular. So, this seal is of great impotance for the economic history of ancient Haryana.

Another seal from Khokhrakot bearing the legeng in *Brahmi* script with inscription read as Srimahijana reflects that money lending was an important profession prevalent in ancient Haryana.

A seal from Naurangabad Bamla bearing inscription in *Brahmi* script read *Bhutinikaya* is also of great importance. As we know that *nikaya* (nigama) was a larger organization, hence the recovery of this seal shows that in ancient Haryana that occurs the organization of wealth like property, prosperity, horse, elephents, power, education, justice etc. or we may say that professional people had groups called *nikaya* in ancient Haryana.

Hence, it can be concluded that seals and sealings throw new light on the corporate economic life of ancient Haryana. Like today, there were organizations of traders and money lenders which plays vital role in the economic system of Haryana. So, by correlating the ancient system with present we can find solution of problems faced by common people in this economic system and today's economic system.

References

1. *Thaplyal, K.K., Studies in Ancient Indian Seals, Lucknow, 1971, p.1*
2. *Ibid ; pp 1-2*
3. *Thaplyal, K.K., Gleanings in History and Culture from Ancient Indian Seals, Presidential Adress, JNSI, Vol. LXX, Part I, II, Varansi, 2008. p-1*
4. *Arthashashtra, VII, 16/9/2*
5. *Thaplyal, K.K. op.cit; p-18*
6. *Ibid ;pp 16-18*
7. *Information from Shri Virjanand Devkarni, Director of the Gurukul Museum, Jhajjar*
8. *Swami Omanand Sarswati, Haryana Ke Prachin Mudrank, Jhajjar, V.S., 2031*
9. *Ibid*
10. *Arthshashtra, Ch. 22, Section 37, Verses, 3,38,2*
11. *Man Mohan Kumar, Oriental Numismatic Studies, Vol. I,p. 45*

Social Exclusion and Affirmative Action: The Binaries of Social World

Dr. Gunjeet Kaur
Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Complex human societies, whether in the developing world or the developed world, practice social exclusion, sometimes deliberately, at times subconsciously or maybe as a consequence of their political policies. Whatever be the propelling agent, the fact remains that societies practice the art of marginalisation of their own members. Except for the simple primitive societies, our march towards development and despite the tall claims of modernity claims of rational behaviour, the fact remains that a sizeable portion of population suffer unequal opportunities due to structural arrangement. Is social exclusion functional? It's worth contemplating the cause(s) that generate and sustains marginalization of groups within society. The dichotomies of the present world where certain populations are swimming in excess and disproportionately higher number of people are living a life of abject deprivations needs deeper introspection. Why is it that no society is free from its burden? How this process of marginalisation and subsequent social exclusion affects the lives of the people and how societies deal with them is the central query of the research paper. The paper attempts to understand the social process that leads to social exclusion and to examine the strategies defined by social systems to arrest such processes.

Keywords : *Marginalisation, Inequality, Social Exclusion, Reservation.*

Social world is a constantly changing—making, remaking, and unmaking itself, instant by instant. Social world is not an enduring object, fixed in time. At the same time certain characteristics of societies display resilience and become more pronounced with passage of time. Inequality and subsequent marginalisation of large number of populations is one such feature which most of the human societies of the present world exhibit.

It doesn't require a trained mind to observes that Urban spaces, all over the world are paradoxes of riches and deprivations, site of socially generated inequalities. City spaces are sites of inequalities, islands of opulence in the form of mansions, gated communities, shopping centres and existence of underprivileged housing, people living in sub-human conditions, deprived of basic amenities of life is a regular pattern of urban spaces of all human societies. Due to geographical and economic reasons the societies are divided into urban and rural spaces. The pattern of social exclusion in urban and rural spaces has different dynamics. The unique feature of urban spaces is that large populations of people live in a smaller area and attract huge populations from outside due to their celebrated quality of being the engine of economic growth. The existence of ghettos in the most developed nations, the basement housing for the underprivileged in highly industrialised countries, the slums in the urban centres is an accepted reality. Isn't it discomforting for the city spaces to allow such divisions, more so when urban spaces are celebrated as engines of growth. The option to stay in the most sub human conditions must not be a matter of choice.

This patterning of city spaces cannot be accidental. More so when Constitutions of modern societies ensure equality of citizens and strongly abhor any form of discriminatory behaviour of its members. It's important to understand this paradoxical yet a regular feature of the societies.

Conceptualizing Social Exclusion

Social exclusion is defined as a dynamic process, when the social bond gets ruptured at the individual and collective levels. The individual, social group, community etc are excluded from social relations, institutions, and imagined identities of belonging constituting social cohesion, integration, or solidarity. Social exclusion restricts full participation in the normatively prescribed activities of a given society and denies access to information, resources, sociability, recognition, and identity, eroding self-respect and reducing capabilities to achieve personal goals. The rupture of the social bond can take many forms: elimination, abandonment, segregation, assistance, marginalization, and discrimination (Ravaud and Stiker 2001).

Social exclusion refers to the inability of a society to keep all groups and individuals within the reach of what we expect as society to realize their full potential. Marginalization of certain groups or classes occurs in most societies including developed countries and perhaps it is more pronounced in underdeveloped countries. Poverty, occupation and caste are important determinants of social exclusion.

Social and cultural cleavages vary across countries. Not only do dominant cultures and institutions give rise to socially enforced boundaries that distinguish amongst insider and outsider groups and individuals, but also, they impart different meanings to isolation and belonging. Social exclusion is a structural process of social isolation, of stripping away multiple dimensions of social involvement. Excluders are agents who use specific mechanisms to push others out and deny access to resources and relations. Exclusion entails the loss of status, lack of recognition, and often, humiliation. The shame of the socially excluded is prominent in the accounts of the downwardly mobile. Social characteristics that reflect the distribution of honour, respect, and social distance, not just the distribution of material and non-material resources, are central to the social exclusion approach. It easily accommodates analyses of gender, race, ethnicity, caste, citizenship, disability, and other socially constructed cleavages.

To measure the extent of social exclusion is problematic. It is not that socially excluded or disengaged groups or individuals are lying outside of society. It is not always possible to draw a line which can be identified a formal 'exclusion thresholds', like the poverty line. People may encounter social exclusion of various degrees. Also it is to be remembered that social exclusion and inclusion is a dynamic and continuous process. As Durkheim points out, exclusion, ostracism, and punishment of deviant groups reinforces internal normative solidarity.

From the perspective of agency, the process of exclusion – in the sense of discrimination, rejection, eviction, expulsion, or ineligibility – is a deliberate act of social domination. Exclusion is multidimensional. However, which dimensions are relevant and how they are related vary across time and space. Most frequently, the dimensions include both economic and social aspects of disadvantage. But the economic dimensions need not refer only to monetary poverty or insufficient income; scholars have also considered exclusion from land, credit, and other assets, food and other consumption goods, and of course, the labour market. The perspective easily incorporates regional, gender, and ethnic/cultural variation, and usually takes notice of the spatial setting. Although exclusion is multidimensional, the causal relations among dimensions of disadvantage may run in many directions, reinforcing or cushioning the impact of one another. Excluded from welfare state protection and family support, enduring

unemployment can give rise to income poverty; in turn, income poverty can interrupt social relations. The concept of social exclusion focuses attention on central aspects of deprivation: deprivation is a multi-dimensional phenomenon, and deprivation is part and parcel of social relations.

The Indian Scenario

In the Indian context, caste may be considered broadly as a proxy for socio-economic status and poverty. In the identification of the poor, scheduled caste and scheduled tribes and in some cases the other backward castes are considered as socially disadvantaged groups and such groups have a higher probability of living under adverse conditions and poverty. Their access to basic services, the health status and utilization patterns of such groups give an indication of their social exclusion as well as an idea of the linkages between poverty and health.

Independent India has witnessed resurgence of caste and communal identity and these identities have been asserting themselves in increasingly violent forms, with more powerful groups attempting to brutally suppress others, and the latter striking back through mass movements for rights.

Analysis

It is also observed that patterns of social and economic inequality as practised within nations are usually not of recent origin. The current pattern of social exclusion is deeply rooted in much older systems of stratification. Slavery as a practice may have been disallowed by law but people of colour still face social and economic disadvantages, even in the most developed nations of the present times. Roma and other semi nomadic groups, who carry on with their cultural practices are still socially excluded in Europe. Caste hierarchies, based on irrational explanations, still determine the social and economic opportunities of Indians. Ancient systems of inequality based on caste, still, severely constrict the lives and opportunities of lower caste citizens.

Social Research has confirmed that structural forces constrain life chances and that early disadvantage will result in additional disadvantage. The maxim that *"disadvantage accumulates"* has guided most of the empirical research and theoretical statements about cumulative inequality. The line of action followed by Policy makers in introducing reservation policies based on caste rest on this premise.

Field studies have pointed to discrimination being a practice where legal safeguards do not extend protection to the socially excluded groups. Social exclusion is not just a residue of the past clinging to the margins of the Indian economy nor is it limited to people of limited education. On the contrary, it appears that caste favouritism and the social exclusion of Dalits and Muslims have influenced private enterprises even in the most dynamic modern sectors of the Indian economy.

Max Weber provided a perspective on social stratification that emphasized the enduring importance of status groups within the society's communities that enjoy different amounts of social status, may encompass racial ethnic or religious groups but can also involve social strata such as the educated classes. Communities that constitute status groups share a certain type of lifestyle and maintain their solidarity through shared taste and social activities on the one hand and through social on the other reducing their intercourse with perceived social inferiors. One important element in Weber's theory is that status groups apparently monopolise valued economic opportunities.

Collins has shown in detail how in the US, educational credentialism allows status groups to claim the lucrative occupations that require certain degrees and thus limiting competition for privileged positions. Certain jobs with high remuneration are completely monopolised by certain kinds of people, whose qualifications lie in the advantageous cultural capital of the family rather than any objective skills acquired by

education. Income of the family along with differences in child rearing practices produces differential access to super schooling opportunities and to elite University across the generations people who hold privilege positions within large organisations. They in turn develop a sense of entitlement and further perpetuate these biases to favour potential recruites who are socially similar to themselves. This process is termed as *homo-social reproduction*. Conversely employers hold stereotypes about certain outgroups as being unsuitable for employment. One corollary is that a person's social networks prove important for finding jobs in the US both at the professional and at the blue-collar end of the labour market because of social networks of status group.

Modern individualism – autonomy, liberty, and social separation – rose hand-in-hand with citizenship and integration in nation-states. In the process, group identities fell by the wayside, excluded from state recognition and function, only to reassert themselves now during globalisation.

Conclusion

Complex societies work as an organic entity. The process of marginalisation and subsequent social exclusion favours the social groups who are at an advantageous position. Maintaining and perpetuating the inequalities works to the advantage of the established classes and contributes in further consolidating the strengths. The recognition of inequalities by the policy makers leads to introduction of affirmative actions in the form of legal instruments and constitutional provisions to arrest the spread of ill-effects of marginalisation and social exclusion. Corrective inputs in the form of affirmative actions are introduced mostly as damage control, to offer a tepid solution to normalise a situation to an extent that the social situation should not boil down to a full-fledged revolt against the system. A society which treats all as equals seems a distance reality.

References

1. *Silver, Hilary, The Process of Social Exclusion: The Dynamics of an Evolving Concept (October 1, 2007). Chronic Poverty Research Centre Working Paper No. 95, Available at SSRN: https://ssrn.com/abstract=1629282 or http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.1629282*
2. *Thorat, Sukhadeo, and Paul Attewell. "The Legacy of Social Exclusion: A Correspondence Study of Job Discrimination in India." Economic and Political Weekly, vol. 42, no. 41, 2007, pp. 4141–45. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/40276548.*
3. *Haan, Arjan. (2000). Social Exclusion: Enriching the Understanding of Deprivation. Studies in Social and Political Thought.*
4. *Cheema, Iqtidar Karamat. "Sociocultural Stratification of India." Policy Perspectives, vol. 8, no. 1, 2011, pp. 49–63.*
5. *Nayar K.R., "Social exclusion, caste & health: A review based on the social determinants framework" Indian J Med Res 126, October 2007, pp 355-363*

Marxist Writing on Indian National Movement

Virender Singh
Research Scholar, Jai Narain Vyas University, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Indian National Movement has been written in different perceptions, the main objective of this study to focus on the Marxist approach, in which main concept will be on economic aspect in the Indian society regarding working class. A great change in the national situation has come about in the last two or three decades. Till the late 1980s those whom the people chose to rule over them had in theory shades of the same objectives that the Communists espoused: land reform, building a public sector, in industry, promotion of a scientific outlook and secularism, all of which went in semi-official usage by the name of socialism. Much was, indeed done, in respect of labour protection and food availability for the poor.

Keywords: *Communism, Workers, Imperialism, Secularism.*

The movement for independence of India is one of the biggest mass movements in the history of the world. It saw the participation of wide sections of people under the leadership of the Indian National Congress. While the beginning of the Indian national movement is variously traced, a major consensus being the consideration of the revolt of 1857 as the first collective moment, the movement was given its mass appeal and national character under the leadership of Mohandas Karamchand Gandhi. The Indian national movement has been studied widely from many different perspectives. As students of social science we are aware that what we read as history depends a lot on who writes it. Thus we have apologists of colonial rule in India who interpret the Indian freedom struggle as a product of the needs of various elite groups of India to stage a 'mock battle', when in reality there was no basic contradiction between interests of Indian people and colonial rulers. The nationalist writers see it as a movement of the Indian people which emerged and strengthened as a result of growing awareness among people about the essentially exploitative character of colonialism. Similarly, we have a Marxist interpretation of the Indian national movement too, coming from a particular world view of Marxist ideas about economic class contradictions and perceptions of history. The subject matter of this unit is how the Indian national movement is interpreted by Marxist historiographers of India. But before going to the specific understanding of Indian nationalism by Marxists, we shall briefly attempt to understand the relation of classical Marxist thought to the idea of nationalism. In the next section, we would discuss some major contributions to the Marxist historiography of Indian national movement.

M.N. Roy and R. Palm Dutt were the first Indian scholars who attempted a Marxist analysis of Indian politics. Both Roy and Dutt tried to relate the political structure and movements to the structures at the economic level. They considered political process as a part of dynamic totality. Politics was not considered by both Roy and Dutt a totally autonomous process involving merely political ideology and important political personalities. Sudipto Kaviraj, while commenting on a contribution of Roy and Dutt, writes: "There wa s richer sensitivity about the non-political layers of the milieu in which politics goes

on. Also there was a systemic understanding of history, looking at history not just as a random collection of unrelated and largely inexplicable events, but as a total sequence of socio-economic systems." Thus, both Dutt and Roy emphasize the intermingling of the economic and the political process.

Dutt observed that imperialism disturbed the normal process of transition from feudalism to capitalism in India. Imperialism retarded economic development and stalemated and complicated the process of transition. This process has also been referred to as de-industrialization by Daniel Thorner. Dutt was also alive to the contradictory character of the process of transition. In Kaviraj's opinion Dutt was a Marxist thinker of higher order than M.N. Roy. Roy was against analysis extremist whom he called reactionary and he labelled the moderates a progressive. However, the application of the Marxist method by both Dutt and Roy was not free of a political mindset. Both, however, prefaced the application of the Marxist method to Indian politics. Later on Nehru, J. Prakash Narayan and NarendraDev adopted a modified Marxist analysis to understand the course of Indian history and politics.

The academic Marxist framework came much later. Kaviraj observes that political analysis from the Marxist point of view is clustered around three different paradigms. These paradigms provide a radically different understanding of the class character of the Indian state, of the bourgeoisie and of the possibilities of politics. Also Marxist theory of highly differentiated both at the political and the academic levels as reflected in the various Marxist parties and groups on the one hand, and n the writings of the orthodox and the neo-Marxists in academics, on the other. Marxism in social science studies has been used both in terms of the Marxist frame into, and in parts. The word 'Marxist' was unknown in Marx's own time. Once Marx said "All I know is that I am not a Marxist." Marxism is a whole worldwide, a comprehensive theory of evolution embracing both nature and human society. Marx himself conceived his theoretical work primarily as a critique of political economy from the standpoint of the revolutionary proletariat, and as a materialist conception of history. This conception was developed in conscious opposition to the subjective-idealist standpoint. As such Marx shows that the state and property are a reflection of real conditions. Some of these Marxist conceptions are being challenged and revised by non-dogmatic Marxists such as a P. Sraffa, J. Robinson, Maurice Dobb and Paul Baran, who have provided a Marxist critique of political economy.

Marx Philosophy of History

The Marxist theory of history claims in the first place to be scientific i.e. to be a generalization susceptible to validation or challenge at the level was of empirical research. As a scientific theory, which it undoubtedly is it inevitable that it should share the fate of every important such theory having produced an enormous and irreversible upheaval in our way of looking at the historical world, it is itself overtaken by the research it has unleashed and must find its place in the history of theories. This does not minimize what it bequeaths. One can say then, like Che Guevara, that it no more necessary today to proclaim that one is a Marxist than it is necessary to assert that one is a Pasteurian or a Newtonian – provided we know exactly what we mean thereby. Everyone is a Newtonian, in the sense that nobody would return to the way of posing problems, or to the categories people used before Newton. But at the same time, no one is really a Newtonian, for no one can just go on defending a theory that is purely and simply false.

But at the roots of the Marxist theory of history there is a philosophy of history profoundly and contradictorily woven into it, and itself full of contradictions as we shall see.

This philosophy is neither ornament nor complement: it is the very foundation of the

theory. It is just as much the basis of how Marxism looks at past history as of its current political conceptions and of its perspectives and programme for revolution. The essential thing is that it is a rationalist philosophy. And, like all rationalist philosophies, the Marxist philosophy of history provides itself, in advance, with the answers to all the problems it raises.

Marxism and Nationalism

Marxism as a theoretical framework of studying societies emphasis on the material relations of production and describes various historical epochs in terms of its major contradictions based on the relations of production, called the class contradictions. Thus, within Marxist thought, the prime identity of a person is his or her class identity. As the hopes of Marx and Engels were fixed on class struggle, they did not put much emphasis on the issue of nationalism which proposes to unite people across class divisions, and blunts class consciousness. But they could not totally ignore the historical events of the time, and interpreted various nationalist movements within Europe. While recognizing the fact that nationalist movements are mostly organized by bourgeois classes, they argued that it is a necessary step in the path towards communism, as bourgeois nationalism is the harbinger of capitalism in feudal societies. Marx and Engels, however, did not presume that the historically progressive nature of capitalism in relation to feudalism would automatically justify support for every national movement. Rather, they emphasised the need to politically assess the national movements in each context, to decide whether they are worthy of support or not. Thus, Marx and Engels opposed the national movement of the Slavic people, of the Serbs, Croats and Czechs, during the 1848 revolutions of Europe, arguing that these forces were counter-revolutionary for a communistic social change.

Further, their support to the nationalist movements, wherever existed, was on a strategic ground rather than on any intrinsic value that they thought to be existing in national mobilizations. Rather they believed that with the expansion of capitalism, both in Europe and around the world, the significance of nation-states and movements for national independence would be lessened. The real eradication of national oppression, according to Marx and Engels, is possible not through nationalism, but only through socialism.

In this context, the writings of Karl Marx on the 'Asiatic mode of production', and his view that despite its coercive nature, a progressive role was played by colonial rule to help India break out of its age-old stagnant village societies is crucial (Thorner 1966). Both Marx and Engels, however, at a later stage talk about the important role played by bourgeois nationalist revolutions to bring in democratic freedoms, where a socialist revolution was not yet possible. To deal with the national question, Soviet communist Vladimir Lenin said that we need to make a clear distinction between two periods of capitalism. The first period is a period of waning feudalism and absolutism when bourgeois democratic society and state institutions are formed. According to Lenin, during this period, the national movements are mass movements that draw all classes of the population into politics. The second period is more complex. In the second period, the capitalist state is fully formed, and is characterized by long-established constitutional regimes. This phase is also characterized by a high level of antagonism between the proletariat and the bourgeois classes.

According to Lenin, to take a decision on whether to lend support to a nationalist movement or not, the second period poses more difficult challenges for a Marxist. He points out certain important questions that one must try to seek answers to, before taking any course of action. Firstly, there is a need to see whether the people asking for nationality rights are really oppressed. Secondly, we need to ask whether a consciousness of being a nation has been formed

among those who are oppressed. The existence of such a consciousness shows the actual existence of a nation. Thirdly, and most importantly, socialists must ask whether the support to such a nationalist movement would advance the interests of the working class. While asking this question, Lenin pointed out, that the leadership of a nationalist movement is invariably bourgeois at the beginning; but such oppressed bourgeois leadership, working for their own minority interest, also do have a general democratic content directed against oppression. He suggested that the unconditional support of the Marxists towards nationalist movements is only for this specific democratic content.

Indian Historiography: Modern Period

Objectives

The modern historiography of India was enunciated by the British the late 18th and 19th centuries. The historiography was done with the presupposition that the Indian culture was a-historical and hence unique. This resulted in the process 'discovering of the Indian past' by the colonial historians.

Bipan Chandra

Bipan Chandra is prominent member of the Marxist scholar of Indian historians.

The Rise and Growth of Economic Nationalism

Chandra's The Rise and Growth of Econ0mic Nationalism examine the economic policies of the Indian National Movement before the swadeshi agitation carried it to a higher and different plane. Perhaps slightly deviating from the Marxist line of approach and subscribing to what may be called a realist conception of history, Bipan Chandra treats ideas, though secondary to economic forces, as the direct agents of historical evolution. Subscribing to the Marxist position that social relations exist independently of the ideas men form of them, Chandra however holds that men's understanding of these relations is crucial to their social and political action." This emphasis on ideas leads him to include a wide range of fora - the National Congress, the legislative bodies, the speeches and writings of nationalist leaders, newspapers and journals - as voicing nationalist opposition to British economic imperialism. But he is, however, clear as to the basic capitalist outlook of the Indian national leaders. He writes that "In nearly every aspect of economic life they championed capitalist growth in general and the interests of the industrial capitalists in particular."

Nationalism and Colonialism in India

In his later work, Nationalism and Colonialism in India, Bipan says that the independent capitalist class that developed in India after 1857, particularly after 1914, did not develop an organic link with British or other foreign capitalism and it did not become an ally of British rule in India. Indian capitalism was that of a colony with a colonially subordinated and structured economy.

India's Struggle for Independence 1857-1947

In India's Struggle for Independence 1857-1947 which Bipan Chandra edited and to which he contributed, the authors differed widely from both the imperialist approach of the Cambridge school and that of the Indian nationalist school to the nature of the Indian national struggle. Bipan Chandra assails the Cambridge school's argument that the Indian national movement was not a people s movement but a product of the needs and interests of the elite groups. The nationalist school of historians, though showing awareness of the exploitative nature of colonialism, however ascribe the nationalist movement itself to the spread of the ideas of nationalism and liberty. Bipan Chandra writes that unlike the Imperialist School, the Marxist historians clearly see the primary contradictions, as well as the process of the nation-in-the making, and unlike the nationalists, they also take a full note of the inner contradictions of Indian society.

Yet, he adds that the Marxist writers and Palme Dutt in particular, tend to see the (national) movement as a structured bourgeois movement...and miss its open-ended and all class character,"

Internal Criticism and Later Marxist Developments

The conventional Marxist historiography of the national movement of India, which followed a narrow class approach and economic determinism, was criticised by some later set of historians like SN Mukherjee, Sumit Sarkar and Bipan Chandra. SN Mukherjee argued that Indian nationalism was a complex process with multiple layers and meanings, and cannot be understood by a reductionist class analysis. He pointed out the importance of caste as a crucial factor along with that of class, and showed that traditional languages of politics were simultaneously used with the modern ones, in organizing the national movement of India. (Bandyopadhyay 2004) Sumit Sarkar, another Marxist who is critical of Dutt " s paradigm discussed above, termed it as a simplistic version of Marxian class-approach, in his book *The Swadeshi Movement in Bengal 1903-1908* (1973). While Dutt talked about the dominance of „big bourgeoisie " in the moderate phase and the dominance of „urban petty bourgeoisie " in the extremist phase of the national movement, Sarkar showed that a clear class distinction between the two phases is difficult to establish, and was clearly non-existent at the leadership level. He further suggests that Dutt "s form of Marxist interpretation has the defect of " assuming too direct or crude an economic motivation for political action and ideals " (Sarkar 1973, 1978). In contrast Sarkar brings into fore the Gramscian categories of 'traditional' and„ organic intellectuals to explain the leadership of the national movement in India. According to Gramsci, the famous Italian Marxist activist and thinker, the 'organic intellectuals' are those who are in direct link with the people who they lead, as they themselves directly participate in the production process. A 'traditional intellectual' is, on the other hand, not directly connected either to the production process or the people who they lead, but become leaders of certain classes by ideologically taking up the responsibility of those classes. Sarkar showed that the Indian nationalist leaders were traditional " intellectuals rather than 'organic intellectuals' and despite coming mostly from the traditional learned classes, totally unconnected from the post 1850s commercial or industrial bourgeoisie in the country, were able to lead the bourgeoisie ideologically. These 'traditional intellectuals;, despite not having the bourgeois social background personally, helped push the capitalist development of the country.

Marxism and The Study of Indian Polity

A macro-structural analysis of Indian society in general and of Indian politics in particular in the early years of post-independence period was taken up by Charles Bettelheim using the orthodox Marxist framework with the help of concepts such as bourgeoisie, petty bourgeoisie, proletariat, economic base and superstructure, public and private sector, surplus value etc. With regard to relation between state power and people two main points are highlighted by Bettelheim. Firstly the state is an instrument of repression and bureaucratic control, the form which the repression and control takes depends on class tensions, the level of development of productive forces, the standard of education, and the social conscience of different classes. The state bureaucracy and its employees also affect the functioning of the state. Since the Indian state inherited a colonial legacy, it essentially remained repressive, bureaucratic and democratic. Secondly, after independence of the state organizations were not remodeled by the new government. Minor reforms could not negate the colonial legacy. Hence, a tendency to imitate traditional forms of self-government. Bettelheim is also critical of the functioning of India's political parties as they adopted a more Or less European system of party model. He

considers the Congress party as 'centre-left-wing-party', and further left are the socialist and communist parties, and further there are various conservative parties and personalities. However, such ideological cleavages and divides in relation to India's political Parties are not clearly discernible. Such a political divide hides the Peculiar Character of Indian political life. It conceals many feudal and semi-feudal economic and social relationships. The political parties in India must tackle the problems of state, economic control, and the agrarian problems. Again it may be added that the political scene in India has changed a lot since the late l960's. Many of the premises and conclusions given in Bettelheim's analysis need to be reformulated in the light of vastly varying regional politics and political permutations and combinations at the centre.

Recent changes in India's political economy negate Bettelheim's hypothesis about the state capitalism and centralization of economic power in the Indian state. Liberalization of the economy during the last five years in particular not only has changed the nature and meaning Of India's five year plans; it has also changed considerably the character of Indian state and ideological basis of Indian politics. Public sector has become extremely weak and multinationals are substituting them. Trade unionism has become somewhat weak. Private sector is no more a polluting arena of employment. A revivalist politics has also prospered along with liberalization of economy and weakening of the state.

In a significant essay on politics *The Dialectic: of Science and Revolution in Karl Marx,* Randhir Singh observes that the Marxian explanation of politics requires to illuminate the character of the capitalist system as a whole in all its structured interconnections and movements-the whole through the parts, and the parts having the Stamp of the whole. This is true about the study of any social formation, Thus, Marxian 'explanation seeks a search for dialectical knowledge about politics. Marx looks at politics or the realm of the Political, within the Objective conditions structurally constituted by the prevalent mode of production at particular junction in the history of a society. However, Marx's treatment of politics remained largely unauthorized by him.

Thus according to Marxian perspective, there is no autonomy of politics. However, there is a relative autonomy of the state in a particular historical situation. But the state is not autonomous from the socio-economic structure of a class-divide society which it essentially serves. Randhir Singh refers to Hall and Draper appreciatively, and mentions that state always remains the organizer of society in the interest of the class structure as a whole. Randhir Singh out rightly rejects the non-economic or non-material or the liberal perspective about politics, because he considers politics as a phenomenon emanating from class structure and class struggle. But for Marx, politics has primacy' as was a revolutionary. 'Marx knew very well that in the absence of revolutionary politics' the structural base of society could not be changed, and he also professed that all politics will remain super structural in its essential character and outcome. Randhir Singh 'writes: “This is the base area, determined and determining choice in politics within which other more or less choices occur.” Such is the dialectics of the economy politics in the social science of Karl Marx. Thus, ' the centrality of politics is seen as revolution. The political as a" whole is in the realm of the contingent, or historical balance, of social forces. The 'political' is a realm of real choices and possibilities, and hence it is devoid of certainties and predictabilities.

Marxism and The Indian State

For an exposition of the Marxian perspective on the understanding of politics in India a number of studies of power politics and political parties vis-a-vis the Indian state and class structure have surfaced in the post-independence period. The nature of the Indian state is double-edged

because on the one hand its democratic institutions motivate the downtrodden to participate in the electoral process, but on the hand, the elected government cannot bring about their emancipation from poverty and de-humanization. The fact is that bourgeoisie political parties and supported by the lowest sections of Indian society, and this is an irony and contradiction of the Indian political System. Contradictory coexistence of democracy and capitalism clearly comes out when one looks at the Indian political situation today. In recently edited four volumes T.V. Satyamurthy analyses the political dynamics of contemporary Indian State, the Indian state's economic policies, India as a civil society with special reference to political and economic demands of the mass of the Indian people, and class formation and political transformation in India. The phenomenon of political transformation is analysed in the various essays included in these volumes in terms of the social and cultural divisions that have surfaced and the resilience of the Indian political system to overcome fragmentation and to achieve common political and economic goals. The main thrust of these volumes is to highlight the divergence between the political discourse of the ruling power elite and that of the mass of the population opposed to them.Several political movements have been discussed which are against the increasing hegemony of the Indian state and the Congress party. The coercive character of state in particular is the focal theme of the four volumes. Having implications for greater participation of the people is power politics in lndia. Most of the studies highlight on the intensification of political contradictions and conflicts particularly in the post-emergency period. It is argued that the so-called mainstream political science was concerned with the formal structures and the prescribed ways and traditional social categories. Satyamurthy observes that it ignored the dynamic ways in which castes were becoming transformed and the crucial role played by existing and rapidly emerging new classes. Kothari the mainstream Indian political scientist practiced the conceptual and methodological straitjacket using western political science and comparative politics and development studies. By responding to the 1975-77 emergencies, by radically altering his essentially structural-functional perspective, and recasting his approach to Indian politics, Rajni Kothari highlighted the relationship between the state and democratic civil society."

In support of the Marxian perspective, Satyamurthy argues that in contrast to bourgeoisie, mainstream political theory Marxism Offers analytical tools appropriate for an understanding of rates and degrees of change under the impact of dynamic forces. However, Satyamurthy criticizes the Indian academic Marxist political scientists for suffering from vulgar reductionism and formalistic jargons and for failure to generate new insights. Thus, according to Satyamurthy, the mainstream political science has failed to recognize the ongoing dialectics between contradictory social and economic forces underlying political phenomenon, and the academic Marxist political science suffers from its general unwillingness to disentangle the dialectical method form the rigid orthodoxies of the fractured Indian communist movement.

Conclusion

Like most other events of the social and political world, the interpretations of the Indian national movement are also not without contestations. In this unit, we studied just one way of looking at the freedom struggle of India. India being a plural society, and people " s participation in the national movement influenced by their social-cultural and economic contexts, no matter which strand of the movement they were active in, no historiographical attempt to paint a complete and general picture of the national movement is ever completely successful. For a nuanced understanding of an event like the Indian national movement, we have to keep our minds open to acknowledge the interplay of various

forms of struggle and resistance, with varied social backgrounds and differences in paths and particular goals, working at the same time, which come to be known as the Indian national movement.

References

1. *Bettelheim, Charles, 1968, India Independent, London :MacGibbon and Kee, P. 114*
2. *Draper, Hal, 1977, Karl Marx's Theory of Revolution, 2 Vols, London : Monthly Review Press.*
3. *Dutt, R. Palme, 1940, India Today, London :Gollancz.*
4. *Dutt, R. Palme, Op. Cit.*
5. *Dutt, R. Palme, Op. Cit.*
6. *Hall, Stuart, 1977, "The Political and Economic in Marx's Theory," in Alan, Hund, Class and Class Structure, London: Lawrence and Wishart*
7. *Kaviraj, Sudipto, Op. Cit.*
8. *Kothari, Rajni 1989, Politics and the people : In Search of a Humane India, 2 Vol., Delhi : Ajanta.*
9. *Nehru Jawaharlal, 1948, The Unity of India, London : Lindsay Drummond.*
10. *On Neo-Marxism, see M.H. Dob, 1925, Capitalist Enterprise and Social Progress, London :Routledge and Kegan Paul: Joan Robinson, 1942, An Essay on Marxian Economics, London: Mcmillan.*
11. *Roy, M.N., Op. Cit.,*
12. *Satyamurthy, T.V. (ed.), 1994, State and Nation in the Context of Social Change, Vol 2.Delhi : Oxford University Press.*
13. *See, C.P. Bhambhri, 1988, Politics in India, New Delhi :Vikas; and AtulKohli 1991, Democracy and Discontent, Cambridge : Cambridge University Press, and Frankel and Rao, op. cit.*
14. *See, Marxism, in Bottomore, Tom, 1983, A Dictionary of MarxisiThrought, Oxford : Basil Blackwell, pp. 301-316*
15. *Singh Randhir, op. cit.*
16. *Singh, Randhir, 1990, Of Marxism and Indian Politics, New Delhi : Ajanta, pp. 27-35*
17. *Thorner, Alice and Thorner, Daniesl, 1974, Land and Labour in India, Bombay: Asia Publishing House.*
18. *Views on M.N. Roy have been quoted from Kaviraj, Sudipto, 1986, "Marxian Theory and Analysis of Indian politics", In a Survey of Research in Political Science. Vol. IV; Political Thought, New Delhi: Allied Publishers, P. 157*

Trajectory of The Roma & The Road Ahead Amidst Anti-gypsism

Barkha Kirtida Singh
Research Scholar, MLSU, Udaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Romanies are the truly dispersed and homeless people as has been attempted to show in this paper; their political powerlessness has subjected them to persecution and genocide under Nazi rule rendering them voiceless. Their homelessness is a characteristic of their self-imposed nomadism and self-exclusion and the result of their refusal to be sedentarized. The Roma initially arrived with a rich culture of music and craftsmanship, soon became the most despised and most segregated group of the world.Consequently, such shield does not earn any friends and so are the Roma a peripheral and vulnerable community and continue to remain at the margins. This article charts the phenomenon of anti-Gypsism which stems from the historical context.

Keywords : *Diaspora, Dispersion, Center, Periphery, Collective memory, Genocide, Nomadism, Gypsy, Shiviranuchara, Identity, Slavery, Anti-Gypsism, Porrajmos.*

A cartoon appeared in Le Monde several years ago showing an old man who says: "I have never lost hope of returning to my homeland someday. However, I no longer remember where I came from" (Safran 11). The word 'diaspora' comes from the ancient Greek die speiro meaning to "sow over". Through the ages, diaspora had a very specific meaning- the exile of Jews from their homeland and their dispersion throughout many lands, signifying as well the oppression and moral degradation implied by that dispersion. Safran extends the working definition of diaspora, "that segment of people living outside the homeland", to the expatriate minority communities that share the following characteristics:

- They or their ancestors have dispersed from "center" to two or more "peripheral" regions of foreign nations;
- They retain a collective memory, vision, or myth of a homeland;
- They are not fully accepted by the host society and feel alienated from it;
- They are collectively committed to the maintenance of their original culture.

Robin Cohen opines that the analysis of various diaspora was based on the Jewish experience. However, it was also

Perceived that many other ethnic groups were experiencing analogous circumstances due perhaps to the difficult circumstances surrounding their departure from their places of origin and/or as a result of their limited acceptance in their places of settlement (4).

Romanies are the truly dispersed and homeless people as has been attempted to show in this paper; their political powerlessness has subjected them to persecution and genocide under Nazi rule rendering them voiceless. Their homelessness is a characteristic of their self-imposed nomadism and self-

exclusion and the result of their refusal to be sedentarized. From Brothers Grimm to Charles Dickens, from Victor Hugo to Stephen King literature abounds with descriptions of dark-skinned exotics with the power of evil-eye. Traipsing from town to town in ragged clothes and horse drawn wagons, telling fortunes, pulling con games and playing hypnotic tunes on their melancholy violins, these fictional characters known as gypsies never fail to cast apall over the landscapes. The Roma have an exotic image- musicians, artists, actors and sometimes beggars. Romanies first arrived in Europe at the end of thirteenth century. Their origins are traced to the Indian sub-continent. The Roma are popularly known with an exonym 'gypsy'. Between 1000 and 1027 India suffered a series of invasions led by Mahmud of Ghazni. These people accompanied the Kshatriya Rajputs in the battlefields performing the duties of shiviranuchara- clearing the battlefields, erecting tents, cooking for the soldiers, mending broken weapons, attending to the wounded and providing them entertainment. The word 'gypsy' derives from the word Egyptian written in various ways- Egipcian, Egypcian, 'gipcian, 'gypcian. But the term is largely disliked by the Roma. First of all, it is a designation created by the outsiders (gadže), the non-Romani people which provide a false basis to their identity. And secondly, the negative portrayal in the works of literature also contributed to the mistaken identity. The mass exodus, either being held as captives or travelling quickly to avoid the spread of Islam seems to have taken place rapidly in fifty years or less. Going back home now occupied by Mahmud's armies would have been a difficult terrain to undertake. Ironically, similar conditions awaited them for another five hundred years. Some Diasporas persist- never regain their 'home' and original identity- because either there is no homeland or it is no longer a welcoming place which could provide them political, ideological, social identification.

Their technological skills served the Balkan society which was mainly agricultural and by the 1500s the word ţigan had come specifically to mean 'Romani' slave. According to the Islamic view of the Ottomans, it was acceptable to treat any conquered non-Muslim as property. But with the advent of Industrial Revolution in nineteenth century, ownership of slaves became a liability and due to social changes slavery was seen as inhumane, old-fashioned and primitive. J.A.Vaillant writes in his dedicatory book on abolishing slavery:

Those who shed tears of compassion for the Negroes of Africa, of whom the American Republic makes its slaves, should give a kind thought to this short history of Gypsies of India, of whom European monarchies make their 'Negroes'. These men, wanderers from Asia will never again be itinerant; these slaves shall be free" (Hancock 25).

The Roma initially arrived with a rich culture of music and craftsmanship, soon became the most despised and most segregated group of the world. Called by various names 'vermin', 'disease', 'plague', 'lives undeserving of life'- all aimed at dehumanizing them and benumbing the general public, became a common identification in Hitler's Germany. Due to growing unrest, the Roma lived with a self-imposed nomadism, the reluctance of the officials in assimilating them acting as the catalyst. Consequently, such shield does not earn any friends and so are the Roma a peripheral and vulnerable community and continue to remain at the margins.

This article charts the phenomenon of anti-Gypsism which stems from the historical context. What series of events since their first arrival in Europe led them directly to a miserable living? Is it a matter of choice? The hysteria created during Porrajmos- slaughters, punished for not having permanent jobs or home, for not paying taxes, tracked down in 'gypsy hunt', driven out of forests by fire- culminated in systematic pogroms targeted at total annihilation. The infamous Nuremberg Law legitimized the protection of German blood and honour by a well-laid and carefully formulated anti-Gypsism initially based on biological inferiority and later would be supplanted with cultural basis as well:

In general, anybody with one Jewish grandparent was not affected in the anti- Jewish legislation whereas one-eighth gypsy blood was considered strong enough to outweigh seven-eighths of German blood- so dangerous were the gypsies considered (Hancock 110).

Gas chambers in extermination camps designed for Roma annihilation.

Recent surges of anti-Gypsism in Europe are explained through cultural clashes rather than biological heredity. As the times have adapted, anti-Gypsism has also adapted from racial categorization to straight forward dehumanization of the Roma. Being dehumanized means being less than human and stripped off all human rights entitlements. Today in the First World countries they live in Third World conditions. 2005 marks the start of the decade of Roma inclusion; April 8, 1971 when their mother country India officially recognized the Roma people, their language and their flag.

Speaking of facts, a 2011 report issued by Amnesty International says "systematic discrimination of up to ten million Roma is taking place across Europe." The Council of Europe Commissioner for Human Rights, Thomas Hammerberg has been an active critic of anti-Gypsism. In his report he noted that:

Today's rhetoric against the Roma is very similar to the one used by Nazi Germany before World War II. Once more it is argued that the Roma are a threat to safety and public health. No distinction is made between a few criminals and the over-whelming majority of the Roma population. This is shameful and dangerous."

With a nexus of ill-formed public opinion and institutionalized discrimination it is assured that the Roma never come out of statelessness. The European Roma Rights Centre published a report on the "The Impact of Legislation and Policies on School Segregation of Romani Children" in 2007 which stated that segregated education of Roma remains a prevalent feature of educational system in Bulgaria, Czech Republic, Hungary, Romania and Slovakia. Such a process is focussed at internalizing the ever-denigrated status of Romanies in their psyche. Enrolment in all-Romani schools with inferior education, pathetic physical conditions or worst still, initiating all- Romani classes within mixed schools would ensure that the future generations

of the Romanies would not forget the hysteria against them.

On the social front, Romanies have always been viewed as thieves and this has been highlighted in the media albeit to carry forward this stereotype. In 2009, a BBC documentary "Gypsy Child Thieves" was highly condemned for promoting "popular stereotypes against the Roma which contribute to their marginalization and provide legitimacy to racist attacks against them." Though the incidents mentioned actually took place but crime is never a wilful choice for a minority which has already been stigmatized for generations if given a choice of a better life. A United Nations study "Avoiding the Dependence Trap: A Regional Human Development Report" by Audrey Ivanov found that Romanies are arrested more often than other people in Europe- reason is institutionalized racism, missed economic opportunity. The hatred among the general public worldwide is not hidden from any government. In Austria in 1995, a few Romanies were killed in a bomb blast with a signpost attached to the device that read "ROMA ZURÜCK NACH INDIEN" ("Romani back to India"). In 2011 in Bulgaria anti-Roma protests initiated due to the murder of a Bulgarian citizen on the orders of a Roma leader of a village, KirilRashkov. VolenSiderov, presidential candidate in Sofia called for death penalty and dismantling of Romani ghettos. In 2010, French authorities demolished at least fifty one illegal Roma camps for its political agenda. The latest European Value Survey results (2017) show that 62% of the population (survey in Slovakia) over eighteen years of age opposes having Roma as their neighbours- an increase since 2008. Similar survey in Czech Republic shows that 76% of the population "strongly dislikes" Roma. Harassments- offensive or threatening comments in person, threats of violence in person, offensive gestures or inappropriate staring, offensive or threatening e-mails or text messages and offensive comments made online- are another recurring experience for every third Roma. 94% in Portugal, 93%in Greece, 90% in Croatia top the charts. A joint project by UNICEF and National Network for Children in Bulgaria called "Searchers of (non) equalities" is based on the premise that expressions of hate speech can be curbed in schools itself involving Roma and non-Roma youth.

The European Commission against Racism and Intolerance (ECRI) of the Council of Europe defines anti-Gypsism as a

Specific form of racism, an ideology founded on racial superiority, a form of dehumanization and institutional racism nurtured by historical discrimination, which is expressed, among others, by violence, hate speech, exploitation, stigmatisation and the most blatant kind of discrimination(EU publication 8).

Understanding anti-Roma prejudice is easy but does not operate in a linear fashion, on the contrary, it is quite deceptive. DimitrinaPetrova tries to identify the root causes of anti-Gypsism as she questions "what is it that makes Roma such an eternal target for the racists? Why are Roma so universally despised? Why is the negative sentiment so entrenched? Why do the Roma remain Europe's most persecuted minority, even after so much energy has been poured into eradicating anti-Gypsism? Will the Roma ever become equal members of society?"(114) all the answers come down to one concept- powerlessness. In the Romani language, the word Rom means "people" in the plural masculine gender, that is, "us" as opposed to "them". This also reflects the centuries old internalized oppression and isolation. The very reasons that have created such a status have also served to preserve the unifying force that has brought this minority to this far in time. It cannot be seen in any other minority that over centuries of exclusion, marginalization and in some regions slavery and forced assimilation has helped to nurture a common ethno cultural self-consciousness, which has also led to various Roma movements of the day. The stark difference from the European culture and society and the

structural, social and political powerlessness created a synergy to preserve the sense of belonging together. These same factors can be seen as the root causes of anti-Gypsism and the survival of the Roma as single but not internally homogenous entity. Because of their late arrival in already settled and civilized Europe and strong cultural difference, the Roma have failed to use the basic empowerment strategy: building up their statelessness. It seems as if coming out of the tiring journey and being welcomed as slaves for the sheer reason of being an outsider the Roma wished to live a peaceful life be it as the inhabitants of margins and aloof from the political plays. The "otherness" was physical as well as cultural: very dark-skin, distinct non-European features, "odd" clothes and language, unintelligible customs, alleged involvement with magic made their religious practices a cover up of their nomadic life. Moreover, the reliable, if not authentic, demographic and social statistics are non-existent. The reason for this abracadabra is that both the Roma and government authorities have found it undesirable. Given the treatment meted out to them, Roma have little reason to trust gadže and if at all the hope allows them the statistics get trapped in legal and policy problems such as data protections laws, constitutional rights to choose freely one's ethnic identity and the need for separate and compartmentalized ethnic data for anti-discrimination agendas.

Over the decades, an overwhelming majority of Roma have been settled. But the association with nomadism is not uprooted. As Fraser wrote:

Settled people, on the whole, do not trust nomads; and in a European society where the majority were pressed into a life of piety, serfdom and drudgery, Gypsies presented a blatant negation of all the essential values and premises on which the dominant morality was based. (126)

Added to this, the European perception of the Roma is more of a nomad, a romantic fantasy, that they are uninterested in long-term security and social credibility, living carefree life, hand-to-mouth consumption attitude mixed with irresponsibility such as lack of savings (due to poverty and biased rejection by the economic institutions), all this has been misunderstood as a consciously chosen way of life. The social credibility is hampered due to the overrepresentation in crime statistics because the crimes in which Roma are suspects are investigated vigorously. However, it is a well-known fact that crime statistics contain distortions and the reported crimes do not necessarily reflect the entire picture. The unfathomable depth of anti-Gypsism can be gauged with the following example:

On October, 25, 2005, in the flat of an ethnic Romanian man in Bucharest, police discovered the body of an eleven years old Roma girl who had been raped, killed and cut into hundreds of pieces. The evening of October 26, a talk show on the Romanian TV station OTV included two items related to Roma: one was concerning the rape and murder of Roma girl and another concerning a fight involving a Roma. During the show, commentators suggested that murder happened because Roma parents are unable to take care of their children. Comments on the fight involving Roma included a caller saying live on the show that "Gypsies should be shot dead." (Nicolae 1)

Had the situation of murder committed been the opposite, it can be easily speculated what bloody manifestations the anti-Gypsism furore would have created. Scores of politicians, experts and lawmakers have reiterated the misconstrued belief that Roma minority's problems arise from their unwillingness to integrate into the mainstream society. Undeniably, the Romani culture was inaccessible to the outsiders but this is expected out of a community constantly at the risk of extinction. But the reality is completely different. The Roma wish to integrate rather than living in a parallel society. But they also wish to keep their culture intact. Indeed, Citizenship should not only be constitutional but cultural as well.

India's stance on the statelessness of this minority had been a welcoming one in solving the issues. The Indian government's decision of organizing the International Roma Conference and Cultural festival in New Delhi in 2016 was a landmark shift in the struggle of this community by giving them a "home". Inaugurating the conference, the then External Affairs Minister, (Late) MrsSushmaSwaraj called the Roma the "children of India" who migrated and lived in "challenging circumstances in foreign lands for centuries." Though this has been analysed from the Hindutva angle but the President of Indian Council for Cultural Relations (ICCR), Lokesh Chandra has said that the historical and genetic evidences have established multiple times that their origin lies in Indian sub-continent. Besides, the Roma have carried "the art of steelsmith prevalent in ancient India through all the countries they inhabited and through classical Europe; they are steelsmiths, dancers, musicians, fortune tellers, there is nothing Hindutva here."

The change is happening. The Roma aren't one single group they are separated by borders and languages which has led to the decades of disjointed political activism across the Europe. But now their leaders are starting to bring about change at an international level, this time with a common voice- 2004 was a milestone. The European Roma and Travellers' Forum representing the major Romani organizations joined the council of Europe and became directly involved in the decisions affecting the communities. According to RudkoKawczynski (Interim President of European Roma and Travellers' Forum):

When was the first time the Roma has been even recognized? Until now we have retreated like a fringe group like a social phenomenon like a social problem. This is the first time in the history that European governments have recognized the Roma as a minority, it is a transnational minority lives everywhere in European countries.(video interview)

In an expanding Europe the Roma are one of the largest minority groups and the fastest growing. LiviaJaroka (first Roma member of European Parliament) voices:

Now there is a Roma member in the Parliament so that is of course a great push and also because it is much easier now to locate all the energies of the difference of civil rights organizations that are working issues in Europe.(video interview)

Romani culture has a pervasive, thriving oral tradition. Though music and dance go hand- in-hand with this community, but story- telling forms the aesthetic core of this diasporic community. Since it is a private and serious art, it is very much generated within the matrix of gypsy culture done with a serious purpose. Stories are told by almost every age- group of people- on a journey, sociable evening, and other informal get- together or formal occasions not only to entertain but to educate. However, when the Romanies appear in the stories of other people they are generally viewed as gypsies. The only positive they are accepted is that of an entertainer. One of the pervasive themes is the contempt and hatred in which Romanies are held by the world yet there are stories when the world is friendlier towards them. The fantasies of revenge are driven due to hunger and powerlessness in the outside world. In some stories, the revenge is channelized by taking pride in appearance, identity, their colour being "just right." The important link which connects the chain of abuses is the denial of the right to belong. The 1948 Universal Declaration of Human Rights affirms that 'Everyone has a right

to nationality and 'No one shall be arbitrarily deprived of his nationality nor denied the right to change his nationality.' But the ghar-wapasi of these people will be completed in the truest sense only when they are granted the cultural citizenship of the world.

References

1. *Amnesty International. "International Roma Day, 2011: Stories, Background Information and Video Material. 2011.*
2. *Bhardwaj, Dev. "Upre-Roma. Long Live Roma".Kafla Intercontinental.*
3. *Čvorović, Jelena."Serbian Gypsy Narrative: Between Preferred and True Identity".The Oral History Review.36.1, 2009.45-70.*
4. *Cohen, Robin. Global Diasporas: An Introduction. Routledge, 2008.*
5. *EU Publications. "A Persisting Concern: Anti-Gypsism as a Barrier to Roma Inclusion". 5 April, 2018.*
6. *European Roma Rights Centre."The Impact of Legislation and Policies on School Segregation of Romani Children". 2007.*
7. *Fraser, Angus. The Gypsies. Blackwell, 1992.*
8. *Hammerberg, Thomas. "Viewpoint: The Shameful History of Anti-Gypsism is Forgotten-and Repeated".Council of Europe Commissioner of Human Rights. 2008.*
9. *Hancock, Ian. We Are the Romani People: Amesam e Rromanedžene.University of Hertfordshire Press, 2013.*
10. *Iovita, Radu P. and Theodore G. Schurr. "Reconstructing the Origins and Migrations of Diasporic Populations: The Case of the European Gypsies". American Anthropologist.106.2, 2004.267-281.*
11. *Denesha, Julie. "Anti-Roma Racism in Europe".Amnesty International. February, 2002.*
12. *Lal, Chaman. "Gipsies- Forgotten Children of India". New Delhi: Ministry of Information and Broadcasting, Publications Divisions, 1969.*
13. *Milton, Sybil. "Gypsies and the Holocaust".The History Teacher.24.4, 1991.375-387.*
14. *Safran, William. "Diasporas in Modern Societies: Myths of Homeland and Return". Diaspora: A Journal of Transnational Studies. 1.1, 1991, 83-99*
15. *Nicolae, Valeriu. "Towards a Definition of Anti-Gypsism".Web.*
16. *Petrova, Dimitrina. "The Roma: Between a Myth and a Future".Social Research. 70.1, 2003, 111-161.*

Concubines – A comparative study between the Mughal Harem and the Zenani Dyodi of Rajasthan

Lakshyata Jakhar
Research Scholar, Jai NarainVyas University, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

The Mughal harem was organized as a residential place for the royal inmates which consisted of mothers, queens, sisters, daughters and concubines along with their servile class. The splendour and power of the king was associated with large number of women, therefore, the system of concubinage widely prevailed in the royal seraglio. Later on, the institution of the separate royal household for women was adopted by the Rajput rulers with the organization of zenani dyodis to establish cultural identity with the Mughal social practises. Thereon, concubinage was also imitated in the zenani dyodis. The system of concubinage provides two different pictures of the concubines in the Mughal and Rajput households. The aim of the paper is to compare and analyse the position and place of the concubines in the Mughal harem and the zenani dyodis in order to answer, whether they were merely sex-slaves for the ruler or carved a space for themselves in the social and cultural structure of the royal households.

Keywords : *Mughal Harem, Zenani Dyodi, Cultural Identity, Concubine, Sex-Slaves, social system, cultural system.*

The Mughal harem was the residential complex for the women of the royal household. The royal seraglio was inhabited by the mothers, queens, sisters, daughters and concubines of the king and the servile class. The size of the harem was considered as the symbol of power and magnificence, therefore, under Akbar, large number of women were inducted into the harem as concubines, which made the system of concubinage an inseparable part of the harem culture. The political system established by Akbar brought the Rajputs close to the Mughals in the form of Mansabdars. They shared the lord-vassal relationship where the vassal (Rajput) desired to please his master and display sense of utmost loyalty towards him. The proof of devotion to his master was manifested in the form of cultural identity. As a result, the royal house of the Rajputs was culturally transformed to adopt the cultural practises of the Mughal household. The most explicit exhibition of this transformation was the establishment of separate royal household for the women on the lines of Mughal harem which came to be known as zenani dyodi. The Rajputs also desired to show that their royal household was no less magnificent and grand like that of the Mughal, therefore, the practice of concubinage was imitated in the zenani dyodis as well. The cultural identity and transformation indicates the downward filtration of the royal culture into the social system of the Rajputs.

Although, the structure of the zenani dyodi was based on the patterns of the harem, yet zenana mahal as an institution showcased distinct character of its own. The life and position of the concubines in the zenani dyodi differed to a great extent from the lives of the concubines in the harem. The present paper is an attempt to undertake a comparative study of the concubines in the Mughal harem and the zenani dyodi.

Entry in the Royal Household

The women in the harem were divided into Queens, Secondary Wives and Concubines. Babur used separate terms to address each woman such as wives (Khawatinlar), mistress (Ghunchachi) and concubines(Sarari)[1]. Later on, terms like Kaniz, Paristar, Aghacha and Sarar came to be used for concubines. In the zenani dyodi, the Chief Queen was referred as Patrani, the other queens as Ranis and Concubines as Paswans and Pardayats. The contemporary Persian writers provide scarce information on the lives of concubines, for they focused mainly on the lives and activities of the queen consort of the king and the most important females associated with the emperor. The harem was an inaccessible territory for the unknown, especially for the man. However, contemporary foreign travellers who visited the Mughal court have left accounts of the seraglio based on the hearsay or the inside personnel(eunuch guards) or personal experiences(few travellers got chance to visit harem with their faces covered). Apparently, they had perceived the harem as an abode of acquiring sexual pleasures. Precisely, in the account of Manucci, sensuality dominates any other depiction of the woman. Thus, we find portrayal of concubines from the lens of lechery and sensuality. On the other hand, the zenani dyodi also does not provide a peep into its enclosures, yet the contemporary sources of Rajasthan in the form of zenani dyodi Bahis (record) provides an insight on the position of concubines in the zenana household which presents a precise picture of their contribution in the social, cultural and religious fields.

The concubines found their way into the harem either as a war prisoner or as a gift or beautiful maidens purchased as slaves from the slave markets of India and abroad. The two concubines of Babur, Gulnar Aghacha and Nargul Aghacha (Circassian slaves) were presented to him by the Shah Tahmasp of Persia[2]. Besides this, any woman who caught the attention of the king with her lascivious and glamorous conduct, receives an opportunity to become his concubine. The enchanting beauty of Akbarabadi Mahal and Fatehpuri Mahal arrested the attention of Emperor, who in turn, became prominent concubines of Shahjahan. The Ahkam-i-Alamgiri illustrates an interesting episode of Aurangzeb where a Puritan ruler like him, could not control himself to fell for the fascinating beauty of Zainabadi Mahal[3]. The concubines in zenani dyodi also entered in the same manner as that of the harem. The bahi records numerous accounts of the concubines acquired in different manner. To say, in the state of Jodhpur, one of the concubine of Maharaja Sur Singh, Harbansi Rai, was acquired by his father Maharaja Udai Singh from a military conquest in Lahore[4]. In another instance, the house of the Jodhpur state, in 1848 CE purchased three girls from the village of Pilwa from a person named Umaid Khichi for fifty rupees[5]. The military conflict between the state of Jaipur and Jodhpur in 1807 CE resulted in the trade of women war captives at one paisa and two paisa each[6]. There was great demand of skilled dancers and singers for the services in the royal households. The harem recruited dancers and singers for their entertainment who were known as Kanchanis. The kanchanis were addressed as 'bais', who were specifically meant for the concerned purpose (however, if ruler so desires he could obtain one for his sexual urges). Besides, in the zenani dyodis of Rajasthan, it was considered a sense of pride and honour to attach an eminent artist with their royal house. The zenani dyodi of the state attracted talented singers and dancers from the houses of Hyderabad, Sindh and Karachi. The royal household also established schools (Khanas) to train the women(captured in war or purchased or gifted) as proficient singers and dancers. The schools were known as Talimkhana (Jodhpur state), Patartkhana (Jaipur state) and Gunijankhana (Bikaner state). The Bhagtans (dancers) Didarbaksha and Rasakpur were the favourite concubines of Maharaja Pratap Singh and Maharaja Jagat Singh of Jaipur respectively. The two concubines of Maharaja

Man Singh of Jodhpur, Tulcharai and Chapalrai were actually singers presented to him by the ruler of Harsol[7]. The famous concubine Gulab Rai of Maharaja Vijay Singh was a gayan. In the zenani dyodi, available evidences suggests that for a woman to be declared as a concubine, prior attachment with the ruler as an entertainer or an attendant was a pre-requisite condition. As a result, official concubines were usually selected from among the skilled dancers and singers. Therefore, we observe that any women can become a concubine in the harem but in the zenani dyodi, a women has to display her extraordinary traits and skills to be declared as a concubine where her proximity with the ruler plays significant role.

Position in the Social Structure of Royal House

The concubines were directly accessible to the Mughal rulers and no official ceremony was required to declare any women a concubine. Moreover, they were often married to the rulers, but we get rare details about the marriage rites performed between the two[8]. In the state of Rajasthan, any girl desired by the king was taken within the veil by him i.e. parda inayat (like the Rajput women) was called as "pardayat" (official concubine). The more intimate one was known as "paswan". Thereafter, concubines were admitted into the zenani dyodi through the formal ceremony of Chuda Pehrawan (Ivory bangles wearing ceremony)[9]. They could not marry the ruler, however with this ceremony position of the concubines was elevated to the status of the co-wives. Thereon, they were addressed as Pardayats and Paswans in the zenana mahal. Pardayats received independent apartments in the dyodi for their residence known as rawlas. A retinue of servant class was appointed under the services of Pardayats. Therefore, every kind of royal service was available at their disposal. Bhurai Rai ji, Pholai Rai ji, Chanrai ji, Mehtab Rai ji, Sundar Rai ji, Panrai ji, Ghanrai ji, Rooprai ji, Kisanrai ji, Basanti Rai ji, Gulab Rai, Naini Bai and Rasakpur are few names of the pardayats and paswans. We observe that it was customary to suffix titles at the end of the names like Rai and Bai and the use of the term "ji" signifies the respect and honour received by them in accordance with Rajput customs. Such case did not exist with the concubines of Mughal harem as they were called as Aghacha or Paristar only. It is significant to note that the real identity of a concubine was concealed under the new identity received by her, in the form of name as soon as she becomes part of the royal household. The new identity is accorded to ensure loyalty to the ruler. Usually, the naming was concluded on the basis of physical traits and attributes like gulab, sundar, mragnain, phool etc. This custom was followed in the Mughal harem also, until Akbar ordered to name the concubines on the basis of their birth place or place of their induction into the harem. Henceforth, Mughal concubines had name such as Akbarabadi Mahal, Fatehpuri Mahal, Udaipuri Mahal and Zainabadi Mahal.

The intimate relationship between a concubine and the ruler naturally led to the birth of child. The mothers of princes Murad and Daniyal were concubines[10]. In the year 1605, the two sons of Jahangir, Jahandar and Shahryar were born to concubines[11]. It is noteworthy that the children born of concubines belonged to the master and by the virtue of the fact, were free from the status of slaves and held right to equally claim for the throne. However, the "status of the concubine was raised only to that of mother of children"[12]. On the contrary, the children of the pardayats and paswans cannot be the claimant to the throne (due to low origin of concubines) although their financial security was ensured by granting jagirs[13]. Furthermore, their position in the society was recognized as the offspring of royal blood by granting titles such as ' Lalji' , ' Rao Raja' and 'Bhabha'[14]. Therefore, we note that children of Pardayats and Paswans enjoyed rights and privileges attached to the royal house but were not entitled for the throne.

The Mughal sources are mum, with relation to

the financial position of the concubines, whether, they received land grants for their personal expenses is unknown, yet they were showered with gifts, jewels and expensive clothes on the occasions of festivities and ceremonies. Whereas, pardayats and paswans were granted jagirs of handsome amount for their personal expenses. They exercised individual liberty and wisdom to spend the income received from the land grants. Moreover, gifts and presents were added perks for them. Paswan Gulab Rai of Maharaja Vijay Singh of Jodhpur was granted jagir of Jalore village[15]. In the Jaipur state, the value of land grant reflected the position of royal lady in the hierarchical structure of the zenani dyodi. The Patrani received jagir of the value amounting to rupees one lakh twenty five thousand, other ranis twenty five thousand, Paswans seven thousand and Pardayats five thousand[16]. Again, pardayats were further categorized into Sonahali (income generated of rupees 5000), Gangajamni (of rupees 2500) and Roopahali (of rupees 1250)[17]. Thus, every concubine received land grant according to her closeness with the ruler which ensured her financial independence.

Political Influence in The Royal House

In the Mughal harem, one usually notice the interference of queens or mothers of the Emperor. The petticoat government set-up by Maham Anga during initial period of Akbar and the junta by Nur Jahan are the most explicit examples where both the royal ladies exercised control and influenced the politics of the then period. The sources did not record any concubine who played any role in the political matters except concubine Lal Kunwar of Emperor Jahandar Shah. By her influence, she tried to instate her family members on high positions of the state[18]. Thus, in general, concubines in the Mughal harem had no say in the state affairs.

Whereas, the concubines in the zenani dyodis exerted great influence over the king in the matter of politics. Many a times, the appointment and dismissal of an official was dependent on the say of a concubine. Paswan Gulab Rai of Maharaja Vijay Singh of Jodhpur, dismissed the services of Diwan Gordhan Khichi[19]. It was under her influence that Maharaja Vijay Singh declared prince Sher Singh (born from Gulab Rai) as Yuvraj and ordered his lords to present gifts to Sher Singh[20]. Gulab Rai exercised complete control over the affairs of the state. Pardayat Anara Begum was the favourite consort of Maharaja Gaj Singh. She took promise from the Maharaja to declare Jaswant Singh his heir apparent in place of Yuvraj Amar Singh[21]. Few of the influential concubines belonged to the state of Jaipur also. The most beloved concubine of Maharaja Pratap Singh was Didar Baksha who gave birth to two sons of Maharaja, Mohandas and Kandas[22]. Rasakpur, concubine of Maharaja Jagat Singh held dominant position in the court. She even used to rode on the elephant along with the ruler[23]. Pardayat Rooprai held reins of Maharaja Madho Singh in her hands to extract financial gains to accumulate great amount of wealth[24]. The above were few examples of the concubines who administered the political affairs by virtue and competency.

Cultural engagement and role in the work of social welfare

The royal household turned lively and vivacious on occasions of festivals and ceremonies. Celebrations were organized on majestic scale and lakhs of money was given in the form of gifts and charity. Again, the contemporary records does not mention the role of concubines in the cultural activities, although they does mention their participation. Gulbadan Begum has mentioned several times in her account that the concubines of Babur took part in the festivals and conferences organized under Humayun[25]. When the festivals and birthdays were celebrated, the harem ladies including concubines were allowed to watch the celebration only from behind the curtains[26]. The strictness of purdah was the adoption from the Rajput custom. Akbar believed that the chastity of a women resided in

her body and mere sight of the other man would dilute the sacredness of her body[27]. As a result, strict observance of purdah was followed by harem ladies. Hence, due to purdah, they were devoid of the joy to fully enjoy the ambience of the celebrations. Yet all the ladies of the harem could assemble and enjoy themselves on the occasion of Khusroz or the three days of Meena Bazar which held every month. Khusroz was considered an opportunity by the king to acquire the most gorgeous women of the city.

The zenani dyodis, also celebrated every festival and occasion with much fanfare. The concubines contributed equally as that of the queens. On the occasions of birth, marriage, Holi, Rakhi, Dusshera, Diwali, Gangor and other festivals, nazar and nirchawal were sent to the royal authority by the pardayats. Pardayats exerted full rights to organize celebrations in their rawlas (apartments). Pardayat Pholi Rai became so powerful by the year 1889 CE that her apartment became the nucleus of marriage festivities[28]. Paswan Bhurai Rai was presented with ceremonial gifts when she went to attend the marriage of her brother[29]. The marriages were concluded between children of concubines of two royal houses, for example, daughter of pardayat Pholi Rai of Jaipur, Baiji Lal, was married to Inder Singh who was the son of Rao Raja Tej Singh of Jodhpur. In the raniwas of Jodhpur, on the day of sheetla worship, pardayat Nainrai of Maharaja Jaswant Singh offered Thanda ra thal (platter of meal prepared a day before for the worship, so called thanda (cold)) to the goddess sheetalamata[30]. Thus, the above examples testifies to the cultural position of concubines in the royal household of Rajputana.

As far as religious interest is concerned, no record has mentioned the inclination of the concubines of the harem in this field. The favourite pastimes of the harem ladies were gossiping, singing, playing games, telling stories and laughing[31]. The women indulged themselves in above mentioned activities that they hardly found time to think about religious pursuits. Although, few concubines undertook journey to Haj[32], but none of them took up religious or social constructions. On the other hand, Pardayats and paswans of Rajasthan engaged themselves in some constructive activities. As a result, number of temples, stepwells, rest houses and gardens were built under their supervision across the state of Rajasthan. In the state of Jodhpur itself, we find number of public works undertaken by pardayats. The Muslim paswan of Maharaja Gaj Singh l constructed a water body named Anara ki Beri[33]. The famous paswan Gulab Rai of Maharaja Vijay Singh built Gulab Sagar. The work of the lake commenced in VS 1837 and was completed by VS 1844. Then, a stepwell was constructed by pardayat Magrai of Maharaja Jaswant Singh ll situated on the way towards Mandor. Pardayat Lachrai of the same ruler built a baori outside the Jalori gate (non operational at present time)[34]. The pardayats not only built the water bodies but were vigilant for its up-keep and renovation. Such example is provided by the record of 'Pardayat Kanrai ri Baori Ro Kamtho Aru Karayo'. The work of renovation of stepwell undertook under Kanrai and was secured with the embankment. The bahi mentions the name of the labours, their remuneration and time taken for the purpose[35]. In the state of Jaisalmer, the concubines of the rulers (also known as patur or paturiya) were also concerned towards public welfare, therefore, they had built rest houses (dharmashalas) at a distance of two km from the main city. The foundation of eight rest houses was laid by patar Chouthi, paswan Muli and patar Kesar[36]. The list of the social and religious works of paswans and pardayats is exhaustive which clearly indicates their interest and inclination towards the welfare of the common masses, for they represent the royal house and the primary aim of the royal house was to cater welfare of its subjects.

Allegiance to the King

The loyalty and devotion for a ruler was expected from the royal women. It is believed that faithfulness is expected from the wife, but to

expect from a concubine, is a question of scepticism. Few concubines proved to be loyal to their masters, for instance, Akbarabadi Mahal and Fatehpuri Mahal shared captivity with Shahjahan in the fort of Agra during his last years. Two of the concubines of Dara Shikoh displayed, on the one hand, the act of devotion and the other was lured with the temptation of power. After the execution of Dara Shikoh by Aurangzeb, he tried to possess a concubine name Rana-i-dil who blatantly refused his proposal, however, the other concubine Udaipuri Mahal willingly accepted Aurangzeb as her new master[37]. The dichotomy of these concubines lies in the desire to survive in the intriguing world of the harem.

Whereas In the zenani dyodis, the paswans and pardayats displayed full devotion to their masters. It will not be an exaggeration to say that the pardayats were an epitome of loyalty and devoted their mind, body and soul to the service of the ruler with whom they were attached. The most compelling example of such dedication was the performance of Sati with the death of the ruler. Nine paswans of Maharaja Jaswant Singh l performed sati in Peshawar in the year 1678 CE[38]. On the death of Maharaja Man Singh of Jodhpur, four pardayats Pholvale ji, Sukhvel ji, Chanram ji and Simbram ji gave themselves on the funeral pyre[39]. The episode of paswan Aijabai is well known in the history of Mewar, when all the other queens and paswans refused to perform sati after the death of Maharana Swaroop Singh, paswan Aizabai agreed to give life with her master[40]. For Maharawal Jaitsingh of Jaisalmer, his one queen and ten paswans performed sati[41]. Importantly, to give oneself on the funeral pyre was a personal choice not an obligation. Even the death of the ruler did not bring misfortune for the pardayats, they held respect under the rule of succeeding kings. They were then addressed in the dyodi along with the name of the deceased ruler. For instance, 'Kisan Rai Pardayat Maharaja bekunthvasi shri ji Sawai Pratap Singh ji ki'[42] or 'MohanRai pardayat Maharaja bekunthvasi shri ji Sawai Jagat Singh ji ki'[43]. Moreover, the death ceremony of the concubines was performed with rituals and traditions. Historian K.S Lal opines that in the Mughal harem there was only ingress and no egress for the women[44]. However, such code was not applicable for pardayats and paswans. The concubines of the deceased rulers used to move to the mahals situated at the base of the fort (Talhati ke mahal). In few exceptional cases, they exercised the right to spend late years of their lives in the dyodi mahal or with their children[45].

Conclusion

The prime function of a concubine was to satisfy the physical desires of the man. The institution of the harem slavery catalysed the affair of mass induction of the women in royal seraglio as the sex-slaves of the king. The harem concubines were more or less confined to the space of slavery. Although, Rajput rulers established zenani dyodi in order to imitate Mughal Emperors but the concubines were not perceived merely as an entity of deriving sexual pleasures. The zenana mahal provided ample scope and opportunity for the concubines to participate and fit themselves in the socio-cultural arrangement of the royal traditions and customs. The wisdom and competency of the concubines were acknowledged by the supreme authority as a result they were able to influence the king on the matters of politics. Concubines entered the dyodis from a humble background, therefore, they were familiar with the needs of the common masses. Consequently, concubines undertook public works from their own personal expenses. They developed a sense of importance of environmental conservation and preservation that resulted in building of gardens and water bodies for maintaining balance in the ecosystem. The pardayats and paswans carved a space for themselves in the social system of zenani dyodis. Resultantly, concubines uplifted themselves from the mere status of slaves and became an inseparable part of the royal household . From being the marginalized class, they carved a respectable position and stature in the society.

References

1. *Harbans Mukhia, The Mughals of India, Blackwell Publishing Ltd., USA, 2004, p.120*
2. *K.S Lal, The Mughal Harem, Aditya Prakashan, New Delhi, 1988, p.19*
3. *Ibid, p.159*
4. *Vikram Singh Bhati, Muraridan Ki Khyat, p.103*
5. *D.B. Sheersagar, Jodhpur Riyasat Ke Darbari Sangeetagyo ka Itihas, p.2*
6. *Ramya Sreenivasan, Drudges, Dancing Girls, Concubines: Female Slaves in Rajput Polity, 1500-1850, Slavery and South Asian History, Indiana University Press, 2006, p.138*
7. *Priyanka Khanna, Service, Sex and Sentiments-Concubinage in the Early Modern Rajput Household of Marwar, Servants Past, Vol l, Orient Black Swan, 2019, p.203*
8. *Harbans Mukhia, Op. Cit., p. 123*
9. *Maharaja Shri Takhat Singh ji ke Pardayat Shri Roopjyot Ri Bahi, No. 1621, Letter No. 54 VS 1919*
10. *K.S Lal, Op. Cit., p.30*
11. *Ibid*
12. *Ibid, p.29*
13. *G.H. Ojha, Jodhpur Rajya ka Itihas, Vol 2, p.754*
14. *Dr. Mahendra Singh Nagar, Marwar Rajvansh ki Sanskritik Paramparaye, Vol 2, Maharaja Mansingh Pustak Prakash, 2001, pp. 392, 393*
15. *G.H. Ojha, Op. Cit., p. 754*
16. *Nand Kishore Pareek, Rajdarbar aur Raniwas, Rajasthan Patrika Pvt Ltd, p. 107*
17. *Ibid, pp. 115, 116*
18. *Harbans Mukhia, Op. Cit., p. 125*
19. *Vishveshwarnath Reu, Marwar Ka Itihas, Vol l, p.390*
20. *Ibid*
21. *Dr. Vikram Singh Rathore, Rajasthan ki Sanskriti Mein Nari, Rajasthani Granthakar, Jodhpur, 2020, p. 23*
22. *Braj Nidhi Granthawali, Kashi, 1933, pp. 45,46*
23. *Nand Kishore Pareek, Op. Cit., p. 98*
24. *Ibid, p. 114*
25. *K.S. Lal, Op. Cit., pp. 29,30*
26. *Ibid, p. 137*
27. *Harbans Mukhia, Op. Cit., p. 130*
28. *Dastur Komwar(DK) - Rajlok, p. 165*
29. *Ibid, pp. 155, 156*
30. *Dr. Vikram Singh Bhati, Parampara, Edition- 168, Rajasthani Shodh Sansthan, 2017, p.112 miti sawan vad aath bhom VS 1996*
31. *K.S. Lal, Op. Cit., p. 134*
32. *Ibid, p.30*
33. *Marwar Ri Khyat, p.2*
34. *Chandramani Singh, Rajasthan ke Nirman mein Striyo ka Yogdana, Rajasthan Hindi Granth Academy, Jaipur, 2016, p.19*
35. *Maharaja Mansingh ki Pardayat Kanrai Ri Bahi, S. No. 204, VS 1892, MMPP, Jodhpur*
36. *Nandkishore Sharma, Jaisalmer ka Samajik evam Sanskritik Itihas, Vol 2, Simant Prakashan, Jaisalmer, 2011, p.248*
37. *DK- Rajlok, p.353*
38. *DK-Rajlok, p.805*
39. *K.S. Lal, Op. Cit., p.30*
40. *Dr. Mahendra Singh Nagar, Op. Cit., p.424*
41. *Maharaja Takhat Singh Ri Khyat, pp. 1,2*
42. *Dr. Rajendra Nath Purohit, Mewar Darikhana ke Riti-Riwaz evam Sanskar, Rajasthan Granthakar, Jodhpur, 2005, p. 112*
43. *Nandkishore Sharma, Op. Cit., pp. 236,237*
44. *K.S. Lal, Op. Cit., p.26*
45. *Nand Kishore Pareek, Op. Cit., p.120*

A study on NEP 2020 and Role of a teacher in Qualitative Higher Education in India

Dr. Manisha Dave
Assistant Professor, Government Girls College, Magra Punjla, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Education does not mean knowledge (gyan) only, it also contains a life within it; it is not an arrangement, it is a duty. It is not merely a means of livelihood; it is the precious treasure of the noble tradition of giving bestowing.

Prime Minister Narendra Modi

The New Education policy 2020 aims at seven key issues of educational development namely easy access for the students, ease of participation, quality of courses offered, equity, system efficiency, governance and management, facilities of research and development and financial commitment involved. A teacher plays an indispensable role in making a student's personality. He acts like a catalyst to condition, sharpen, and develop a student's all round personality. He does the significant work of imparting education and broadening the mental horizon of the students and polishing his behaviour. In qualitative higher education a teacher comes from sound academic background and with literary excellence, he can play a very important role to improve the academic environment and contribute in many ways.

The present paper will try to explore all the pros and cons of role of a teacher in present high-tech knowledge world especially in higher education and also examine the current challenges and threats for creating an excellent educational environment in colleges and Universities along with the solutions and suggestions. The paper also throws light upon the ancient and present scenario of higher education. There is a great need for self-improvement and involvement in all aspects for teachers as well as students to change the present condition of higher education. With all its lacunas we must be optimistic to make earnest endeavors for qualitative changes in higher education.

Keywords: *NEP 2020, Teacher, Student, Quality, Higher Education.*

"*A teacher affects eternity; he can never tell where his influence stops.*"

-Henry Brooks Adams

The NEP 2020 is aimed at transforming India's education system into modern, progressive and equitable ones. The new policy focuses on improving poor literacy and numeracy outcomes associated with primary schools, reducing dropout levels in middle and secondary schools and introducing the multi-disciplinary approach in the higher education system.

A teacher is truly the maker, the builder of a nation. He conditions, nurtures and prepares a nation's asset called students. In fact a true and dedicated teacher is a gift to a nation by God. He is placed next to God 'Guru Brahma, Guru Vishnu, Guru Govind' for his sacred and holy mission to educate the students.

In ancient times there were Gurukuls and Ashram's in Vedic and Post Vedic eras where the pupils were trained in all aspects vis education, moral and ethical values, manners and humanitarian outlook. The

standards and discipline were very tough in order to condition the total personality of the pupil.

With the changing pace of time, the standards of teaching have changed and the image of the teachers have also changed. In the modern computerized hi-tech world, the role of teacher has attained much complexity especially in higher education. India's Higher education system is the third largest in the world, after China and the United States. The main governing body at the tertiary level is the University Grants Commission (India), which enforces its standards, advises the government, and helps coordinate between the centre and the state. Accreditation for higher learning is overseen by 12 autonomous institutions established by the University Grants Commission.

As of 16 November, 2022 the list of central universities published by the UGC includes 54 central universities, 459 state universities, 127 deemed universities, and 430 private universities. Apart from the above universities, other institutions are granted the permission to autonomously award degrees. However, they do not affiliate colleges and are not officially called "universities" but "autonomous organizations" or "autonomous institutes". They fall under the administrative control of the Department of Higher Education. Other institutions include 36671 colleges, including many exclusive women's colleges, functioning under these universities and institutions. The emphasis in the tertiary level of education lies on science and technology. Distance learning is also a feature of the Indian higher education system.

Our university system is, in many parts, in a state of disrepair...In almost half the districts in the country, higher education enrollments are abysmally low, almost two-third of our universities and 90 per cent of our colleges are rated as below average on quality parameters... I am concerned that in many states university appointments, including that of vice-chancellors, have been politicized and have become subject to caste and communal considerations, there are complaints of favoritism and corruption.

- Prime Minister ***Manmohan Singh***

Besides top rated universities which provide highly competitive world class education to their pupils, India is also home to many universities which have been founded with the sole objective of making easy money. Regulatory authorities like UGC and AICTE have been trying very hard to extirpate the menace of private universities which are running courses without any affiliation or recognition

Government of India is aware of the plight of higher education sector and has been trying to bring reforms .The New Education Policy of India (NEP) 2020, which was started by the Union Cabinet of India on 29th July 2020 outlines the vision of new education system in India. The NEP aims to set the National Professional standards for Teachers (NPST) to determine all aspects of teachers' career management, efforts for professional development, salary etc. Teacher audits and professional appraisals are also an essential part of NEP for teachers. Currently modern higher education is facing many problems and challenges. Some of Hydra-headed challenges are knocking at the threshold.

Review of Literature

Ansie and Marike (2007) conducted a study to determine the teachers' motivation towards the continuous professional development on the principles underlying continuous professional development (CPD), since teachers are likely to be more willing to attend workshops if they are worth the time spent and the sacrifices made.

Johnson (2007) revealed, "Quantity of professional development is strongly linked with standards-based teaching practices in the classroom. The amount of professional development and use of standards-based teaching practices effects sustainable professional development on investigative teaching practices and investigative classroom

culture lbasheer et al (2008) examined the perceptions of teachers towards the effectiveness professional development for university professors, principals and teachers in the teacher education programme at the Hashemite University in Jordan. The study was conducted on 120 teachers and educationists of Jordan. It was found that entire participants were favorable towards the effectiveness of professional development and its impact.

Objectives of The Study

- To provide the highlights of NEP-2020
- To study the current challenges to a teacher in higher education.
- To give suggestions for improvement in higher education from teachers' perspective.

Methodology

Since the study is descriptive in nature, the study has been conducted based on the secondary data from various journals, articles, PhD's (published and unpublished), reports of various scholars and universities.

Highlights of NEP 2020

The main highlights of National Education Policy 2020 are as under:-

- The mother tongue or local or regional language is to be the medium of instruction in all schools up Vth standard. Sanskrit will be offered at all levels and foreign languages from the secondary school level.
- The 5+3+3+4 structure will replace the old structure of 10+2, consisting of 12 years of school and Three of pre-school. This will be split at follows: a foundational stage (ages three and eight), three years of pre-primary (ages eight to 11), a preparatory stage (ages 11 to 14), and a secondary stage (ages 14 to 18).
- Instead of exams being held every year, school students will sit only for three-at classes 3, 5, and 8. Assessment in other years will shift to a 'regular and formative' style that is more 'competency-based, promotes learning and development, and tests higher-order skills, such as analysis, critical thinking and conceptual clarity".
- Board exams will continue to be held for Classes 10 and 12 but even these will be re-designed with "holistic development" as the aim.
- The policy, the government has said, aims at reducing the curriculum load of students and allowing them to become more "multi-disciplinary" and "multi-lingua". There will be no rigid separation between arts and sciences, between curricular and extra-curricular activities and between vocational and academic stream.
- The policy also proposes that higher education institutions like the IITs (Indian Institute of Technology) move towards "holistic education" by 2040 and greater inclusion of arts and humanities subjects for students studying science subjects, and vice versa.
- The NEP 2020 proposes a four-year undergraduate program with multiple exit options to give students flexibility. A multi-disciplinary bachelor's degree will be awarded after completing four years of study. Students exiting after two years will get a diploma and those leaving after 12 months will have studied a vocational/professional course. MPhil courses are to be discontinued.
- A Higher Education Council of India (HECI) will be set up to regulate higher education; the focus will be on institutions that have 3000 or more students. Among the council's goals is to

increase the gross enrolment ratio from 26.3%(2018) to 50% by 2035.

- The cabinet also approved changing the name of the HRD ministry to the educational ministry.

Current Chanllenges to a Teacher in Higher Education

1. How to build up student friendly atmosphere.

One of the foremost and pre-requisite factors in strengthening higher education is to create a student friendly and amicable atmosphere in the campus. For this a teacher can take initiative to arrange group discussions among the students., build up confidence in them, solving their academic as well as personal problems, trying to find out the specific qualities of a student and to promote him and meeting with their parents in order to understand the students.

2. Need for Integrated development skills. (Use of modern technology tools.)

Technology is just a tool. In terms of getting the students working together and motivating them, the teacher is the most important.

Bill Gates 1955 in **Independent on Sunday** 1997

The pace of technological revolution and emergence of a knowledge society can change the traditional role of the teacher and the students. Traditionally, the teacher used to be the source of knowledge for the students. There is some cooperation among students to explore new knowledge. In many cases, the teachers do not possess adequate knowledge to supplement the view of the student. And the main source of knowledge remains limited to text book. The development of ICT changes the epic centre of knowledge. At present, in a number of cases the student is more informed than the teacher, Teachers should know and use new technologies i.e. LCD projectors, power point presentations, E-learning, digital white board. It is necessary for teachers to become skilled in operating the new technologies and in exploiting them effectively as educational tools. Teachers must master the use of information-skills of research, critical analysis, linking diverse types and sources of information, reformulating retrieved data-if they are to teach their pupil to develop these same skills. There needs to be more emphasis placed on training in pedagogy, as opposed to the current trend in many education systems where the major focus is on specialized knowledge in specific curricular subjects. Teachers must be adequately equipped with more didactic competencies so as to assume experts in the learning process.

The curriculum framework for ICTs in Teacher Education is comprised of four clusters of competencies. The first themes are context and culture which identifies the culture and other contextual factors that must be considered in infusing technology in the teacher education curriculum. It includes the use of technology in culturally appropriate ways and development of respect for multiple cultures and contexts, which need to be taught and modeled by teachers. Leadership and Vision are essential for the successful planning and implementation of technology in to teacher education and require both leadership and support from the administration of the teacher education institution. Planning and Management of Change is the final theme, born of today's context and accelerated by technology itself. It signifies the importance of careful planning and effective management of the change process.

3. Amending the conventional curricula

There is a great need to improve and amend the traditional way of teaching including the formation of curriculum which is very stereotype and obsolete. Students do not take any interest in enhancing their skills or gaining knowledge but just to get pass marks is their only aim. This sort of tendency cannot develop the personality or the knowledge of the students. A teacher should personally involve and take interest in incorporating vital changes in the curricula to make it updated. Curriculum should

be employment based, skill based and it should be made more practical by introducing semester way, preparing models charts and personal presentations, educational tours can also be organized to make the students know the actual world and its needs. A teacher is the member of Board of Studies so he can give his valuable suggestions regarding curricula and also execute the changes.

Developing entrepreneurial skills and initiative should become major concerns of higher education, in order to facilitate employability of graduates who will increasingly be called upon to be not only job seekers but also and above all to become job creators. Higher education institutions should give the opportunity to students to fully develop their own abilities with a sense of social responsibility, educating them to become full participants in democratic society and promoters of changes that will foster equity and justice.

4. Counseling students for development of moral, ethical and human values

The higher education system should help understand, interpret, preserve, enhance, promote and disseminate national and regional, international and historic cultures, in a context of cultural pluralism and diversity; help protect and enhance societal values by training young people in the values which form the basis of democratic citizenship and by providing critical and detached perspectives to assist in the discussion of strategic options and the reinforcement of humanistic perspectives; be able to speak out on ethical, cultural and social problems completely independently and in full awareness of their responsibilities, exercising a kind of intellectual authority that society needs to help it to reflect, understand and act; enhance their critical and forward-looking functions, through continuing analysis of emerging social, economic, cultural and political trends, providing a focus for forecasting, warning and prevention; exercise their intellectual capacity and their moral prestige to defend and actively disseminate universally accepted values, including peace, justice, freedom, equality and solidarity, as enshrined in UNESCO's Constitution; enjoy full academic autonomy and freedom, conceived as a set of rights and duties, while being fully responsible and accountable to society; play a role in helping identify and address issues that affect the well-being of communities, nations and global society

5. Need for Quality-based education to meet with the global requirements

The emergence of a globalized world underscoring a framework of competition, and coupled with the pressures of an exploding knowledge base, has given birth to new challenges for universities and colleges as social institutions all over the world. New demands are placed on the universities and college, often in addition to the existing ones, to be equipped with current knowledge and modern methods of acquiring new knowledge. The fact of globalization cannot be denied and the challenge/opportunity of GATS amongst other things is upon us. In this context there is need to facilitate and encourage off shoring and outsourcing arrangements that have potential for raising huge resources for this sector. This requires regulatory changes that will enable initial financial support for setting up academic and administrative cells at least in some of the quality Universities that would allow them to explore and reap benefits.

- In a world undergoing rapid changes, there is a perceived need for a new vision and paradigm of higher education, which should be student-oriented, calling in most countries for in-depth reforms and an open access policy so as to cater for ever more diversified categories of people, and of its contents, methods, practices and means of delivery, based on new types of links and partnerships with the community and with the broadest sectors of society.

- Higher education institutions should educate students to become well informed and deeply motivated citizens, who can think critically, analyze problems of society, look for solutions to the problems of society, apply them and accept social responsibilities.
- To achieve these goals, it may be necessary to recast curricula, using new and appropriate methods, so as to go beyond cognitive mastery of disciplines. New pedagogical and didactical approaches should be accessible and promoted in order to facilitate the acquisition of skills, competences and abilities for communication, creative and critical analysis, independent thinking and team work in multicultural contexts, where creativity also involves combining traditional or local knowledge and know-how with advanced science and technology. These recast curricula should take into account the gender dimension and the specific cultural, historic and economic context of each country. The teaching of human rights standards and education on the needs of communities in all parts of the world should be reflected in the curricula of all disciplines, particularly those preparing for entrepreneurship. Academic personnel should play a significant role in determining the curriculum.
- New methods of education will also imply new types of teaching-learning materials. These have to be coupled with new methods of testing that will promote not only powers of memory but also powers of comprehension, skills for practical work and creativity.

6. Improving selfhood

A vigorous policy of staff development is an essential element for higher education institutions. Clear policies should be established concerning higher education teachers, who nowadays need to focus on teaching students how to learn and how to take initiatives rather than being exclusively founts of knowledge. Adequate provision should be made for research and for updating and improving pedagogical skills, through appropriate staff development programmes, encouraging constant innovation in curriculum, teaching and learning methods, and ensuring appropriate professional and financial status, and for excellence in research and teaching To this end, more importance should be attached to international experience. Furthermore, in view of the role of higher education for lifelong learning, experience outside the institutions ought to be considered as a relevant qualification for higher educational staff. There need to be special thrusts in some specific areas that will have financial implications and are in a sense part of the State Universities. These would need to be estimated and provided for by the Plan if they are to be implemented in a proper manner. These areas are:

- **Academic Staff Colleges**: The vehicles/ instruments of teacher training are very important and need to be bolstered further. Also the Orientation and Refresher Courses need to be substantively looked at and improved so that they result in actual improvement of teaching content and techniques.
- **Vocational Courses**: These need to be tailor made and associated/ introduced by department(s) within the State Universities. This will enable the students to imbibe skill sets that are required by the market place. The start-up costs are quite substantial if this has to be done properly.
- **Mentoring and Remedial Activity**: This is one activity that has to be encouraged and recognized. This is

extremely crucial – and often under estimated – in the context of the undoubted goal of *inclusive* education. Some of the management schools have started building up expertise in the area of mentoring where it is an accepted practice. This requires serious finance because such activities are to done by the best – which costs – money. Otherwise we have the experience of such programs being run in a substandard way with equally poor results.

- **Distance/Open and E-learning**: In today's knowledge economy where India has a perceived advantage, the felt need is for greater coverage and access. Fortunately we have the technology platforms available. While in due course we will invest in infrastructure and create greater number of institutions and or increase the capacity in existing ones, the short to medium term remedy lies in strengthening the aforementioned avenues. But here again the financial needs are stiff if the content development and actual access is to be of high quality. Thus, dedicated resources need to be earmarked for State Universities to have their presence felt. I argue for this as an activity integrated within the Universities aware of the fact that there are specialist institutions for the purpose.
- **Extension:** In the same vein – as in the above paragraph – the *Adult and Continuing education* should be strengthened in and integrated fashion. This will serve as a vehicle for fulfillment of social responsibility as also for floating useful value added and vocational courses which are difficult for traditional departments to deliver. We now turn to some of the other things that the Plan should support with regard to functioning of State Universities. These are things that have implications for architecture and processes and are relevant in the current context.
- **Capacity Building:** This in a sense is a governance issue and deals with the administrative/management and academic skills not being in step with the changing ways. There is a need to support activities (along the lines of Senior Fulbright fellowships for administrators and academics) that may be administered by Academic Staff Colleges already in existence. This has to do with things like absorptive capacity to spend and utilize budgets, writing proposal and projects to enable one to successfully get the benefit of existing schemes and then to implement them effectively. Thus the training could be at various levels and calls for a serious 'seed-money' support. Clear policies should be established by all higher education institutions preparing teachers of early childhood education and for primary and secondary schools, providing stimulus for constant innovation in curriculum, best practices in teaching methods and familiarity with diverse learning styles. It is vital to have appropriately trained administrative and technical personnel.
- **National and institutional decision-makers should place students and their needs at the centre of their concerns,** and should consider them as major partners and responsible stakeholders in the renewal of higher education. This should include student involvement in issues that affect that level of education, in evaluation, the renovation of teaching methods and curricula and, in the institutional framework in force, in policy-

formulation and institutional management. As students have the right to organize and represent themselves, students' involvement in these issues should be guaranteed.

- **Guidance and counseling services should be developed**, in co-operation with student organizations, in order to assist students in the transition to higher education at whatever age and to take account of the needs of ever more diversified categories of learners. Apart from those entering higher education from schools or further education colleges, they should also take account of the needs of those leaving and returning in a lifelong process. Such support is important in ensuring a good match between student and course, reducing drop-out. Students who do drop out should have suitable opportunities to return to higher education if and when appropriate.

7. Mission to educate, to train and to undertake research

We affirm that the core missions and values of higher education, in particular the mission to contribute to the sustainable development and improvement of society as a whole, should be preserved, reinforced and further expanded, namely, to:

educate highly qualified graduates and responsible citizens able to meet the needs of all sectors of human activity, by offering relevant qualifications, including professional training, which combine high-level knowledge and skills, using courses and content continually tailored to the present and future needs of society; provide opportunities for higher learning and for learning throughout life, giving to learners an optimal range of choice and a flexibility of entry and exit points within the system, as well as an opportunity for individual development and social mobility in order to educate for citizenship and for active participation in society, with a worldwide vision, for endogenous capacity-building, and for the consolidation of human rights, sustainable development, democracy and peace, in a context of justice; advance, create and disseminate knowledge through research and provide, as part of its service to the community, relevant expertise to assist societies in cultural, social and economic development, promoting and developing scientific and technological research as well as research in the social sciences, the humanities and the creative arts.

8. Long-term orientation based on relevance

Relevance in higher education should be assessed in terms of the fit between what society expects of institutions and what they do. This requires ethical standards, political impartiality, critical capacities and, at the same time, a better articulation with the problems of society and the world of work, basing long-term orientations on societal aims and needs, including respect for cultures and environmental protection. The concern is to provide access to both broad general education and targeted, career-specific education, often interdisciplinary, focusing on skills and aptitudes, both of which equip individuals to live in a variety of changing settings, and to be able to change occupations.

Higher education should reinforce its role of service to society, especially its activities aimed at eliminating poverty, intolerance, violence, illiteracy, hunger, environmental degradation and disease, mainly through an interdisciplinary and Tran disciplinary approach in the analysis of problems and issues.

Higher education should enhance its contribution to the development of the whole education system, notably through improved teacher education, curriculum development and educational research.

Ultimately, higher education should aim at the creation of a new society - non-violent and non-exploitative - consisting of highly cultivated, motivated and integrated individuals, inspired by love for humanity and guided by wisdom.

- Strengthening co-operation with the world of work and analyzing and anticipating societal needs in these areas.

- In economies characterized by changes and the emergence of new production paradigms based on knowledge and its application, and on the handling of information, the links between higher education, the world of work and other parts of society should be strengthened and renewed.
- Links with the world of work can be strengthened, through the participation of its representatives in the governance of institutions, the increased use of domestic and international apprenticeship/work-study opportunities for students and teachers, the exchange of personnel between the world of work and higher education institutions and revised curricula more closely aligned with working practices.
- As a lifelong source of professional training, updating and recycling, institutions of higher education should systematically take into account trends in the world of work and in the scientific, technological and economic sectors. In order to respond to the work requirements, higher education systems and the world of work should jointly develop and assess learning processes, bridging programmes and prior learning assessment and recognition programmes, which integrate theory and training on the job. Within the framework of their anticipatory function, higher education institutions could contribute to the creation of new jobs, although that is not their only function.

9. Sharing knowledge and know-how across borders and continents

The principle of solidarity and true partnership amongst higher education institutions worldwide is crucial for education and training in all fields that encourage an understanding of global issues, the role of democratic governance and skilled human resources in their resolution, and the need for living together with different cultures and values. The practice of multilingualism, faculty and student exchange programmes and institutional linkage to promote intellectual and scientific co-operation should be an integral part of all higher education systems.

The principles of international co-operation based on solidarity, recognition and mutual support, true partnership that equitably serves the interests of the partners and the value of sharing knowledge and know-how across borders should govern relationships among higher education institutions in both developed and developing countries and should benefit the least developed countries in particular. Consideration should be given to the need for safeguarding higher education institutional capacities in regions suffering from conflict or natural disasters. Consequently, an international dimension should permeate the curriculum, and the teaching and learning processes.

Regional and international normative instruments for the recognition of studies should be ratified and implemented, including certification of the skills, competences and abilities of graduates, making it easier for students to change courses, in order to facilitate mobility within and between national systems.

10. Partnership and alliances

Partnership and alliances amongst stakeholders - national and institutional policy-makers, teaching and related staff, researchers and students, and administrative and technical personnel in institutions of higher education, the world of work, community groups - is a powerful force in managing change. Also, non-governmental organizations are key actors in this process. Henceforth, partnership, based on common interest, mutual respect and credibility, should be a prime matrix for renewal in higher education.

Suggestions for improvement in higher education from a teacher's perspective:

(a) A teacher can reinforce the links between higher education and research;

(b) acts as a catalyst for the entire education system;

(c) can contribute in developing higher education institutions to include lifelong learning approaches, giving learners an optimal range of choice and a flexibility of entry and exit points within the system, and redefine their role accordingly, which implies the development of open and continuous access to higher learning and the need for bridging programmes and prior learning assessment and recognition;

(d) can make efforts, when necessary, to establish close links between higher education and research institutions, taking into account the fact that education and research are two closely related elements in the establishment of knowledge;

(e) can develop innovative schemes of collaboration between institutions of higher education and different sectors of society to ensure that higher education and research programmes effectively contribute to local, regional and national development;

(f) a teacher can fulfill their commitments to higher education and be accountable for the pledges adopted with their concurrence, at several forums, particularly over the past decade, with regard to human, material and financial resources, human development and education in general, and to higher education in particular;

(g) he can frame a policy to ensure new partnerships and the involvement of all relevant stakeholders in all aspects of higher education: the evaluation process, including curriculum and pedagogical renewal, and guidance and counseling services; and, in the framework of existing institutional arrangements, policy-making and institutional governance;

(h) recognize students as the centre of attention of higher education, and one of its stakeholders. They should be involved, by means of adequate institutional structures, in the renewal of their level of education (including curriculum and pedagogical reform), and policy decision, in the framework of existing institutional arrangements;

(i) recognize that students have the right to organize themselves autonomously;

(j) promote and facilitate national and international mobility of teaching staff and students as an essential part of the quality and relevance of higher education;

(k) provide and ensure those conditions necessary for the exercise of academic freedom and institutional autonomy so as to allow institutions of higher education, as well as those individuals engaged in higher education and research, to fulfill their obligations to society.

(l) promoting multilingualism and the power of language in teaching and learning;

(m) inculcate life skills such as communication, cooperation, teamwork, and resilience;

(n) focus on regular formative assessment for learning rather than the summative assessment that.

Conclusion

Teachers are responsible for the implementation of NEP 2020. The teaching community must coordinate, work well together and be driven by a desire to change students' lives via the development of their skills and characters. A teacher can play an indispensible role in improving quality of higher education in India. India is today one of the fastest developing countries of the world with the annual growth rate going above 9%. In order to sustain rate of growth, there is need to increase the number of institutes and the quality of higher education in India. To attain and sustain, national, regional or international quality, certain components are particularly relevant, notably careful selection of staff and continuous staff development.

We are moving towards an era which would be defined by parameters of knowledge and wisdom. India in order to become a developed nation, we need highly educated people who are skilled and who can drive our economy forward.

References

1. *Driscoll, M.P. (1994): Psychology of learning for instruction. Allyn and Bacon, Boston.*
2. *Newby, T., Stepich, D., Lehman, J., and Russel, J. (2000): Instructional technology for teaching and learning,*
3. *Barksdale-Ladd, M.A. (1994). Teacher Empowerment and literacy instruction in three professional development*
4. *schools. Journal of Teacher Education, 45(20), 104-111.*
5. *International Workshop on Information and Communication Technology for Professional Development of Teacher.*
6. *DEP-DPEP, IGNOU: New Delhi.*
7. *Macroff, G.I. (1988). The Empowerment of teachers:*
8. *-Henry Brooks Adams*
9. *Bill Gates 1955 in Independent on Sunday 1997*
10. *New Education Policy, 2020 Highlights: School and Higher Education to See Major Changes. 2020. Hindustan Times. Available from: https://www.hindustantimes.com/education/new-education-policy-2020-live-updates-important-takeaways/story-yYm1QaeNyFW4uTTU3g9bJO.html [Google Scholar]*
11. *New Education Policy, Government of India, Ministry of Human Resource Development. 2020. Available from: https://www.mhrd.gov.in/nep-new [Google Scholar]*

Role of Indian Diaspora in Making Country Identity

Dr. Jyoti Gautam
Assistant Professor, Govt. Meera Girls P.G. College, Udaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

The word "diaspora" is defined, at its simplest, as the dispersal of people from their original homeland (Butler, 2001). Historically, in the fifth century "diaspora" was always belonging with Israel and the flight of the Jews from Babylon, but over the past decade many countries around the world have talked about their diaspora, which originated from the Greek word "dia" and "spero," meaning over and scattering (Butler, 2001; Brinkerhoff, 2007; Gautam, 2013; Kiamba, 2014). So, the word "diaspora" originates from a Greek word that reflects the sense of dispersion. Today, the Indian diaspora is more prosperous than previous years and its involvement in India's development is expanding. It contributes by way of investment, remittances, promoting Indian culture abroad, lobbying for India, and for building a good image of India by their industry and intelligence. According to Global Migration Report 2020, India continues to be the largest country of origin of international migrants with a 17.5 million-strong diaspora across the world, and it received the highest remittance of $78.6 billion from Indians living abroad. In this paper I want to highlight contribution of Indian diaspora in development of country.

Keywords : *Diaspora, Economic Development, Tourism, Socio cultural impact, Leadership, Diasporapolicy.*

The term "Diaspora" is derived from a Greek word, meaning dispersion. It was used by the Jewish people, denoting their world-wide dispersion outside their homeland. In Hebrew it was called Golah or Galut, meaning "Exile". Since the Jewish people refused to assimilate and were confronted with repression, they moved out of Israel (Comay, 1981). Jews survived due to migration, adaptation to the new countries and adhere to their traditions and faith. The origin of the Indian Diaspora has always been the regional social structures of the migrants and emigrants. On the basis of regional cultures and languages in Europe, Indians create their Bengali, Punjabi and Telugu Diasporas. However, when there is a question of the Indian Diaspora, they always feel a part of it. It is the shared cultural heritage of Indians which lays the foundation for the Indian Diaspora. Globalization of the Indian diaspora had already started during the emigration period to the plantation colonies. The terms of Jahaji bhai (ship brotherhood) and dipua bhai (depot brotherhood) were the cementing factors and beyond caste, religion and language created a globalised feeling of being the Indian Diaspora (Gautam, 1999). It was the 'circle of friends', who brought Indians together and formed associations. These associations jointly created feelings of belonging to the Indian cultural heritage and of keeping relations with India. With the help of transport, telephone and cyber technology, they developed cross-border relations, which in turn helped them to meet other Indian communities. This developed first individually but later as a form of collective transnationalism across borders (Portes, 1977). This became a basis for creating a World Indian community, nowadays known as the Indian Diaspora. As Appadurai says, "One positive

force that encourages emancipator politics of globalization is the role of imagination in social life". It means that imagination itself is a social force, running across national borders and producing locality as a spatial fact. "The imagination is no longer a matter of individual genius, escapism from ordinary life, or just a dimension of aesthetics. It is a faculty that informs the daily life of ordinary people in myriad ways: It allows people to consider migration, resist state violence, seek social redress, and design new forms of civic association and collaboration, often across national lines" (Appadurai, 2000). Globalization is inherently connected to the working of free capital. The Indian Diaspora with transnational links helped Indian communities. Economic resources have always been responsible to achieve social welfare of the community and family prosperity.

No country can deny the impact of diaspora, whether it is a developing or a developed country. Recent research suggests that diaspora entrepreneurship can contribute to development by creating jobs and businesses, stimulating innovation, creating social capital across borders and channelling political and financial capital toward their countries of origin (Newland and Tanaka, 2010). Across the globe, the diaspora establishes their identity, impact and hybrid culture in host countries. Diaspora organizations serve as bridges between host and home countries on account of the dual membership of diasporas and nationals of the host country and are thus in a position to serve the interests of members in both the home and host country . As economist Nirvikar Singh says in an interview with the University of California Santa Cruz, “Indian entrepreneurship is a very important engine of economic growth." The co-author of a book on the Indian diaspora in the US notes that 8% of the founders of high-tech companies are Indian. With SundarPichai running Google and SatyaNadella the CEO of Microsoft, Indians play a prominent role in some of America’s biggest techfirms.

Indian Diaspora in Other Countries Indian diaspora, although widespread and varied, carried with them socio - cultural baggage which consists, among other things a set of religious beliefs, a predefined social identity, a framework of norms and values governing family and kinship organisation, language and food habits. The migration did not cut them away from the lucid memory of living in India and in many ways retained emotional and physical contact with the homeland. The "myth of return" constantly motivated them and keeping in touch was a means to live that dream. This phenomenon accelerated due to the hardships of living in an alien community and culture totally removed from the background they hail from. This facet of migration makes them distinct and separate there is a conscious attempt to retain their identity.

India was the leading country of origin of international migrants in 2019 with a 17.5 million strong diaspora, according to new estimates released by the United Nations, which said the number of migrants globally reached an estimated 272 million. It has a transnational perspective and differs from International migration. "In transnational migration, persons literally live their lives across international borders" (Glick Schiller, 1999). In such a situation they create transnational relations and become a single transnational diaspora. During the 17th and 18th centuries Indians migrated to Russia and Central Asia established their settlements and observed socio religious customs. They were referred as "Indian Merchant Diaspora". In Astrakhan (in Russia) there was a big Indian community which lived in an enclave. Most of them were bankers and traders.

The period also saw migration to the west Asia, particularly to the Gulf region and the case of the Twice-Migrants- like the Surinam Indians to Netherlands, Fiji Indians to Australia and the Ugandan Indians to the U.K. There is also a possibility of thrice- migrants like the Indians

who migrated to Suriname initially, migrated later to the Netherlands. Later, they again migrated to the United States.

Many countries are recognizing the potential of their diasporas to contribute to their nations' economic and social development through a range of contributions, including financial investment, political advocacy and philanthropic giving (Kapur, 2004; Khadria, 2008; Basu, 2016). Economic factors underpinned the migration of the diaspora. Unlike other kinds of migration in international relations, i.e., mass migration or 'national' refugee migration, the migration of the Indian diaspora has not resulted from any political or social upheaval, but primarily due to economic factors. (Dutt, 1988). Here we will know about the significance of Indian diaspora in various sectors.

Significance of Indian Diaspora

(a) Economic Sector

One of the main reasons for the increased focus on the diaspora is the success achieved by Indian diaspora in various economic activities. Their expertise in financial, management, corporate, banking and trade sectors are an asset to any developing country. The opening of the Indian economy during the 90s, the diaspora can play a major role in rejuvenating and reforming the economy. There are various ways in which the diaspora can serve Indian interests. Members of Indian diaspora can play a positive role in supporting our trade, facilitating access to top management, and FDI initiatives and also help in increasing the share of products expanded by large multinational corporations. Insights into market penetration strategies which are very important in a competitive environment can be provided by them and their networks can be made use for the entry of new products and services from India.

Indian diaspora is one of the richest minorities in many developed countries; this helped them to lobby for favourable terms regarding India's interests. For example, at 2.8 million, Indians, but they are the most educated and richest minority, in the US population. (According to a 2013 Pew survey). The migration of less-skilled labour has also helped in bringing down pretended unemployment in India. In general, migrants' remittances have positive systemic effects on the balance of payments. Remittances of $70-80 billion help to bridge a wider trade deficit. By weaving a web of cross-national networks, the migrant workers facilitated the flow of tacit information, technologies and commercial and business ideas into India. With the strong emotional and cultural feelings NRIs are more prone to donating to domestic charities. Diaspora acts as 'agents of change' facilitating and enhancing investment, boosting international trade and accelerating industrial development, and tourism. Another advantage in nurturing ties with an active Diaspora is an accelerated technological sector and an important advantage in having a large emigrant group is "diaspora diplomacy" and they act as "bridge-builders" between their adopted and home countries. . There is a growing body of evidence suggesting that the income from remittances is disproportionally spent on education and health care rather than everyday consumption (Adams, 1991 and Plaza et al., 2015). Apart from economic remittances, recent perspective on remittances promotes attention to a broader perspective that includes technological and social and remittances. The diaspora also contributes through philanthropic remittances (Goldring, 2004), and the development of their former communities through hometown associations and collective financing of development projects such as schools, health facilities and community infrastructure [Ghosh, 2006; Orozco and Garcia Zanello, 2009, World Bank, 2006b, UNDP (United Nations Development Program) 2009]. Regarding the development objectives more generally, Diasporas also organize philanthropic activities targeted toward the homeland, either through diaspora organizations or less formally and individually. Education and technological advancements are powerful tools for societal

change. These can mould the society in an innovative and fruitful direction. Emphasizing the possible contribution of diaspora for education in the home country, Ketkar and Ratha (2011) argued that diaspora bonds could be an important source of funding for education. They cited the example of India and Israel for this kind of innovative approach. Similarly, diaspora can strengthen the technological advancement and enhance the innovative ideas of people in the homeland by creating the "brain chain." It will also beneficial for host country.

(b) Tourism Sector

Exploring the tourism potential in India is also an area which needs new focus. In addition to the frequent visits made by the diaspora to the respective areas, the potential of the diaspora can tapped in setting up new hotels, resorts and bringing the latest trends in hospitality industry in the world. Many states in India are waking up to the potential of the tourism sector and through successful policies; the diaspora can be induced to set up establishments with similar facilities in India. Tourism publicity can also be given through their establishments. Second generation diaspora are a potential target group for the promotion of tourism and by attracting them through special packages and schemes this can be accomplished. That is, visiting India for reasons such as searching for one's roots, meeting family, visiting Bollywood locations, visits for religious and other purposes or just enjoying the feeling of having visited one's ancestral homeland. According to the World Travel and Tourism Council, tourism accounted for about 10 percent of India's GDP in 2016, about US $209 billion. The number of foreign tourists amounted to 8.9 million persons, and this sector is growing annually at an estimated 6.8 percent. Anyway, since foreign tourism to India is growing, we can safely assume diaspora tourism is growing as well. For some categories of tourists, we are almost certain that they represent diaspora tourism, specifically visitors from societies close to India such as Nepal, Bangladesh, Malaysia and Pakistan. Other visitors from the Gulf states, the United Kingdom and Canada, most likely consist of substantial numbers of Indian diaspora tourists.

The diaspora tourists fall into two sectors. The first consists of non-resident Indians (NRI), as Indians migrated to Western societies were labelled until recently. They are the people who transfer money to India. The other segment consists of former PIOs, (people of Indian origin), who often feel related to their ancestral homeland. They visit India as tourists. Their tourism falls into roots tourism, heritage tourism, Bollywood tourism, identity tourism and medical tourism. These are the people who are spending money when visiting India.

(c) Socio-cultural Sector

Diaspora can act as an agent of socio-cultural change. Today, knowledge has become the most important capital, and therefore, the success of any society depends on harnessing that is called "knowledge capital." The knowledge-based economy places great importance on the diffusion and use of knowledge and information, as well as its creation. In this context, the socio-cultural and emotional linkages between diaspora members and the country persons help in professional networks and alliances. In a comparative study about the assimilation and integration of migrant entrepreneurs of Chinese and Indian origins, Hamilton et al. (2008) found that migrant groups have a strong linkage to the culture in which they grew up. Socially, Diasporas are connected with their homeland through various kinds of knowledge transfer. Information technologies, especially internet, are the main tool for knowledge transfer. Diaspora networking refers to developing a bridging social capital network that links the homeland to the diaspora. This includes fulfilling intermediary functions acting as a coordinating body between the supply and demand of potential contributions (Meyer and Sinani, 2009), facilitating the migration process and ensuring transportability of qualification. Sahoo

and Patnaik (2010) recount that most developing countries today are making an attempt to link with their Diasporas through alliances and networks. As the abilities and skills are highly dispersed in the world today, locating the skills and abilities through greater networking across the globe brings advantage to any institution and state to prosper faster. Diaspora is a very natural choice for many developing countries. Various cultural aspects are also influenced by Diasporas in a positive way such as an exit from various traditional taboos and increasing presence of women in economic and public space. Festivals are the cultural symbols of India, which are celebrated among Indians all over the world. It provides Indians the platform to bind them together in a tight-knit community. The major festivals of Indians, which is celebrated with much fanfare across the globe are Diwali, Holi, Dasahara, Raksha Bandhan, Baisakhi, Id, Ganesh visarjana etc. During these festivities Indians invite their kith and kin settled in different parts of the world to celebrate on a grand manner. Thus the diaspora are circulating our traditions and beliefs in all over the world.

(d) Leadership Sector

Many people of Indian origin hold top political positions in many countries. There are some of the politicians of the world whose roots trace back to India. The most recent example of an Indian origin politician in United Kingdom, Rishi Sunak as the country's chancellor of exchequer is being allotted a major ministerial position. Conservative party Prime Minister Boris Johnson's cabinet features two other ministers of Indian descent, Alok Sharma and Priti Patel. In Canada Prime Minister Justin Trudeau's cabinet currently includes four of them –Navdeep Bains, Anita Anand, Harjit Sajjan and Bardish Chagger. In Fiji Mahindra Chaudhary, leader of the country's Labour party became the first Indo-Fijian to be elected prime minister in 1999. In Guyana, has about 40 per cent of its population is of Indian descent. As a consequence, Guyana has had four Indian-origin politicians who became prime minister or president. Cheddi Berret Jagan in 1953 the elected chief minister (akin to the post of the prime minister) and in the period of 1992-1997 he serve as the president of Guyana. Shridath Surendranath Ramphal was Guyana's foreign minister from 1972 to 75. After completing his ministerial tenure, Ramphal served as the second secretary general of the Commonwealth Nations from 1975 to 1990. Similar to Jagan, Bharrat Jagdeo, who was born to Indo-Guyanese Hindu parents, went on to serve as both prime minister and president. Prime Minister Moses Nagamootoo is of Tamil Indian descent. He was elected to the parliament in 1992, and served in several ministerial roles, before becoming the prime minister in 2015. In Ireland, the Prime minister was Leo Varadkar (2017) also represent Indian diaspora. In Malaysia Owing to the widespread Indian influence across Southeast Asia in the early and medieval times, Malaysia features a substantial number of Indian-origin political figures. V.T. Sambanthan Prime Minister (1973), V. Manickavasagam Pillai was the sixth president of the MIC and served as the Minister of Communication in the cabinet. Former vice president of the people's justice party Sivarasa Rasiah, is a major contemporary political figure in Malaysia and is currently the Deputy Minister for Rural Development. A Tamil-origin politician, M. Kayveas, is another major figure in Malaysian politics. Among other politicians, G. Palanivel, was the 8th president of the MIC, and served as a minister in the prime minister's department. P. Kamalanathan was formerly the Deputy Minister of Education and Higher Learning. In Mauritius have a large Indian-origin population, and nearly 52 per cent of its citizens practice Hinduism. In post-independence Mauritius There have been seven Indian-origin presidents or prime ministers. The current Mauritian Prime Minister Pravind Kumar Jugnauth hails from a high class Hindu-Yadav family. Country's first prime minister,Seewoosagur Ramgoolam(1968 to

1982) is considered one of the three founding father of Mauritius. His son, Navin Ramgoolam (2005 to 2014), was the third prime minister of the country. Veerasamy Ringaadoo, Cassem Uteem, and Kailash Purryag, are all Indian-origin former presidents of Mauritius. In New Zealand there have been a few significant politicians of Indian descent. Among them, the most prominent has been Anand Satyanand former judge and ombudsman who served as the 19th Governor General of New Zealand. In Singapore. C.V. Devan Nair, (1981 to 1985) a Kerala-origin Singaporean politician, was the third president of Singapore. S.R. Nathan (1999 to 2011) was the sixth president of Singapore. S. Rajaratnam has been one of the defining politicians in Singapore's history. He was the deputy prime minister from 1980 to 85 and was a part of the country's cabinet from 1959 to 88. Suppiah Dhanabalan, was a prominent politician during the 1980. S. Jayakumar, was the deputy prime minister of the country from 2004 to 2009. Other important Sinagaporean politicians of Indian descent, who held significant portfolios include K. Shanmugan, S. Iswaran, Tharman Shanmugaratnam, and Indrane Rajah. In South Africa In recent times, the influence of Indian-origin Gupta Brothers has been a matter of much attention. Other Indian origin politicians to hold significant portfolios in the government include Enver Surty, Ebrahim Patel, and Radhakrishna Padayachi. In Trinidad and Tobago Kamla Persad-Bissessar,(2010 to 2015) who was born to parents of Indian descent, served as the sixth major minister of the country. Basdeo Panday served as the prime minister from 1995 to 2001. And Noor Hassanali,(1987 to 1997) a retired high court judge, went on to become the first Indian-origin president of Trinidad and Tobago. Linda Baboolal, Surujrattan Rambachan, Simbhoonath Capildeo, Winston Chandarbhan Dookeran, and Ralph Maraj are the other Indian-origin politicians to have held portfolios. In United States Often the Indian community is dubbed as the most successful ethnic grouping in the US, and its disproportionate political influence is a matter of much discussion. Most prominent among them have been Piyush Bobby Jindal and Nikki Haley. Thus the Indian diaspora has a significant position in world leadership. They serve as important posts in various countries. So we should more focus on it.

India's Diaspora Policy

India was initially sensitive to the view that championing the cause of overseas Indians might offend the host countries, WHO should be fully responsible for their welfare and security. Pandit Jawahar Lal Nehru's views were that the diaspora could not expect India to fight for their rights and therefore India's foreign policy in the 1950s was accordingly structured as a model of non-interference whenever the emigrant Indians got into trouble in Myanmar, Sri Lanka etc.

However, in the 1980s Rajiv Gandhi was the first Prime Minister who changed the diaspora policy by inviting Indians abroad, regardless of their nationality, to participate in nation-building. Then after 2002 under, Atal Bihari Vajpayee Government, there came a host of positive measures such as a separate Ministry of Overseas Indian Affairs, the Person of Indian Origin (PIO) Card, Pravasi Bharatiya Samman Award, Pravasi Bharatiya Divas, NRI funds, Overseas Citizen of India Card and voting rights for Indian citizens abroad. Furthermore, in 2015, the Ministry of External Affairs launched the e-migrate system that requires all foreign employers to register in the database.IN 2016 the current government has launched a scheme called 'Know India Program' (KIP) for diaspora engagement which familiarizes Indian-origin youth (18-30 years) with their Indian roots and contemporary India, Other youth-centric outreach programmes include scholarships to pursue undergraduate courses in recognised University Grants Commission universities in India, as well as Bharat KoJano online quizzes that test the participants' knowledge of India's heritage, history and culture. Now we understand the role of Indian diaspora to make strong our country.

Conclusion

Indian diaspora contributes a lot to promoting Indian culture, building a good image of our country by their intelligence and leadership quality. In this paper we read about their contribution. This information really drenches us about the achievements of Indian diaspora that on one can ignore significance of our diaspora. Thus the significance of Indian diaspora in brightening the name of country.

References

1. *Appadurai, Arjun 1996. Modernity at Large: Cultural Dimensions of Globalization. Minneapolis: University of Minnesota Prerss. 2000.*
2. *Comay, Joan 2000. The Diaspora Story : The Epic of the Jewish People among the Nations. Tel Aviv: Steimatzky.*
3. *Gautam, Tara and M.K.Gautam 2011."Popularization of Bollywood and Indian films in nthe Netherlands". In R. Lakhina&B.Madan (eds.) Sixty Years of the Netherlands-India Association, New Delhi.*
4. *Portes, A. 1977. "Immigration theory for a new century: Some Problems and Opportunities". In International Migration Reviewl 31: pp. 799-825.*
5. *Adams, R.H. (1991), "International remittances and the household: analysis and review of global evidence", Journal of African Economies, Vol. 15 No. 2, pp. 396-425.*
6. *Basu, S. (2016), "Diasporas transforming homelands: nuancing 'collective remittance' practices in rural Gujarat", Economic Political Weekly, Vol. 51 No. 41, pp. 54-62.*
7. *rinkerhoff, J.M. (2007), "Diaspora and development: what role for foreign aid?", in Picard,*
8. *Butler, K.D. (2001), "Defining diaspora, refining a discourse", Diaspora: A Journal of Transnational Studies, Vol. 10 No. 2, pp. 189-219.*
9. *Chand, M. (2010), "Diasporas as drivers of national competitiveness", in Devinney,*
10. *Gautam, M.K. (2013), "Indian diaspora: ethnicity and diasporic identity", CARIM-India Research Report 2013/29, CARIM India – Developing A Knowledge Base For Policymaking On India-EU Migration.*
11. *Ghosh, B. (2006), Migrants' Remittances and Development: Myths, Rhetoric and Realities, International Organization for Migration (IOM), Le Grand-Saconnex.*
12. *Goldring, L. (2004), "Family and collective remittances to Mexico: a multi-dimensional typology", Development and Change, Vol. 35 No. 4, pp. 799-840.*
13. *https://economictimes.indiatimes.com/nri/nris-in-news/at-17-5-million-indian-diaspora-largest-in-the-world*
14. *Kapur, D. (2004), "Remittances: the new development mantra?", G-24 Discussion Paper Series No 29, United Nations Conference on Trade and Development, United Nations, New York,*
15. *NY. Kapur, D. (2010), Diaspora, Development and Democracy: The Domestic Impact of International Migration in India, Princeton University Press, New Jersey*
16. *Khadria, B. (2008), "India: skilled migration to development countries, labour migration to the gulf", in Castles, S. and Delgado Wise, R. (Eds), Migration and Development: Perspectives from the South, International Organisation for Migration, Geneva, pp. 79-111.*
17. *Kiamba, A. (2014),"The Indian diaspora and policy formulation in Kenya", Diaspora Studies, Vol. 7 No. 2, pp. 88-99.*
18. *Meyer, K. and Sinani, E.J. (2009), "When and where does foreign direct investment generate positive spillovers? A meta-analysis", Journal of International Business Studies, Vol. 40 No. 7, pp. 1075-1094.*
19. *Orozco, M. and Garcia Zanello, E. (2009), "Hometown associations: transnationalism, philanthropy, and development", Brown Journal of World Affairs, Vol. 15 No. 2.*
20. *Pande, A. (2014), "The role of Indian diaspora in the development of the Indian IT industry", Diaspora Studies, Vol. 7 No. 2, pp. 121-129*
21. *Srikant Dutt, Viewpoints on the Third World, (New Delhi, Allied Publishers, 1988), pp. 99-125.*
22. *Ministry of External Affairs Annual Report, 2000-2001, Government of lndia, New Delhi, p. 191.*

Dissemination of Wisdom through Kahlil Gibran's Literary Creations : A Critical Perspective

SHODH SHREE
ISSN 2277-5587 RNI PAHIN2011A0053
shodhshree@gmail.com

Kamala Ratnoo
Research Scholar, Jai Narian Vyas University, Jodhpur

Abstract

Wisdom is the quality of being wise, especially in relation to the conduct of means and ends; the combination of knowledge and experience, with the ability to apply them judiciously. Kahlil Gibran (1883-1931), stood out as an exceptional thinker and man of wisdom par excellence in the literary world. The Lebanese American bard never stopped searching for the simple wisdom of how to live a happy and fulfilling life. This research paper attempts to explore and understand Gibran's profound and practical wisdom through his literary creations namely The Prophet, A Tear and A Smile, The Forerunner and Sand and Foam.

Keywords *: Wisdom, Faith, Humanity, Humility, Simplicity, Experience, Spiritual.*

What is a wise way to live life, what are we all looking for in life? These questions have intrigued mankind since time immemorial and Gibran was no exception. He earnestly sought the answers to these ever persistent queries.

Gibran was born in the Middle Eastern Arabian soil; became an immigrant at the age of twelve and spent rest of his life in America. His personality was an ideal synthesis of the east and the west, reflecting best of both the worlds. 'Gifted' is a term that best suits and defines Gibran's personality. He comes across as an extremely foresighted, spiritual, wise and equally compassionate person.

Almost all the biographers of Gibran such as Suheil Bushrui and Joe Jenkins, Robin Waterfield, Barbara Young, Mikhail Naimy, Jean and Kahlil Gibran, Alexander Najjar have written about Gibran's truly gifted personality and superlative wisdom.

Barbara Young in her book, *This Man From Lebanon* writes,

His spoken words, the wisdom of his counsel, the contagion of his infinite faith in God, the Most High, God, the Father of all living, his boundless love and understanding and compassion for all men, sons of the Father - these have enriched countless multitudes of lives to their eternal treasure, and the lives of their children's children.(xiii)

Suheil Bushrui and Joe Jenkins in their biography of Gibran entitled, *Kahlil Gibran : Man and Poet* write about the permanence of Gibran's wisdom, "His work, set forth in the form of a simple lyrical beauty and profound depth of meaning for all who endeavor to seek it, applies dynamically and with striking timelessness to the momentous challenges of today." (23)

The Prophet published in 1923, is regarded as Gibran's greatest literary creation. Gibran is at his best, a man inspired with a force of vision and equipped with the force of love trying to treat the tired souls and bodies of mankind. In *The Prophet* Gibran looks at the world with the eyes of a wise man who wants to build a better society and lead people to the real way of life. The sermons delivered by Almustafa before

his departure from the imaginary city of Orphalese are an answer to the essential question : how should one live ?

Valuable musings and words of wisdom on almost all aspects of life, are shared by Almustafa.

Marriage is a sacred ritual in all the religions of the world. Almustafa gives his concept of an ideal as well as practical marriage in the sermon, *Marriage*, he says,

> Love one another, but make not a bond of love:
>
> Let it rather be a moving sea between the shores of your souls.
>
> Fill each other's cup but drink not from one cup.
>
> Give one another of your bread but eat not from the same loaf.
>
> Sing and dance together and be joyous, but let each one of you be alone,
>
> Even as the strings of a lute are alone though they quiver with the same music.
>
> Give your hearts, but not into each other's keeping.
>
> For only the hand of Life can contain your hearts.
>
> And stand together yet not too near together.
>
> For the pillars of the temple stand apart,
>
> And the oak tree and the cypress grow not in each other's shadow. *(Collected Works of Kahlil Gibran 15)*

These lines beautifully depict the importance of 'holding on and letting go' in a marriage. The two partners of a marriage are united and at the same time, they have their own individual identities. They should share their duties, work towards strengthening their marriage and be respectful towards one another. Husband and wife are two pivotal pillars of marriage; neither, should they loose their identity nor try to overshadow one another. Gibran remained unmarried all his life, yet his understanding of the institution of marriage is remarkable and serves as an advisory for married couples. Similarly beautiful and wise views about children are expressed by Almustafa in the sermon *Children* when he says,

> Your children are not your children
>
> They are the sons and daughters of Life's longing for itself.
>
> They come through you but not from you
>
> And though they are with you yet they belong not to you.
>
> You may give them your love but not your thoughts,
>
> For they have their own thoughts.
>
> You may house their bodies but not their souls,
>
> For their souls dwell in the house of tomorrow, which you cannot visit, not even in your dreams. *(Collected Works of Kahlil Gibran 16)*

Children come 'through' their parents not 'from' them. They have their own personality and identity. They cannot and should not be a replica of their parents. Gibran had a wonderful relationship with his mother, who realized her son's supreme talent and was a supportive and encouraging figure in his life rather than overpowering and controlling one. She always let him be himself. Gibran's views on children provide valuable advice to parents and present a fresh, practical, and at the same time spiritual interpretation of parent-children relationship.

Talking about crime and punishment, Almustafa says in his sermon,

And let him who would lash the offender look unto the spirit of the offended.

And if any of you would punish in the name of righteousness and lay the axe unto the evil tree, let him see to its roots;

And Verily he will find the roots of the good and the bad, the fruitful and the fruitless, all entwined together in the silent heart of the earth.

(Collected Works of Kahlil Gibran 31-32)

Gibran had full faith in the basic goodness of human nature. Nobody is born good or bad; environment, upbringing and circumstances have a major role in shaping a person's life. The aim of judiciary should be to identify the cause of crime, and rules should be followed in spirit, not just in letters.

In the sermon *Good and Evil*, Almustafa says,

Of the good in you I can speak, but not of the evil.

For what is evil but good tortured by its own hunger and thirst ?

Verily when good is hungry it seeks food even in the dark caves, and when it thirsts it drinks even of dead waters. *(Collected Works of Kahlil Gibran 46)*

Gibran believed that one should hate sin and not the sinner. Man is tempted towards sin, evil and negativity due to compulsions and circumstances. Such valuable words of wisdom lead us to an understanding based on positivity.

A Tear and A Smile is a collection of parables, stories and poems in Gibran's wholly inimitable manner. Published in 1914, the book beams with wisdom and insight.

The poem *Song of Fortune* depicts the ill effects of materialism on human society and relationships,

Man and I are sweethearts

He craves me and I long for him,

But alas !

Between us has appeared a rival who brings us misery.

She is cruel and demanding,

Possessing empty lure.

Her name is Substance. *(Collected Works of Kahlil Gibran 324)*

Material greed and selfishness have created rifts among mankind. Contentment is illusive and man is locked in the cave of gluttony and greed. Man is ignorant of the might and beauty of nature, he is preoccupied with imaginary fears and apprehensions. His thirst is unquenchable.

In the poem, *The Playground of life*, the poet presents a contrast and comparison of a life spent in pursuit of power and a life spent in pursuit of truth and beauty, "One hour devoted to the pursuit of beauty and love is worth a full century of glory given by the frightened weak to the strong." *(Collected Works of Kahlil Gibran 364*)

The aim of rulers and monarchs should be the upliftment and empowerment of weak rather than their exploitation. The sanctity of human life, lies in empathy, love, compassion, selflessness and service. The poet further says,

"One hour devoted to mourning and lamenting the stolen equality of the weak is nobler than a century filled with greed and usurpation". *(Collected Works of Kahlil Gibran 364)*

Gibran's wisdom shines through as a jewel and illuminates the path of truth. His quest for a meaningful way of life, leads to realisations that are universal and most beneficiary for mankind.

The Forerunner : His Parables and Poems published in 1920, is a collection of philosophical poetry and short stories brimming with wisdom and spirituality. Barbara young writes in her book, *This Man From Lebanon,*

> The reception given to *The Madman* being reason enough, it was followed in 1920 by *The Forerunner*, again in part translation from his Arabic, but a book of wider vision, deeper wisdom, and a warm and tender compassion, still with a touch of controlled irony, still seeing behind the veil of illusion, yet without the shading of bitterness and with a surge of love and yearning. (45-46)

War and The Small Nations is a short prose piece that exposes the evil intentions of big nations to usurp and enslave small nations. Gibran's connection to his native land Lebanon remained strong throughout his life. He dedicated himself to the liberation of his people from oppressive regimes.

The 'sheep' and the 'lamb' symbolize the small

nations, where as the 'eagle' symbolizes big nations. The story ends with a relevant message,

The sheep looked up and was much astonished. She turned to the lamb and said:

"How strange, my child, that these two noble birds should attack one another. Is not the vast sky large enough for both of them ? Pray, my little one, pray in your heart that God may make peace between your winged brothers."

And the lamb prayed in his heart. *(Collected Works of Kahlil Gibran 224)*

Such stories are examples of community wisdom. Gibran's message is for whole mankind, a message of peace, harmony and mutual respect among nations. Big or small, all the countries of the world have their sovereignty and individual identity. It should be preserved.

Another beautiful prose piece, "Said a Sheet of Snow white paper ……." emphasizes upon the importance of 'experience' in life. A life with no risks, targets or aims, is hollow and futile. The concluding line is remarkable for its impact, ''And the Snow White Sheet of paper did remain pure and chaste for ever, pure and chaste-and empty." *(Collected Works of Kahlil Gibran 233)*

Sand and Foam is another jewel of Gibran's literary treasure. Published in the year 1926, it is a book of aphorisms, poems and parables rich with worldly wisdom. Barbara young in her book, *This Man From Lebanon* writes,

> It is my opinion, and I have often heard others express it as their own, that there is not in the language another book of its character, a book that has not only three dimensions- height, depth and breath but also the fourth dimension timelessness, which is but another word for time unbounded, limitless.
>
> Therein are brief sentences that give expression to the wisdom of the ages and I use the phrase in its basic sense, not as the catchword from any cult and in the form of pure truth to which no faith or creed will wish to take exception. (88)

Gibran always lauded the ideals of simplicity, modesty and humility; needless to say he himself was a practitioner of these.

He says, " Wisdom ceases to be wisdom when it becomes too proud to weep, too grave to laugh, and too self full to seek other than itself." *(Collected Works of Kahlil Gibran 151)*

These lines underline the difference between being wise and being arrogant; truly wise people never show off their prudence.

Yet another beautiful and remarkably prudent observation from the book reads as,

''I have learned silence from the talkative, toleration from the intolerant, and kindness from the unkind, yet strange, I am ungrateful to these teachers.'' *(Collected Works of Kahlil Gibran 151)*

These lines present the silent observer and learner who learns the lessons from the school of life and is wise enough not to fall in the trap of vices.

Gibran is at his best, natural and unique self. The importance of generosity is beautifully underlined in the following lines,

''Generosity is giving more than you can and pride is taking less than you need". *(Collected Works of Kahlil Gibran 153)*

Gibran always felt that one should be a 'giver' more than a 'receiver'.

The importance of simple things in life and attaining peace and satisfaction by fulfilling one's duty is presented in the following lines,

'' Yes, there is a Nirvana, it is in leading your sheep to a green pasture, and in putting your child to sleep and in writing the last line of your poem." *(Collected Works of Kahlil Gibran 154)*

Nirvana is a place of perfect peace and happiness, like heaven. In Hinduism and Buddhism, Nirvana is the highest state that some one can attain. It is state of enlightenment. Happiness can be derived from simple things. Living one's life with gratitude, peace, and contentment is nothing short of Nirvana.

Conclusion :- Since his childhood, Gibran had a curious and adventurous nature. He had a great craving for knowledge. He wanted to explore all dimensions of life. He strived to learn about various cultures and civilizations of the world. He was an avid reader throughout his life. His wisdom stems from his divinely talented and gifted self, his Maronite Christian upbringing, the Arabian Sufi influences and his endless perusal of knowledge. His migration to America at a young age, opened the vistas of western thought and philosophy for him.

Gibran wanted to share his experiences, views, thoughts and feelings with the world. He wanted to give humanity, a glimpse of his heart and soul. Till his death, he was engaged in writing and painting. The wisdom of his literary creations is an invaluable asset to humanity. Generations of readers have enriched from his precious aphorisms and continue to do so today. His message is more relevant and apt in today's age than anytime earlier.

To conclude with the beautiful lines from *Sand and Foam*,

"It is indeed misery if I strech an empty hand to men and receive nothing, but it is hopelessness if I strech a full hand and find none to receive" *(Collected Works of Kahlil Gibran 158)*

References

1. *Bushri, Suheil and Joe Jenkins. Kahlil Gibran : Man and Poet. Oxford, Oneworld publications, 1998.*
2. *Collected Works of Kahlil Gibran. Fingerprint Classics, 2019.*
3. *Young, Barbara. This Man From Lebanon: A Study of Kahlil Gibran. New York, Alfred A. Knopf, 1945.*

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

Head Office : "SATYAM" Munot Nagar, Beawar - 305901

Branch Office : 54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.in

Individual Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

.....

Address .....

.....

District .....

State

.....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April, July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	**DR S N TAILOR FOUNDATION** (A TRIBUTE OF LATE SHRI PARAS HEMENDRA G TAILOR) Union Bank of India, Beawar -305901 UB A/C No. 0326321010000001 **IFS Code :** UBIN0826472 • **MICR Code :** 305026014 **Account Type :** Current • **Subscription Fees :** 2200 Rs.

Membership No. ..... Date .....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....

hereby declared that the paper entitled'.....

.....'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....

.....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

.....

Residential Address .....

.....

.....

Phone No. ..... Pin No. .....

e-mail Address .....

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

Head Office : "SATYAM" Munot Nagar, Beawar - 305901

Branch Office : 54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.in

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year	☐ 2 years	☐ 3 years
(Rs. 1200/-)	(Rs. 2000/-)	(Rs. 2800 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution .....

.....

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No. .....

E-mail ID .....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No. _____ Date _____

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly)
i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : Cheque / DD must be in Favor of DR S N TAILOR FOUNDATION
(A TRIBUTE OF LATE SHRI PARAS HEMENDRA G TAILOR)
Union Bank of India, Beawar - 305901
UB A/C No. 0326321010000001 • Account Type : Current
IFS Code : UBIN0826472 • MICR Code : 305026014

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.

2 All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.

3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.

4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.

5. Maximum word limit of research paper up to 3000 words.

6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.

7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.

8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.

9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

To,

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54–ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड़, जयपुर–302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।